श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक महानुभाव:—

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स सदर मेरठ
संरक्षक अध्यक्ष, एवं प्रधान ट्रस्टी

(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी
जैन बैंकर्स सदर मेरठ, संरक्षिका

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक महानुभाव :—

१	श्रीमान्	लाला लालचन्द जी जैन सर्राफ	सहारनपु
२	"	सेठ भवरीलाल जी जैन पाण्ड्या	झूमरीतिलैया
३	"	कृष्णचन्द जी जैन रईस	देहरादून
४	"	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या	झूमरी तिलैया
५	"	श्रीमती सावत्री देवी जैन	गिरीडीह
६	"	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन	मुजफ्फरनगर
७	"	प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन प्रेमपुरी	मेरठ
८	"	सलेकचन्द लालचन्द जी जैन	मुजफ्फरनगर
९	"	दीपचन्द जी जैन रईस	देहरादून
१०	"	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन	मसूरी
११	"	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन	ज्वालापुर
१२	"	केवलराम उग्रसेन जी जैन	जगाधरी
१३	"	गेंदामल दगडू साह जी जैन	सनावद
१४	"	मुकन्दलाल गुलशनराय जी जैन नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
१५	"	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन	देहरादून
१६	"	जयकुमार वीरसैन जी जैन सर्राफ	सदर मेरठ
१७	"	मंत्री दिगम्बर जैन समाज	खण्डवा
१८	"	बाबूराम अकलङ्कप्रसाद जी जैन	तिस्सा
१९	"	विशालचन्द जी जैन रईस	सहारनपुर
२०	"	हरीचन्द ज्योतिप्रसाद जी जैन ओवरसियर	इटावा
२१	"	सौ० प्रेम देवीशाह सु० बा० फतेहलाल जी जैन संघी	जयपुर
२२	"	मंत्राणी दिगम्बर जैन महिला समाज	गया
२३	"	सागरमल जी जैन पाण्ड्या	गिरीडीह
२४	"	गिरनारीलाल चिरञ्जीलाल जी जैन	गिरीडीह
२५	"	राधेलाल कालूराम जी जैन मोदी	गिरीडीह
२६	"	फूलचन्द बैजनाथ जी जैन नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
२७	"	सुखबीरसिंह हेमचन्द जी जैन सर्राफ	बड़ौत
२८	"	गोकुलचन्द हरकचन्द जी जैन गोधा	लालगोला
२९	"	दीपचन्द जी जैन सुपरिन्टेन्डेन्ट इन्जीनियर	कानपुर

३०	श्रीमान् लाला	मत्री दि० जैन समाज ताईकी मडी	आगरा
३१	„	सचालिका दि० जैन महिलामडल नमककी मडी	आगरा
३२	„	नेमिचन्द जी जैन रुडकी प्रेस	रुडकी
३३	„	भब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन चिलकाना वाले	सहारनपुर
३४	„	रोशनलाल के० सी० जैन	सहारनपुर
३५	„	मौल डूमल श्रीपाल जी जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	„	शीतलप्रसाद जी जैन	सदर मेरठ
३७	„	रतनलाल जैन सर्राफ	मुजफ्फरनगर
३८	„	बनवारीलाल निरञ्जनलाल जी जैन	शिमला
३९	„	❀ मीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छावडा	कुमरी-तलैया
४०	„	❀ इन्द्रजीत जी जैन वकील स्वरूपनगर	कानपुर
४१	„	❀ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या	जयपुर
४२	„	❀ दयाराम जी जैन आर एस डी ओ	सदर मेरठ
४३	„	❀ मुन्नालाल यादवराय जी जैन	सदर मेरठ
४४	„	+ जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन	सहारनपुर
४५	„	+ जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन	शिमला

नोट—जिन नामोके पहिले ❀ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आये है, शेष आने हैं। तथा जिनके पहिले + ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नही आया, अभी बाकी है।

●

सम्पादकीय

जैन न्यायके महान् प्रतिष्ठापक कुशाग्रबुद्धि तार्किकशिरोमणि वादीभकेशरी श्री समतभद्र श्री अकलङ्कदेव आदि महापुरुषोने जैन न्यायके मौलिक तत्त्वोकी समीचीन विवेचना आप्तमीमासा, प्रमाणसग्रह, न्यायविनिश्चयादि कारिकात्मक रचनाओ द्वारा की। जैनदर्शनके प्रणेता भगवान् उमास्वामिके दार्शनिक शास्त्र श्री तत्त्वार्थसूत्रके सदृश जैन न्यायको सूत्रबद्ध करने वाली "जैन न्याय सूत्र ग्रन्थ" जैन परम्परामे नही बन पाया था। इसी कमीको आचार्यप्रवर श्री माणिक्यनन्दिने आचार्य स्मृतिपरम्परासे आये हुए जैन न्यायरूप सागरको परीक्षामुखसूत्र गागरमे पूर्ण करके जैन न्यायका गौरव बढाया है। यह जैन न्यायका प्राथमिक सूत्रग्रन्थ है जो कि भारतीय न्याय विषयक कृतियोंमे अद्वितीय है।

यह ग्रन्थ ६ परिच्छेदोमे विभाजित है। इसके सूत्रोकी सख्या २१२ है। ये सूत्र सरल, विशद एव नपे तुले हैं। वस्तु विचारमे अति गम्भीर, अन्तस्तलस्पर्शी तथा अर्थ-गौरवसे ओतःप्रोत हैं। सभी सूत्र सस्कृत गद्यमे हैं, किन्तु उनके आदि अन्तमे २ श्लोक हैं :—

प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः ।
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः ॥
परीक्षामुखमादर्शं हेयोपादेयतत्त्वयोः ।
संविदे मादृशो बालः परीक्षादक्षवद् व्यधाम् ॥

आद्य श्लोकमें ग्रन्थ प्रयोजन तथा उसकी रचनाकी प्रतिज्ञा की है । और प्रतिज्ञानुसार ग्रन्थ रचना की है । सूत्रकारने हेय-उपादेय तत्त्वका यथार्थ बोध कराने के लिये परीक्षकके समान दर्पणवत् कृति बनाई ।

प्रतिपाद्य विषय.—प्रथम परिच्छेद १३ सूत्रों द्वारा प्रमाणका स्वरूप तथा प्रमाणके प्रामाण्यके स्वतस्त्व परतस्त्वका निर्णय किया है । द्वितीय परिच्छेदमें प्रमाण के प्रत्यक्ष परोक्ष दो भेद बताये हैं । प्रत्यक्षके साव्यवहारिक तथा मुख्य भेदोंको १२ सूत्रोंसे प्रतिपादन किया है । तृतीय परिच्छेदमें परोक्ष प्रमाणमें स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, आगमका १०१ सूत्रोंमें कथन है । चतुर्थमें ६ सूत्रों द्वारा प्रमाणके विषय सामान्यविशेषात्मकको समझाया है । सामान्य विशेषके भेद भी दर्शाये हैं । पाचवें परिच्छेदमें ३ सूत्रों द्वारा प्रमाणका फल साक्षात्, अज्ञाननिवारण, परम्परा हान-उपादान उपेक्षा कहकर उसे प्रमाणसे कथंचित् भिन्न अभिन्न सिद्ध किया है । छठे परिच्छेदोंमें प्रत्यक्षाभास परोक्षाभासका स्वरूप बताकर जय-पराजय व्यवस्था बताई है । इसमे ७४ सूत्र हैं । इस प्रकार इस ग्रन्थमे जैन न्यायके सभी मौलिक ग्राह्य विषयों का पूर्ण व्यवस्थित चयन हुआ है ।

न्याय विषयके ऐसे कठिन दार्शनिक विषयका आध्यात्मिक सम्बन्ध दिखाकर न्यायादि अनेक विषयके पारखी, मनीषी विद्वान श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज ने परीक्षामुखसूत्रप्रवचन द्वारा सरल सुबोध स्पष्ट किया है । समयसारादि अनेक ग्रन्थोंपर प्रवचन करने वाले विद्वान्के प्रौढ ज्ञानने इसे दुरूहतासे बचाया है जो कि न्याय विषयक गम्भीर अध्ययन, चिन्तन एवं सुयोग्य विद्वत्ताका ही सुन्दर मधुर फल है । न्यायविषयक क्षेत्रमे तत्त्व निर्णयका आधार प्रमाण ही होता है, इसलिये प्रमाण और प्रामाण्यकी परीक्षा करना अत्यावश्यक है । इन प्रवचनो द्वारा लोकमे प्रमाण विषयक विपरीत धारणायें दूर होंगी ।

मुझे इन प्रवचनोंके प्रूफ-शोधनका अवसर मिला है । मैं आशा करता हूँ कि आध्यात्मिक तत्त्वके विज्ञ रसिक इनके स्वाध्याय द्वारा लाभ उठावेंगे ।

—देवचन्द जैन, एम० ए०

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन ८, ९, १० भाग

[प्रवक्ता—पूज्य श्री १ ५ क्षु० मनोहर जी वर्णी, "सहजानन्द" महाराज]

[अष्टम भाग]



विश्वके पदार्थोंकी जातियोमे जीव जाति   इस विश्वमे समस्त पदार्थ अनन्तानन्त है और उन समस्त पदार्थोंकी जातिया देखी जाये तो सब ६ जातिमे गर्भित हो जाती है –जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म आकाश और काल। पदार्थ अनन्तानन्त इस कारण है कि किसी भी एक पदार्थके द्रव्य गुण पर्यायके द्रव्य गुण पर्याय प्रदेश किसी अन्य द्रव्यमे नही पाये जाते है और अनुभवन भी किसी द्रव्यका किसी अन्य द्रव्यमे नही होता। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे अपनी ही क्रिया करता है इस कारण सत्ता सबकी जुदी जुदी है। अत पदार्थ अनन्तानन्त हैं। यदि जीव जीवमे ही देखा जाय तो मुझ जीवका जो कुछ भी भाव बनेगा और अनुभवन होगा वह सब मुझमे ही होगा। चाहे दूसरा कोई मेरे प्रति कितना भी स्नेह रखता हो, लेकिन परिणमन और अनुभवन कोई दूसरा कर न सकेगा। मेरा परिणमन और अनुभवन मुझमे ही होता है इस कारण समस्त पदार्थ अनन्तानन्त है। अब उन सब पदार्थोंकी जातिया बनायी जाये अर्थात् एक एक ऐसा लक्षण लिया जाय जिस लक्षणसे उस पदार्थके समस्त पदार्थ ग्रहणमे आयें और दूसरी प्रकारका कोई पदार्थ आ न सके उस लक्षणको जाति कहते हैं। जातिकी अपेक्षा समस्त पदार्थ ६ प्रकारके हैं। जैसे जीव। जीवका लक्षण है ज्ञान। जो ज्ञानस्वरूप हो, ज्ञानमय हो उसे जीव कहते हैं। अब ज्ञानमय कहनेसे जितने भी ज्ञानमय पदार्थ हैं, जीव है वे सब इस जातिमे आ गए। चाहे कर्मरहित मुक्त सिद्ध भगवान हो चाहे सशरीर परमात्मा हो अथवा साधु हो, मनुष्य हो, कीट हो, मकोडा हो, स्थावर एकेन्द्रिय हो, सबमे ज्ञान स्वरूप पाया जाता है, तो ज्ञानमयताकी दृष्टिमे वे सब जीव है। और, यह एक जीव जाति हुई।

पुद्गल जातिके पदार्थ   दूसरी जाति है पुद्गल। जो पूरे और गले सो पुद्गल। मिल करके बढ जाय, बिछुड करके घट जाय ऐसी बात जिनमे पायी जाय उनका नाम है पुद्गल। जितने ये रूप रस, गध वाले पदार्थ हैं जो आखो दिखते है, जो छूनेमे ग्रहण करनेमे आते हैं ये समस्त पदार्थ पुद्गल कहलाते हैं। एक एक पदार्थ की दृष्टिसे निरखा जाय तो ये द्रव्य नही है, किन्तु किसी भी स्कधमे जो इन्द्रियके द्वारा विदित होता है उसमे अनन्तानन्त परमाणु है और वे एक–एक परमाणु एक एक द्रव्य है उन परमाणुवोका ऐसा विलक्षण सघात होजाता है, कि वहा

फिर एक एक अणु जैसी बात एक स्थूल परिणमनमे नहीं रहती इस कारण इन्हे भी उपचारसे पुद्गल कहते हैं। देखिये जो पदार्थ यहा नजर आ रहे हैं इन पदार्थोका नाम जैन शासनमे पुद्गल कहा है। इसे कोई भौतिक कहते कोई अन्य शब्दसे कहते किन्तु पुद्गल शब्द ऐसा विशुद्ध अर्थ वाला शब्द है कि ऐसी विशेषता अन्य किन्ही नामोसे नही होती। जो पूरे गले उसका नाम है पुद्गल। जो मिलकर बडा एक बन जाय और बिछुडकर अनेक हो जाय, गल जाय उसका नाम है पुद्गल। एक जाति पुद्गलकी होती। ये दो जातिके पदार्थ तो अनन्तानन्त हैं। उनमें भी जीव जातिके पदार्थोंसे पुद्गल जातिके पदार्थ अनन्तानन्त हैं। इन दो जातिके द्रव्योंके अलावा एक धर्मद्रव्य है जिसका कार्य जीव और पुद्गलके चलनेमे सहायक होना है एक अधर्म द्रव्य है जिसका उपयोग चलते हुए जीव पुद्गल जब ठहरने लगें तो उनके ठहरने मे सहायक होना है। एक आकाश द्रव्य है। जहाँ जीव पुद्गल आदिक समस्त पदार्थ अवगाहन पाते हैं। एक काल जातिके पदार्थ हैं वे असख्यात हैं, लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक काल द्रव्य अवस्थित है, उसका उपयोग है समस्त पदार्थोंके परिणमनमे कारण बनना।

समग्र पदार्थोंमे सार तत्त्व ६ जातिके पदार्थोंमे सारभूत पदार्थ जीव कहा गया है, क्योंकि वह ज्ञानस्वरूप है, आनन्दमय है। आत्माका ज्ञानस्वरूप होनेके कारण सबकी व्यवस्था सबकी सत्ताका परिचय हुआ करता है, अत जीव जातिके पदार्थ सब पदार्थोंमे सारभूत है और उन समस्त जीव पदार्थोंमें सारभूत है उनका स्वभाव। ज्ञान जो स्वभाव है उसे ज्ञानस्वभाव कहो ज्ञानस्वरूप कहो जो अनादि अनन्त जीवका सहजभाव है वह सारभूत है। तो इस जीवका नाम समय भी है और इस समयमे जो कुछ सहज भाव है वह समयसार है, तो आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उस ज्ञानकी चर्चा अभी चल रही थी। ज्ञान को ही प्रमाण कहते है।

प्रमाणका विशुद्ध लक्षण स्वपरव्यवसायित्व - जो स्व और परका प्रकाश करे उसे प्रमाण कहते हैं। यह एक प्रमाणका सामान्य स्वरूप है। जो स्वरूप होता है वह उस जातिके समस्त प्रकारके तत्त्वोमे रहता है, तभी वह लक्षण बनता है, जैसे जीवका लक्षण है ज्ञान, चाहे मुक्त हो, ससारी हो, सबमे ज्ञान पाया जाता है। जो अपने समस्त भावोमे रहे वह लक्षण कहलाता है। तो प्रमाणका लक्षण है जो स्व और पर का निश्चय करे। तो यह लक्षण प्रमाणके सब भेदोमे पहुँचना चाहिए, अर्थात् जितनी प्रकारके प्रमाण हैं वे सब प्रमाण स्वपरव्यवसायी होना चाहिए। प्रमाण कहो, ज्ञान कहो वे ज्ञान ५ प्रकारके होते मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, और केवल ज्ञान। तो सभी ज्ञानोमे स्वपरव्यवसायिता होना चाहिए सो है ही। मतिज्ञान यद्यपि उत्पत्तिमें परके आधीन है अर्थात् इन्द्रिय और मनका निमित्त पाकर मतिज्ञान उत्पन्न होता है, हो उत्पन्न किन्तु ज्ञानका जो स्वरूप है कि स्व और परका ग्रहण

करे, यह स्वरूप मतिज्ञानमे भी पाया जाता है । प्रत्येक मतिज्ञान किसी भी पदार्थको जानते हुऐ अपने आपका भी निर्णय रखते हैं अर्थात् उस ज्ञानका भी भान रहा करता है अत मतिज्ञान भी स्वपर व्यवसायी है ऐसे ही श्रुतज्ञान भी स्वपरव्यवसायी है । आगमके द्वारा या किसीके शब्द सुनकर या मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थको और विशेष जानना सो श्रुतज्ञान है । ये सब श्रुतज्ञान भी स्वपरव्यवसायी हैं अपने भी और परका भी निश्चय रखते हैं । तो सभी ज्ञान स्वपरव्यवसायी होते है, अवधिज्ञान मन पर्ययज्ञान तो प्रत्यक्ष ज्ञान है ही । ये जानता है भूत भविष्य वर्तमानकी और समीप दूरकी बातें । और, जानते हुए साथमे अपना भान भी बनाये रहते हैं । तो ये ज्ञान भी स्व-परव्यवसायी हुए केवलज्ञान तो सकल प्रत्यक्ष है, व स्वपरव्यवसायी है । यो प्रत्येक ज्ञान स्वपर व्यवसायी हुआ करते हैं । पहिले परिच्छेदमे प्रमाणके सामान्त स्वरूपका वर्णन किया था, अब द्वितीय परिच्छेदमे प्रमाणके भेदोका वर्णन चलेगा । प्रमाणके भेद प्रमाणके निकट सक्षेपमे कमसे कम बनाये जायेंगे जितनेमे प्रमाणके सब भेद गर्भित हो जायें । तो प्रमाणके भेदोको बतानेके लिए सूत्र कहा जा रहा है —

तद् द्वेधा ।२-१।।

भेदकरणकी पद्धति—प्रमाण दो प्रकारका होता है । देखिये ! प्रमाण दो प्रकारका तो कहा, लेकिन वे प्रकार इस प्रकार कहना चाहिए कि जिसमे कोई प्रमाण छूट न जाय, अटपट नाम लेनेसे सही विश्लेषण न बन सकेगा । जैसे कोई कहे कि जीव दो प्रकारके होते हैं । कहा तो ठीक है कि जीव दो तरहके होते है, उर उनसे पूछा जाय कि वे दो तरहके जीव कौन–कौन हैं । तो कह देवें—एक स्थावर जीव और एक मुक्त जीव । तो अब यह ढग ठीक तो नही रहा । स्थावर मुक्त कहनेसे यदि सब जीव आ जायें तब तो ये भेद बताने सही होते लेकिन इसमे सारे त्रस जीव छूट गए । ये बोलने वाले मनुष्य भी छूट गए । तो ये भेद विधिपूर्वक नही कहलाये । जीव दो प्रकार यदि यो कहे जायें कि एक और एक ससारी तो इसमे कोई जीव नही छूटा । जो कर्मरहित है वे मुक्त है और जो कर्म सहित है वे ससारी हैं । अब उन से छूटा कौन है ? तो किसी भी वस्तुके भेद बताये जाये तो उस ढगसे बताना चाहिए जिसमे सब भेद गर्भित हो जाये । तो इस प्रसगमे प्रमाणके भेद कहे जा रहे हैं ।

प्रमाणके भेदका उपक्रम—प्रमाण दो तरहका है । वे दो नाम क्या है ? उसके सम्बन्धमे कुछ लोग कुछ कहते कोई कुछ कहते । एक सिद्धान्त है जो प्रमाणके दो भेद यो कहते—प्रत्यक्ष और अनुमान । ऐसा भेद करनेसे आगमज्ञान आदि अनेक ज्ञान छूट गए और उनका प्रत्यक्ष भी इन्द्रिय और मनसे सीधा जो जाना जाय वह हो । जिसे जैन शासनमे साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा गया है इतना विशद भी नही, किन्तु निर्विशेष विशेषका ज्ञान है तो उनका माना गया प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रकारोमे न अवधिज्ञान आया न मनःपर्ययज्ञान आया न केवलज्ञान आया और न स्मरण

प्रत्यभिमान तर्क आगम भी आया। कितने प्रमाण छूट गए ? तो ये दो सख्यायें ठीक नही है कि प्रमाण दो हैं प्रत्यक्ष और अनुमान। तब फिर सही प्रकार क्या हैं उनको बतानेके लिये सूत्र कहते हैं —

प्रत्यक्षेतरभेदात् ॥२–२॥

प्रमाणके दो भेद - प्रमाणके दो भेद हैं – एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो प्रमाण बतानेसे सभी प्रकारके ज्ञान आ गए। और वे किस प्रकार आये उनका विवरण सुनें तो उसकी विधि यह बनायें कि प्रत्यक्ष दो प्रकारके होते है, एक साव्यवहारिक प्रत्यक्ष दूसरा पारमार्थिक प्रत्यक्ष। और परोक्ष की स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क अनुमान और आगम ये भेद हुए। तो इस प्रकारके भेदमें सर्वज्ञान आ जाते हैं। प्रत्यक्ष वास्तवमें उसका नाम है जो इन्द्रिय और मनकी सहायता लिए बिना आत्मशक्तिसे जाने उस ज्ञानका नाम है प्रत्यक्ष। लेकिन करीब करीब जिस प्रकार इन पारमार्थिक प्रत्यक्षोमे पदार्थका ज्ञान होता है उस प्रकारका न सही फिर भी प्राय स्पष्टसा ज्ञान साव्यवहारिक प्रत्यक्षमे होता है। यहा भी प्रत्यक्षसे जानकर सदेह नही करते। आखोंसे देखो, लोग कहते हैं कि उसे प्रत्यक्ष देखो और फिर उसके विपरीत कुछ माननेको तैयार नही हा सकते। वाह मैंने अपनी आखो देखा तुम्हारी बात कैसे मान लें ? तो यह साव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी इतनी दृढ विशदताको लिए हुए है कि इसका भी नाम प्रत्यक्ष कह देते है।

पारमार्थिक प्रत्यक्ष वस्तुत प्रत्यक्ष तो अवधिज्ञान मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान होता है। पूर्ण प्रत्यक्ष तो केवल ज्ञान है जिस ज्ञानमे समस्त सत् एक साथ ज्ञात रहा करते है। अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान ये जिस समय प्रकट होते हैं उस समय ये निरपेक्ष हैं, केवल आत्मशक्तिसे उत्पन्न होते हैं परन्तु इसकी उत्पत्ति होनेसे पहिले यह ख्याल करना पडता है कि मैं अमुक चीजको जानू। अथवा जैसे किसीने प्रश्न किया कि मेरा पूर्वभव कौनसा था ? तो अवधिज्ञानी पुरुष उपयोगको जोडेगा तो उसमे भी उसने मति श्रुतका प्रयोग किया, पश्चात् जब अवधिज्ञानसे जाननेको हुआ तो पहिले अवधि दर्शन हुआ, पीछे अवधिज्ञान हुआ तो इस अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञानकी उत्पत्तिके पहिले क्षणमे उपयोग जोडना पडता है, मति और श्रुतका सहारा लेना होता है।

वर्तमान सुअवसर – हम आपका इस समय जो ज्ञान प्रकट हुआ है वह ससारके अनन्तानन्त जीवोकी अपेक्षा बहुत अधिक प्रकट है। ज्ञान तो हम आपको इतना मिला हुआ है कि कल्याणकी दिशामे ज्ञानको लगा दें तो हम अपने इतने ही ज्ञानसे कल्याण कर सकते हैं, किन्तु साथमे मोह मिथ्यात्वका विष इतना लगा हुआ है कि हम इस ज्ञानका उपयोग विषय कषायोमे कर लेते हैं, आत्महितमें नही कर पाते, और वासना भी ऐसी अनादिसे लग गयी है कि इन विषय कषाय स्नेह मोहजालके

राजोमे मिल रहे हैं स्वाध्यायमे भी हम सत्सगति और गुरुभक्ति बराबर किए जा रहे हैं और उससे जो आत्मज्ञान मिला, सम्यग्ज्ञानकी प्रेरणा मिली यह और ऊँची बात प्राप्त हुई है। हम आप बाह्य जीवोसे– वैभवोसे उपेक्षा करके अपने आपकी उपासना के लिये सत्कार्य करें और अपनेको जानें, अपनेमे मग्न होनेका यत्न करें।

प्रत्यक्षमात्र प्रमाणवाद—प्रमाण कहो या ज्ञान कहो दोनोका प्राय एक ही अर्थ है। प्रमाण दो होते हैं। क्या कोई ऐसा भी सिद्धान्त है कि जो सिर्फ एक ही प्रमाण मानता हो ? हाँ है, वह है चारवाक सिद्धान्त ! यह सिद्धान्त जो जो कुछ नजर आता है केवल उस हीको मानता है, उसका सिद्धान्त यह है कि जब तक जीवो सुखसे जीवो, चाहे कर्ज लेकर घी खाना पडे खूब खावो ! उसका इस लोकमे आत्मामें परल कमे विश्व स नही है केवल एक सासारिक सुखोको ही भोगो और मौजसे रहो, इतना ही मात्र उनका मन्तव्य है। चारवाक लोग एक प्रत्यक्ष प्रमाणको मानते हैं। जो नजरोमे है वही है तत्त्व, इससे आगे–पीछे कुछ नही है। न न क है, न स्वर्ग है, न मोक्ष है, न परलोक है, न कोई गतियाँ हैं और न मरकर यह जीव दूसरे शरीरमे पहुँचता है ऐसा एक प्रत्यक्ष प्रमाण माना है। उनके इस मन्तव्यमे अनुमान आदिक अन्य प्रमाणोका अन्तर्भाव नहीं बनता, क्योकि प्रत्यक्षका कारण और है और अनुमान आदिकका कारण और है। इस कारण एक ही प्रत्यक्ष प्रमाण है यह मानना उनका सगत नही है।

चार्वाक सिद्धान्तमे अनुमानकी अप्रमाणता—अपने मन्तव्यके विवरणमे चारवाक सिद्धान्त कह रहा है कि अनुमान तो अप्रमाण है, वह ज्ञान नही है। एक अदाजा है, सशययुक्त हो गया तो हो गया, न हो गया तो न सही, अतएव अनुमानका अन्तर्भाव प्रत्यक्षमे नही होता ऐसा खेद करनेकी क्या जरूरत ? प्रमाण केवल एक ही है प्रत्यक्ष। यह सब शङ्काकार कह रहा है क्योकि प्रमाण मुख्य हुआ करता गौण नही, अनुमान गौण है प्रमुख नही। जो पदार्थका निश्चय कराये वह ज्ञान प्रमाण होता है, पर अनुमानसे पदार्थका निश्चय नही होता, क्योकि जैसे धुवा देखकर अग्नि का अनुमान किया कि यहा अग्नि होना चाहिए तो क्या यह बता सकते कि पत्थरकी अग्नि है या काठकी। बता तो नही सकते। और, प्रत्यक्षमे सब बात स्पष्ट रहती है इसलिये प्रत्यक्ष प्रमाण है। यदि एक सामान्य अग्निको सिद्ध करते हो कि धुवा देख कर सामान्य अग्नि जान ली कि है कोई अग्नि तो इससे अर्थका निश्चय तो नही होता कि यह पत्थरकी अग्नि है या जैसे वह अग्नि है वैसे ही निर्णय तो नही होता। यह चारवाक लोग कह रहे है इस कारण अनुमान पदार्थका निश्चय नही करता। प्रत्यक्ष ही पदार्थका निश्चय करता है।

व्याप्तिके अग्रहणसे अनुमानकी अप्रमाणताका कथन दूसरी बात यह है कि अनुमान बनता है तब जब उसकी व्याप्तिका ग्रहण हो जाय। साधनका साध्य

के साथ अविनाभाव हुआ, अग्निके बिना धुवा नहीं हो सकता ऐसा निर्णय हो तब धूम हेतुसे अग्निका अनुमान बनेगा। तो व्याप्तिका बोध हो यह चीज इस जगह है तब अनुमान चलेगा। पर व्याप्तिका अवगम प्रत्यक्षसे नही होता। जहाँ जहाँ धुवा होता है वहा वहा अग्नि होती है, इसका ज्ञान क्या प्रत्यक्षसे होगा? प्रत्यक्षसे तब बनेगा जब सब जगहके धुवा और और आग हमको आँखो दिखे। तो व्याप्तिका ज्ञान प्रत्यक्षसे तो होता नही, क्योंकि प्रत्यक्ष तो सामने मौजूद हुआ पदार्थको ग्रहण करता है, पर विश्व के सारे पदार्थ जब ग्रहणमे नही आ रहे तो व्याप्ति कैसे प्रत्यक्ष बना लेगा। तो जब तक व्याप्तिमे निश्चिति न हो जाय तब तक अनुमान नही लगता और व्याप्तिका ग्रहण प्रत्यक्षसे होता नही, अनुमानसे भी नही होता, क्योंकि अनुमान सिद्ध करनेकी बात चल रही। जब व्याप्तिका ग्रहण हो तो अनुमान बने। जब अनुमान बने तो व्याप्तिका ग्रहण हो, और कोई दूसरा भी प्रमाण व्याप्तिको ग्रहण करने वाला नही हैं इस कारण अनुमान अप्रमाण है ऐसा चारुवाक कह रहे हैं और अपने मतकी पुष्टिके लिये समर्थन कर रहे है कि प्रत्यक्ष प्रमाण है अन्य कोई प्रमाण नही है।

चार्वाक सिद्धान्तका आधार चारुवाक सिद्धान्तसे न तो कोई युक्ति प्रमाण है क्योकि युक्तियोमे दृढता नही है, एक अदाजा है और फिर कोई युक्तियोके द्वारा सच्ची बातको भी झूठ सिद्ध करदे और झूठ बातको भी सच्ची सिद्ध करदे जैसे वकालातका काम है तो युक्ति भी और शास्त्र भी प्रमाणभूत नही है क्योकि किसीने कुछ लिखा किसीने कुछ लिखा। हम बोल रहे लिख रहे ये भी तो शास्त्र हैं। कोई भी ऋषी सत ऐसे नही है कि जिनके वचन प्रमाणभूत हो कोई प्रमाणके विषयमे कुछ कहते कोई कुछ कहते। तब फिर क्या प्रमाण है। एक अपना व्यवहार बनानेके लिये केवल यह प्रमाण है कि जिस रास्तेसे बडे पुरुष चलते हो, जिस कामको बडे पुरुष करते हो बस वह प्रमाण है, और वस्तुत तो एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। इस प्रकार प्रमाणके कई भेद न मानकर केवल एकको ही ये प्रमाण मानते हैं।

अनुमानकी प्रमाणताका प्रतिपादन चारुवाककी बनाई गई समस्यापर अब आचार्यदेव कहते है कि ये सब तुम्हारी कहने मात्रकी बाते हैं। अनुमान आदिक भी प्रत्यक्षकी तरह अपनी अपनी प्रतिनियत व्यवस्थामे विवादरहित हैं अतएव वे सब प्रमाण है। प्रत्यक्षसे प्रमाणता इस कारण है कि उनमे विवाद नही रहता। ऐसे ही अनुमानमे भी विवाद नही रहता है, अतएव प्रमाण है। धुवा देखकर अग्निका अनुमान किया तो अग्निका ही तो अनुमान किया, पर यह पत्थरकी आग है या काठकी इसका तो अनुमान नही किया। तो हेतु जानना भर साध्यके लिये दिया जाता है उतनेकी सिद्धि मानते। अनुमानमे कोई विवाद नही रहता अतएव अनुमान वास्तविक प्रमाण है केवल एक प्रत्यक्ष प्रमाण हो, ऐसा नही है।

अनुमानका भी मुख्य प्रामाण्य—और जो चारुवाकोंने यह कहा था कि

प्रमाण मुख्य हुआ करता है गौण नही, तो अनुमान भी तो एक मुख्य प्रमाण है, गौण कैसे होगा ? अनुमानको तुम गौण क्यो मानते हो ? क्या वह अनुमान प्रत्यक्षपूर्वक बनता है इस कारण अनुमानको गौण माना ? गौण अनुमानको विषय करता है यह बात ठीक नही है क्योकि जैसे प्रत्यक्ष सामान्य विशेषात्मक पदार्थको विषय करता है इसी प्रकार अनुमान भी सामान्य विशेषात्मक पदार्थको विषय करता है। पदार्थ जितने भी होते हैं विश्वमे सब सामान्य विशेषात्मक होते हैं। जैसे मनुष्य यह मनुष्य सामान्य हुआ और अमुक मनुष्य, अमुक नामका मनुष्य यह मनुष्य विशेप हुआ। कोई मनुष्य क्या ऐसा मिलेगा कि जिसमे मनुष्यपना सामान्य हो नही और वह किसी नामका व्यक्ति विशेष हो और ऐसा भी मनुष्य कोई मिलेगा क्या कि विशेष तो कुछ न हो, लम्बाई, चौडाई मोटाई, रूप, रङ्ग, पिण्ड, शरीर ये तो न हो और मनुष्य सामान्य हो ? ऐसा भी कोई न मिलेगा। जितने भी पदार्थ हैं वे सब सामान्य विशेपस्वरूप हैं, तो जैसे जितने भी पदार्थ हम निरख रहे हैं वे सब सामान्य विशेषरूप हैं ऐसे ही अनुमान प्रमाणसे जिस पदार्थका ज्ञान किया वह पदार्थ भी सामान्य विशेषात्मक है इस कारण अनुमान भी प्रत्यक्षकी तरह मुख्य पदार्थको विषय करता है गौणको नही, अवस्तुको नही। अनुमानका विषय अन्य लोगोकी भाँति केवल एक सामान्य ही जाना जाय, ऐसा जैनशासनमे नही है। अनुमानसे भी सामान्य विशेषस्वरूप पदार्थ जाना जाता है। जैसे धुवा देखकर अग्नि समझा तो समझनेवालोके चित्तमे अग्नि सामान्य और अग्नि विशेष दोनो रूपकी अग्नि समझी गई। इस कारण अनुमानका विषय गौण नही है।

अनुमानके गौणत्वकी सिद्धिमे प्रत्यक्षपूर्वकत्वकी अक्षमता—यदि यह कहो कि अनुमान प्रत्यक्षपूर्वक होता है इस कारण गौण है, तो धुवा निरखकर अग्नि का ज्ञान हुआ तो पहिले कुछ प्रत्यक्ष हुआ तब जाकर अग्निका ज्ञान हुआ। तो प्रत्यक्ष पहिले होता अनुमान बादमे होता इस कारण यदि अनुमानको गौण मानोगे, मुख्य न मानोगे तो कोई कोई प्रत्यक्ष अनुमानपूर्वक भी होता है तो प्रत्यक्ष भी मुख्य नही रहा जैसे पहिले किसीने अनुमान किया फिर वह सामने आ गया। प्रत्यक्ष हो तो प्रत्यक्षपूर्वक कोई ज्ञान बना इस कारण वह गौण कहलाये यह बात ठीक नही है। प्रत्येक प्रमाण अपने अपने विषयक हैं।

अनुमानकी तर्कपूर्वकता—अनुमान भी प्रत्यक्ष तर्कपूर्वक नही होता किन्तु तर्कपूर्वक होता है। जहाँ जहा धुवा होता है वहा वहा आग होती है। जैसे रसोईघर, जहा अग्नि नही होती वहा धुवा भी नही होता। जैसे तालाब। तो यह प्रमाण अनुमानसे होता, प्रत्यक्ष नही। इसी कारण यह कहना चार्वाकोका गलत है कि व्याप्तिका ग्रहण प्रत्यक्षसे नही होता। न हो तो क्या ? तर्कसे तो होता। अमुक पदार्थ का अमुकसे सम्बन्ध है, अविनाभाव हुआ ऐसा जो तर्क चलता है वह तर्क प्रमाण है और उससे अनुमानकी प्रवृत्ति होती है। यह भी नही कह सकते कि पदार्थ अनन्त है।

सब पदार्थोको जब तक हम न जान लें तो उनसे व्याप्ति कैसे बना ले। ऐसी दोष स्थितिका व्यभिचार भी नही आता, क्योकि एक सामान्य द्वारसे एक सम्बन्ध जान लिया, तब नियम बना लिया कि जहा जहा धुवा होता है वहा वहा आग होती है, जहा आग नही है वहा धुआ नही है। इ नमे जो भी आया, चाहे तर्कमे आया हुआ विषय हो या अनुमानसे आया हुआ शास्त्रका विषय हो, जो कुछ ज्ञानमे आयगा वह सब सामान्यविशेषात्मक आयगा। प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषस्वरूप होते हैं, इसका अर्थ यह हुआ।

चेतनकी सामान्यविशेषरूपता आत्मा चेतन है, उसमे सामान्य गुण तो है चैतन्य जो सब आत्मावोमे बराबर एक समान पाया जाता है और विशेष हुए उस ही एक आत्माके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। उसही के गुण, उसही का स्वभाव। स्वरूप दृष्टिसे तो सामान्य हुआ और व्यक्तिकी दृष्टिसे विशेष हुआ जैसे गाय। गाय एक सामान्य शब्द है और गाय का रूप रङ्ग आकार यह विशेष हुआ। तो ऐसे ही जितने भी पदार्थ है सबमे सामान्य और विशेष मिलेगा। तो पदाथ सामान्य विशेषात्मक है इस बात को एक स्वतन्त्र विषय बनाकर आगे आचार्यदेव स्वय कहेगे। तो सामान्य विशेषात्मक पदार्थ जैसे प्रत्यक्षका विषय है इसी प्रकार अनुमानका भी विषय है, अत एव यह कहना ठीक नही है कि सिर्फ प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। प्रत्यक्ष, अनुमान तर्क, आगम, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान आदिक ये सभी प्रमाण है।

सशय व विपर्ययकी अप्रमाणताका कारण जहाँ विवाद हो, विसम्वाद हो वे सब अप्रमाण है। विवाद होते है तीन तरहसे, सशय, विपर्यय और अनध्यवसाय होनेसे। यह जीव ईश्वरका अश है अथवा स्वरूप है यो सदेह करना सशयज्ञान है। अथवा यह जीव इन भौतिक पृथ्वी आदिकके सम्बन्धसे तैयार हो गया है अथवा अपनी स्वतन्त्र सत्ता लिए हुए अनादिसे है ? ऐसा सदेह करना सशयज्ञान है और इनमे से किसी एक पक्षसे ही दृढतासे मान लेना जो स्वरूपसे विपरीत हो वह विपर्ययज्ञान है। जैसे यह जीव शरीरात्मक ही है, विपर्ययज्ञान हो गया अथवा यह जीव एक ईश्वरका अश है यह विपर्ययज्ञान हो गया जो स्वरूपसे विपरीतज्ञान हो तो वह विपर्ययज्ञान है।

स्याद्वादसे विसवादनिवारणकी सभवता—किसी विसवादको यदि स्याद्वाद से बैठा सकते हो तो इसे बैठाना प्रमाणभूत हो जायगा। ईश्वर चैतन्य स्वभावी है, हम आप सब भी चैतन्यस्वभावी है इस कारण हम और ईश्वर एक ही पक्तिमे बैठे हुए है। अब ईश्वरमे तो चैतन्यपूर्ण विकास हो, वे सर्वज्ञदेव हैं और हम आप छद्मस्थ जीवोका ज्ञानपूर्ण विकसित नही है इस कारण हम आप एक अशरूप हुए और ईश्वर पूर्णविकास रूप हो गया, तो विपर्ययज्ञान वह है कि वस्तु हो और भाति और मान ले एक निर्णयके साथ और भाति वह भी विसम्वादी ज्ञान है।

अनध्यवसायकी अप्रमाणता--तीसरा है अनध्यवसाय। किसी भी पदार्थ

के सम्बन्धमें कुछ प्रतिभास होनेपर तुरत ही उत्सुकता न रही अथवा उसका ग्रहण न हो सका और उसे यों ही छोड़ दिया गया, उसका भी कोई निर्णय नहीं बन पाता, वह अनध्यवसाय है और वह भी अप्रमाण है। जैसे चलते जा रहे हैं रास्तेमें कहीं कोई तृण पैरमें लग गया तो कुछ तो पता हुआ कि कुछ लगा, परन्तु उसके बाद कुछ निर्णय नहीं रहा कि क्या लगा ? ऐसी स्थिति अनध्यवसायकी होती है। यह ज्ञान भी प्रमाण नहीं है। तो जो विवादपूर्वक है, अनिर्णय वाला है वह तो है अप्रमाण और जो ज्ञान विवादरहित है, सामान्य विशेषात्मक पदार्थको विषय करता है वह ज्ञान है प्रमाण। तो ऐसा प्रत्यक्ष भी है प्रमाण और अनुमान भी है प्रमाण, इस कारण केवल एक ही प्रत्यक्ष प्रमाण है, यह कहना ठीक नहीं है। सो अनुमान भी प्रमाण मानना चाहिये।

अनुमान और तर्क प्रमाण माने विना प्रत्यक्षके भी प्रमाणत्वकी असिद्धि— अनुमान होता है तर्कपूर्वक। प्रमाणके बिना तो यह भी तुम सिद्ध न कर सकोगे कि प्रत्यक्ष ही प्रमाण है क्योंकि मुख्य होनेसे। यदि तुम यह कहोगे कि प्रत्यक्ष प्रमाण है मुख्य होनेसे तो वह अनुमान बन गया। अनुमान बनाये बिना हम अपना प्रत्यक्ष भी सिद्ध नहीं कर सकते क्योंकि जो जो अनुमान होता है वह वह प्रमाण होता है, जो प्रमाण नहीं होता वह मुख्य भी नहीं होता, ऐसा सम्बन्ध तो बतावोगे ना ! ऐसे सम्बन्धको बतानेका जो प्रयास है वही तो तर्कज्ञान है, तर्कज्ञान माने बिना हम अपना प्रत्यक्ष भी प्रमाण सिद्ध नहीं कर सकते। यदि प्रतिबध अर्थात् सम्बन्धकी सिद्धिके बिना ही कोई बात सिद्ध हो जाय तो इससे अटपट सिद्धि होने लगेगी। तात्पर्य यह है कि चारुवाक लोग केवल प्रत्यक्षको प्रमाण मानते हैं सो प्रमाणकी ऐसी एक सख्या युक्त नहीं है। अनुमान भी बराबर प्रमाण है, इसमें कोई विवाद नहीं रहता। लोक व्यवहारमें अनुमानका अर्थ लोग अदाजा मानते हैं। पर अनुमान का अर्थ वास्तवमें अदाजा नहीं होता है। अनुमान प्रमाण नहीं है। तो केवल एक ही प्रमाण नहीं है। प्रमाण दो होते हैं। वे दो प्रमाण हैं प्रत्यक्ष और परोक्ष। अब इस प्रत्यक्ष और परोक्षके बारेमें इस प्रकारसे वर्णन चलेगा जिसमें सभी ज्ञान आ जायें, कोई प्रमाण न छूटे। और, कोई प्रमाण न छूटे इसके लिये सर्वप्रथम प्रत्यक्ष के भेद किए जायेंगे— एक व्यावहारिक और दूसरा पारमार्थिक। हम आप लोगोंको परमार्थ प्रत्यक्ष नहीं हो रहा। वह इन इन्द्रियोंसे व्यवहारकी एक बात है। तो भेद अभेदसे इसमें युक्तियों सहित विस्तारसे बताया जायगा।

मात्र प्रत्यक्षको ही प्रमाण माननेपर प्रत्यक्षके प्रामाण्यकी असिद्धि— चारुवाक लोग एक प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानते हैं। उनके प्रति कहा जा रहा है कि यदि केवल प्रत्यक्ष ही प्रमाण हो, अनुमान भी प्रमाण न हो तो प्रत्यक्ष प्रमाण है इस की सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि प्रत्यक्षकी प्रमाणतामें हेतु क्या है ? प्रत्यक्ष क्यों

प्रमाण माना जाता है ? उसका हेतु देते हो कि वह मुख्य है इस कारण प्र यक्ष प्रमाण है, तब अनुपान ही तो बन गया। प्रत्यक्ष प्रमाण है क्योकि मुख्य होनेसे। तो अनुमानसे ःत्यक्षकी प्रमाणताकी सिद्धि हो गयी। और प्रमाणतामे अगौणत्वकी व्याप्ति भी सिद्ध हो गयी अत तर्क भी प्रमाण बन गया, क्योकि प्रमाणता और मुख्यपना इन दोनोका जब तक सम्बन्ध सिद्ध न कर लिया जाय तबतक अनुमान न बन सकेगा। सम्बन्ध होता है सर्वरूपसे। जैसे जब कहा जाय कि जहाँ धुवा हे ता है वहाँ अग्नि होती है। तो सर्व प्रकारके धुवा और सर्व प्रकारकी अग्नि इतना सम्बन्ध माना जाता है। इस प्रकार यदि सर्व प्रकारके प्रत्यक्ष और सर्वप्रकारकी मुख्यताएँ इनका सम्बन्ध बने तो प्रत्यक्ष प्रमाण बन सकेगा, किन्तु सबको कौन जानता है अथना जान ले कोई एक सामान्य रूपसे तो यह अनुमानका ढङ्ग बनता है।

अविसवादिताके कारण सर्व अनुमानोकी प्रमाणता- अनुमानमे अप्रमाणता नही है। अनुमानकी अप्रमाणताके प्रसङ्गमे अनुमान मात्रको अप्रामाण्य तुम कहते हो या जो इन्द्रियसे नही दिखते, अतीन्द्रिय पदार्थ है उनके प्रमाणको अप्रमाण कहते हो। यदि सभी अनुमानोको अप्रमाण कहोगे तो लंक व्यवहार भी न रहेगा, क्योकि अविनाभावी साधनसे साध्यका ज्ञान करते हुए लोग पाये जाते हैं। यदि रास्ते मे नदी गदली भरी पूरी चल रही है तो अनुमान हो जाता है कि ऊपर वर्षा हुई है अन्यथा यह गदी नदी न निकलती। और, और भी पद पदमे लोगोका अनुमान प्रमाण मान लोगे तो लोक व्यवहार सब नष्ट हो जायगा यदि अतीन्द्रिय अर्थके ही अनुमानको अप्रमाण कहते हो, जो इन्द्रियोसे नही दिखता उसका अनुमान अप्रमाण है यदि ऐसा मतव्य है तो फिर तुम बतलावो कि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष तो प्रमाण है मुख्य है और अतीन्द्रिय अनुमान अप्रमाण है गौण है यह व्यवस्था तुम कैसे बनाओगे ? जब अतीन्द्रिय अर्थ जाननेमे ही नही आ रहा तो वह अप्रमाण है यह व्यवस्था नही बन सकती।

अविसवादितासे अनुमानकी प्रमाणता-- देखिये ! अतीन्द्रिय या इन्द्रियसे या प्रत्यक्ष अनुमानसे अप्रमाण या प्रमाणकी व्यवस्था नही होती किन्तु अविसवादिता व विसवादितासे यह व्यवस्था है क्योकि अविसम्वादी ज्ञान है वह प्रमाण है और जिसमे विवाद है वह ज्ञान अप्रमाण है। अच्छा, जरा यह भी बतलावो कि एक दूसरेसे जो वचनालाप करते हो, व्यवहार करते हो तो दूसरेका चित्त तो अतीन्द्रिय है, उसका तो प्रत्यक्ष भी नही मानते तो फिर एक दूसरेसे बोलोगे भी कैसे ? व्यवहार भी कैसे करोगे ? अ प्रत्यक्ष भी प्रमाण है और अनुमान भी प्रमाण है ऐसा मानना चाहिए, और फिर जैसे स्वर्ग है, देवताजन है और भी कोई अतीन्द्रिय पदार्थ है उनका तुम प्रतिबध कैसे करोगे ? जो चीज आँखो नही दिखती उसका प्रतिबधभी नही किया जा सकता तब फिर कैसे उन्हे अप्रमाण कह सकोगे ? इस कारण जो चारुवाक यह कह

रहा है कि जो प्रत्यक्ष है वह प्रमाण है, अनुमान प्रमाण नही है अनुमानसे पदार्थका निश्चयनहीहोता यह बात चारुवाककी अयुक्त है।

प्रमाणके भेदोका विधान—प्रमाणके भेदोका वर्णन चल रहा है कि प्रमाण कितनी तरहके होते हैं। तो सर्वप्रथम प्रथम सूत्रमे यह बताया है कि प्रमाण दो प्रकार का है इसपर चारुवाकने आपत्तिकी कि प्रमाण तो एक होता है और वह है प्रत्यक्ष। उस समाधानमे यहा अनुमानकी भी प्रमाणताका कुछ वर्णन किया गया है। अब इन दो प्रमाणोकी बात सुनकर क्षणिकवादी खुश होकर कहते है कि ठीक है यह बात सही है—प्रमाण दो ही होते हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। तो इस प्रकारके दो भेद करने वालोके प्रति आचार्यदेव उत्तर देते रहे हैं कि प्रमाण इस प्रकार दो तरहके नही हैं किन्तु प्रत्यक्ष और परोक्ष इस प्रकारके दो भेद हैं। भेद जिसके किए जाते है इस प्रकार किए जाते है कि उन भेदोमे मूल चीज सब आ जाना चाहिए। जैसे जीवोके भेद दो हैं और उनको कोई यो बताने लगे कि एक स्थावर जीव और एक मुक्त जीव तो वे भेद सही नही हुए। भेद इस प्रकारके किये जाते है कि जिसके भेद किए जाएँ वे सब उन भेदोमे समा जाये। इसमे त्रस जीव छूट गए। तो जीवके दो भेद सही नही हुए, ससारी और मुक्त कहो तो सही हो गए। जब ससारीके दो भेद बनाये जाये और उन्हे कोई यो कहने लगे कि एक तो स्थावर और एक पञ्चेन्द्रिय, तो ये सही भेद नही हुए। ससारी जीवके भेद ऐसे करना चाहिए कि जिसमे सब ससारी आ जायें, कोई छूटे नही। यदि त्रस और स्थावर ये दो भेद किए जाते हैं ससारीके तो सही प्रकार हैं। इसी तरह प्रमाणके अथवा ज्ञानके प्रकार दो ने बताना चाहिए कि जिसमे सब ज्ञान गर्भित हो जांय और वह यही विधि है प्रत्यक्ष और परोक्ष।

क्षणिकवादमे प्रमाणभेदव्यवस्था—यहाँ क्षणिकवादी यह कह रहे हैं कि जब दुनियामे प्रमेय दो प्रकारके है एक सामान्य और एक विशेष तो इन दोनोको छोडकर तीसरी बात क्या है ? तो जब प्रमेय ही दो है तो प्रमाण भी दो ही हो सकते हैं इससे अधिक नही। जो सामान्यको विषय करे वह तो है अनुमान और जो विशेषको विषय करे वह है प्रत्यक्ष। क्षणिकवाद सिद्धान्तमे सामान्यको तो अवास्तविक कहते है और विशेषको वास्तविक कहते हैं। सामान्य कल्पना की हुई चीज है और विशेष यह साक्षात् अस्तिरूप है। विषय दो हैं, जाननेमे आये हुए तत्त्व दो है। तो जब प्रमेय दो हुए तो प्रमाण भी दो हो गए ऐसा क्षणिकवादी कह रहे हैं।

सर्व प्रमेयोकी सामान्य विशेषात्मकता—प्रमेयद्वित्वकी समस्यापर आचार्यदेव कहते हैं कि नही, प्रमेय एक ही हुआ करता है दो नही, सामान्य विशेषात्मक विशेष कुछ वस्तु है, और कोई सा भी ज्ञान हो वह केवल सामान्यको विषय नही करता है। हा सामान्य विशेषात्मक पदार्थमे सामान्यकी मुख्यतासे जानते हैं जब कभी तब सामान्यका ज्ञान हुआ और सामान्य विशेषात्मक पदार्थको ही जब विशेषकी

मुख्यतासे जानते है तब विशेषका परिज्ञान कहलाया। सामान्य और विशेप ये दो स्वतत्र भिन्न-भिन्न दो प्रमेय नही हैं कि सामान्य भी एक पदार्थ है और विशेष भी कोई एक पदार्थ है, और दूसरी बात यह है कि सामान्यमात्रको ही अनुमान जानता है ऐसा कहनेपर तो फिर अनुमानसे विशेषका परिज्ञान न होना चाहिए विशेषमे प्रवृत्ति भी न होना चाहिए क्योकि दूसरेको विपय करे ज्ञान और दूसरेमे प्रवृत्ति करे यह सम्भव नही है। सामान्यको तो अनुमान जनावे और विशेषमे प्रवृत्ति बने तो यह निर्णय रखना कि अनुमान भी सामान्य विशेषात्मक पदार्थको जानता है। जैसे कि प्रत्यक्ष सामान्य विशेपात्मक पदार्थको जानता है।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थकी ज्ञानविषयता—यहाँ प्रमाणके प्रकारोका वर्णन करते हुए इस प्रसङ्गमे यह बात छिड गई कि कोई सा भी ज्ञान हो, समस्त ज्ञान सामन्यविशेषात्मक पदार्थको जानते है। न केवल सामान्यरूप कोई पदार्थ है और न केवल विशेषरूप पदार्थ है कोई। जैसे कोई कहे कि एक मनुष्यको बुला लावो तो वह चाहे जिस मनुष्यको बुला लाये, उसे कुछ कहनेका अधिकार नही कि तुम दूकान-दारको क्यो ले आये ? या तुम बाबू जीको क्यो ले आये ? अथवा इस बुढे आदमीको क्यो ले आये ? तुम्हे तो मनुष्य लाना था, तो अब दूकानदार, बाबूजी, बूढा आदमी या पण्डित, मूर्ख आदि किसीको लाये। इनके अलावा वह क्या लाये, सो बतावो ? तो विशेषरहित सामान्य नही हुआ करता है। कोई कहे कि भाई, तुम पण्डित जीको ले आवो। वह ला दे किसी पडितको, और वह कहे कि तुम यह मनुष्य क्यो ले आये, तुम्हे तो केवल पण्डित जीको लाना था, क्योकि हमने तो पण्डित जीको लानेके लिए कहा था। तो सामान्यविशेषात्मक ही सब चीजे मिलेंगी। न कोई केवल सामान्य है और न कोई केवल विशेष है। तो अनुमान भी सामान्यविशेषात्मक पदार्थको ही जानता है, केवल सामान्यको नही।

अनुमानविषयकी सामान्यविशेषात्मकता—यदि अनुमान केवल सामान्यको ही जाने तो फिर अनुमानसे किसी विशेषका न तो ज्ञान हो सकेगा न किसी विशेष मे प्रवृत्ति हो सकेगी। शायद यह कहो कि साधनसे अनुमान तो किया सामान्यका और सामान्यसे फिर हुआ विशेषके प्रति ज्ञान। इस कारण विशेषमे प्रवृत्ति बनती है। देखिये ! साधनसे साध्यके ज्ञानका नाम अनुमान है। धुवा देखकर अग्निका ज्ञान कर लेना इसना नाम अनुमान है। तो अग्निका जो कोई अनुमान करता है वह केवल अग्नि सामान्यका अनुमान नही करता क्योकि सामान्य मात्र कुछ चीज नही है। अनु-मान करते है अग्नि विशेषका और उसे जरूरी है जाडेके दिनोमे ठढ मिटानेकी तो झट वही बात आ जाती है। तो अनुमानसे विशेषका ज्ञान हुआ और उस विशेषका उपयोग भी किया।

साधनसे सामान्य विशेषात्मक साध्यका ज्ञान—इस सिलसिलेमे ये क्षण-

क्षयवादी जन यह कह रहे है कि नही साधनसे सामान्यका ज्ञान हुआ। जैसे धुवासे अग्निका ज्ञान हुआ और अग्नि सामान्यसे फिर अग्नि विशेषका परिचय हुआ तो इतना घुमाकर कहनेकी अपेक्षा सीधा यो ही क्यो न मान लो कि साधनसे ही अग्नि विशेषका ज्ञान हुआ। यद्यपि धुवा निरखकर कुछ यह ज्ञान न हो पाये कि यह ठूठकी आग है या कोयलेकी। इस कालमे हुआ यह ज्ञान किन्तु आगका ज्ञान हो गया। कुछ मुद्रा कुछ भेद तो समझमें आता ही है, वह विशेषरूप हुआ सामान्य केवल कुछ चीज नही है तो साधनसे भी सामान्य विशेषात्मकका ज्ञान हुआ। तो प्रमेय जगतमे एक ही प्रकारका है सामान्यविशेषात्मक पदार्थ। जब कभी किसी पदार्थमे गुणका ज्ञान किया जा रहा हो आत्मामे जितने गुण हैं उस समय भी केवल गुणका ज्ञान नही किया जा रहा है किन्तु चैतन्यात्मक सामान्य विशेषात्मक आत्माको एक गुण की मुख्यतासे देखा जा रहा है। सामान्य केवल कुछ नही होता। केवल जुदा पदार्थ है और फिर उसे जानें तब तो किसीके इस सम्बन्ध ज्ञानसे केवल चैतन्य सामान्यको जाना, पर ऐसा तो है नही।

प्रमेयद्वित्वकी असङ्गतता—तत्त्वार्थसूत्रमें जहा मतिज्ञानके प्रकार बताये गये हैं, मतिज्ञान ४ भेदरूप है—अवग्रह ईहा, अवाय और धारणा। और, ये चार भेद बहुविध १२ प्रकारके पदार्थोंमे होता है, उसे कहनेके बाद भी फिर एक सूत्र और रचा *"अर्थस्य"* जिससे यह स्पष्ट कर दिया गया कि ज्ञान ये जितने भी होते हैं और प्रकृतमे यह मतिज्ञान पदार्थका ही ज्ञान करता है, केवल गुणका, केवल पर्यायका ज्ञान नही हुआ करता क्योकि केवल गुण एक सद्भूत वस्तु ही नही, केवल पर्याय एक सद्भूत वस्तु नही। एक सामान्य विशेषात्मक पदार्थको ही जब विशेषकी मुख्यतामे जानते है तो पर्यायका ज्ञान होता है। और जब उस सामान्य विशेषात्मक पदार्थको ही स्वभावकी मुख्यतासे जानते है तो सामान्यका ज्ञान होता है। तो यो प्रमेय दो नही हैं—एक ही प्रकारका प्रमेय हैं तो यह कहना व्यर्थ है कि जो सामान्यका विषय करे सो अनुमान और विशेषको जाने सो प्रत्यक्ष। ये दो ही प्रमाण हो सकते हैं और इससे अतिरिक्त नही होते न अन्य प्रकार होते ऐसा क्षणिकवादीका कहना असगत है।

ज्ञानका भेदविस्तार—जैन शासनमे ज्ञानके भेदका विस्तार इस प्रकार किया गया है कि मूलमे ज्ञान एक है। जो जाने सो ज्ञान। जाननमात्र स्वरूपको लक्ष्य मे लेकर सभी जितने भी भाव किए जायेंगे वे सब ज्ञानरूप है। फिर उस ज्ञानके दो भेद हैं, प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष और परोक्षकी वास्तविक व्याख्या तो यह है कि जो इन्द्रिय मनकी सहायताके बिना केवल आत्मीय शक्तिसे जाने वह तो है प्रत्यक्ष ज्ञान, और जो इन्द्रिय मन आदिकका निमित्त पाकर जाने उसका नाम है परोक्ष ज्ञान। फिर भी प्रत्यक्ष ज्ञानमे चूंकि स्पष्टता आती है, अवधिज्ञानसे जो जाना जायगा

वह स्पष्ट ज्ञात होगा, मनःपर्यय और केवल ज्ञानसे जो जाना जाता है वह स्पष्ट जाना जाता है, तो उस स्पष्टताकी नकल कुछ कुछ इन इन्द्रिय प्रत्यक्षोंमे पायी जाती है। जैसे कि हम आप लोग कहा करते हैं कि हमने आँखोंसे प्रत्यक्ष देखा। आँखोंसे किसी बातको देख लेनेपर फिर सन्देह नही रहता। स्पष्टता रहती है तो यह इन्द्रिय प्रत्यक्ष की स्पष्टता कुछ स्पष्टता जैसी है अतएव प्रत्यक्षके दार्शनिक शास्त्रोंमे दो भेद किए गए साव्यावहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। इन्द्रिय और मनसे सीधा जो जाना जाता है वह साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है और अवधिज्ञान, मनःपर्याय, केवलज्ञान ये पारमार्थिक प्रत्यक्ष है।

परोक्षके भेदोमे एक भेद अनुमान—अब दार्शनिक पद्धतिमे परोक्षका विस्तार सुनिये—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ये ५ परोक्षके भेद है, यद्यपि साव्यवहारिक भी परोक्ष ही है वह प्रत्यक्ष नही है क्योंकि इन्द्रियजन्य प्रत्यक्षमे इन्द्रियकी अपेक्षा होती है लेकिन कुछ विशदताकी बनावट होनेसे उसे साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा गया है। इस प्रकार ज्ञानके भेदके विवरण मे कोई सा भी ज्ञान छूटता नही है लेकिन इसके विरुद्ध अनेक दार्शनिक और-और प्रकारसे प्रमाणके भेद करते है। उन भेदोका विश्लेषण और उनकी मीमासा चलरही है। न तो एक प्रत्यक्षमात्र ही प्रमाण है और न प्रत्यक्ष अनुमान, इस प्रकार दो भेद प्रमाणके है —

ज्ञानमे विशेषकी मुख्यता—प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण है, ऐसा कहनेमे जो हेतु दिया गया है कि प्रमेय दो हैं अतएव प्रमाण भी दो है, वे युक्तिसङ्गत नही बैठते क्योकि अनुमानसे भी सामान्य विशेषात्मक ही पदार्थ जाने जाते है और तभी विशेषमे प्रवृत्ति देखी जाती है और विशेषकी मुख्यतामे ही अनुमानको प्रमाण कहा है। यदि यह कहो कि जो भी अनुमानमे साधन बनेगा उस साधनका विशेषमे नियम नही बैठता। जैसे जहा जहा धुवा है वहा वहाँ कोयलेकी अग्नि है, यह सम्बन्ध तो नही बैठता। इस कारण अनुमानसे विशेषका ज्ञान नही होता। तो कहते है कि यह बात सामान्यमे भी है। किसी भी साधनका सामान्यमे अविनाभाव नही बनता। जिसे लोग सामान्य समझते है वह तो विशेष है।

मात्र सामान्यमे अर्थक्रियाका अभाव—सामान्य वह है जिससे कोई कार्य नही बनता। जैसे कोई कहे कि गायका दूध लावो। गाय सामान्यका दूध लावो तो रूप गायके बिना दूध कहाँसे लायगा। अरे लाल काली आदि गायका ही तो दूध लायगा, लो किसी आवान्तर सत्तावानसे ही लायगा। गाय सामान्यसे दूध नही निकलता, ऐसे ही जितने भी सामान्य है उनमें काम नही बनता। कोई काम कराना है वह मनुष्य सामान्यसे करा लीजिए। अरे कैसे करायें ? जिसके हाथ नही, पैर नही, मुख नही, जो पकडा न जा सके ऐसा कोई मनुष्य हो तो उसे लावो उससे काम करावो। तो सामान्यमे अर्थक्रिया नही होती। अर्थात् साधनसे जैसे साध्यका भी अनु-

मान होता है वह एक सामान्यरूप नहीं है। तो सामान्यसे भी साधनका अविनाभाव सम्बन्ध नहीं बना।

केवल सामान्यकी अविषयता—यदि कहो कि साधन और सामान्यका सम्बन्ध न बने तो भी अनुमान सामान्यका का गमक होता है, अथवा सामान्य विशेष का गमक होता है, तो इस तरह सीधा हेतुने ही विशेषनाका ज्ञान क्यों नहीं मान लिया जाता। पदार्थ सब सामान्य विशेषात्मक हैं, उनमेसे किसीको प्रत्यक्षसे जान लिया जाता किसीको मनसे स्मरण करके जान लिया जाता, किसीको अनुमानसे जान लिया जाता, पर जितने भी ज्ञान होंगे किसी भी ज्ञानसे वह समस्त ज्ञान सामान्य विशेषात्मक पदार्थको ही जानने वाला होगा। न केवल सामान्यको ही कोई जानता है और न केवल विशेषको ही कोई जानता है।

प्रमाणसे अनुभवकी आन्तरिकता—देखिये अनुभवका विषय और प्रमाण का विषय ये दो विषय जुदी जुदी दिशावोके हैं। जैसे कभी कोई मिष्ठ व्यञ्जन खाये, मानो किसीने हलुवा ही खाया तो उसका विवरण विश्लेषण जब करेगा, प्रमाण करेगा यह ठीक बना विधिपूर्वक बना तो वह प्रमाणका विषय बनेगा लेकिन जैसे आँखे मीचकर यहाँ वहाँ की चिन्ता न रखकर केवल एक स्वादका ही आनन्दले तो वह एक अनुभव जैसी चीज बने। इसी प्रकार आत्मामे भी देखिये जब आत्मामे ज्ञान आदिकका विश्लेषण करे तब तो वह प्रमाण क्षेत्रकी बात है और जब केवल शुद्ध ज्ञायक स्वरूपका निर्विकल्प अनुभव करे तो वह प्रमाणक्षेत्रसे भी और ऊपर उठकर मात्र अनुभवकी बात रही। तो प्रमाणका जो भी विषय बनेगा वह विशेष बनेगा, जिसका विश्लेषण किया जा सकेगा वह बनेगा, शेष तो अनुभव की बात है, जो कि प्रमाणमे भी ऊपर की चीज है। यहाँ अनुभवकी बातका प्रमाण नहीं कर रहे, किन्तु प्रमाणके स्वरूपका और भेदका वर्णन कर रहे है।

ज्ञानप्रसङ्गकी वार्ता—इस लोकमे सब कुछ ज्ञानकी ही महिमा है। मनुष्योको विशेष ज्ञान है और वे अपने ज्ञानबलसे लोककी व्यवस्था बनाते हैं। बनाते नहीं किन्तु जानते हैं और उस व्यवस्थामे कारण बनते हैं। वही ज्ञान प्रमाण है। वह ज्ञान दो प्रकारका होता है—एक प्रत्यक्ष दूसरा परोक्ष। प्रत्यक्ष तो उसे कहते हैं जो आत्माके द्वारा सीधा स्पष्ट जाना जाय। परोक्ष उसे कहते हैं जो स्पष्ट न जाना जाय। किन्तु इन्द्रियके निमित्तसे समझा जाय और युक्तियोसे भी जाना जाय। ज्ञानके इन दो भेदोंको न मानकर क्षणिकवादी बौद्धजन प्रत्यक्ष और अनुमान इस प्रकार दो भेदोंको मानते है आगम तर्क प्रत्यभिज्ञान इन सबकी और उनकी दृष्टि नहीं है।

क्षणक्षयवादके प्रत्यक्ष व अनुमानकी मीमासा—क्षणिकवादका सिद्धान्त है कि प्रत्यक्ष तो वास्तविक प्रमाण है और अनुमान गौण प्रमाण है। यद्यपि कुछ ऐसा लगतासा है कि प्रत्यक्ष तो एक सही स्पष्ट ज्ञान है और परोक्ष अनुमान एक गौण

ज्ञान है। अनुमान ठीक हो भी, न भी हो ? लेकिन न तो यह क्षणिकवादी बौद्ध प्रत्यक्षको ऐसा मानता है जैसा कि लोग जानते है, उनका प्रत्यक्ष है ऐसा विलक्षण कि जिसमे कुछ ज्ञात ही नही होता। बौद्धोका प्रत्यक्ष ज्ञान है निर्विकल्प विशेषका ग्रहण करने वाला। और अनुमानको बताते है कि यह अन्यापोहका ग्रहण करता है। यह सिद्धान्तदृष्टिसे कहा जा रहा है जैसा कि बौद्ध लोग मानते हैं। किसी भी वस्तु को जानकर यदि उसमे यह भाव उठ आये कि यह घडी है, यह अमुक चीज है तो वह अनुमान बन गया, प्रत्यक्ष ज्ञान नही रहा। इसमे भी "अन्य नही है" यह ज्ञान बना, घडी आदि तो कल्पना है। बौद्धोको जब कि सब लोग स्पष्ट जानते है कि यह चीज जो दिख रही है यह सब प्रत्यक्ष है। जो चीज नही दिखती है उसका तो अनुमान होता है पर जो सामने है उसका अनुमान क्या। लेकिन, क्षणिकवादी लोग प्रत्येक ज्ञानके साथ उसमे जो सामान्य प्रतिभास है उसे तो प्रत्यक्ष कहते हैं। और कुछ नई बात मालूम पडे भेदवाली, आकार वाली, रूपरग वाली तो उसे वे अनुमान कहते हैं। दार्शनिक दृष्टिसे उनका मतव्य है कि अनुमान तो एक अन्यापोह-रूपसे सामान्य अर्थको जानता है और प्रत्यक्ष निर्विशेष विशेष अर्थको जानता है। उस पद्धतिमे यहाँ यह आपत्ति दी जा रही है कि यदि अनुमान तो सामान्यको जाने और प्रत्यक्ष विशेषको जाने तो उस सामान्यसे विशेषका ज्ञान कैसे बन जायगा ?

सामान्य विशेषात्मकताके बिना वस्तुत्वकी असिद्धि बात यो है कि जगतमे जितने भी पदार्थ है वे सब सामान्य विशेषात्मक हैं। न कोई चीज केवल सामान्यरूप है और न केवल विशेषरूप। मनुष्य सामान्य हुआ और जाति, कुल, अथवा योग्यता पडित मूर्ख, बाबू आदिक ये विशेष हुए। केवल पडित बाबू आदि हो और मनुष्य न हो ऐसा तो नही है अथवा कोई मनुष्य तो है पर उसमे बुढापा जवानी आदिकी बाते न हो ऐसा भी तो नही है। तो प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। तभी उसमे उत्पादव्यय ध्रौव्यकी बात घटती है। यदि कोई चीज सामान्य रूप ही है तो ध्रौव्य तो येनकेन प्रकारेण उसमे घट जायगा, पर उत्पादव्यय तो नही बना। और, केवल विशेषको ही माना जाय तो ध्रुव न बनेगा, क्योकि जितने विशे है वे सब उत्पन्न होते हैं नष्ट होते है, सदा नही रहते। कोई भी विशेषता शाश्वत नही होती। तो प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यसे युक्त है, क्योकि वह सामान्य विशेषात्मक है। ज्ञान सामान्यविशेषात्मक पदार्थको जानता है। हाँ ज्ञानके भेद इस तरहसे तो होते है कि ज्ञान इन्द्रिय द्वारा जानता है, कोई ज्ञान युक्तियोसे जानता है पर सामान्यको ही जाने वह अनुमान ज्ञान है और विशेषको ही जाने वह प्रत्यक्ष ज्ञान है, इस तरह भेद न बनेंगे।

ज्ञानत्वके निर्णयमे लोकोत्तरता जिसने ज्ञानके स्वरूपका निर्णय कर लिया है वह पुरुष तो लोकोत्तर पुरुष है, ससारसे छूट सकने वाला पुरुष है और जो

पुरुष जान करके भी, ज्ञानका उपयोग करके भी ज्ञानके स्वरूपकी बात नहीं जानते, किन्तु बाहरमे ये ज्ञेय बाह्य पदार्थोंका ही स्वरूप जानते हैं अथवा इनमे ही व्यवहार करते हैं वे पुरुष अधेरेमे है, उन्हे शान्तिका पथ नहीं सूझता है। शान्तिका मार्ग केवल एक आत्मावलोकन है। बाह्य पदार्थमे जहाँ दृष्टि टी, जहाँ किसी बाह्य चीजको अपने दिलमे बसाया बस वही पराधीनताकी बात आ गई। उन बाहरी चीजोंका सयोग हुआ तो उनका वियोग भी होगा, वे सभी चीजें बिछुड जावेंगी, उनपर किसीका कुछ भी अधिकार नही है। उन बाह्य पदार्थोंकी चाह करना इसमे तो आपत्ति और विडम्बना है। इस लोकमे भी देख लो किसी दूसरेके धन वैभव मकान आदिकको यदि हम अपनाना चाहें तो उसमे हमे आकुलता तो होगी ही। जिसपर हमारा अधिकार नहीं उसपर हमारी अभिलाषा गई तो यह ता एक पराधीन बननेकी बात है। तो परमार्थमे देखिये कि जो पदार्थ पर है, समस्त धन पर है। प्रत्येक पुद्गल पर है, प्रत्येक जीव पर है। तो जो पदार्थ पर है, मेरे आधीन नही है उसे मैं चाहू तो उसमें तो आकुलता ही होगी। जो पुरुष केवल आत्माको ही चाहता है उसको शातिमार्ग मिलता है।

प्रासगिक आत्मनिर्णय—यह मैं आत्मा सामान्य विशेषात्मक हूँ, सामान्य स्वरूप मे मैं सदाकाल रहने वाला हूँ, अनादि कालसे मेरा अस्तित्व है, अनन्त काल तक मेरा अस्तित्व है, ऐसा शाश्वत सनातन जो एक चैतन्य सामान्य है तद्रूप मैं हूँ, इतनेपर भी केवल सामान्यरूप कुछ हो नही सकता, सो यह मैं चेतन आत्मा प्रति समय किसी न किसी अवस्थामें रहा करता हूँ। यदि मेरी कुछ भी अवस्थायें न बनें तो मेरा अस्तित्व ही न रहेगा। ऐसा कौन सा पदार्थ है कि जिसकी अवस्था तो कुछ भी न हो और अस्तित्व उसका माना जाय ? कोई पदार्थ नही है। मैं यो सामान्य विशेषात्मक हूँ, मैं अपने मे अपना परिणमन करता रहता हूँ, मेरी दुनिया जितना मेरा आत्मा है उतनी ही है, मेरा कर्तापन भोक्ता पन सुख दु ख, सब कुछ मेरे ही प्रदेशोमे है है, मेरी कोई भी चीज मेरेसे बाहर नही है।

आत्माका अनात्मपदार्थोसे असम्बन्ध—जो लोग दु ख मान रहे हैं वह भी एक भ्रमकी चीज है। न तो आत्मामें दु ख है, न बाहर दु खकी बात है। इसी तरह बाहरमे कोई सुखकी बात भी नहीं है। ये सुख दु ख तो कल्पनायें करके बाहरमे माने जा रहे हैं। खूब विशद दृष्टि करके निरखिये। जरा इन्द्रिय व्यापारको बद करके कुछ भीतर निरखिये कि मेरा कितना विस्तार है, मैं कहाँ तक फैला हुआ हूँ मेरा कहाँ तक किससे सम्बन्ध है। मैं एक सत् हूँ, अपने द्रव्यसे हूँ, अपने क्षेत्रसे हूँ, अपने कालसे हूँ और अपने ही गुणोसे हूँ। किसी परसे मेरा कोई वास्ता नहीं है। सभी न्यारे न्यारे अपनी अपनी सत्तामे रहा करते है। खूब परख लो जब मोह ममतामे चित्त रहता है तो वस्तुस्वरूप समझमे नही आता, नही सुहाता क्योकि उसमे ममता है। जिसमे ममता है वह हमे प्रिय लग रहा है, वह मेरा जच रहा है, उसमे मेरा हित है, उसपर

मेरा अधिकार है यो दिख रहा है, पर किसपर अधिकार है ? मरण होनेपर तो यह जीव अकेला ही जाता है, यहाँसे एक छदाम भी कुछ पासमे नही ले जाता। तो फिर कहा किसीपर इस जीवका अधिकार रहा ? इस जीवनमें भी देख लीजिए ! सब कुछ बाहर बाहर ही तो पडा रहता है।

मनुष्य दशाकी मीमासा - भैया ! हम आप सबका इतना तो महा सौभाग्य है कि नाना तिर्यञ्चोकी व नारकादिककी गतियोसे निकलकर आज मनुष्य हुए है, बडा ज्ञान प्राप्त किया है और निष्कलङ्क पवित्र पतितोद्धारक जैन शासनका शरण मिला है इतना तो सौभाग्य है, पर थोडा दुर्भाग्य यो कह सकने कि पचम कालमे हम आपका जन्म हुआ है जहा मोही जीवोकी बहुलता है। यह मोही जीवोकी बहुलता हमे अपने धर्ममार्गसे विचलित होनेमे बहुत बडा कारण बनती है। लेकिन हम कुछ सौभाग्य वाली बातपर विशेष दृष्टि देकर ज्ञानका सदुपयोग करे तो उसमे हमारा उद्धार है। क्या है वैभव ? क्या है सम्पदा ? ये सब भिन्न है, तुच्छ है, बाहरी बाते है इनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नही है। मेरा तो केवल भाव ही भाव है। उस ज्ञानमात्र अपने आपको सम्हालिये तो वहा शान्ति मिलेगी। ऐसा यह मैं आत्मा सामान्यविशेषात्मक हूँ। इसका ज्ञान स्वसवेदन प्रत्यक्षसे भी होता, अनुमानसे भी होता, आगमसे भी जाना जाता है। इसलिए ज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही है सो बात नही, किन्तु समस्त ज्ञान प्रत्यक्ष और परोक्ष दोमे बँटा हुआ है।

पञ्चमकालका रूप—प्रश्न— इस पचम कालमे उत्पन्न होनेको दुर्भाग्य कैसे कहा जाय ? अगर चौथे कालमे उत्पन्न हुए होते तो क्या विशेषता थी ?

उत्तर—हम आप सब लोग सब भावोके आधीन हैं, भावोसे सुधार है और भावोसे ही बिगाड है लेकिन बाहरी वातावरणकी अपेक्षा कहा जा सकता है कि चतुर्थकालमे सुधारके बहुत साधन थे, और इतना तो था ही कि साक्षात् मोक्ष होता था, पर पचम कालमे साक्षात् मोक्ष नही है। एक त्रुटी यह और दूसरी बात — यद्यपि चतुर्थ कालमे सभी मनुष्य मोक्ष न जाते थे, पापी भी होते थे और कोई कोई तो पचम कालके मनुष्यो से भी अधिक पापी थे। पचम कालके मनुष्य वज्रवृषभनाराच सहनन वाले नही हैं ये यदि अधिक पाप करें तो भी ७ वें नरकमे नही जा सकते, पर चतुर्थ कालमे वज्रवृषभनाराच सहनन वाले लोग थे, वे पाप करें तो ७ वे नरकमे भी जा सकते थे, लेकिन अरहत भगवानके दर्शन होना, समवशरणमे जाना विशेष ज्ञानियोका समागम मिलना यह चौथे कालमे था इस दृष्टिसे यह बात कही जा रही है कि हम आप लोगो का कुछ दुर्भाग्य है जो पचम कालमे उत्पन्न हुए है, बाकी परवाहकी कुछ बात नही। सम्यक्त्वकी साधना तो इस पचम कालमे भी बन सकती है। न हो साक्षात् मोक्ष मार्ग, पर जिसे सम्यक्त्व मिल गया उसने मोक्षका रास्ता तो खोल लिया।

अनुभवके लिये निर्णयकी आवश्यकता कारणसमयसाररूप चैतन्यका

जो अनुभव है वह तो तब बने कि जैसा सही स्वरूप है वैसा ज्ञानमें तो आये। उस स्वरूपकी और उसके परिणामस्वरूप ज्ञानकी चर्चा चल रही है कि वह मेरा आत्मस्वरूप सामान्यविशेषात्मक है। उसे हम कभी स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे भी जानते हैं, युक्तियोंसे भी पहिचानते और आगमकी प्रधानतासे भी जानते। ऐसा नहीं है कि सामान्य और विशेष ये दो विषय कोई अलग अलग हों और कुछ विशेषकी जानकारी सामान्यसे बने, क्योंकि साधनका विशेषोंसे सम्बन्ध बने। यदि कहो कि सम्बन्ध न होनेपर भी जानकारी बनी रहती है तो साधनसे ही सीधा विशेषका ज्ञान क्यों न मान लिया जाय! प्रतिबन्ध तो माना ही नहीं, फिर उसी हेतुसे ही सीधा विशेषका ज्ञान क्यों नहीं बनता? सामान्यका भी सामान्यके ही द्वारा यदि विशेषमें अविनाभावका सम्बन्ध जाना जाय तो उसमें अनवस्था दोष होगा सामान्यसे सामान्यकी उत्पत्ति माननेपर, और विशेषमें प्रवृत्ति न होनेपर, फिर उससे अन्य सामान्य मानना पडेगा तो यही दोष आयगा, इसलिए सामान्य और उसके अनुमानका अनवस्थान हो जायगा। अनेक नय माने, अनेक अनुमान माने तो विशेषकी जानकारी ही न मिलेगी। वास्तविकता यह है कि पदार्थ तो सामान्यविशेषात्मक है हम कभी द्रव्यदृष्टिकी प्रधानता करते हैं तो सामान्यका बोध होता है और पर्याय दृष्टिकी प्रधानता करते हैं तो विशेषका बोध होता है।

सामान्यविशेषात्मकताके अभावमें ज्ञानकी अव्यवस्था—व्याप्यसे व्यापक जाना जाता है और व्यापकसे व्याप्य नियमतः नहीं जाना जाता है। जैसे वृक्ष व्यापक है और नीमका पेड यह व्याप्य है। व्यापक उसे कहते हैं जो बहुत जगह रहता है, व्याप्य उसे कहते हैं जो थोडी जगह रहता है। नीमका पेड कोई कोई वृक्ष होता है और वृक्ष तो सारे ही वृक्ष कहलाते हैं। तो हम यह तो सिद्ध देंगे कि यह वृक्ष है, क्योंकि नीमका पेड है, पर यह सिद्ध न कर सकेंगे कि यह नीमका पेड है, क्योंकि वृक्ष है, वृक्ष तो सारे ही हैं। बटका वृक्ष हो तो क्या उसे भी नीमका वृक्ष कह देंगे? नहीं! तो जो व्यापक है वह तो जाननेमें आया करता है जो व्याप्य है वह जनाने वाला होता है। कार्यका कारण व्यापक है, भावका स्वभाव व्यापक है। ये क्षणिकवादी लोग सामान्यसे विशेषका ज्ञान होना मानते हैं, तो सामान्य तो है बहुत जगह और विशेष होता है कोई कोई। तो विशेषसे कोई सामान्यका बोध करना चाहे तो वह तो ठीक है पर सामान्यसे विशेषका बोध नहीं होता। जैसे वृक्ष होनेसे यह नीमका पेड है, यह सिद्ध नहीं होता क्योंकि वृक्ष सामान्य है, नीमका पेड विशेष है, इसी तरह सामान्यसे विशेषका ज्ञान नहीं होता। यदि मानें कि विशेष भी व्यापक है तो यह बात सिद्ध हो गयी कि सभी चीजें सामान्यविशेषरूप हैं।

ज्ञानके सदुपयोगका अनुरोध—भैया! पदार्थके स्वरूपकी यथार्थ जानकारी बिना जीवका संसारमें भ्रमण चलता रहता है. उनका उपयोग हितके विषयमें नहीं लग रहा, मोह भी नहीं हट रहा, क्योंकि वस्तुकी यथार्थ जानकारी नहीं है।

घरमे जो भी जीव अचानक कहींसे आकर पैदा हो गए तो उन्हें यह मोही जीव अपना मान लेता है, उनसे प्रीति करने लगता है। अरे, वह तो शरीर, जीव और कर्मका पिटोला है, उसमे यह प्रीति करने लगता है। खाली शरीरसे अथवा खाली जीवसे कोई प्रीति नही करता। जब ये तीनों मिल गए (शरीर, जीव और कर्म) तो ये बिछुड़ेंगे भी। ये कोई परमार्थ चीज तो हैं नही, असमान जातीय द्रव्यपर्याय है। जीव है चेतन, शरीर है अचेतन इन दोनोका यह पिंडोला है। तो कोई वास्तविक चीज हुई क्या जिसमे प्रीति की जा रही है? यह तो कोई वास्तविक चीज नही है। मायारूप है इन्द्रजाल है, क्षणिक है, नष्ट हो जाने वाली है, भिन्न है, इसकी प्रीतिसे हम क्या हित पायेंगे? सोचिये तो सही। रुचि करें तो परमात्मतत्त्वकी करें, जो अपने आपमे बसा हुआ है, स्वाधीन है, स्वय है जिसकी दृष्टि करे तो करते रहे। यह कभी अलग नही होता है और बाहरमे इन पदार्थोंकी दृष्टि करेंगे तो ये भिन्न है, ये अलग हो जायेंगे तब इनके पीछे दु खी होना पडेगा। भक्ति करें तो उस परमात्मतत्त्वकी करें इस निराले शुद्ध ज्ञानस्वरूपकी करे। मैं केवल ज्ञान और आनन्दमात्र हू। जो ज्ञानभाव है, आनन्दभाव है इतना ही मेरा स्वरूप है। इससे बाहर कही मैं कुछ नही हूँ। ऐसे अपने सामान्यविशेषात्मक निज आत्माकी दृष्टि करे। बाह्य पदार्थोंके मोहमे इस आत्माको कुछ भी हित न मिलेगा। भटकनायें ही बनेगी, ससारमे रुलना ही होगा। अपनी सुध लें, सम्यक्त्व प्राप्त करें और इस दुर्लभ मानव जीवनको सफल करे।

सवृत्ति सामान्यसे प्रतिपत्ति और प्रवृत्तिकी अव्यवस्था—यह प्रकरण अपने ज्ञानकी चर्चाका है। ज्ञानके प्रत्यक्ष और अनुमान ये ही दो भेद मानने वाले क्षणक्षयवादी निर्विशेष विशेषको तो प्रत्यक्षका विषय मानते है और सामान्यको अनुमानका विषय मानते हैं। उनसे यह पूछे जानेपर कि जब अनुमान सामान्यको ही जानता है तो फिर सामान्यसे विशेषोमे प्रवृत्ति कैसे बने और प्रवृत्ति तो विशेषोमे देखी ही जाती है, इसके उत्तरमे उनका कहना है कि साधनसे अनुमित सामान्यसे विशेषकी प्रतिपत्ति होती है तब विशेषोमे प्रवृत्ति देखी जाती है। इस पर कुछ विमर्श किये जानेके बाद अब कहा जा रहा है कि देखो गम्य (ज्ञेय) तो व्यापक ही होता है और गमक व्याप्य होता है। जैसे व्यापक अग्नि तो कारण है और व्याप्य धूम कार्य है तो धूमसे अग्नि बताई जाती है तथा वृक्ष व्यापक है नीमका वृक्ष व्याप्य है तो नीम का वृक्ष तो वृक्ष होता ही है, कोई वृक्ष हो तो वह नीमका ही वृक्ष हो ऐसा नियम तो नही। ऐसे ही सामान्य तो व्यापक है और विशेष व्याप्य है सो विशेषके द्वारा सामान्य का परिज्ञान तो किया जा सकता है, किन्तु सामान्यके द्वारा विशेषका परिज्ञान नही किया जा सकता है।

वस्तुमे सामान्य और विशेषकी व्याप्ति—यदि क्षणिकवादी यह कहे कि

व्यापक तो विशेष है अर्थात् जो वस्तुमे हो सो व्यापक सो वस्तुमे स्वलक्षण है ही और सामान्य अव्यापक है क्योंकि सामान्य वस्तुमे है नही, तो ऐसा कहनेमे तो यह सिद्ध हो गया कि ज्ञेय (गम्य) तो विशेष ही है, सामान्य तो गम्य ही नही, क्योंकि सामान्य स्वलक्षण नही सो यो अनुमान प्रमाण भी नही बनता। यदि कहो कि सामान्य भी व्यापक है याने वस्तुमे है तो स्वलक्षणकी तरह सामान्यमे भी वस्तुपना आ गया। अन्यथा अर्थात् सामान्यको अवस्तु माननेपर सामान्य कदाचित् ज्ञात भी मान लिया जाय तो भी अवस्तु विशेषोमे प्रवृत्ति करलेका प्रयोजन बन ही न सकनेसे अनुमान अप्रमाण ही ठहरेगा। इस कारण प्रमाण प्रत्यक्ष व अनुमान ऐसे ही दो भेद वाला है यह आग्रह उचित नही है।

ज्ञानकी विभक्तियोका कारण—आत्मा ज्ञानस्वरूप है और यह ज्ञान वस्तुस्वरूपकी व्यवस्था बताता है, अतएव ज्ञान प्रमाण है। यह ज्ञान यद्यपि अपनी ओरसे स्वभावसे एक ही प्रकारका है। यह जाने और जो कुछ सत हो उन सबको जाने किन्तु अनादिकालसे कर्मबन्ध होनेके कारण यह आत्मा ज्ञानमे अपूर्ण हो गया है और इस बन्धनकी स्थितिमे जितना ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होता है, ज्ञानावरण कर्म जितना हटता है उतना आत्मामे ज्ञान प्रकट होता है। इस कारण ज्ञानके अनेक भेद हो गये। मूलमे दो भेद हैं ज्ञानके —एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। प्रत्यक्ष ज्ञानके दो भेद हैं—साव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। साव्यवहारिक प्रत्यक्ष तो वह है जो इन्द्रियके द्वारा स्पष्ट जाना जा रहा है। पारमार्थिक प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जहा इन्द्रियकी सहायता तो नही है जरूरत भी नही है केवल आत्मीय शक्तिसे पदार्थको स्पष्ट जाना जाता है, उस पारमार्थिक प्रत्यक्षमे तीन भेद है अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान। इसमे स्वाभाविक परिपूर्ण ज्ञान तो केवलज्ञान है मगर जितने अशो मे अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम है सो अवधिज्ञान प्रकट होता है और मन पर्ययज्ञानावरणके क्षयोपशमसे मन पर्ययज्ञान प्रकट होता है। परोक्षके भेदमे स्मरण, प्रत्यभिज्ञान तर्क, अनुमान और आगम ये भेद हैं।

क्षणक्षयवादमे प्रमाणव्यावस्थाकी पद्धतिका आग्रह—ज्ञानकी व्यापक भेद व्यवस्था न मानने वाला क्षणिकवादिक अपना सिद्धान्त यह रख रहा है कि प्रमाण दो तो हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान, इन भेदोके आग्रहमे कितना प्रमाणोका लोप कर दिया। अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान, साव्यवहारिक प्रत्यक्ष और अनुमान तो यह भी व्यवस्थित नही है। क्षणक्षयवादमे प्रत्यक्षका विषय बताया गया है, अपने एक समयका कोई निर्विकल्प विशेष, जिसका व्यवहारही नही बनता। अनुमानका विषय बताया है कि' और कुछ नही है'' इतना भर ज्ञान। जैसे लोग जानते है कि यह घडी है पर क्षणिकवादके सिद्धान्तसे यह ज्ञान नही हो रहा कि यह घडी है किन्तु घडीके अलावा बाकी कुछ नही है ऐसा ज्ञान होता है। तो इसके दोनो ही ज्ञानोसे कोई प्रमा-

णता और व्यवस्था नही बनती। ये क्षणिकवादी प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणोके सिद्ध करनेमे हेतु देते है कि चूंकि प्रमेय केवल दो ही है— सामान्य और विशेष, अतएव प्रमाण भी दो ही है– प्रत्यक्ष और अनुमान। प्रत्यक्ष तो विशेषका विषय करता है और अनुमान सामान्यका विषय करता।

प्रमेयद्वित्वसे प्रमाणद्वित्वकी व्याप्तिपर उपानय विमर्श - प्रमेयद्वित्वमे प्रमाणद्वित्वको सिद्ध करने वाले क्षणिकवादियोसे पूछा जा रहा है कि सामान्य और विशेष ये दो प्रमेय प्रमाणके दो भेदोको सिद्ध करते हैं तो ये दोनो प्रमेय ज्ञात होकर प्रमाणके ज्ञापक हैं या अज्ञान होकर ? यदि कहो कि वह नही जाननेमे आया तो भी दो प्रमाणोको सिद्ध करते हैं—याने विना जाने कोई जताने वाला बन जाय तो सभी जीवोको सर्वरूपोमे सबका ज्ञान हो जाना चाहिए। कोई विवाद ही न हो। यदि कहो ये दोनो प्रमेय जाने जायें तब ही दो के व्यापक हैं तो किससे जाना ? प्रत्यक्षसे या अनुमानसे अथवा दोनोसे ? प्रत्यक्ष सामान्यको नही ग्रहण करता, अनुमान विशेषको नही ग्रहण करता। अगर ग्रहण करने लगे तो विषय शङ्कर दोष हो जाता है, इस कारण यह बात सिद्ध नही हो सकती कि प्रमेय दो स्वतत्र है इसलिये प्रमाण भी दो ही हैं। देखिये प्रमाण मायने जिससे हम जानकारी किया करें। वह समस्त सामान्य विशेषात्मक होता है। कौनसा पदार्थ ऐसा है जो सामान्यरूप ही हो और उसमे विशेष न हो ? और, विशेषरूप ही हो उसमे सामान्य न हो ? प्रत्येक पदार्थ उभयात्मक है। लेकिन क्षणिकवादीने उनमे पृथक दो विषय मान लिया सामान्य और विशेष। इससे न प्रमेयकी सिद्धि रहती है और न प्रमाणकी। तो वह प्रमेय न प्रत्यक्ष से जाना जायगा और न अनुमानसे। कहो दोनोसे जान गया हो, तो किसी एकको कि एकके द्वारा ही सब विषय बन जायगा, इस कारण दोनोसे भी नही जाना गया।

प्रमेयद्वित्वसे प्रमाणद्वित्वकी सिद्धिमे इतरेतराश्रय दोष —ध्यानमे लाने योग्य एक बात यह है कि जो दो प्रकारका है ऐसा कहा सो वह द्वैविध्य दो मे रहने वाला धर्म है, जब दोनो ज्ञात हो तो वह सिद्ध कर सकता है, जैसे हिमालय और विन्ध्याचल, ये दो अलग-अलग पर्वत हैं यह कब जाना जायगा जब ये दोनो देख लिए जायेंगे, मान लिए जायेंगे। लेकिन दो प्रमाण सिद्ध हो तो प्रमेय सिद्ध होगे और दो प्रमेय सिद्ध होगे तो दो प्रमाण सिद्ध होगे, इस कारण यहाँ इतरेतराश्रय दोष लगता है। यदि कहो कि दूसरे ज्ञानसे प्रमाणकी सिद्धि होगी तो वह दूसरा ज्ञान भी एक है या अनेक ? यदि एक कहोगे तो विषयसकर हो गया, अनेक कहोगे तो अनेकने दो प्रमाणोको जाना तो उसे भी अनेकोनेसे जाना। कोई व्यवस्था न बनेगी।

पदार्थव्यवस्था—प्रयोजन यह है कि सीधा-सादा मान लो कि जगतमे ६ प्रकारके पदार्थ हैं—कोई तो जीव जातिके पदार्थ है और कोई अजीव जातिके। जीव जातिके पदार्थ तो हम आप, पशु-पक्षी, कीडे-मकौडे, फल-फूल, परमात्मा अरहत

सिद्ध आदि हैं और ये जो हम आपको दिखनेमें चीजें आ रही हैं ये सब पुद्गल जाति के पदार्थ हैं। जिनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श पाया जाय वे सब पुद्गल हैं। ये दो प्रकार के पदार्थ सभीको खूब समझमें आ रहे हैं। ये दिखने वाले शरीर भी पुद्गल हैं, इनमें बसने वाला जीव जीव है। इन दो पदार्थोंके अलावा धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य ये एक-एक हैं और कालद्रव्य असंख्यात हैं। जीव अनन्तानन्त है, पुद्गल अनन्तानन्त हैं। ये सभी पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं। सामान्य तो इस प्रकार कि ये सभी पदार्थ शाश्वत हैं। त्रिकाल रहने वाले हैं और विशेष यों हैं कि इनकी नवीनी प्रति समय नवीन नवीन अवस्थायें बनती हैं। अवस्थाकी दृष्टिसे विशेष है और शाश्वत रहनेके कारण सामान्यरूप है। तो प्रत्यक्ष भी सामान्य विशेषात्मक पदार्थको जानता है और अनुमान भी सामान्य विशेषात्मक पदार्थको जानता है।

बाह्य सम्पर्कमें क्लेशोंका उद्भव—यह अपने ही ज्ञानकी बात चल रही है। जब यह ज्ञान अपने आपकी दृष्टिमें नहीं रहता, अपने अनुभवमें जब अपना ज्ञान नहीं रहता तो कितनी विकलता हो जाती है। बाह्य पदार्थोंकी ओर दृष्टि बनाना इस से बढ़कर जीवको क्या विपदा हो सकती है। सर्व बाह्य पदार्थ अपने आपके स्वरूपमें प्रतिष्ठित हैं, उनमें मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, मेरा मेरेसे बाहर किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं, किन्तु परकी ओर जो दृष्टि लगी हुई है उस दृष्टिसे आत्मामें जितने संक्लेश होते हैं, चित्त स्थिर नहीं रहता, उपयोग डवाडोल रहता है। चित्तमें पराश्रयता रहती है। बाह्य पदार्थोंके पीछे बहुत कुछ दौड़ लगानी पड़ती, बड़ा श्रम करना पड़ता, आज लोग धनिक बननेके लिये कितनी होड़ मचाये हुए हैं, ऊपरसे देखनेमें तो वे बड़े शान्त हैं, सुखी हैं पर उनके अन्तरङ्ग परिणामोंमें आकुलता ही आकुलता बनी रहती है। अरे इन बाह्य पदार्थोंके सम्बन्धसे कुछ भी हित न होगा, बल्कि जितने भी क्लेश इस जीवको होते हैं वे बाह्य पदार्थोंके सम्बन्धसे होते हैं, आत्माके साथ कर्म लगे हैं तो सर्व गतियोंमें इसे भटकना पड़ रहा है। आत्माके साथ शरीर चिपटा है तो रात-दिन रोग शोक विकार क्षुधा, तृषा आदिक अनेक कष्ट लगे हुए हैं।

आत्माकी ओरसे आत्माकी स्थिति—आत्मा यदि अकेला ही होता, किसी परका सम्बन्ध न होता तो यह पूर्ण आनन्दमय और सर्वज्ञ होता। यही तो प्रभुकी अवस्था है। जो अपने आपमें पूर्ण समर्थ है वह प्रभु है, वह प्रभु अकेला है, केवल आत्मा ही आत्मा है, उसके साथ कोई बन्धन नहीं है वीतराग हैं ऐसी प्रभुकी दशा होती है। परके सम्बन्धसे ही तो ये अनेक विसम्वाद बढ़ गये हैं। मोहमें यह जीव सम्बन्ध ही चाहता है। नाना उपाय करके सम्बन्ध बनानेकी फिकरमें है इस जीवने राग बढ़ाया द्वेष बढ़ाया, ये सब सम्बन्धके कारण ही तो हुए। बाह्य पदार्थोंका सम्पर्क इस जीवका अहितरूप ही है। केवल अपने आपके कैवल्यका अवलोकन रहता तो सारी समस्याओंका समाधान भी रहता। स्वयं अपने आपको जाननेके कारण यह

प्रसन्न भी रहता । जब ज्ञानकी वह एक केवल ज्ञानरूप अवस्था रहती तो वह सदा आनन्दमयी रहता । ज्ञानकी तो परिपूर्ण दशा होनी है परका सम्बन्ध लगा है इस जीव के साथ इस कारण ज्ञानकी नाना दशायें बन रही है ।

सुगम और प्रमाणसिद्ध स्वरूपकी स्वीकृतिमे औचित्य—यहाँ ज्ञानकी दशावोंके सम्बन्धमे यह प्रकरण चल रहा है कि वे दशायें दो प्रकारकी है एक प्रत्यक्ष ज्ञानकी दशा और एक परोक्ष ज्ञानकी दशा । ऐसा न मानकर क्षणिकवादी कहता है कि ज्ञानकी दो दशायें नही, किन्तु प्रत्यक्ष और अनुमान । अनुमान इनका काल्पनिक है प्रत्यक्ष उनका मुख्यरूपसे प्रमाण है । उसमे प्रश्न किया था कि प्रत्यक्षका लक्षण तो स्वलक्षण है अर्थात् पदार्थमे जो चीज पायी जाती है वह प्रत्यक्षवेद्य है और अनुमानका लक्षण सामान्य है सो जब इन दोनोका ज्ञान ही नही होता, फिर ये दो प्रमाण है, ऐसा कैसे सिद्ध कर सकोगे ? इसपर क्षणिकवादी कह रहा है कि स्वलक्षण आकार तो आत्मभूत ही है सो प्रत्यक्षसे जाना जा रहा है और सामान्य आकार अनुमानसे जाना जाता और दोनो ही स्वसम्वेदनसे सिद्ध है, सो प्रमाण दो है यह भी प्रत्यक्षसे सिद्ध है और प्रमेय दो हैं यह भी प्रत्यक्षसे सिद्ध है । लेकिन जो लोग इस बातको नही मानते है या मानकर भी ऐसा व्यवहार नही कर सकते, उनको दो प्रमेय बताकर दो प्रमाणोकी बात कही जा रही है । आचार्यदेव कहते हैं कि यह भी सारहीन बात है । ज्ञानसे भिन्न न कोई केवल सामान्य है न कोई विशेष है, किन्तु यह ज्ञान भी सामान्य विशेषात्मक है—बाहरमे रहनेवाले ये समस्त पदार्थ भी सामान्यविशेषात्मक हैं । जो जैसी बात है उसे वैसी मान लेनेमे क्या हर्ज है । जो चीज जिस तरहसे प्रतिभात होती है वह उस तरहसे मान लिया जाना चाहिए । तो हमारे प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण ये सब सामान्यविशेषात्मक पदार्थको ही विषय करते है । इस प्रकार ज्ञात होता है ऐसा ही समझना चाहिए ।

स्वरूपसूत्रका महत्व—यह चर्चा समस्त सिद्धान्तका मूल है । जैनशासनमे वस्तुका क्या स्वरूप दिखाया है उसे एक सूत्रमे दर्शाया है—'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्" । तत्त्वार्थसूत्र पढने वाले लोग भक्तिवश पाठ तो कर जाते है, पर कोई विरले ही चतुर विद्वान उसका अर्थ अवधारण करते है सूत्रमे क्या अर्थ बसा हुआ है इसका बोध हो और उस परिज्ञान सहित सूत्रका पाठ करे तो आचार्यदेवने बतलाया है कि उस सूत्रका पाठ करनेसे एक उपवासका फल होता है इस लोभसे कोई सूत्रका पाठ करे तो उससे एक उपवासका फल न मिलेगा किन्तु श्रद्धा भक्तिसे उसके अर्थको जानकर पाठ करे तो एक उपवासका क्या अनेक उपवासका फल हो सकता है । इस सूत्रमे बताया है कि जगतके पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यसे संयुक्त है । प्रत्येक पदार्थ निरन्तर बनते रहते है अर्थात् नवीन नवीन अवस्थायें उसमे होती रहती हैं और प्रत्येक पदार्थ प्रति समय विलीन होता जाता है, इतने पर भी प्रत्येक पदार्थ सदा बना रहता है, उसका समूल नाश नही होता ।

स्वरूपज्ञानके अनेक प्रभाव— वस्तुस्वरूपका कथन केवल एक ज्ञानकी ही बात नहीं है किन्तु संकटोंको हटानेकी भी बात है और चरित्र बढ़ानेकी भी बात है । जिस पुरुषने यह जान लिया कि प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपसे उत्पादव्ययध्रौव्य वाले हैं, निरन्तर प्रत्येक पदार्थ कुछ न कुछ परिणमते ही रहते हैं । परिणमना ही पड़ेगा क्योंकि वह सत है । ऐसा परिज्ञान होनेमें यह श्रद्धान बैठता है कि प्रत्येक पदार्थ परिणमता ही रहता है, उसका स्वरूप है ऐसा । उसे दूसरा क्या करे ? दूसरा कोई पदार्थ किसीको परिणमा नहीं सकता । निमित्त भी उपादान अनुकूल निमित्तको पाकर स्वयं अनुकूल परिणम जाता है अर्थात् विभावरूपपरिणम जाता है । यह परिणमने की कला प्रत्येक पदार्थमें पड़ी हुई है । यह द्रव्यत्व शक्ति प्रत्येक पदार्थमें अपने आपके स्वभावमें है । परिणमता रहेगा हर एक पदार्थ निरन्तर । मैं भी सत् हूं । मैं भी निरन्तर परिणमता रहता हूं । मेरेमें अन्य और कोई बात न आयगी । मैं निरन्तर परिणमता रहता हूं अपने ही गुणरूप अपने ही प्रदेशोंमें निरन्तर कुछ न कुछ बनता रहता हूं, इतनी ही मेरी दुनिया है इसमें दूसरेका कोई अधिकार नहीं । मैं अज्ञानमें परकी दृष्टि बनाकर खोटा परिणमता रहता हूं । जब मैं यथार्थ अपने स्वरूपको जान लेता हूं तो मैं अपनेमें अपने रूप परिणमन करता हूं । मैं सिवाय अपने आपके भाव बनानेके और कुछ नहीं करता । बाह्य पदार्थोंमें नाना ख्याल बनानेसे इस जीवके मलिनता ही बढ़ती है, हित कुछ नहीं होता । यह बात समझमें आती है तो मोह दूर होता है, सम्यक्त्व उत्पन्न होता है मोक्षके मार्गका भान होता है । तो देख लो वस्तुस्वरूपके ज्ञानमें कितनी कला है ।

लोगोंका शान्तिविरुद्ध परिश्रम—लोग सुखी होनेके लिये दिन रात नाना श्रम करते रहते हैं और यहां तक कि सोती हुई हालतमें भी संस्कारमें वह बाह्य श्रम ही बना होता है लेकिन शान्ति नहीं मिलती । कैसे शान्ति हो ? शान्ति मिलनेका जो कारण है उपाय है उससे तो रहते हैं दूर दूर और अशान्ति बढ़नेका जो कारण है उससे चिपटे रहा करते हैं तो शान्ति कैसे प्राप्त हो ? पर पदार्थमें राग रखनेसे नियम से अशान्ति ही होगी । चाहे धनी हो चाहे गरीब, चाहे पंडित हो चाहे मूर्ख हो, जिस ढंगकी बात है वह उस ढंगमें होती ही है, उसे कोई नहीं टाल सकता, तो बाह्य पदार्थोंके स्नेहमें अशान्ति ही है ऐसा निर्णय रखिये । उसका कारण यह है कि ज्ञान है अपना और विषय बनाया परको तो पहिले तो यहीं ही असमंजसता कर दी, फिर वह पर है भिन्न । वह अपने उत्पादव्ययध्रौव्यरूप है । मैं चाहूंगा कुछ वह परिणमेगा कुछ तो अशान्ति होगी ।

क्लेश और क्लेशके उपायोंसे राग— भैया ! जिस मनुष्यसे पूछो — प्रायः करके सभी लोग ऐसा उत्तर देते हैं कि क्या करें, परिवारको बहुत पाला पोसा बड़ा किया, बच्चोंके लिये जीवनभर श्रम किया, मगर अन्तमें ये ही बालक मुझसे विरुद्ध

चलते है, मेरा अपमान करते है, हम बडे दुखी है। कोई न कोई दुखकी बात प्रत्येक मनुष्य रख रहा है। तो दुख तो होगा ही। पुत्र अगर अनुकूल है आज्ञाकारी है तो उसके सुखी रहनेकी फिकर रात दिन रहेगी जिससे दुखी रहेगा वह पिता, और अगर पुत्र प्रतिकूल है, आज्ञाकारी नही है तो उसके पीछे तो दुख है ही। तो परवस्तु के रागसे नियमसे क्लेश ही क्लेश है, चाहे वह क्लेश किसी ढगका हो। तो रागसे क्लेश है और क्लेश मिटानेके लिए जीव रागका ही उपाय करता है। अब देख लो, समझलो, ऐसी बात चल रही है कि नही। ऐसा विपरीत जीवोका पुरुषार्थ चलता है। कैसे शान्ति हो। शान्तिका उपाय तो राग दूर करना है। प्रयोग करके देखो। किसी ज्ञान पद्धतिसे आप राग दूर कर लें तो आपको शान्ति मिलेगी। किसीसे द्वेषके कारण, घृणाके कारण, ठीक न सुहानेके कारण यदि राग दूर करे तो उससे शान्ति न मिलेगी, क्योंकि वहाँ रागके बजाय द्वेष तो बसा लिया। जो पुरुष सम्यग्ज्ञानका आश्रय करके रागभावको दूर कर लेता है उस पुरुषको नियमसे शाति प्राप्त होती है।

शान्तिके लिये पदार्थकी सामान्यविशेषात्मकताके परिज्ञानका महत्त्व अब अपने अपनेमे चिन्तन करिये कि हम शान्तिके मार्गसे कितने दूर है, और सही निर्णय बनाकर प्रयत्न करिये कि अशान्तिके कारणोसे हम दूर रहे। हम अपने ज्ञान का सही उपयोग बनाये। यह सम्यक्त्वका उपयोग ही आत्माको शान्ति उत्पन्न कर सकता है, यह बात कैसे प्रकट हो ? जब यह जान लिया जाय कि मैं और परपदार्थ सभी स्वतन्त्र-स्वतन्त्र अपना अस्तित्व रखते हैं। सभी उत्पाद व्ययध्रौव्ययुक्त हैं। यह बात भी तभी सिद्ध हो पाती है जब हम यह मानकर चले कि प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। सामान्य दृष्टिसे तो पदार्थ शाश्वत है और विशेष दृष्टिसे पदार्थ प्रतिक्षण परिणमता रहता है अतएव विनाशीक है। यह सामान्य विशेषका निर्णय एक हितकी दिशामे बहुत बडा महत्त्व रखता है। जो जीव धर्मकी श्रद्धामे चल रहे है, जिनको पदार्थमे यथार्थ ज्ञान बन रहा है वे सभी एकदम पदार्थको पूर्ण जानते है, सामान्यविशेषात्मकरूपसे जानते है। प्रतिपादन न कर सके मगर जिस जिसके भी सम्यग्ज्ञान है, उस उसके सबके निर्णयमे प्रत्येक पदार्थ सामान्यविशेषात्मक बसा है।

ज्ञान पुरुषार्थकी करणीयता मैं हूँ, स्वय हूँ, परिपूर्ण हूँ, परसे असम्बद्ध हूँ अनन्त गुणोका पिण्ड हू, प्रतिसमय परिणमन करता रहता हूँ, बस इतनी ही तो मेरी करतूत है। यही मेरा कारखाना है, यही मेरा महल है, यही मेरा निर्णय है, यही मेरा भविष्य है, यही मेरा वर्तमान है यही मेरा भूत था। इससे आगे मेरा कही कुछ नही है, ऐसी अपने आपके स्वरूपपर दृष्टि होना और उस स्वरूपके निकट बसकर ही अपने को तृप्त करना यही सबसे बडा भारी काम करनेको पडा हुआ है। और, ससारके काम तो असार हैं, उन कामोसे कुछ भी हमारा हित नही है। लोग जान गये तो क्या हुआ ? ये लोग भी क्या है ? यह इच्छा करने वाला मैं भी क्या हूँ ? मायाजालसे

मायाजालकी पहिचान हो रही है। परमार्थ पहिचान वाला तो कोई विरला ज्ञानी सत ही होता है, चाहे वह गृहस्थमे हो या साधुमे हो। तो अपने स्वरूपका परिचय पाइये और अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करके अपनेमे तृप्त रहा कीजिये। यही शान्ति प्राप्त करनेका मार्ग है।

प्रमेयद्वित्वसे प्रमाणद्वित्वकी सिद्धि न होनेका निर्णय– ज्ञान प्रमाण होता है। उस प्रमाणके दो भेद हैं, प्रत्यक्ष और परोक्ष। जो साक्षात् जाना जाय वह तो है प्रत्यक्ष और जो साक्षात् न जाना जाय परोक्ष जाना जाय सो वह है परोक्ष। इसका सही अर्थ तो यह है कि जो विशद जानें, स्पष्ट जाने उसका तो नाम है प्रत्यक्ष और जो स्पष्ट न जानें उसका नाम है परोक्ष। किन्तु, प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो भेद न मानकर क्षणक्षयवादके सिद्धान्तमे प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसे दो भेद माने हैं। जितने भी जो कुछ विकल्प वाले ज्ञान है वे तो सब हैं अनुमान। और, जो निर्विकल्प क्षणिक तत्त्वका ज्ञान है वह है प्रत्यक्ष। इस प्रकार प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणोके माननेमे उन्होने यह युक्ति दी थी कि चूंकि प्रमेय ही दो प्रकारके हैं— सामान्य और विशेष इस कारण प्रमाण भी दो हैं प्रत्यक्ष और अनुमान। इस सम्बन्धमे समाधान दिया गया है और यह सिद्ध किया गया है कि प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषरूप हुआ करते है और ज्ञान सभी सामान्यविशेषात्मक पदार्थको ही जाना करता है। कोई पदार्थ सामान्य हो कोई विशेष ही हो ऐसा नही है और ज्ञान कोई सामान्य अशको ही जाने, कोई विशेष अशको ही जाने ऐसा भी नही है किन्तु यह कह सकते हैं कि सामान्यविशेषात्मक पदार्थको जो विशेष अशको ही जाने ऐसा भी नही है किन्तु यह कह सकते हैं कि सामान्यविशेषात्मक पदार्थको जो विशेष पद्धतिसे जाने सो ज्ञान है और जो सामान्य पद्धतिसे प्रतिभास हो सो दर्शन है।

भैया! यह चर्चा अपने आत्माके वृत्तिकी चल रही है। आत्मा क्या है और क्या किया करता है। आत्मा चैतन्यवस्तु है और चैतन्य है सामान्यविशेषात्मक। जो सामान्य चेतना है, उसका नाम दर्शन है, जो विशेष चेतना है उसका नाम ज्ञान है। तो प्रमेय दो नही रहे, एक ही रहा। सामान्य विशेषात्मक पदार्थ।

आगमादिक प्रमाणोका अनुमानमे अन्तर्भाव होनेसे प्रमाणद्वित्वकी सिद्धिका तर्क—अब क्षणिकवादी कह रहे हैं कि चलो प्रमेयके दो भेद नही भी सिद्ध हुए तो भी प्रमाण दो से ज्यादा तो सिद्ध नही होते, कारण कि जितने भी अन्य प्रमाण हैं वे सब अनुमानमें गर्भित हो जाते हैं। आगम तर्क आदिक जो जो भी प्रमाण माने जाये वे सब अनुमान ही तो हैं। इसलिये दो ही प्रमाण सिद्ध होते—प्रत्यक्ष और अनुमान। अनुमानमे आगम आता है उसका वे कुछ स्पष्ट करके भी कह रहे हैं कि आगम मायने हैं शब्द, शास्त्र किया, उपदेश किया। शब्दका नाम ही तो शास्त्र है आगम है। तो शब्द आदिक परोक्ष अर्थको जानते हैं। जैसे आगममे लिखा है कि यह

विदेह क्षेत्र है• यह मेरू पर्वत है तो शब्दोने परोक्ष अर्थको ही तो बत.या। सामने तो वे है नही वे मेरू और विदेह। तो शब्द परोक्ष अर्थको बताया करना है तो यह बतलावो कि इन शब्दोसे परोक्ष अर्थका सम्बन्ध नही है और शब्द उन अर्थोका ज्ञान करा देते है तो फिर अटपट ज्ञान चलेगा। किसी भी शब्दसे किसी भी पदार्थका ज्ञान होने लगेगा क्योकि पदार्थका सम्बन्ध न मानकर भी शब्दको पदार्थका व्यापक माना है। जैसे हो तो गाय और जाने घोडा। क्योकि पदार्थका शब्दसे सम्बन्ध तो मानते हैं। यदि कहो कि पदार्थका शब्दसे सम्बन्ध है तो यही अनुमान हो गया, यही साधन से उत्पन्न अनुमान हुआ करता है। ऐसा क्षणक्षयवादी दो प्रमाणोकी सिद्धिमे अपना मतव्य रख रहे हैं।

क्षणक्षयवादियोंके प्रत्यक्षका अनुमानमे अन्तर्भाव होनेकी आपत्ति — अन्य प्रमाणोर्का अनुमानमे गर्भितताकी शङ्कापर आचार्यदेव उत्तर देते है कि इस तरह की दलीलसे तो प्रत्यक्ष भी अनुमान प्रमाण बन जायगा। प्रत्यक्षने किसी पदार्थको जाना तो बतलावो कि उसने सम्बद्धको जाना या असम्बद्धको ? यदि असम्बद्धको जाना तो सभी पुरुष सभी पदार्थोंको जान लेंगे, क्योकि आँखोसे दिखने वाले पदार्थसे कुछ सम्बन्ध नही है फिर भी जान गये। यदि सम्बद्ध पदार्थको जानते है तो यह अनुमान बन गया। प्रत्यक्ष क्या रहा ? तो लो अब अनुमान ही एक प्रमाण बचा, वह भी न बचेगा। अत सभी ज्ञान अनुमानमे गर्भित होते है यह कहना युक्त नही है। शायद यह कहो कि यद्यपि प्रत्यक्ष विषयसे सम्बन्ध रखता है और अनुमान भी अपने विषयसे सम्बन्ध रखता है फिर भी सामग्री साधन दोनो ज्ञानोके जुदे-जुदे है। इसलिये वे अलग-अलग प्रमाण हैं। जैसे प्रत्यक्षके साधन है इन्द्रिय, मन, आलोक आदि और अनुमानके साधन हैं हेतु आदिक। इस पद्धतिमे आगमका साधन है शब्द, और उन शब्दोसे हम परोक्षभूत अर्थको जानते हैं, अत यह आगम भी प्रमाण है आगम प्रत्यक्ष मे भी गर्भित नही होता क्योकि आगममे है अन्य प्रकारसे बोध। प्रत्यक्षको माना है बौद्धोने निर्विकल्प और स्पष्ट ज्ञान करने वाला। आगमको अनुमान भी नही कह सकते अनुमान तो होता है साधनसे उत्पन्न और आगम साधनसे उत्पन्न नहीं होता। आगममे लिखा है ७ नरक। अब इसकी श्रद्धा करनेमे आगमकी दृष्टिमे कोई हेतु देनेकी जरूरत नही है। प्रभुका उपदेश है, उन्होने ज्ञानसे सब जाना। उनकी दिव्य ध्वनिकी परपरा से चला आया हुआ यह कथन है। जैसे सामने दिखती हुई चीजको सिद्ध करनेके लिए युक्तिकी जरूरत नही है। जैसे कोई कहे कि यह चौकी है। यह चौकी क्यो है भाई ! तो क्या इसमे क्यो चला करेगा ? तो जैसे जो प्रत्यक्षसे जाना उसमे कोई युक्ति नही चलती, इसी प्रकार मन.पर्ययज्ञान केवलज्ञान प्रत्यक्षसे जो पदार्थ जाना उसका उन्होने वर्णन किया, उसमे युक्तिकी जरूरत नही। तो शब्द या आगम ये साधनसे नही होते, इस कारण आगम प्रमाण है और मुख्य प्रमाण है उसका अनुमानमे अन्तर्भाव नही होता।

ज्ञानके संक्षिप्त भेद—चर्चा यह चल रही है कि ज्ञान कितनी तरहसे होता है ? ज्ञान प्रत्यक्ष भी होता है। जैसे लोग कहते हैं कि मैंने आँखों देखा कानों सुना, मैंने स्वादकरके देखा, मैंने छू करके देखा। इन इन्द्रियों द्वारा साक्षात् जाननेमें सन्देह नहीं रहता, तो समझना चाहिए कि प्रत्यक्ष विशद प्रमाण है. अनुमान भी प्रमाण है, आगम भी प्रमाण है स्मरण भी प्रमाण है। किसी चीजका ख्याल आया, जान गए, अब यह ज्ञान क्या झूठा है ? सच्चा ज्ञान है। किसी बातको युक्तिसे सिद्ध कर रहे हैं, इसे कहते हैं तर्क। भाई ! जहां जहां धुवा होता है वहां अग्नि जरूर होती है क्योंकि धुवा अग्निसे ही उत्पन्न होता है, तो क्या यह झूठा ज्ञान है ? तो भाई ! ज्ञान बहुत होते हैं लेकिन ज्ञानकी जो पद्धतियां हैं वे दो ही तरह की हैं एक स्पष्ट ज्ञान होता है और एक अस्पष्ट ज्ञान होता है। जैसे एक तो अनुमानसे अग्निके विषयमें जान लिया यह ज्ञान और एक धधकती हुई आगको देखकर आगका ज्ञान कर लिया तो इन दोनों ज्ञानोंमें बडा अन्तर है। एक तो स्पष्ट ज्ञान है और एक अनुमानसे जो अग्निका ज्ञान किया वह स्पष्ट नहीं है। तो स्पष्ट और अस्पष्टके नातेसे ज्ञानके ये ही दो भेद ठीक हैं प्रत्यक्ष और परोक्ष।

आगमका अनुमानमें अन्तर्भूत होनेकी अशक्यता—आगमका अनुमानमें अन्तर्भाव नहीं हो सकता क्योंकि आगममें दोका प्रसङ्ग है – शब्द और अर्थ। दो ही बातें तो इसमें मुख्य हैं। शब्द लिखे हैं उनसे पहिचाना हमने कोई पदार्थ, तो यह बतलावो कि शब्द धर्म है या धर्मी है ? यदि शब्द धर्म है तो ठीक यों नहीं बनता कि धर्मी कुछ है ही नहीं। अगर कहो कि अर्थ धर्मी है तो पदार्थका और अर्थका कोई सम्बन्ध नहीं। यदि लिख दिया मेरू तो इन शब्दोंसे और मेरूसे क्या सम्बन्ध ? अर्थको ही सीधा जान लिया तो शब्दकी क्या आवश्यकता रही ? इस कारण शब्द अनुमानमें गर्भित हो जाय, यह बात युक्त नहीं है। कोई कहे कि शब्द अर्थवाला है क्योंकि शब्द होनेसे। तो जिसको सिद्ध करना है उसीका ही हेतु देवें तो यह बात कमजोर है। प्रतिज्ञार्थैकदेश दोष होगा। शब्द या शब्दपना पदार्थका ज्ञान नहीं होता, इससे यह मानो कि आगम भी एक अलग प्रमाण है।

आगमनेत्र – देखिये साधुजनोंको तो या मोक्षमें चलने वालोंको आगम एक महान नेत्र है। साधुवोंका नेत्र एक आगम ही है। कुछ भी उन्हें अपने बारेमें निर्णय करना होता है तो आगम देखते हैं। कैसे चलना, कैसे बैठना क्या व्यवहार करना, कैसा परिणाम रखना उन सबके निर्णयके लिये आगमका आलम्बन लेते हैं। आगमके द्वारा तो अभ्यासी जीव तीनों लोकका परिज्ञान कर लेता है। होता है इसमें अस्पष्ट परिज्ञान केवलज्ञानी केवलज्ञानके द्वारा समस्त लोकका स्पष्ट ज्ञान करता है किन्तु आगमज्ञानी आगमके द्वारा समस्त पदार्थोंको अस्पष्ट जाना करता है। आगमज्ञान वालेने इन शब्दोंसे सबको जान लिया। जितने भी पदार्थ सत् हैं वे सब उत्पादव्यय-

ध्रौव्य वाले है, सब अनेक धर्म वाले हैं, अनन्तज्ञानात्मक है, लो इन शब्दोसे सभी पदार्थोंको जान लिया। जैसे केवलज्ञानीको सभी पदार्थ जानकर भी किसी भी पदार्थ से कुछ प्रयोजन नही है, किसी पदार्थसे केवलीको न राग है और न द्वेष हैं न किसी पदार्थसे भगवानकी कोई अटक लगी है तो इस आगमज्ञानीको सम्यग्दृष्टि पुरुषको भी बाहर किसी पदार्थसे अटक नही है, क्योकि वह जानता है कि मेरा सर्वस्व मैं ही हूँ। मेरा परिणमन मेरी परिणति मेरा गुण मेरी सारी दुनिया मेरे ही प्रदेशोमे है। अतएव बाह्य पदार्थोसे ज्ञानीको कुछ अटक नही है। इस कारण पीठ पीछेके पदार्थ यदि सारे ज्ञानमे नही आये लेकिन उस सबको तो इस रूपमे जान ही लिया कि जो पदार्थ हैं वे सब उत्पादव्ययध्रौव्य वाले है। तो आगमज्ञान भी बहुत महत्वपूर्ण ज्ञान है उस का अन्तर्भाव अनुमानमे नही हो सकता।

शब्द और अर्थका अन्वय न होनेसे आगमका अनुमानमे अन्तर्भाव होनेकी अशक्यता– शब्द और पदार्थके सम्बन्धकी बात जो कही जा रही है कि इस शब्दसे यह पदार्थ जाना जाता है तो यह बतलावो कि शब्दकी सत्तासे, शब्दके व्यापार से पदार्थका कोई सम्बन्ध है क्या ? जो पदार्थ विद्यमान हो उसका तो अन्वय बनता है पर जो पदार्थ विद्यमान नही उसका अन्वय क्या बनेगा। जैसे जहाँ जहाँ धुवा होता है वहा वहाँ अग्नि होती है, तो धुवा भी कोई चीज है और अग्नि भी कोई चीज है। तब बन गया सम्बन्ध पर शब्द और अर्थका जहाँ अन्वय ही नही है तो उससे बंध कैसे हो सकता है। जहाँ जिसके साथ अविनाभाव है तो कह सकते कि चूँकि यहाँ धुवा है इसलिये आग है, पर पदार्थका और शब्दका तो अविनाभाव भी नही कि जहा जहा पदार्थ हो वहा वहा शब्द हो या जहा जहा शब्द हो वहा वहा वह पदार्थ हो, ऐसा कोई निर्णय है क्या ? यदि पदार्थका और शब्दका अविनाभाव बन जाय तो जिस समय कोई शब्द बोला –जैसे पिण्ड खजूर तो पिण्ड खजूर हाजिर रहना चाहिए। शब्द और पदार्थका परस्परमे कुछ अविनाभाव नही। यदि अविनाभाव हो जाय तो जैसे किसीने जीभसे कहा छुरी तो जीभ कट जाना चाहिए क्योकि शब्द जहाँ है वहाँ पदार्थ है। तो शब्दका पदार्थके साथ सम्बन्ध अन्वय भी नही है। जैसे भूत कालके राम-रावणकी चर्चा करते हैं तो क्या वे मौजूद है ? तो शब्दका पदार्थके साथ कोई सम्बन्ध नही। यदि कहो कि पदार्थका शब्दके साथ सम्बन्ध बनेगा क्योकि शब्द सब जगह व्यापक है, तो इससे तो अति प्रसङ्ग हो जायगा। जो चाहे शब्द जिस चाहे पदार्थका भान करादे, तो पदार्थका शब्दके साथ अविनाभाव नही है अतएव आगम अनुमानमे गर्भित नही होता।

आगम और अनुमानके विषयका पार्थक्य –यहा एक बात और भी देखिये, जो बात अनुमानसे नही जानी जा सकती, वह बात आगममे पहिचान ली जाती है। जो बात आगममे नही जानी जाती है वह बात अनुमानसे

जानी जाती है यद्यपि आगम बहुत व्यापक तत्त्व है। आगम ने ही तो अनुमानका स्वरूप बताया है फिर भी आगमका विषय और है अनुमानका विषय और है। इस कारण अनुमान अलग प्रमाण है और आगम अलग प्रमाण है। आगम हितमार्गमे तो प्रभुके उपदेशको कहते हैं और साधारणरूपसे सभी शब्दोंका नाम आगम हैं। जैसे शब्द बोल दिये – चटाई, चौकी, वर्तन, और इन शब्दोका सुनकर इनका ज्ञान भी हो गया, पर यह यह ज्ञान प्रत्यक्ष है या अनुमान ? तो न प्रत्यक्ष है न अनुमान। यह तो एक आगम है। हितकी दृष्टिसे हम इस व्यवहारकी बातको आगम नही कहते। आगम उसे कहते जो सर्वज्ञदेवका कहा हुआ हो, वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन करे, आत्माको हित मार्गमे ले जाने वाला हो। वे सब उपदेश आगम कहलाते हैं।

आगमका उपकार -भैया ! यदि आगम न होता तो हम आप शान्तिका मार्ग कैसे पा लेते ? शरीर न्यारा है, आत्मा न्यारा है। यह बात हमने मूलमे कहाँसे सीखी ? अनुभव हुआ बादमें। जब हमने उसे पहिचाननेका यत्न किया और उसका प्रयोग किया, अपने आपकी ओर झुके, बाह्य पदार्थोंसे हटे, विकल्पोको हटाया, अपने आपमे विश्राम पाया तो अनुभव जगा कि यह मैं ज्ञानमात्र हूँ, यह बात हमने आगमसे ही तो सीखी। तो शास्त्राभ्यासका अपने लिए बहुत बडा महत्त्व है। ये ससारके मोही जन गप्प सप्पमे ही अपना समय गवा देते हैं, थोडा सा भी समय स्वाध्याय करनेकी ओर रुचिपूर्वक नही लगाते। इस जीवके उद्धार और शान्ति प्राप्त करनेके लिए शास्त्र स्वाध्यायका बडा महत्त्व है।

जीवनमे ज्ञानका महत्त्व—ज्ञानके महत्त्वको जरा थोडा इस दृष्टान्से ही जान लें कि कोई बडा सेठ किसी बडे भारी टोटेमे आ गया। लाखोका नुकसान पड गया अथवा कर्जदार हो गया। ऐसी स्थितिमे उसका दिल कितना घबडाता है और वह कल्पनायें कर करके—हाय ! मेरी पोजीशन खतम हो गई। अब मेरा जीवन चलेगा ही नही। इस चिन्तामे वह घुला जा रहा है। अगले दिन वह अधिक बीमार हो गया। ऐसे उस सेठ का कौन सा इलाज किया जाय कि उसका स्वास्थ्य सुधरे ? किसी भी डाक्टर के इन्जेक्शन व दवायें उसके स्वास्थ्यवर्द्धनमे काम न देंगी। वह अपने ही ज्ञानबलसे काम ले, ऐसा चिन्तन करे कि क्या है इस जगतमे ? ये वैभव आदिक तो सब बाहरी चीजें हैं, ये जहाँ हैं तहाँ ही हैं। इनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नही, ये पदार्थ जब मेरे निकट थे तब भी मैं अपने स्वरूपका अकेला ही था। कही पदार्थमे मिला जुला हुआ न था। अब ये पदार्थ मेरे पास नहीं हैं आज, तब भी मैं वहीका वही हूँ जो पहिले था। अब मेरे पास कुछ नही रहा, मै गरीब हो गया तो क्या हुआ ? यह मनुष्य भव तो धर्मसाधनके लिए है, इसकी सफलता आत्मज्ञानमे हैं और आत्मामे मग्न होनेमें है। सो ये सब साधन मेरे बराबर मौजूद हैं। ये सभी लोग मायारूप हैं, इनमे अपना क्या नाम जाहिर करना है ? मैं तो एक बहुत उत्कृष्ट स्थितिमे हूँ।

धर्मपालन करके सदाके लिए ससारके सकटोमे अपनेको दूर कर लेनेका अवसर मुझे प्राप्त है, कुछ ज्ञान जगे तो वह ज्ञान एक ऐसा बल उत्पन्न करता है कि वह दिलमे ममाता है और अप्रसन्नता दूर करता है तो वह ज्ञान क्या चीज है ? आगम !

शान्तिके मौलिक उपायका आगमसे प्रारम्भ— व्यवहारमे भी, हमारे जीवनमे भी आगम कितना शान्ति देता है कितना सतोष देता है इसका अनुमान कर लीजिये। लोग तो रात दिन कमाईके चक्कर मे लगे रहा करते हैं और अशान्त रहा करते हैं। ये पुरुष कभी एक आध घन्टा आत्माकी बात बताने वाले शास्त्रोका स्वाध्याय करें ज्ञानी पुरुषोका समागम करें, आत्माकी चर्चा सुनें तो मोहका भार उससे मत होगा, कुछ अपने ज्ञानस्वभावकी ओर दृष्टि होगी तो ममता कम होनेसे रागद्वेष कम होनेसे शान्तिकी प्राप्ति होती है चित्तमे प्रसन्नता रहेगी। शास्त्राभ्यास उतना आवश्यक है जितना शरीरके लिए भोजन। दो ही तो चीजें है शरीर और आत्मा। शरीरको भी स्वस्थ रखना है और आत्माको भी रखना है, बल्कि शरीरका स्वस्थ रखना उतना आवश्यक नही जितना कि आत्माका स्वस्थ रखना आवश्यक है। लोग तो इस शरीरके स्वस्थ रहनेका बहुत ध्यान रखते हैं पर आत्माके स्वस्थ होनेका ध्यान नही रखते।

ज्ञानकी महत्ताका परिचय – यह ज्ञान कितना बडा है, कितना गम्भीर है इसको हम तब जान सकते है जब हम ज्ञानमे अपना कदम बढाये। जिसने ज्ञानमे कदम ही नही रखा वह ज्ञानके महत्त्व को नही जान सकता। जैसे अत्यन्त कम समझ वाले लोग थोडासा ज्ञान पाकर यह समझने लगते है कि हमने तो खूब ज्ञान कमाया है। कुछ और ज्ञान सीखा तो समझने लगता कि हाँ यह ज्ञान है। इसपर मेरा अधिकार है। जब उसने बहुत ज्ञान सीख लिया, तो ज्ञानकी बात ज्यों ज्यो बढती जायगी त्यो त्यो मालूम पडेगा कि ओह ! मैने तो अभी कुछ भी ज्ञान नही प्राप्त किया है। अभी तो ज्ञान बहुत बडा है। तो ज्ञानकी महत्ता तब समझमे आती है जब हमारा ज्ञान कुछ बढने लगता है। अल्प ज्ञानीको ज्ञानका महत्त्व नही समझमे आता। ज्ञान बढे तो ज्ञान होता कि ओह ! ज्ञान तो बहुत बडी चीज है। हमने तो कुछ भी ज्ञान नही पाया। ज्ञान इतना महान होता है कि तीनो लोकके जितने पदार्थ है, तीनो कालके जितने जो कुछ परिणमन है वे सबके सब ज्ञानमे आते है और फिर भी ज्ञान इसके लिये तैयार है कि ऐसे लोकालोक यदि अनगिनते और हो तो उन्हे भी ज्ञान जान जाय। इतना है ज्ञानका विषय। अब उसके सामने अपने ज्ञानकी बात देखिये कि हमने कितना ज्ञान पाया है। लगेगाकि न कुछ ज्ञान पाया है। तब ज्ञानका महत्त्व जानता है। इसी प्रकार शास्त्रका जो अभ्यासक रता है और जो कुछ अभ्यास करनेपर उसे शान्तिका अनुभव होता है उसे शास्त्राभ्यासका महत्त्व विदित होता है।

आत्महितमे आगमका महान आधार - आगम एक तृतीय नेत्र है। हम

आनकी दो आँखें तो चमडेकी लगी है, पर इन आँखोसे हम किसी भी भली चीजको नही निरख पाते । जो निरखने है वह भी । हमे फसानेका ही कारण बनती है । कुछ सम्बन्ध होगा, स्नेह होगा, मोह होगा । पर आगमका नेत्र हमे ऐसे तत्त्वका दर्शन कराता है कि जिस तत्त्वके दर्शनके कारण हम ससारके सङ्कटोको सदाके लिये दूर कर सकते है। ज्यो ही जाना कि यह मैं आत्मा पूर्ण ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ । उसमे किसी प्रकारकी कोई कमी ही नही है, परिपूर्ण हूँ । मेरा किसी भी अन्य पदार्थसे कुछ वास्ता ही नही है । प्रत्येक पदार्थ है । मै भी अपने आपमे हूँ, अपने आपके कारण हूँ । अपने गुण पर्याय रूप हूँ । हूँ, बस इसका अन्यसे क्या सम्बन्ध है । ज्यों ही यह आत्मस्वरूपकी बात विदित होती है त्यो ही अनेक सङ्कट हमारे समाप्त हो जाते है । ये जो आपत्तिया साथ लगी हैं शरीर भी इस आत्माके साथ चिपका चिपका फिर रहा है ये सब इस आत्मासे दूर हो जाते है । प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि इस शरीरसे आत्माको अनुमान करना है तो अभीसे ही शरीरसे आत्मा जिस प्रकार न्यारा है उस प्रकार इस अपने आपको न्यारा देखें तो शरीरसे यह आत्मा छूट जायगा । ये सब प्रयत्न करना हमने ज्ञानसे ही तो सीखा है । इस आगमका अनुमानमे अन्तर्भाव नही होता । आगम भी एक मुख्य प्रमाण है ।

उपमानकी प्रमाणान्तरता—प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसे दो ही ज्ञान मानने वाले क्षणिकवादियोके प्रति कहा जा रहा है कि उपमानका अर्थ है कोई चीज दिखी सामने और उस चीजको निरखकर किसी दूसरी वस्तुका स्मरण हो आया जो उसके समान है फिर दोनो पदार्थोंमें समानताका जो बोध होता है उसे उपमान कहते हैं । जैसे कोई पुरुष वनमे गया या कही रास्तेमेसे गुजर रहा था कि उसने रोझ देखा, रोझके देखते ही यह उपमान बन गया कि यह रोझ गायके समान है । रोझके अङ्ग पैर पूछ, गर्दन, तथा मुख आदि गायके अङ्गकी ही तरह हैं, उसे देखकर उसको गाय का स्मरण हो आया । बहुतसे अङ्गोके मिलनेकी सदृशता उपाधिके कारण, तो इसे उपमान कहते हैं । यह मनुष्य उस मनुष्यके सदृश है । कभी गुणोमे भी सदृशता लगा ली जाती है । यह पुरुष उसकी तरह ज्ञानी है । यद्यपि उस पुरुषका उस दूसरे पुरुषसे आकार, प्रकार, रङ्ग कुछ भी नही मिलता तो भी गुणोकी सदृशताका बोध होता है । ये सब उपमान कहलाते हैं । उपमानको जैन शासनमे यद्यपि कोई जुदा प्रमाण नही माना, उसका प्रत्यभिज्ञानमे अन्तर्भाव होता है किन्तु प्रसङ्ग तो यह है कि प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाणहैं इस अभिप्रायका खण्डन करके उपमान प्रमाणको सिद्ध कर रहे है । प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसी जो व्यवस्था क्षणिकवादियोने की है वह अयुक्त रही ।

प्रमाणान्तरोका निर्देश—तत्त्वार्थसूत्रमे पढा करते है लोग "मति स्मृतिः सज्ञाचिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्" उसका अर्थ है मति मायने साव्यवहारिक

प्रत्यक्ष, स्मृति मायने स्मरण, सज्ञाका अर्थ है प्रत्यभिज्ञान, चिन्ताके मायने है तर्क अभिनिवाध के मायने हैं अनुमान अर्थात् साव्यवहारिक प्रत्यक्ष स्मरण, तक, प्रत्यभिज्ञान और अनुमान ये सब मतिज्ञान है, तो उसमे उपमान तो नही है । प्रत्यभिज्ञान आया । उपमानका जो विषय है वह दो पदार्थोंमे किसी धर्मकी एकताका स्थापन करता है, यह ही प्रत्यभिज्ञानमे है । सामने किसी वस्तुको देखकर किसी दूसरेका स्मरण करके सादृश्य बताना सादृश्यप्रत्यभिज्ञान है । तो किसी वस्तुकी विलक्षणता बताना वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान है । जैसे किसीने यह ज्ञान किया कि यह रोझ गायकी तरह है, तो क्या कोई ऐसा ज्ञान नही कर सकता कि यह रोझ भैंससे विपरीत है ? यदि उपमान प्रमाण है तो फिर वैलक्षण्य आदि ज्ञानको भी अलग प्रमाण मानना चाहिए, किन्तु प्रत्यभिज्ञान माननेपर सब घटित हो जाता है । किसी मनुष्यको निरख कर आप यह सोचते कि यह वही मनुष्य है जिसे हमने दो वर्ष पूर्व कलकत्तामे देखा था, तो यह एकत्व प्रत्यभिज्ञान हुआ । एक मनुष्यमे वर्तमान प्रत्यक्षसे उस ही मनुष्यके रूपका स्मरण करके उसमे एकता बने सो एकत्व प्रत्यभिज्ञान है । यह सादृश्य प्रत्यभिज्ञान है, जिसे उपमान कहा जा रहा है । यद्यपि उपमानका अन्तर्भाव प्रत्यभिज्ञानमे है, किन्तु यहा इसमे अन्तर्भूतता बतानेका प्रयोजन नही है किन्तु प्रत्यक्ष और अनुमान से अलग कोई प्रमाण हुआ करता है, यह बताया जा रहा है ।

उपमान प्रमाणका रूप – उपमान प्रमाण कैसे होता है ? किस तरह होता है ? इसे सुनिये ! जैसे देखने वाले ने अभी तक गाय तो देखी थी पर रोझ न देखा था, और न यह वाक्य भी सुना था कि रोझ गायकी तरह होता है ! ऐसा कोई मनुष्य बनसे गुजरते हुए रोझको देखले तो उस रोझके देखनेसे उसमे गायकी सदृशता का ज्ञान बना, ओह ! इसकी तरह गाय है या गायकी तरह यह रोझ है तो उसके विषयमे सदृशता सहित परोक्ष गाय आयी अथवा गायमे रहने वाली समताका बोध हुआ तो यह वास्तविक ज्ञान बना इसका अनुमानमे अन्तर्भाव नही होता । यह उपमान अनुमानसे अलग प्रमाण है ।

उपमान प्रमाणका विषय—यह ज्ञानकी चर्चा चल रही है । हम आपका जो ज्ञान हुआ करता है वह ज्ञान किन किन ढङ्गोमे हुआ करता है उसका यह विश्लेषण है । होते है ना, ऐसे बहुतसे ज्ञान । यह प्रतिमा तो उस नगरके मदिरकी प्रतिमाकी तरह है, तो ऐसा जो सादृश्य वाला ज्ञान हुआ वह ज्ञान कुछ नई बातको बतला रहा है । यद्यपि सामने जो देखा उसका ज्ञान हुआ, जिसका ख्याल आया उसका ज्ञान हुआ पर इतने तक ही बात नही रही । उन दोनोका सदृशतासे जो ज्ञान हो रहा वह तो नया ज्ञान है । कोई कहे कि गाय तो हमने पहिले ही देख ली थी, कौन सी नई बात जानी ? अरे गायका ज्ञान नही किया जा रहा किन्तु गायके शरीरके अङ्गोमे व रोझके शरीरके अङ्गोमे समानता पायी जा रही है । उस समानताका बोध हो रहा

है, तो वह प्रमाणभूत ज्ञान है। उस समानताका कुछ कुछ अलग ज्ञान है। प्रत्यक्षसे रोझ दीखा, पर रोझके ज्ञानकी बात नहीं कह रहे यहाँ। प्रत्यक्ष ज्ञान है जो समानताका ज्ञान हो रहा है वह प्रत्यक्षसे अलग है कोई ज्ञान। अथवा गायका स्मरण किया वह तो सामने ही नहीं है, वह तो परोक्षभूत है सो उस गायके स्मरणका भी यहाँ ज्ञान नहीं बनाया जा रहा किन्तु सदृशताका ज्ञान कराया जा रहा है। जिस सदृशताका ज्ञान गायके ज्ञानमे अलग है और रोझके ज्ञानमे रोझ जाना गया गायके ज्ञानमे गाय जाना गया परन्तु इन दोनोंमे जो समानता है, वह समानता न तो प्रत्यक्षमे जानी गयी, न स्मरणमे जानी गयी किन्तु इसका ज्ञान कराने वाला एक अलग प्रमाण है, उसे कहते हैं उपमान।

उपमान प्रमाणका प्रत्यक्ष और अनुमानमें अनन्तर्भाव - यह उपमान प्रमाण प्रत्यक्षमे तो गर्भित होता नहीं, क्योंकि उपमान परोक्षको विषय करता है और उपमानमे सविकल्पता आ रही है किन्तु प्रत्यक्ष एक तो परोक्षको विषय नहीं करता और दूसरे प्रत्यक्षमे विकल्प नहीं है। निर्विकल्प ज्ञान है तो उपमानका प्रत्यक्षमे अन्तर्भाव नहीं। अनुमानके लिये चाहिए हेतु तो सदृशताका ज्ञान करानेके लिये हेतु क्या दिया जाय ? सदृशता गायमे रहने वाली है या रोझमे ? गायमे रहने वाली है तो रोझमे क्या सिद्धि हो ? रोझमे रहने वाली है तो गायका सम्बन्ध क्या है ? तो सदृशताका जो ज्ञान होता है वह ज्ञान एक अलग ज्ञान है। इसे उपमान कहते हैं और वह एक अन्य प्रमाण है। इसमे प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण हों ऐसी बात नहीं है आगम भी प्रमाण है। जैसे यह कल सिद्ध किया था इसी प्रकार आज यह सिद्ध किया जा रहा है कि उपमान भी प्रमाण है।

विषयरतिके कारण ज्ञानचर्चाकी अप्रीति -अपने आपके ज्ञानकी कलावोकी बात अपने आपको क्यों भाररूप जचती है ? इसका कारण यह है कि वासनामे यह बात बसी हुई है कि हमारा हित तो बाहरी पदार्थसे है, वैभव बढे, इज्जत बढे, पद बढे, उसमे मेरा लाभ है। यों बाह्य पदार्थोंमे हित मान रखा है इस कारणसे वही हमारी रुचि लगी रहती है तो जैसे किसी पुरुषको किसी बातकी चिन्ता हो जाय तो उसे कितनी ही बातें कोई कहे वह चित्तमे नहीं जमती इसी प्रकार मोह अवस्थामे बाह्य पदार्थ विषयोंके साधन चित्तमे समाते हुए हैं तो अपने आपके ज्ञानकी चर्चा सुहाया नहीं करती। एक बात। दूसरी बात यह है कि कदाचित् बाह्य पदार्थोंमे उपेक्षा भी हो जाय, विरक्ति भी जग जाय तो अपने इस ज्ञानस्वरूपका अभ्यास न होनेसे अपने ज्ञानकी चर्चा भाररूप हो जाती है किन्तु अपने ज्ञानके अवलोकनमे जो आनन्द बसा हुआ है आनन्द तो वही है। बाहरमे जो मौज मानी जाती है वह कोई मौज नहीं है।

विषयसम्पर्कमे हानि ही हानि—जैसे लोग खानेका बडा मौज मानते तो

भी प्रकारका कोई ज्ञान हो, सब ज्ञान इन दो भेदोमे आ जाते। तत्वार्थसूत्र ग्रन्थ एक ज्ञान विज्ञानका बडा मौतिक ग्रन्थ है। छोटे छोटे सूत्रोंमें समस्त सिद्धान्त भर देनेका प्रयास किया है आचार्य उमा स्वामीने। सब ओरकी बात इस तत्वार्थ सूत्रसे जान ली जाती है। प्रथम अध्यायमे ज्ञानका ही वर्णन किया है क्योंकि समस्त धर्मके उपक्रमो का मूल कारण तो ज्ञान है। ज्ञान है तो धर्मपालन बनेगा। ज्ञान नही है तो धर्मपालन क्या बने ? तो उस ज्ञानकी चर्चा सर्व ः थम की गई है और न्याय शास्त्रमे तो सारा वर्णन ज्ञानके बलपर ही होगा। अभी तो एक तरहसे समझिये न्याय शास्त्रमे जो जो वस्तुस्वरूप बताया जाता है उस सबकी एक भूमिका बन रही है। हम किस ज्ञानके द्वारा किस प्रकार वस्तु स्वरूप बता सकेंगे, दूसरोके बताये हुए विपरीत वस्तुस्वरूप का हम ि राकरण कैसे कर सकेंगे उस ज्ञानकी यह बात करायी जा रही है कि, कितने प्रकारसे होता है ज्ञान और कौन कौन ज्ञान प्रमाण होते हैं।

उपमानके विषयका प्रत्यक्ष और अनुमानके विषयसे पार्थक्य— यहा उपमान भी प्रमाण कहा जा रहा है क्योंकि न वह प्रत्यक्ष है और न अनुमान। जो लोग स्मरण को भी प्रमाण मानते हैं, जैन सिद्धान्त भी मानता है तो उपमान स्मरण भी नही है, स्मरणमे भी उपमानका अन्तर्भाव नही है। सोच लीजिये जहाँ यह समझा यह रोझ गायके समान है ता इस ज्ञानने क्या मुख्यतासे रोझको जाना ? अथवा क्या मुख्यतासे गायका स्मरण किया। ये तो हुए ही दोनो ज्ञान, पर मुख्यता तो समानता की है। जो यह बात बतायी जा रही है कि यह चीज अमुक पदार्थकी तरह है तो तरहकी मुख्यता है। दोनोकी मुख्यता नही है, उन दोनोकी मुख्यता नही है, उन दोनो मे उपलब्ध जो समानता है उसका विषय है उपमानका विषय। तो यह समानता अनुमानसे ि द्ध नही होती, क्योंकि अनुमानसे सिद्ध करेंगे तो गायमे रहने वाली सदृशताकी हेतुसे करेंगे या रोझमे रहने वाली सदृशताके हेतुसे करेंगे। जब गायके सादृश्यका हेतु देंगे तो उस समय उस सदृशताके रूपसे रोझ भी है यह ग्रहण नही होता जब र झकी सदृशताका साधन लेंगे तो सादृश्यसधर्मसहित गाय है उसका उपमान बन ही नही सकता। अनुमानका कोई ढग ही नही है। सादृश्य हेतुका ढङ्ग बनाया तो प्रतिज्ञाका एक देश ही हेतु बन जायगा। इस दोषसे उपमानका अन्तर्भाव अनुमानमे भी नही होता है और उपमान होता ही है। यह आदमी उस आदमीकी तरह है, सकी सक्ल उसकी तरह है।

साहित्यमे उपमानप्रयोगकी प्रचुरता—उपमानमे तो सारा साहित्य भरा हुआ है। जहाँ प्रथमानुयोगमे कथावोका वर्णन है जहाँ उपन्यासोमे कहानियोका वर्णन है तो उपमानका कितना प्रयोग किया जाता हैं। उन अलङ्कारोमे कुछ अत्युक्ति करके उपमानका प्रयोग किया गया, मगर कथा कहानियोंमे उपमानका बडा प्रयोग है। जैसे कहते है कि इसका मुख चन्द्रमाकी तरह है। देखिये साहित्यमे इसको बडा प्रशसा

की दृष्टिसे देखा जा रहा है परन्तु तथ्यकी बात देखे तो कितनी हँसीकी बात है यह मुख चन्द्रमा की तरह है। जिस मुखमे लार थूक, कफ, कीचड, नाक आदि सारी बाते बसी हुई हैं ऐसे मुखको चन्द्रम की तरह बताया। इन कवियोने अलङ्कारोमे तो एसी बात बतादी कि जिससे बहुतसे लोगोका अकल्याण हो सकता। लोग तो वैसे ही मोही थे, मलिन थे, विषयोमे आसक्त थे, रागी-द्वेषी थे, उन्हे उन अलङ्कारोसे और भी बढावा मिला तो वे नुकसानमे ही रहे। बडे-बडे ग्रन्थोमे भी ऐसे अलङ्कार बने हुए हैं।

आर्ष पुराणोमे उपमालकारोका प्रयोजन - निर्ग्रन्थ आचार्योकी रचनामे भी, महापुराणोमे भी ऐसे अलङ्कारोकी बहुलता पायी जाती है। तो उनका प्रयोजन क्या था कि जो राग बढाने वाली चीजें हैं, जिनसे लोगोंकी बडी प्रीति रहा करती है ऐसी स्त्री और भी वैभव, उनकी खूब प्रशसा की जाय और जो उनके अधिकारी हैं चक्रवर्ती जैसे बड़े स्वामी हैं उनका खूब वैभव बताया जाय और प्रशसा करके वैभव बताकर फिर एकदम वे आचार्यदेव ज्ञान और वैराग्यकी बात दिखाते हैं तो ज्ञान और वैराग्यका महत्त्व बढ जाता है। जैसे चक्रवर्तीके वैभवका खूब वर्णन किया जाता है, ऐसी रानिया थी, ऐसा साम्राज्य था और फिर जब यह वर्णन आयगा कि चक्रवर्तीने इस समस्त वैभवका परित्याग कर दिया तो उसके त्यागका बडा महत्व जाना जायगा अहो! ऐसी रानिया, ऐसा वैभव, ऐसे राज्यका परित्याग कर दिया। तो जिन चीजो का परित्याग किया जाता है उन चीजोका बहुत बहुत वर्णन कर देनेसे उसके त्यागकी महिमा बढ जाती है।

वैभवपरित्यागका बडप्पन—अभी भी यही देख लो! कोई धनिक, सेठ, विद्वान्, कीर्तिवान् पुरुष सब कुछ त्याग करके साधु बने और एक महागरीब पुरुष जो रसोइया हो, गाडीवान हो, दुखी हो, ऐसा पुरुष साधुजनोके आरामको देखकर साधु बन जाय या कुछ ज्ञान वैराग्यकी बात आ जाय सो साधु हो जाय तो इन दोनोमे उस धनिक पुरुषको अधिक महत्त्व दिया जाता है। चाहे वह गरीब पुरुष कुछ ज्ञान भी प्राप्त कर चुका हो मगर लोग उस धनिक पडित यशस्वी पुरुषका अधिक महत्व देते हैं अहो! इन्होने इतना सब कुछ होते भी सब कुछ त्याग दिया, साधु हो गये। धन्य है इनको! तो वैभवका, परिवारका, स्त्रीपुत्रादिका खूब वर्णन किया जाय खूब प्रशसा की जाय और फिर उसके त्यागकी बात कही जाय तो फिर बादमे त्यागकी बात कहने से कवियोंने उपकार भी किया। इसे कहते है उपमालङ्कार। उपमा बताना। उपमालङ्कार तो अलंकृति है, वास्तवमे तो उपमान प्रमाण है।

उपमान प्रमाणकी सिद्धिका उपसहार—एक पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ समानता बताना यह एक अलग प्रमाण है। जैसे दृष्टान्तके अनुसार सोचिये जब कोई पुरुष रोभको देखकर गायका स्मरण करता है और अब दोनोंके अङ्गकी तुलना

करके उसकी समानताका बोध करता है तो यह तो उस रोझके ज्ञानमें अलग बात है ना। गायके ज्ञानमें अलग बात है ना। यद्यपि सदृशताका आधार वे दोनों हैं। दोनों आधार हैं मगर दोनोंका ज्ञान उपमानमें नहीं किया जा रहा है किन्तु दोनोंमें रहने वाली सदृशताका उपमान किया जा रहा है। यह सदृशता न प्रत्यक्षसे जानी जाती और न अनुमानसे। मीमांसक मतके अनुसार उपमान अलग प्रमाण है और जैन शासनके अनुसार यह एक प्रत्यभिज्ञान है।

उपमान प्रमाणका प्रत्यभिज्ञानमें अन्तर्भाव यों तो हम सूक्ष्म दृष्टिसे देखें तो इन भेदोंसे भी हम अलग अलग मान सकते हैं। प्रत्यभिज्ञानके जो भेद हैं एकत्वप्रत्यभिज्ञान, सादृश्यप्रत्यभिज्ञान, वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान और प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान। इन सबको जुदा जुदा भी कह सकते हैं क्योंकि विषयमें कुछ थोड़ा अन्तर है। पद्धतिमें अन्तर नहीं है। पहिला एकत्वप्रत्यभिज्ञान माना गया है। यह वही पुरुष है जिसे कल देखा था तो कलके देखे हुएमें और आजके देखे हुएमें एकता लगाया गया ना। यह वही है यह है एकत्वप्रत्यभिज्ञान। यह रोझ गायके समान है इसमें सादृश्यपर जोर दिया है। यह है सादृश्यप्रत्यभिज्ञान। यह रोझ भैंसासे बिल्कुल जुदा है यह है वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान। इनका मकान उनके मकानसे दूर है, इनका घर अमुकके घरसे निकट है, इस प्रकार दूरीका निकटका और और भी जो ज्ञान किया जाता है। यह है प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान। तुम्हारी घड़ी इनकी घड़ीसे अधिक मूल्यवान है यह प्रत्यभिज्ञान ही तो हुआ। यहां प्रसङ्गमें बताया जा रहा है कि उपमान भी अलग प्रमाण है। इसमें प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही हैं, यह हठ करना ठीक नहीं है। उपमानका प्रत्यभिज्ञानमें अन्तर्भाव है सो प्रत्यभिज्ञान प्रमाणान्तर हो गया। इस उपमान प्रमाणमें हम ऐसी घटना आत्महितार्थ बनायें कि ज्ञानियोंमें क्या बात पायी जाती है, उन गुणोंकी हम सदृशता अपनेमें लायें तो यह हमारे लिये बड़े हितकी बात है।

प्रत्यक्ष और परोक्षमें समस्त ज्ञानोंका अन्तर्भाव आत्मा चेतन वस्तु है। चेतनमें प्रतिभास हुआ करता है और प्रतिभास दो प्रकारका है सामान्य प्रतिभास और विशेष प्रतिभास। सामान्य प्रतिभासका नाम दर्शन है विशेष प्रतिभासका नाम ज्ञान है। विशेष प्रतिभाससे लोक व्यवस्था बनायी जाती है इसलिये विशेष प्रतिभास प्रमाण की दृष्टिमें है। विशेष प्रतिभास कहो, ज्ञान कहो, दोनोंका एक ही भाव है। ज्ञान प्रमाण है। तो वह ज्ञान कितने प्रकारका है, प्रमाण कितने प्रकारका है उस प्रसङ्गमें सूत्ररूपमें प्रमाणको दो प्रकारका बताया गया है— प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष और परोक्षके कहनेमें समस्त प्रमाण गर्भित हो जाते हैं। जितने भी ज्ञान हैं वे या तो इन्द्रियकी अपेक्षा न रखकर केवल आत्म शक्तिसे उत्पन्न हुए हैं अथवा इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा रखकर उत्पन्न हुए हैं और इस आधारपर जो ज्ञान इन्द्रिय सापेक्ष है वह परोक्षमें आ गया, और जो ज्ञान केवल आत्म शक्तिसे होते वे प्रत्यक्षमें आ गए।

ज्ञान तो हुआ अभावसे । तो जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिससे हमने जाना कि यह चीज है, अनुमान प्रमाण है जिससे हमने जाना धुवा देखकर कि यहा अग्नि है आगम प्रमाण है, जिससे हमने शब्दोको सुनकर जाना कि अमुक वस्तु कही जा रही है। अर्थापत्ति प्रमाण है जिससे कि हमने शक्तिका परिज्ञान किया, उपमान भी प्रमाण है जिससे हमने किसी रोझको देखकर गायकी सदृशताका ज्ञान किया । किसी भी वस्तुको निरखकर अन्य वस्तुकी समानताका बोध होता है अनुमानसे । तो जैसे ये सब प्रमाण हैं इसी प्रकार "नही है यह वस्तु" ऐसा ज्ञान हो तो वह भी प्रमाण है ।

अभाव अप्रत्यक्ष व अनुमानका अविषय—अभावका ज्ञान प्रत्यक्षसे नही होता, क्योंकि प्रत्यक्ष तो अभावका विषय नही करता । प्रत्यक्षसे इन्द्रियसे हम पदार्थ का सद्भाव जानेंगे, अभाव नही जान सकते । इन्द्रिया तो सद्भाव अशको ही ग्रहण करेगी अभाव अशको ग्रहण न करेगी । जैसे इस हालमे चटाई, चौकी, दरी, घडी, कमण्डल आदि जो जो चीजे हैं वे तो हमे इन्द्रियोसे ज्ञात हो रही है और कुर्सी टेबुल आदि नही है तो उनका ज्ञान इन्द्रियोसे तो नही हो रहा, मनसे हो रहा है । तो जैसे इन पदार्थोंका सद्भाव ज्ञान होता है तो प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण है इसी प्रकार कोई चीजका अभाव भी जिसे विदित हो रहा तो अभावको जानने वाला ज्ञान भी प्रमाण है । वह प्रमाण एक स्वतन्त्र प्रमाण है । अभाव प्रमाणका प्रत्यक्षमे अन्तर्भाव नही है क्योकि प्रत्यक्षका विषय अस्तित्व है और अभावका विषय नास्तित्व है । अभाव प्रमाणका विषय जो अभाव है वह अनुमानसे भी नही जाना जाता क्योकि अनुमानकी प्रवृत्ति वहा होती है जहा हेतु हो । जैसे धुवा देखकर अग्निका ज्ञान करना तो इसी प्रकार यहा अनुमान क्या है, कोई हेतु ही नही । इससे अभाव प्रमाण एक स्वतन्त्र प्रमाण है, यह हठ करना कि केवल प्रत्यक्ष व अनुमान ये ही प्रमाण हैं, यह हठ युक्तिसगत नही है ।

सदृश व असदृशके पार्थक्यके विषयमे शका समाधान अब क्षणक्षयवादी थोडी यहा शङ्का कर रहा है कि अभाव प्रमाणने विषय किया अभावको, नही है इस बातको, तो अभाव तो कोई विषय ही नही है, अभाव क्या चीज है, एक मनकी कल्पना करली । मनकी कल्पना तो जैसी चाहे कर सकते है । अभाव नामक कोई चीज तो नही है, वह विषयभूत अभाव कोई सत्ता ही नही रख रहा, फिर अभाव प्रमाण कहना यह तो व्यर्थकी बात है । उत्तरमे मीमासक कहते है कि अभाव प्रमाण व्यर्थ नही है । कारणादिकके विभागसे अभावका व्यवहार बराबर सब लोग कर रहे है । यदि अभाव प्रमाण न रहे तो लोक प्रतीति जो व्यवहार है वह सब खतम हो जायगा । जैसे दूध है अभी, यह दही नही है । अब यह दही बन गया, अब यह दूध नही रहा । तो जैसे है है, का हमे बोध होना, इसी प्रकार न न का बोध भी तो साथ साथमे चल रहा है । तो न का जो व्यवहार चल रहा है वह यदि न रह सके तो फिर

प्राप्ति और अहितके परिहारका निर्णय पा लिया। उस ज्ञानके ये दो भेद प्रत्यक्ष और परोक्षके रूपसे कह जा रहे हैं जिसमे सभी ज्ञान गर्भित हो जाते हैं। केवल प्रत्यक्ष और अनुमान इस प्रकार दो प्रमाणोकी ही मान्यता ठीक नही। अत प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण मानने वाले क्षणक्षयवादियोके प्रति कहा जा रहा है कि केवल ये दो ही प्रमाण नही हैं प्रत्यक्ष और अनुमान, किन्तु आगम भी प्रमाण है, उपमान भी प्रमाण है और अर्थापत्ति भी प्रमाण है। अब इसके बाद यह कहा जा रहा है कि इसके अतिरिक्त अभाव प्रमाण भी प्रमाण है। अभाव प्रमाण यद्यपि जैन सिद्धान्तमे कोई अलग नही है, किन्तु किसी वस्तुके सद्भावरूप अभाव हुआ करता है। इस कारण जिस वस्तुके सद्भावरूप अभाव है उसको ग्रहण करने वाले प्रमाणसे ही उस का ज्ञान बताया गया है। यहाँ मीमासकके मतानुसार अभाव प्रमाणकी सिद्धि की जा रही है और प्रसङ्गमे जो समस्या प्रत्यक्ष और अनुमानसे अधिक प्रमाणोके सिद्ध करने की है उस प्रयोजनके लिये अभाव प्रमाणकी सिद्धि की जा रही है।

अभाव प्रमाणकी ज्ञानविधि—जैसे हम आखोसे कुछ चीज देखते हैं, यह चौकी है यह घडी है तो यह प्रमाण हुआ कि नही ? प्रत्यक्ष प्रमाण है। और घडी न हुई वहाँ तो भी पुरुष तो यह जान लेता है ना कि घडीका यहाँ अभाव है। घडी नही है तो घडीका न होना इसको जिस ज्ञानने जाना वह ज्ञान भी प्रमाण होता है कि नही ? वह भी प्रमाण है। तो जैसे वस्तुका सद्भाव है, जानते हैं तो वह प्रमाण है इसी प्रकार वस्तुका अभाव प्रमाण अभावको किस प्रकार जानता है ? जिस चीज का अभाव बताना है, जहाँ अभाव बताना हैं उस आधार वस्तुका ग्रहण होता है और जिसका अभाव बताना है उसका स्मरण होता है, तब मनसे अभावका ज्ञान होता है। जैसे किसीने कहा कि उस कमरेसे बाल्टी उठा लावो, वहाँ बाल्टी थी ही नही, तो उस पुरुषने बाल्टीका अभाव जाना तो क्या क्या बातें उस समय हुई कि एक तो वह सारा कमरा ज्ञानमे आ गया जहाँ बाल्टी परखते थे। तो एक तो आधार भूत जो वह कमरा है वह सारा ज्ञानमें आया और बाल्टीका स्मरण भी किया। हम किसका अभाव जानना चाहते उस प्रतियोगीका स्मरण भी किया तो उसके अभावमें इन्द्रियोने तो काम दिया नही। यहाँ बाल्टी नही है ऐसा जो नास्तित्वका ज्ञान है इस मे इन्द्रियाँ काम नही करती। आखोसे अभाव न दीखेगा। आँखोसे तो चीज दिखेगी। इन्द्रियोसे तो कोई वस्तु ज्ञात होगी, अभाव ज्ञात न होगा। तो अभाव जो ज्ञात होता है वह मनसे ज्ञात होता है वह मानसिक ज्ञान है, इसी प्रकार किसी जगहमे बाल्टी आदिकका अभाव जानना इसका नाम अभाव प्रमाण है।

प्रत्यक्षादिककी तरह अभावप्रमाणका भी विधान—जहापर प्रत्यक्षादिक प्रमाणकी उत्पत्ति नहीं होती वहा प्रमाणका अभाव कहदो एक तरहसे, लेकिन वह अभाव स्वय एक प्रमाण है। उस अभावका ज्ञान तो हुआ। यह चीज नही है, इसका

करता अर्थात् अन्य इच्छा तो मोक्षमे प्रबल बाधक है ही। परिवार, मित्र, पोजीशन, विषयभोग उपभोग इन सबकी इच्छा तो मोक्षमे प्रबल बाधक है मोक्षसे उल्टी दिशामे ले जाता है, ससार बन्धनमे भटकता है। यह तो ठीक है ही किन्तु इच्छामात्र मोक्षमे रुकावट करती है। यह बलग्नेके लिये कहा है कि जो पुरुष मोक्षकी भी इच्छा करता है उसके तो चूँकि इच्छाका आवरण है ना, रागभाव है ना, तो उस रागभावके कारण वह मोक्षको प्राप्त नही करता। यद्यपि पद्धति यह ठीक है कि पहिले हम मोक्षकी इच्छा बनायें, मुझे मुक्त होना है और इस इच्छासे प्रेरित होकर हम अशुभ कार्योंमे बचते हैं, शुभ कार्योंमे लगते हैं, मोक्षके उपायमे भी हम चलनेका प्रयत्न रखते है, ठीक है, किन्तु कुछ समय बाद, कुछ मोक्ष मार्गमे अपना कदम चलानेके बाद यह इच्छा नही रहती और वहाँ केवल सहज ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मतत्त्वका अनुभव रहना है तब उसे मोक्ष होता है। तो इच्छा मात्र हमारे विकासमे बाधक है, और की इच्छा तो बाधक है ही, पर जाननेकी भी इच्छा रखे तो उससे कही ज्ञान बढ नही जाता। पूर्ण ज्ञान नही बन जाता।

योग्यतानुसार विकास — जैसे किसीके पास १ लाख रुपयेकी पूँजी है और हजार रुपयेके कामकी इच्छा करे तो वह कर सकता है क्योकि उसके पास पूँजी बडी है, और जिसके पास पूँजी हजार रुपयेकी ही है वह लाख रुपयेका काम करना चाहे तो नही कर सकता है, इसी तरह हम मनुष्योके पास ज्ञानकी पूँजी तो ज्यादा है। जब हम श्रम करके कुछ जानना चाहते हैं तो जान जाते हैं, पर ऐसा नही हो सकता कि ज्ञानावरणका क्षयोपशम हमारे न हो, हमारी वर्तमान पर्यायमे बडे ज्ञानकी योग्यता तो न हो और हम श्रम करके साधना करके बडा ज्ञान प्राप्त करले। यह नही हो सकता।

सर्वज्ञानप्राप्तिका मार्ग — समस्त ज्ञान प्राप करनेका उपाय तो इच्छामात्र को टालकर, इच्छारहित, विकाररहित सनातन ज्ञानानन्दस्वरूपमय आत्मतत्त्वका ध्यान रखना, वहाँ ही विश्राम करना यह उपाय पूर्णज्ञान प्राप्त करनेका है। जैसे थोडे थोडे गेहूँ डालकर बोरा भर लिया जाता है इस तरहसे थोडा थोडा जानकर पूर्णज्ञान नही प्राप्त किया जा सकता। पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेके लिये तो विश्रामसे अपने आत्म-गृहमे ही बैठना है, सर्वप्रकारका विकल्प त्यागना है। इस ही पद्धतिसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है। तो यो प्रमाण बहुत है, उन सब प्रमाणोका सग्रह करनेकी पद्धति प्रत्यक्ष और परोक्ष भेद करने वाली पद्धति है। अन्य प्रकारसे दो प्रमाण माननेपर समस्त ज्ञानोका अन्तर्भाव नही होता। इस प्रकार ज्ञानके भेदोका वर्णन किया गया है।।

अभाव प्रमाणकी सिद्धिकी प्रस्तावना — प्रमाण कहते हैं उस ज्ञानको जो ज्ञान हितकी प्राप्ति कराये और अहितका परिहार करे। ऐसा ज्ञान निर्णयात्मक ज्ञान हुआ करता है। जहा वस्तुका यथार्थ निर्णय हुआ कि निर्णय करने वालेने हितकी

आत्मशक्तिने ही स्पष्ट है। कोई पुरुष इन्द्रिय और मनके सहारेसे, युक्तियोंके सहारेसे समस्त पदार्थोंको जान नहीं सकता। जो समस्त पदार्थोंके जाननेका ख्याल छोड़ दें। सारी इच्छावोंका अभाव करदें और केवल आत्मतत्त्व ही जिसके उपयोगमें रहे ऐसा पुरुष ही समस्त विश्वको जाननेकी कला उत्पन्न कर लेता है। जानना परिश्रम साध्य बात नहीं है कि हम जितना रट लेंगे, जितना हम पढ़ लेंगे उतना हमारा ज्ञान बढ़ेगा। यद्यपि दिखता है ऐसा कि जब अभ्यास करते हैं तो ज्ञान बढ़ता है लेकिन मूलमें ज्ञान योग्यता है, ज्ञानावरणका क्षयोपशम है, वह आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है और उसको एक अवसर मिला है तो वह ज्ञान विकास करता है और चूंकि वह बन्धनकी हालतमें है इसलिए भी कुछ पढ़ने लिखनेका जरासा निमित्त पाकर अपना ज्ञानविकास कर लेता है तो परिश्रम भी वहाँ काम करता है जहाँ योग्यता हो।

ज्ञाननिष्पत्तिका आन्तरिक हेतु ज्ञानशक्तिके विकासका जहाँ सामर्थ्य प्रकट हुआ है वहाँ ही यह अध्ययन उसमें सहायक होता है। एक स्कूलमें दशों बच्चे पढ़ रहे हैं मास्टर उन सबको एक समान बता रहा है, पर उनमेंसे कोई एक बालक बहुत ज्यादा समझ जाता है। और बड़ी धारणा कर लेता है, और कोई बालक समझाया जानेपर भी कुछ बात समझमें नहीं आती तो उनके अन्तरङ्गमें तो कुछ अन्तर है, जिसमें ज्ञान विकासकी योग्यता है उसको साधारण भी निमित्त मिले तो वह अपने ज्ञानका विकास कर लेता है। आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है, और फिर पूर्ण ज्ञान उत्पन्न करनेकी कला इससे विलक्षण है, एक एक चीजको जान जान कर हम सबको जान जायें पूर्णज्ञानी बन जायें यह बात नहीं हो सकती किन्तु जाननेका विकल्प तोड़कर केवल अपने आत्मामें निर्विकल्प निराकुल होकर विश्राममें रहनेका आन्तरिक तपश्चरण बने तो विश्वका ज्ञान हो सकता है। तो केवलज्ञान भी आत्मीय शक्तिमें प्रकट होता है।

मतिश्रुतज्ञानकी परोक्षरूपता—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान ये परोक्षज्ञान हैं ये येदोनों ही ज्ञान इन्द्रिय और मनका निमित्त पाकर उत्पन्न होते हैं हाँ परोक्षज्ञान में जो एक साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है वह कुछ विशद जानता है इसलिये उसे उपचारसे प्रत्यक्ष कहा गया है। तो ज्ञान अनेक हैं पर उन सब ज्ञानोंके जो उत्पन्न होनेकी पद्धति है उस पद्धतिकी दृष्टिसे दो प्रकारका प्रमाण है प्रत्यक्ष और परोक्ष।

परिचित ज्ञानविधिसे आत्महितशिक्षा—हम इस प्रसङ्गमें आत्महितके लिए यह शिक्षा प्राप्त करें कि जानने तककी भी इच्छा हमारे विकासमें बाधा डालती है। विषय भोगोंकी, विभावोंकी इच्छा तो अत्यन्त बाधक है। हम बाह्य पदार्थोंकी वाञ्छा रखें तो आत्मविकासमें बड़ी बाधा आती ही है, लेकिन जाननेकी भी कुछ इच्छा रखें तो उससे विकासमें बाधा होती है। जैसे कि अध्यात्म योगमें यह बात बतायी गई है कि जो पुरुष मोक्षकी भी इच्छा रख रहा है वह मोक्षको प्राप्त नहीं

जानी जाती है। शब्द नित्य है। यदि शब्द नित्य न होता तो पदार्थको बतानेका सामर्थ्य भी न होता। यों अर्थापत्तिपूर्वक भी अर्थापत्ति होती है।

अभावपूर्विका अर्थापत्ति—एक अर्थापत्ति अभावपूर्वक होती है। जैसे कोई कहे कि देखो अमुक पुरुष (देवदत्त) घरमे है या नही, उसने आकर बताया कि देवदत्त घरमे नही है। देवदत्तका घरमे अभाव जाना यह तो हुआ अभाव ज्ञान और उस अभाव ज्ञानसे यह जाना कि बाहर है क्योंकि बाहर हुए बिना घरमे अभाव नही बन सकता। तो वह हुई अभावपूर्वक अर्थापत्ति इस प्रकार अर्थापत्ति नामक भी प्रमाण है प्रत्यक्ष और अनुमान ये ही दो प्रमाण हो सो बात नही है ऐसी मीमासक सिद्धान्तके अनुसार प्रमाणान्तरकी सिद्धी की जा रही है। जैन सिद्धान्तके अनुसार अर्थापत्तिका अन्तर्भाव अनुमानमे होता है क्योंकि अर्थापत्ति नाम है इसका कि जिसके बिना जो न हो उसको देखकर उस अदृष्ट अर्थका ज्ञान कर लेना यह बात अनुमानमे है। अग्निके बिना धुवा नही हो सकता इसलिए धुवाको देखकर अग्नि का ज्ञान कर लेना यही तो अनुमान है और यही बात अर्थापत्तिमे है। यद्यपि अर्थापत्तिका अनुमानमे अन्तर्भाव है सो अर्थापत्ति जुदा प्रमाण नही लेकिन और-और भी तो प्रमाण है। आगम प्रत्यभिज्ञान आदिक भी तो प्रमाण हैं तो प्रमाण केवल प्रत्यक्ष और अनुमान ही तो नही रहे, प्रमाण अनेक हो गए।

प्रमाण निष्पत्ति विधिसे दो भेदोमे विकल प्रत्यक्ष ज्ञान—प्रमाण यद्यपि अनेक हैं तो भी वे सारे प्रमाण जैसे उत्पन्न हुए है उनका आधार केवल दो पद्धतियोमे है। कोई ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखकर केवल आत्मीय शक्तिसे हो जाता है, जैसे अवधिज्ञान इन्द्रिय और मनसे नही जाना जाता है किन्तु एक आत्मीय शक्तिसे जाना जाता है। हाँ जब कोई अवधिज्ञानका उपयोग करता है तो पहिले वह विचार करता है कि मैं इसे जानू फिर अवधिज्ञानको जोडता है तो अवधिज्ञान जोडते समय इन्द्रिया और मन नही काम कर रहे हैं, केवल एक आत्म शक्तिसे जान लिया कि अमुक वस्तु है। मन पर्ययज्ञान भी इसी प्रकार केवल आत्म शक्तिसे ही जाना जाता है, दूसरेके मनकी बात जान लेना अनुमानसे नही उसकी मुद्रा देखकर नही, किन्तु आत्म शक्तिसे जान लेना यह मन पर्ययज्ञान है। मन पर्ययज्ञानी जीव दूसरे के दिलमे क्या है यह भी जानता है और इसके दिलमे क्या था पहिले, यह भी जानता है और अब यह क्या सोचेगा यह भी जानेगा। कोई ऐसा कपटी पुरुष हो कि सोच रहा हो कुछ और मुद्रा बना रहा है और कुछ। जैसे सोच तो रहा है किसीके अकल्याणकी बात, पर मुद्रा बन रही है प्रसन्नता की तो ऐसे कपटी पुरुषके दिलकी बात मन पर्यय ज्ञानी जान जाता है। और लोग तो यह अदाज करेंगे कि यह तो बडा भला आदमी जचता है तो मन पर्यय ज्ञान भी आत्मशक्तिसे होता है।

केवलज्ञानकी असीम विशद एकत्वप्रत्यक्षता—केवल ज्ञान तो केवल

पदार्थसे हमने फिर अदृष्ट अर्थकी कल्पनाकी, अर्थापत्ति भी प्रमाण है यह सिद्ध करने का इस प्रसङ्गमे मुख्य प्रयोजन है और उस अर्थापत्तिके विस्तारको बना रहे है, देखिये कोई सी भी शक्ति हो चाहे अनुमानपूर्वक अर्थापत्ति द्वारा ज्ञात हो या प्रत्यक्षपूर्वक अर्थापत्ति द्वारा ज्ञात हो कोई भी शक्ति न तो प्रत्यक्षसे जानी जाती और न अनुमानसे जानी जाती है, क्योकि अनुमान वहाँ होता है कि प्रत्यक्षसे कोई साधन जाना जा रहा है और वह साध्यसे अनुमान हुआ करता है फिर यहाँ साधन साध्यका कोई सम्बन्ध नही, यह तो अर्थापत्तिसे जाना जा रहा है।

श्रुतार्थापत्ति एक अर्थापत्ति है आगमार्थापत्ति। श्रुतार्थापत्ति। श्रुतसे शब्द से आगमसे कोई बात जानी और उसके द्वारा फिर अदृष्ट अर्थका परिज्ञान किया तो वह श्रुतपूर्वक अर्थापत्ति हुई। जैसे कोई कहे कि यह देवदत्त बहुत मोटा है और दिनमे नही खाता ये शब्द सुना, तो उन शब्दोका अर्थ यह निकला यह रात्रिमे खाता है। तो जैसे यह मोटा देवदत्त दिनमे नही खाता है यह वाक्य सुनने से रात्रिमे खाता है इसका परिज्ञान हुआ तो इसमे अर्थापत्ति लगायी। यदि दिनमे नही खाता तो दिनमे न खाने वाला देवदत्त मोटा कैसे हो जाता। तो यह श्रुतार्थापत्ति। एक अर्थापत्ति होती है उपमानपूर्वक। जैसे रोझ देखकर गायको उपमान किया था कि यह रोझ गायके समान है तो इस ज्ञानमे सीधा तो यह जाना गया कि रोझ गायके समान है। अब इस ज्ञानको करके यह भी तो जाना जाता है कि इस उपमान ज्ञानसे ग्रहण की जाने वाली गौ है जिसकी सदृशता बतायी जा रही है। तो उपमान ज्ञानसे ग्राह्यताकी शक्ति वाली गाय है अन्यथा उपमेय नही बन सकता। ऐसी जो शक्तिका ज्ञान किया यह उपमानपूर्वक अर्थापत्ति हुई हो प्रमाण पूर्वक होती है। यह तो एक अर्थापत्तिका स्वरूप बताने के लिए कहा जा रहा है। प्रसङ्गका प्रयोजन यह है कि प्रत्यक्ष और अनुमान ये ही दो प्रमाण हैं सो बात नही है आगम भी प्रमाण है, उपमान भी प्रमाण है यह अर्थापत्ति भी प्रमाण है।

अर्थापत्तिपूर्विका अर्थापत्ति कोई अर्थापत्ति अर्थापत्तिपूर्वक होती है। जैसे शब्दमे पदार्थको बतलानेकी सामर्थ्य है, यह इसकी अर्थापत्तिसे जाना, क्योकि हम शब्द सुनते हैं और शब्द सुनकर उस पदार्थका हम ज्ञान कर लेते हैं। कोई कहे कि घडी लावो तो यह शब्द सुनकर कही कोई पुस्तक तो नही उठा लाता। तो इससे मालूम होता है कि शब्दमे पदार्थको बतानेकी शक्ति है, पदार्थका वाचक है यह शब्द। तो शब्द वाचक सामर्थ्य वाला है, तो वाचक सामर्थ्यका हमने शब्दसे अर्थापत्ति की और फिर उस ही अर्थापत्तिसे हमने यह जाना कि शब्द नित्य है अगर ये शब्द सदा न रहते तो हम शब्दका उच्चारण न कर सकते थे। यह बात मीमासककी ओरसे कही जा रही है। शब्दसे अर्थ जाना जाता है और उस अर्थसे वाचक सामर्थ्य जाना जाता है कि इस शब्दमे पदार्थको बतलानेकी सामर्थ्य है, और, उस वाचक सामर्थ्यसे शब्दमे नित्यता

शक्ति इन्द्रियके अगोचर है। शक्तिको इन्द्रिया नही जान सकती। इन्द्रिया पदार्थोंको तो जान लेंगी, पदार्थके व्यापारको भी नि ख लेंगी, यह इतना चला, इसने आक्रमण किया है, पर इसमे आक्रमण करनेकी श क्त है उस शक्तिको प्रत्यक्षसे नही जाना जा सकता। वह अर्थापत्ति द्वारा गम्य है। तो एक अर्थापत्ति होती है प्रत्यक्षपूर्वक।

अनुमानपूर्विका अर्थापत्ति दूसरी अर्था त्ति है अनुमानपूर्वक। जैसे सूर्य के गमनका अनुमान किया, यह सूर्य गमन करता है क्योकि सुबह इस ओर था शामको इस ओर देखा जा रहा है। तो यह सूर्य गति वाला है, क्योकि एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमे पहुँच जाता है। जैसे कोई पुरुष एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमे पहुँच जाये तो गमन किया तभी तो पहुचा इसी प्रकार सूर्य जब एक देशसे दूसरे देशमे पहुँचता है तो उससे गमन का अनुमान होता है। सूर्यको गमन करता हुआ किसीने नही देखा। जैसे हम गमन करते हुए आदमी को देख लेते हैं कि यह गमन कर रहा है इसी प्रकार यह सूर्य गमन कर रहा है यह भी नही दिखता। उसके गमन का तो अनुमान किया जाता है। जैसे कोई बालक है तो वह रोज-रोज बढता तो है ही, पर उसका रोज-रोज बढना मालूम नही पडता। एक आध सालके बादमे वह ५-६ अ गुल बढ जाता है। इसमे ऐसा नही है कि वह एकदमसे ही किसी दिन बढ गया हो। वह तो निरन्तर कुछ न कुछ बढता रहता है। तो जैसे साल छे माहके बादमे उसका बढना देखकर यह अनुमान कर लेते हैं कि यह रोज-रोज बढता आया है, यो ही समझिये कि सूर्यके गमन को किसीने नही देखा, किन्तु एक देशसे देशान्तर पहुचनेके हेतुसे गमनका अनुमान होता।

सूर्यगमनका प्रत्यक्षसे अपरिचय—कभी कोई बादल उस सूर्य अथवा चन्द्र के नीचे आ जाता है और वह बादल चलता रहता है तो लगता ऐसा है कि ये सूर्य अथवा चन्द्र चल रहे हैं, पर वह सूर्य और चन्द्रका गमन नही दिख रहा। बादल चूंकि चल रहे हैं तो सूर्य और चन्द्र चल रहे ऐसा मालूम होता है। जैसे रेलगाडीमे बैठे हो और सामनेसे कोई दूसरी गाडी चल रही हो, जैसे आमने सामनेका क्रास हुआ तो जो गाडी पीछे आयी वह चलदी पर उस खडी हुई गाडी पर बैठे हुए व्यक्तिको ऐसा लगता है कि हमारी गाडी चलदी, ऐसे ही वे बादल चलते हैं उल्टी सरहदमे और लगता ऐसा है कि ये चन्द्र अथवा सूर्य चल रहे हैं। चन्द्र और सूर्यके गमनको किसीने नही देखा, उनके गमनका अनुमान किया जाता है।

अर्थापत्तिकी अनुमानपूर्वकताका विवरण - पहिले तो उस सूर्यमे गमनका अनुमान किया। यह सूर्य गमन करता है क्योकि एक देशसे दूसरे देशमे अन्यथा पहुँच नही सकता था तो इस अनुमानसे सूर्य चन्द्रके गमनका अनुमान किया। अब सूर्यके गमनके ज्ञानसे इस सूर्यमे गमन करनेकी शक्ति है उस शक्तिकी कल्पना की तो यह अनुमानपूर्वक अर्थापत्ति हुई। यदि सूर्यमे गमन शक्ति न होती तो सूर्य गमन न कर सकना। तो यह अनुमान पूर्वक अर्थापत्ति यो हुई कि पहिले अनुमानसे जो जाना गया है उस

कुछ थोडा दार्शनिक शास्त्र होनेकी वजहसे यह अन्तर दे दिया गया है कि प्रत्यक्ष उसे कहते जो स्पष्ट ज्ञान हो और परोक्ष कहते है उसे जो अस्पष्ट ज्ञान हो। तो चूँकि इन्द्रिय और मनकी अपेक्षासे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह भी स्पष्ट सा लगता है। जैसे आँखो देखा कानो सुना स्पष्ट लगता है उसे भी प्रत्यक्ष कोटिमे रखा है किन्तु उसे कहते हैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। यो प्रमाणके दो भेद किए गए।

अर्थापत्तिकी प्रमाणान्तरता—क्षणिकवादियोने प्रमाणके दो तो भेद माने पर नाम ये दो नही रखे। उनके सिद्धान्तमे प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण बताये गए है। उसके समाधानमे आगम को अलग प्रमाण बताया गया, उपमानको अलग प्रमाण बताया गया। अब अर्थापत्ति भी एक प्रमाण है यह वर्णन किया जा रहा है। अर्थापत्तिका अर्थ है कि किसी भी प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे कोई प्रसिद्ध अर्थ जान लिया, अब यह प्रसिद्ध अर्थ यह जाना हुआ पदार्थ जिसके बिना नही हो सकता उस पदार्थकी कल्पना करना, उसका ज्ञान करना सो अर्थापत्ति है, अर्थापत्ति छहो प्रकारसे होती है। यह मीमासक सिद्धान्तके अनुसार कहा जा रहा है। प्रसङ्ग तो यह है कि प्रत्यक्ष और अनुमान केवल ये दो ही प्रमाण नही है, और भी प्रमाण मानने वालोका ही खडा करके पहिले उन्हे समाधान दिया जा रहा है। प्रमाण छ होते हैं मीमासक सिद्धान्तके अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव।

प्रत्यक्षपूर्विका अर्थापत्ति— प्रत्यक्षके मायने जिसे आँखोमे देखा करते हैं, यो स्पष्ट जाना करते हैं। एक अर्थापत्ति प्रत्यक्ष पूर्वक होती है। जैसे हमने प्रत्यक्षसे जाना कि यह आग है, अब इस आगमे जलानेकी शक्ति है यह भी तो जाना। तो यह बतलावो कि आगको तो हमने प्रत्यक्षसे जाना और आगमे जो जला देनेकी शक्ति है यह कैसे जाना ? यह अर्थापत्तिमे जाना। यदि आगमे जलानेकी शक्ति न होती तो यह जला कैसे देती है जलानेकी शक्ति हुए बिना आग जलानेमे समर्थ नही है, इससे जलने की शक्तिका ज्ञान किया गया। यह हुई प्रत्यक्षपूर्वक अर्थापत्ति जिसका अर्थ है कि जिसके बिना जो पदार्थ न बन सके उस पदार्थ को जानकर उस अदृष्ट पदार्थकी कल्पना करना अग्निको प्रत्यक्षसे देखकर अग्निमें दाहक शक्तिका ज्ञान करना यह अर्थापत्ति है और प्रत्यक्ष आगको देखकर अर्थापत्ति ज्ञान हुआ इसलिए इसका नाम है प्रत्यक्षपूर्वक अर्थापत्ति। प्रमाण केवल दो ही नही है—प्रत्यक्ष और अनुमान, किन्तु अन्य भी प्रमाण हैं इस बातको सिद्ध करने के लिए नये नये प्रमाणोका स्वरूप बताया जा रहा है। तो अग्नि मे जो शक्ति जाना वह शक्ति प्रत्यक्षमे तो जान नही सकते जैसे आगको हम प्रत्यक्षसे देख लेते हैं इस प्रकार आगमे जो दाहक शक्ति है उसे तो प्रत्यक्षसे नही देखा जा रहा है। आँखें देखती है मूर्त पदार्थको शक्ति तो अतीन्द्रिय है, इन्द्रियसे शक्ति नही जानी जाती। कोई सी भी मशीन हो उसमे जो यह जानते है कि इसमे १० हार्सपावर की शक्ति है यह मशीन इतना कार्य कर सकती है तो यह अर्थापत्तिसे जाना। तो

हाँ हाँ से ही तो काम नही बनता। तो कारण आदिकके विभागसे जो यह व्यवहार हो रहा है वह न होगा।

अर्थापत्तिसे अभाव प्रमाणकी सिद्धिमे प्रागभावका माध्यम- अर्थापत्ति से भी अभाव प्रमाणकी सिद्धि है। यदि अभाव प्रमाण न होता तो अभावके ये चार भेद कैसे बनते? प्रागभाव, प्रध्वसाभाव अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव। जैसे दूधके समय उसमे दही छाछ आदिक बात पर्याय नही है यह बात सत्य है ना, तब दूधकी पर्यायमे दूध हो रहा है, उसमे दूधकी ही तो पर्याय है, दही आदिकका परिणमन तो नही है। तो दूधकी भावी जो दही आदिक पर्याय है उनका वर्तमानमे अभाव है कि नही? है। इसको झूठ कैसे कहा जाय? इसका नाम है प्रागभाव। यदि प्रागभाव न हो तो इसके मायने है कि उस दूधमे दही छाँछ ये सब चीजे एक साथ आ गयी। फिर उसका स्वाद क्या रह गया? तो प्रागभाव यदि न हो तो वस्तु सकरता हो जायगी किन्तु प्रत्येक पदार्थ एक पर्यायरूप ही रहा करते है प्रति समयमे अनेक पर्याय रूप नही रहते। यह व्यवस्था अभावने ही तो बनायी है तो अभाव प्रमाण यदि न होता तो प्रागभावकी व्यवस्था न बनती। यहा अभावको प्रमाण सिद्ध करके प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण है इसका निराकरण किया जा रहा है। यह सब ज्ञान की चर्चा है। यह ज्ञान किस किस रूपसे प्रगट होता है और कौनसा ज्ञान प्रमाणभूत है उसका यह प्रतिपादन है। जैसे हम प्रत्यक्षसे देखकर वस्तुका ज्ञान करते है यह अमुक है इसी प्रकार वस्तुका न निरखकर यह भी ज्ञान करते है कि उसका अभाव है, तो जैसे सद्भावका ज्ञान प्रमाण है इसी प्रकार अभावका भी ज्ञान प्रमाण है।

प्रध्वसाभावके व्यवहारसे अभाव प्रमाणकी सिद्धि—दूसरा अभाव है प्रध्वसाभाव। दूधका जैसे दही बन जाय तो दही बननेपर दूध आदिक परिणमनका अभाव हो गया ना, अब उसमे दूधका स्वाद तो नही है और दूधका कोई प्रभाव भी नही। दूध पीनेका जो असर है अब वह न रह सकेगा। तो दही बननेपर दूध आदिक पर्यायोका पूर्व पर्यायोका अभाव है यही तो प्रध्वसाभाव है। यदि प्रध्वसाभाव न हो तो क्या अनर्थ होगा कि प्रत्येक पदार्थ अनन्तपर्यायात्मक एक साथ हो जायगा। जैसे दही दूधादिरूप है सो मात्र दही नही रहा तो दूध भी है, दही भी है सब पर्यायरूप बन गया परन्तु ऐसा है कहा? जो लोग रसी पालते है कि हम शुक्रवारको दही नही खावेगे तो वे दूधको तो पी लेते है ना, क्योंकि दूध परिणमन अलग है, दही परिणमन अलग है और ये परिणमन जुदे-जुदे है यह बात तभी तो बनेगी जब वहा प्रागभाव और प्रध्वसाभाव आदिक माने जायें।

अन्योन्याभाव व अत्यन्ताभावकी सिद्धिसे अभाव प्रमाणकी सिद्धि—एक पदार्थमे दूसरे पदार्थका अभाव है यह बात सही है कि नही? गाय गाय ही है, घोडा नही है। तो गायमे घोटेका अभाव है ना, तो अभाव कहना वस्तु है। अभाव

भी प्रमेय है अभाव भी प्रमाण है, उसमे ज्ञानको भी प्रमाण मानना चाहिए। केवल प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसे दो ही प्रमाण नही हैं एक अत्यन्ताभाव होता है, जो चीज न कभी हुई, न होनी है और न कभी होगी जैसे मनुष्यके सींग न कभी हुए, न हैं, न हो सकेंगे, तो मनुष्य सिरमे सीगका अभाव है यह बात क्या गलत है ? सही है। तो अभाव भी तो प्रमाण हो गया। केवल वस्तुका सद्भाव ही प्रमाण हो यह बात तो नही रही। अभाव भी प्रमाण है।

अन्योन्याभाव व अत्यन्ताभावकी सिद्धिसे अभाव प्रमाणकी सिद्धि - देखिये ! जब तक अभावके प्रमाणकी व्यवस्था न कर लेंगे तब तक हम सद्भावको भी न जान सकेंगे। घडी घडी है, ठीक है, पर यह हम तब ही तो समझ रहे हैं कि जब यह घडी अन्य और कुछ नही है, चौकी आदिक नही है तब तो हम घडीको घडी समझते हैं। हम किसी भी चीजको जान रहे हैं, जानते ही हम दोनो बातोको समझ रहे हैं। यह घडी है, और उसके साथ यह भी समझ बनी है कि अन्य कुछ नही है. तो जैसे यह घडी है यह ज्ञान प्रमाण है इसी प्रकार यह भी तो ज्ञान प्रमाण है कि यह और कुछ नही है। वस्तुका सद्भाव और वस्तुका अभाव दोनों ही जाने जा रहे हैं। तो सद्भाव भी स्वयं वस्तु हुई और अभाव भी वस्तु हुई।

अनुमानसे अभाव प्रमाणकी सिद्धि—अनुमानसे भी अभाव प्रमाणका ज्ञान होता है। जैसे यह प्रत्यक्षसे जानते हैं कि यह घडी है तो इस जाननेमें दो प्रकारकी बुद्धिया बनी। घडी मे जो कुछ प्रदेश है, मैटर हैं परमाणु हैं उनकी अनुवृत्ति है इसमे। उनकी व्यापकता है, उनका सद्भाव है, यह भी बुद्धि बनी और अन्य पदार्थ चौकी, चश्मा चटाई आदिक नही है यह, उनसे अलग है, उनसे यह व्यावृत्त है यह भी तो बुद्धि बनी। इसे कहते है अनुवृत्ति और व्यावृत्तिकी बुद्धि। एक सद्भावरूप को पकडने वाली बुद्धि और एक अभावको पकडने वाली बुद्धि। प्रत्यक्षसे भी हम विशेषका ज्ञान करते है तो उसमे हमारी दो बुद्धिया चलती हैं और उन दोनो बुद्धियोके द्वारा हम पदार्थको जानते हैं इस प्रकार अभाव भी अनुवृत्ति और व्यावृत्ति इन दोनो बुद्धियो से जाना जाता है। जैसे किसीने मित्रसे कहा कि उस कमरेमेसे हमारा चश्मा उठा लावो। चश्मा वहाँ था नही। तो मित्र यह कहता है कि वहाँ चश्माका अभाव है, तो उसने जो यह अभाव जाना उस कमरेमे उस अभावके जाननेके प्रसङ्गमे दो बुद्धिया उसको हुई एक तो कमरेका सद्भाव जाना यह तो हुई अनुवृत्ति बुद्धि और चश्मासे व्यावृत्त मिला वह कमरा, यह हुई व्यावृत्ति बुद्धि। तो जो अनुवृत्ति और व्यावृत्तिकी बुद्धिसे जाना जाय उसे वस्तु कहते हैं। चीज भी सद्भाव और अभावसे जानी जा रही है, और चीज का अभाव भी सद्भाव और अभाव दोनोसे जाना जा रहा है, फिर अभाव प्रमाण क्यो नही है।

अभावकी सिद्धिके बिना सद्भावकी सिद्धिकी अशक्यता—यदि वस्तु-

त्वका व्यवस्थापक अभाव नामक प्रमाण न हो तो कोई वस्तु व्यवस्था ही नही बन सकती किसीको कहा कि घडी उठा लावो और उसे यह शङ्का हो जाय कि यह घडी कही बिच्छू साप न बन गई हो तो क्या व्यवहार चलेगा ? यह घडी घडी ही है—काटा विच्छू साप आदिक नही है, अन्य कोई पदार्थ नही है घडीको छोडकर। दोनो बातोका बोध है कि नही हमे ? इसी प्रकार किसी चीजका अभाव हो गया तो वहाँ दोनो बातोका बोध रहता है जिस जगह हम वस्तु न पायेगे उस जगहका ज्ञान रहता है और जो वस्तु नही पा रहे उसका भी अभाव रूपसे ज्ञान रहता है, इससे अभाव नामका प्रमाण है। यदि अभाव कोई वस्तु न हो तो कुछ कार्य ही नही बन सकता, कोई प्रयोजन ही नही रह सकता चेतन कहो मूर्तिक बन जाय, आत्मा कहो जड बन जाय। आत्मा ज्ञानमय है, जड नही है, ऐसा ज्ञान किया तो दो बातें ही हमने जानी कि आत्मामे ज्ञान है और आत्मामे रूप, रस, गध, स्पर्श नही है, अज्ञान नही है, पदार्थमे मात्र सद्भावपना भी नही है और मात्र अभावपना भी नही है। सद्भाव ही सद्भाव माने अभाव न माने तो वस्तु रह ही नही सकती। पदार्थकी सत्ता इसी आधार पर है कि वह पदार्थ अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपमे नही है। अपने स्वरूपसे है इसका जानना जैसे प्रमाण है ऐसे ही परके स्वरूपसे नही है यह ज्ञान भी तो ठोस ज्ञान है। यदि अभाव नामका कोई प्रमाण न हो तो अनेक अटपट बाते अथवा सब कुछ सर्वात्मक हो जायगा, इससे अभाव प्रमाण है, ऐसा मीमासक मतके अनुसार सिद्ध किया जा रहा है।

अभावके अवस्तुत्वकी एक आशका— अब यहाँ एक प्रश्न क्षणिकवादियो की ओरसे उठाया जा रहा है कि वस्तु तो निरश है, वस्तुमे फैलाव नही है, अवयव (अङ्ग) नही है। जैसे हम देख रहे है कि यह चौकी एक हाथ लम्बी चौडी है, तो एक हाथ लम्बी चौडी कुछ वस्तु ही नही होती। वस्तु तो एक अणुमात्र है, निरश है। ऐसे निरश अनेक परमाणु इकट्ठे मिल गये वह चौकी बन गयी। तो यह चौकी जो दिख रही है यह परमार्थ नही है, मायारूप है, सम्वृत्तिरूप है, हमारी कल्पना है। इसमे जो एक एक अणु है वह वस्तु है। यो वस्तुको निरश माना है और द्रव्यसे ही निरश नही, कालमे भी निरश, जो वस्तु होती है वह एक समय ही रहती है और मिट जाती है, फिर उसके एवजमे वहा दूसरी वस्तु उत्पन्न हुई। जैसे यह परमाणु है तो जो परमाणु है वह मिट गया, अब दूसरा परमाणु बना, इस तरह नये नये ये अनन्त परमाणु बनते चले जाते हैं। अणु तो निरश है और निरश वस्तुके स्वरूपको ग्रहण करने वाला प्रत्यक्ष है, सो प्रत्यक्षने सर्वरूपमे उस निरश वस्तुका ग्रहण कर लिया, अब उसमे बिना ग्रहणकी कोई चीज ही नही रही। कोई ऐसा असत् नही है जो ग्रहण की कोई चीज ही नही रही। कोई ऐसा असत् नही है जो ग्रहण न किया गया हो। वस्तु ही सारी ग्रहण हो गई, फिर असत्का अभाव है उसके समर्थन वाले तुम अभाव नामक प्रमाण मानते हो सो व्यर्थकी बात है। कोई विषय ही नही रहा तो ज्ञात किसे किया जायगा ?

अभावकी वास्तविकता और अभावप्रमाणकी सिद्धिका समर्थन - अभाव विषयके अभावकी शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि भाई ऐसी बात है कि प्रत्येक पदार्थ सत् और असत् दोनो ही रूप है। कोई वस्तु अगर है तो वही है, अन्य कुछ नही है, इसमे सत् अश भी आ गया, असत् अश भी आ गया। अब अस्तित्वके अशको तो प्रत्यक्ष आदिकने जाना और नास्तित्वके अशको अभाव प्रमाणने जाना, फिर अभाव प्रमाण कैसे न मानोगे ? यदि अभाव प्रमाण न होता तो प्रत्यक्ष आदिक भी प्रमाण नही रह सकते। यह चौकी है इसमे यह निर्णय पडा हुआ है ना, कि यह अन्य कुछ नही है, अन्य कुछ नही है इस ज्ञानकी अगर दृढता न हो तो यह चौकी है ऐसा कौन नि शङ्क कह सकता है ? तो वस्तुके सत् अशका ग्रहण करानेमे उपकारक है असत् अशका ज्ञान कराने वाला अभाव प्रमाण, ऐसे महत्त्वपूर्ण अभावका विषय करने वाला है अभाव प्रमाण।

सदश और असदशका स्वरूपभेद -यहाँ फिर एक शङ्का की जा रही है कि सत् और असत् दोनो अश एक ही धर्मीमे तो हैं, जैसे इस घडीमे घडीका तो अस्तित्व है और चौकी आदिक का नास्तित्व है ऐसे जो इसमे दो अश पडे हुए हैं तो इन दो अशोका आधार तो यह घडी है ना, यह चीज है ना, इसीमे इसका अभाव है, इमीमे इसका सद्भाव है। तो धर्मी जब एक है, तो जब हमने इसको प्रत्यक्षसे सारे को जान लिया तो इसमे असत् अश भी ग्रहणमे आ गया और सत् अश भी ग्रहणमे आ गया, फिर अलगसे ग्रहण कराये जानेके लिये क्या रहा ? उत्तरमें कहते हैं कि भाई ! यद्यपि एक ही वस्तुमे अस्तित्व और नास्तित्व बसे हैं। घडीका सत्त्व घडीमे है, चौकी आदिका नास्तित्व घडीमे है। सो है, धर्मी घडी तो एक है, पर धर्म तो दो है। उनका स्वरूप न्यारा न्यारा है। जैसे नेत्रमे प्रकाश भी है और रूप भी है अथवा दीपकमे रूप भी है और प्रकाश भी है। तो ये दो चीजें तो अलग-अलग हैं ना, स्वरूप न्यारा है। अगर एक ही चीज बन जाय तो फिर दीपक प्रकाशरहित हो जायगा चौकीमे रूप तो है पर प्रकाश नहीं है, आममे रूप भी है, रस भी है, हैं एक ही जगह, परन्तु एक नही हो गए। क्या कोई यह जान सकता कि इस आममें इतनी जगहमे तो इसका रूप है और इतनी जगहमे इसका रस है ? जहा रूप पडा हुआ है वही रस भी पडा हुआ है पर रूप रस तो नही बन गया और रस रूप नहीं हो गया। अगर रस रूप बन जाय तो फिर आखोसे देखते जावो और स्वाद लेते जावो। इसी प्रकार वस्तुमे सत् अश और असत् अश एक ही वस्तुमे है, पर इन दोनोका स्वरूप जुदा है। अभाव भावरूप प्रमाणसे न जाना जायगा। जैसे जिस प्रकारका विषय है उस ही प्रकारके प्रमाणमे जाना जाता है। जैसे रूप आदिक भावरूप चक्षुसे जान जाते हैं इसी प्रकार अभाव अभावप्रमाणसे जाना जायगा और भाव प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणसे जाना जायगा। इससे अभाव भी एक जुदा प्रमाण है।

अभाव प्रमाणकी सिद्धिका उपसहार—कुछ समझमे तो आयी अभावकी

बात ? तो लो अभ व भी प्रमाण है क्योंकि वह प्रमेय है। इसलिये प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण नही ठहरे, आगम, अर्थापत्ति, उपमान और अभाव भी प्रमाण होते हैं। इस प्रकार प्रमाणके भेदके प्रकरणमे प्रत्यक्ष और अनुमान ही प्रमाण है इसका खण्डन किया है और यह व्यवस्था बनायी कि प्रमाण इस तरह दो प्रकारके है—एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। जो इन्द्रिय और मनसे जाना जाय सो परोक्ष है और जो विशद स्पष्ट आत्मशक्तिसे जाना जाय सो प्रत्यक्ष है। और चक्षु आदिक इन्द्रियोसे भी जो स्पष्ट जाना जाय वह भी उपचारसे प्रत्यक्ष है,क्योंकि दार्शनिक पद्धति से प्रत्यक्षका लक्षण वैशद्य कहा गया है। इस प्रसङ्गमे प्रत्यक्ष और अनुमानके भेदसे ही द्विविधताके निराकरणके लिये अनेक प्रमाणान्तरोकी सिद्धि की है। जिसमे अन्तमे अभाव प्रमाण सिद्ध किया गया है।

अस्पष्ट ज्ञानोकी परोक्षरूपताकी प्रस्तावना—ज्ञान दो प्रकारका होता है—एक स्पष्ट ज्ञान दूसरा अस्पष्ट ज्ञान। जो स्पष्ट है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं जो अस्पष्ट है उसे परोक्ष कहते है। इस प्रकार ज्ञानके दो भेद हुए। ऐसे भेदोको न मानकर प्रत्यक्ष व अनुमान ऐसे ही दो भेद माननेका जिन्होने आग्रह किया है उनका समाधान करनेके लिये अब तक अनेक प्रमाणोकी सिद्धि की गई है। अनुमान, अर्थापत्ति, अभाव आगम ये प्रमाण बताये गए है। तो अनेक प्रमाणोकी सिद्धिकी बात सुनकर क्षणिकवादी यहाँ यह कह रहा है कि अनेक प्रमाण सिद्ध होनेसे दो प्रमाण रहे यह भी तो बात न रह सकी। जो सूत्रमे बताया है कि प्रमाण दो है। प्रत्यक्ष और परोक्ष। तो ये दो भेद भी तो मिट गये। अब तो प्रमाण अनेक बन गये। इसके उत्तरमे बतावेंगे कि उन सबका परोक्ष प्रमाणमे अन्तर्भाव हो जाता है। जितने अन्य अन्य प्रमाणोकी अभी तक सिद्धि की है वे सब परोक्षमे गर्भित है, क्योंकि ये सारे ज्ञान जो अभी बताये गए ये प्रत्यक्षकी तरह स्पष्ट नही है ये सब अस्पष्ट ज्ञान है।

अर्थापत्ति, अनुमान, उपमान, आगम व अभावप्रमाणकी परोक्षरूपता—अर्थापत्तिसे अग्निमे जलानेकी शक्तिका ज्ञान किया गया, तो वह ज्ञान भी अस्पष्ट है, आखो देख रहे है चटाई, आदिक, कितना तो स्पष्ट मालूम होता है, ऐसे अग्निमे जलानेकी शक्ति स्पष्ट विदित नही होरही, वह परोक्ष है। उपमानमे सदृशताका उपमान किया जारहा है कियह रोझ गायके समान है तो यह समानता भी तो कुछ प्रत्यक्ष सामने नहीं है, समानताका ज्ञान तो हो रहा किन्तु सामने स्पष्ट समानता पडी हो जैसे कि रोझको स्पष्ट देख रहे है इस तरह समानताका स्पष्ट बोध नही है इस कारण उपमान भी परोक्ष है, आगम भी परोक्ष है। शब्द सुनकर, शास्त्र सुनकर जो ज्ञान किया जा रहा है तत्त्वके स्वरूपके बारेमे अथवा लोककी रचनाके सम्बन्धमे स्वर्ग है नरक है आदिक जो कुछ भी ज्ञान किये जा रहे हैं वे सब परोक्ष ज्ञान है। अभाव प्रमाण भी प्रत्यक्षकी तरह सामने तो नहीं नजर आता। वह भी परोक्ष है। अभावकी वास्तविक बात यह है कि

अभाव निषेध्यके आधारके सद्भावरूप होता है सो जो प्रत्यक्षगम्य अभाव है वह प्रत्यक्ष है, जो अनुमानादिगम्य अभाव है वह परोक्ष है। इस प्रकार जितने भी ये प्रमाण है वे सब चूँकि अस्पष्ट है तो अस्पष्टताके एक लक्षणकी दृष्टिसे सारे ज्ञान परोक्ष हो गए।

प्रत्यक्षज्ञानोकी तरह परोक्ष ज्ञानोकी भी एक लक्षणलक्षितता—जैसे कि स्पष्टताकी दृष्टिसे एक वस्तु देखी तो यह स्पष्ट ज्ञान हुआ या नही ? स्पष्ट है। तो कानोसे जो शब्द सुने जा रहे है उनका ज्ञान भी स्पष्ट है, नासिकासे जो गंध सूँघी जा रही है, सुगंध दुर्गन्धका ज्ञान हो रहा है वह भी स्पष्ट है। रसनासे जो रस चखा जाता है खट्टा–मीठा आदिक ये सब भी उसे स्पष्ट है और किसी चीजको छूकर जो यह ज्ञान किया जाता है कि यह कोमल है, यह कडा है, यह रूखा है चिकना है भारी है, हल्का है यह सब भी स्पष्ट है। तो जैसे स्पष्टताके लक्षणसे लक्षित जितने भी ज्ञान हैं वे सब प्रत्यक्षमे गर्भित हैं, इसी तरह अस्पष्ट ज्ञान जितने भी हैं वे सब परोक्षमे गर्भित होते हैं। चाहे उनमें कुछ सामग्रीका भेद हैं, आँखोसे देखा तो रूप देखा गया, कानोसे सुना गया तो शब्द सुने गए रसनासे चखा तो खट्टा–मीठा आदिक रस चखा गया। सामग्रीका भेद है इन सबके ज्ञानमे लेकिन पद्धति एक है, सब स्पष्ट हो रहे हैं तो इसी प्रकार परोक्षके जितने भी ज्ञान हैं उपमान अर्थापत्ति आदिक वे सब अस्पष्ट पदार्थको जनाते है इस कारण वे सब परोक्षमे गर्भित हैं।

जाननेके नाना प्रकार—यह सब अपने ज्ञानकी बात कही जा रही है, इस तरहसे लोग जाना करते हैं तो वे ज्ञान किस किस किस्मके हुआ करते हैं सो ज्ञानकी किस्मे बतायी जा रही हैं, जैसे ऐसा समझा कि यह है और यह समझा कि वह है, और यह समझा कि यह वही, तो इन तीनोमे कुछ अन्तर है कि नही ? पद्धतिका रीतिका अन्तर है यह है, यह तो स्पष्ट ज्ञान है। सामने चीज पडी है उसे हम जान रहे हैं, वह सब स्पष्ट है। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। और वह है, तो वह सामने नही है, किन्तु ख्यालमे आ रहा हैं तो वह स्मरण ज्ञान हुआ, परोक्षज्ञान हुआ। और यह वह एक तीसरी चीजको बता ता है। सामने जो वस्तु है और स्मरणमे जो वस्तु आई है उसकी एकता दिखाना है। यह पुरुष वही है यह प्रत्यभिज्ञान हुआ। ज्ञानका काम यद्यपि जानना है और इस दृष्टिसे सब ज्ञान एक है। किसी भी तरह जाने जान तो गये, पर जाननेकी किस्मे अलग अलग है।

अनेक प्रमाणोका वर्णन और उनमे कुछ प्रमाणोकी पुनरुक्तता अभी तक सभी मत वालोकी ओरसे ज्ञानकी किस्मे बतायी गई है, एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है जो स्पष्ट जानता है, एक अनुमान है जो किसी चीजको निरखकर दूसरी चीजका ज्ञान कराता है। धुवा देखकर आगका ज्ञान होना यह अनुमान है, एक आगम है, शब्द सुन कर वस्तुका बोध हो जाना। जैसे कहा मकान तो झट ज्ञान हो गया कि यह कहा, इस पदार्थकी बात कही। शब्द सुनकर पदार्थका बोध हो जाय यह आगम है। स्पष्ट

प्रसिद्धि अ: देखकर अदृष्ट अर्थकी कल्पना बने वह अर्थापत्ति है। जैसे धधकती हुई आगको देखकर यह कल्पना बनी कि इसमे जलानेकी शक्ति है तो अर्थापत्ति हुई। किसी वस्तुको देखकर अन्य वस्तुकी सदृशताका ज्ञान हुआ, यह अमुक चीजके समान है यह उपमान हुआ। और, कुछ नजर न आये उसका अभाव जाने यह अभाव प्रमाण हुआ, इस तरह इतने प्रमाण सिद्ध तो किए गए पर इसमे कई ज्ञान पुनरुक्त हो गये। जैसे अर्थापत्ति और अनुमानमे कुछ अन्तर नही है, अग्निको देखकर जाना कि इसमे जलाने की शक्ति है, यही तो अनुमान बना। इस अग्निमे जलानेकी शक्ति है। यदि जलानेकी शक्ति न होती तो पदार्थको भस्म न कर सकती थी। अनुमानमे और अर्थापत्तिमे क्या भेद है? इस तरह कुछ ज्ञान कुछ ज्ञानोमे गर्भित होते है तो सब प्रकारसे जितने ज्ञान रहते जो पुनरुक्त भी न हो और छूटे भी न हो उसका आगे वर्णन करेंगे।

उपमान प्रमाणका प्रत्यभिज्ञानमे अन्तर्भाव अब यहाँ शङ्काकार यह कहता है कि परोक्ष ज्ञान तो जैन शासनमे इस प्रकार कहे हैं स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम। उसमे उपमान तो बताया ही नही तो उपमान प्रमाण अलग है। तो इसके उत्तरमे कहते हैं कि उपमानका अन्तर्भाव प्रत्यभिज्ञानमे हो जाता है। एक चीज सामने देखी और दूसरी चीजका ख्याल आया, उसमे कुछ जोडना, इसका नाम है प्रत्यभिज्ञान। जैसे रोझ देखा और गायका स्मरण हुआ, उसमे समानता जोड दी कि यह गायके समान है, प्रत्यभिज्ञान हो गया। यदि उपमान प्रमाण कुछ अलग विषय मानकर अलग माना जाय तो फिर यह बतावो कि विलक्षणताका जो ज्ञान हुआ दो वस्तुवोमे, उसका कौनसा प्रमाण मानोगे? नया प्रमाण बन गया। पर प्रत्यभिज्ञानका जो यह लक्षण है कि जो चीज दिखे उसमे और जिसका स्मरण हो उसमे कुछ भी सकलन करना प्रत्यभिज्ञान है। यह पुरुष वही है जिसे अमुक नगरमे देखा था यह एकत्वका जोड हुआ। यह रोझ गायके समान है इसमे सदृशताका जोड हुआ। यह हिरण भैंससे बिल्कुल जुदा है यह विलक्षणताका जुदा है यह विलक्षणता सकलन हुआ। यह इससे दूर है, यह इसके निकट है, यह भैया इससे छोटा है, यह भैया इससे बडा है, ये सारे प्रतियोगियाके सकलन है सब प्रत्यभिज्ञान हो गए। उपमान कोई अलग प्रमाण नही है। उपमानका तो प्रत्यभिज्ञानमे अन्तर्भाव होता है।

ज्ञानका सर्वसाधारण उद्भव—ऐसे ज्ञान हम आप सबके पैदा होते है चाहे कोई साहित्य जानता हो या न जानता हो, चाहे किसीने न्याय शास्त्र सीखा हो या न सीखा हो चाहे कोई अपने ज्ञानका अवलम्बन कर सके या न कर सके, ज्ञान तो सभी मे होता है जैसे कि हर एक कोई ख्याल कर लेता है। अरे, वह चीज तो वही रखी रही, उसको तो मैं भूल आया इस प्रकार किसी वस्तुका स्मरण किया जाता है, सभी स्मरण करते हैं किन्तु वह स्मरण नामका परोक्ष ज्ञान है यह नही जानते। उन ज्ञानो की ये किस्में बतायी जा रही है।

अर्थापत्तिका अनुमानमे अन्तर्भाव—एक ज्ञान बताया था अर्थापत्ति। जिसके बिना जो न हो उसको निरखकर उसका ज्ञान करना अर्थापत्ति है जैसे नदीमे पूर आ गया, तो नदीका पूर देखकर यह ज्ञान करना कि ऊपर वर्षा हुई है अन्यथा यह पूर नही आ सकता था, यह अर्थापत्ति हुआ बताते हैं। आचार्यदेव कहते है कि अर्थापत्तिका तो अनुमानमे अन्तर्भाव होता है। अनुमानमे और अर्थापत्तिमे क्या अन्तर है ? नदीमे पूर देखकर ऊपर वृष्टि हुई ऐसा सम्बन्ध सोचकर अनुमान ज्ञान हुआ, उसीको तुम अर्थापत्ति कहते हो। अर्थापत्तिको उत्पन्न करने वाला पदार्थ इस तरहसे जाना गया या नही कि यह इसके बिना नही हो सकता। ईंधनको आगने जलाया जलाने वाली आगको देखकर यह अन्यथानुत्पत्ति ज्ञानमे आयी कि नही कि इसमे जलानेकी शक्ति न होती तो यह जला न सकती थी। तो ऐसी अविनाभावता ज्ञात हो तब अदृष्ट अर्थका ज्ञान बनता है या न भी ज्ञात हो तो भी अदृष्ट अर्थका ज्ञान हो जाता है ? ऐसे दो प्रश्न किए। न जाना गया अविनाभाव फिर भी उससे अदृष्ट अर्थ की कल्पना बन गयी। तो इस तरह तो बडा अनर्थ हो गया। जिसके बिना जो चीज नही होती कहो उसे भी न जनाये और जिसके बिना जो होता है उसे भी जना दे तो अन्यथानुत्पत्तिसे न जाना जाय पदार्थ और फिर किसी चीजका ज्ञान करा दे यह सम्भव नही है, ये ही युक्तिया हैं, ये ही कानून हैं। तो यह अर्थापत्ति और अनुमान कोई जुदी चीज नही होते, यह इस प्रसङ्गमे सिद्ध किया जा रहा है।

आगम प्रमाणकी तरह अर्थापत्तिकी पृथक् प्रमाणरूपताका अभाव—जितने अभी ज्ञान बताये थे उनमे कोई ज्ञान तो अपुनरुक्त हैं और कुछ ज्ञान पुनरुक्त है अर्थात् कुछ ज्ञान तो ऐसे हैं जो अन्य ज्ञानमे सामिल हैं उनको अलगसे सख्यामे न कहना चाहिए, और कुछ ज्ञान ऐसे है कि नही सामिल हो सकते। जैसे आगम ज्ञान। यह स्वतत्र ज्ञान है। शब्द सुनकर यह पदार्थ बताया गया है इस शब्दसे ऐसा ज्ञान होनेका नाम आगमज्ञान है। शास्त्रोमे भी यही बात है और हम आप बोल चाल करते हैं उनमे भी यही बात हैं। शास्त्रोमे भी शब्द हैं और उन शब्दोमे क्या कहा गया है, उस पदार्थका बोध होता है। जीव, अजीव, आश्रव बध, सम्वर निर्जरा, मोक्ष। ये ७ तत्त्व है, शास्त्रमे लिखे है। सुनकरके ज्ञान भी हो जाता है कि जीव बताया है तो जो प्राणधारी है, चैतन्य जिसमे पाया जाता है उसको कहा गया है। अजीव शब्द बताया है तो जहा चैतन्य नही है उसे अजीव कहा है। कर्म भी अजीव है। आश्रव शब्द सुनकर यह भाव ज्ञात कर लिया जाता है कि ओह! जीवमे कर्म का आना इसे कहा है आश्रव। जीवमे कर्म बधें सो बन्ध। जीवमे नये कर्म न बधें सो सम्वर और जो कर्म पहिलेसे बँधे हो वे छूटने लगें सो निर्जरा और जब कर्म जीव से बिलकुल अलग हो जायें उसीका नाम है मोक्ष तो शास्त्रमे शब्दोका सुनकर जैसे उनके वाच्य अर्थका परिज्ञान होता है लोक व्यवहारमे भी शब्दोको सुनकर उनके वाच्यभूत अर्थका ज्ञान होता है। इन दृष्टिसे आगम शब्दका नाम है। जिन जिन

शब्दोको सुनकर पदार्थका बोध होता है, वे सब आगम ज्ञान कहलाते है। पर आगम ज्ञान कहनेसे महत्ता दी जाती है शास्त्रोकी, क्योकि लोक व्यवहारकी गप्प सप्पकी बातोंसे जीवको कुछ हित नही मिलता है, उसका महत्त्व तो हित करने वाले शब्दोका आका जाता है। इसलिये आगम शब्दसे शास्त्रका ग्रहण किया जाता है। तो जैसे आगम एक स्वतन्त्र प्रमाण है इसी प्रकार अर्थापत्ति स्वतन्त्र प्रमाण नही है।

अर्थापत्ति और अनुमान दोनोमे अन्यथानुपपत्तिका आधार – अर्थापत्तिका अनुमानमे अन्तर्भाव है क्योकि अनुमानमे भी यह बात पायी जाती है कि जो जिसके बिना न हो उसे देखकर उस अदृष्टका ज्ञान कर लेते। जैसे पर्वतमे अग्नि तो अदृष्ट है, अग्नि हमे नही दिख रही, पर धुवा देखकर हमने अग्निका अनुमान किया क्योंकि धुवा अग्नि बिना नही हो सकता। तो यह हुआ अनुमान ज्ञान। इसीको तुम कहते हो अर्थापत्ति। इसमे अन्तर क्या रहा ? यदि अन्यथानुत्पत्तिसे न जाना गया पदार्थ अदृष्ट अर्थको बताने लगे तब तो जिस चाहे को जो चाहे कह बैठो, कोई नियम नही बनेगा। यदि अन्यथानुत्पत्तिसे जाना गया ही पदार्थ अदृष्ट अर्थको बताता है तो यही अनुमान है।

अर्थापत्तिमे अन्यथानुपपन्नत्वके बोधकी अर्थापत्तिमे असम्भवता – अच्छा, अब यह बतलावो कि यह पदार्थ अमुकके बिना नहीं हो सकता है, अग्निका जला देना अग्निमे जलानेकी शक्ति बिना नही हो सकता, धुवा का होना यह अग्निके सद्भाव बिना नही हो सकता है। यह बात तुमने अर्थापत्तिसे हो जानली या अन्य प्रमाणोंसे जानली ? अगर कहो कि अर्थापत्तिसे जाना तो इतरेतराश्रय दोष हो गया। जब अर्थापत्ति सिद्ध हो तो अन्यथानुत्पत्ति जानी जाय और जब अन्यथानुत्पत्ति जानी जाय तो अर्थापत्ति जानी जाय। इतरेतराश्रय दोष उसे कहते है कि एक पदार्थ दूसरे के आश्रय रहे, वह दूसरा भी इस पहिले के आश्रय रहे, तो काम कुछ नही बन सकता। जैसे एक ताला जो बिना चाभीके ही दबानेसे बन्द हो जाता है, उस तालाकी चाभी तो डाल दी ट्रकमे, फिर लगा दिया ताला, तो उस समय वह स्थिति बन गयी कि ताला खुले तो चाभी निकले और चाभी निकले तो ताला खुले, तत्वस्वरूपके कथनमे यदि कोई विपरीत मार्गका प्रतिपादन करे तो उस वर्णनमे कभी ऐसी बात कहनेमे आ जाती है कि जिसमे इतरेतराश्रय दोष होता है।

अर्थापत्ति और अनुमानमे भेदकी असिद्धि - अर्थापत्ति और अनुमानमे भेद सिद्ध करने के लिए अर्थापत्तिवादी लोग ऐसा भेद डालते है कि अनुमानके लिए जो सम्बन्ध जाना जाता है, सम्बन्ध जाने बिना अनुमान तो नही बनता। जैसे अग्नि और धुवाका कार्य कारण सम्बन्ध है, अग्नि कारण है धुवा कार्य है, अग्निसे धुवा उत्पन्न होता है, इसी प्रकार साध्य साधनका जब सम्बन्ध ज्ञात हो तब अनुमान बनता है तो फिर जो सम्बन्ध ज्ञात होता है वह अर्थापत्तिके बाद ज्ञान होता है तो सम्बन्धके ज्ञानमे

पहिले यह अर्थापत्ति हुई और अर्थापत्तिके बाद अनुमान बना, इस तरह भेद डालते हैं लेकिन यह केवल कथन मात्र है। अरे अर्थापत्तिमे कोई भेद नही है, इस तरह अर्थापत्तिका अनुमानमे अन्तर्भावमे हुआ और अनुमान परोक्ष ज्ञान है। अब इस प्रकरणमें यह सिद्ध करते जायेंगे कि ज्ञान दो ही तरह के होते है एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। जो स्पष्ट जाने सो परोक्ष। तो अनुमान अस्पष्ट जानता है इसलिए वह परोक्ष है और अर्थापत्ति कोई अलग चीज नही है वह अनुमान है।

अर्थापत्तिमे अन्यथानुपपन्नत्वका प्रमाणान्तरसे भी अनवगम— अब इस प्रकरणमे यह पूछा जा रहा है कि अर्थापत्ति प्रमाणको उत्पन्न करने वाला जो पदार्थ है उस पदार्थमे और उस अदृष्ट अर्थमे कुछ सम्बन्ध जाना गया कि नही? अगर जाना गया तो किससे जाना गया? अर्थापत्तिसे जाननेकी बात कहो तो उसमे इतरेतराश्रय दोष आता, अन्य प्रमाणसे जाना गया तो वह अन्य प्रमाण क्या है? क्या भूयोदर्शन या विपक्षमे अनुपलम्भ? यदि कहो भूयोदर्शन है याने बराबर देखना इसमे अदृष्ट अर्थ की कल्पना होती है। हम रोज रोज देखते कि अग्नि जलानेका काम करती है, जो भी जलाना हुआ अग्निसे जला देते हैं तो बार-बार रोज-रोज देखनेसे हमे ज्ञान होगया कि इसमे जलानेकी शक्ति है तो बार-बार देखनेसे या विपक्षमे अर्थ नहीं पाया गया इसलिए अर्थापत्ति बनी? जैसे अग्निका विपक्ष है जल और जलमे जलानेकी शक्ति नही, क्या इस तरहसे जाना तुमने कि अग्निमे दाहक शक्ति है? क्योकि विपक्षमे अनुपलम्भ है उसका खण्डन करते हैं कि भूयोदर्शनसे अगर जाना तो साध्य धर्मीमे जाना या दृष्टान्त धर्मीमे? भाई तुम जिसमे सिद्ध करना चाहते उसमे उस शक्तिका पदार्थके साथ अविनाभाव तो तब समझा जाय जब बारबार दर्शन हो। जैसे हम देखते हैं कि आग है वहा धुवा है, दसोंबार देखा तब तो हमने पर्वतमे धुवा देखकर अग्निका ज्ञान किया। इसी तरह अग्निमे शक्ति है और यह जला रही है, ऐसा दोनोको यदि बारबार देखा हो तो तुम्हारी अर्थापत्ति बने, पर शक्ति तो अतीन्द्रिय है, वह इन्द्रियके द्वारा जानी ही नही जाती फिर बारबार दर्शन कैसे हो सके और फिर प्रकृतसाध्य धर्मीमे जब हमे उस सम्बन्धका ज्ञान नही है तो अर्थापत्ति हम कैसे बनायें? यदि कहो कि दृष्टान्तधर्मीमे भूयोदर्शन होता है उन दोनो बातोंमे बारबार दर्शन होता है तो दृष्टान्तमे तो अविनाभाव रहा और प्रकृतसाध्यधर्मीमे ज्ञान कराये यह नही हो सकता, और अगर हो जाय तो वह सब अनुमान कहलायेगा। यह प्राणी जिन्दा है क्योकि श्वास ले रहा है तो उस प्राणीका जिन्दापन क्या किसीने देखा है? हम झट अनुमान कर लेते है। अनेक अदृष्ट अर्थोका हम परिज्ञान जो करते हैं उसमे केवल एक ही युक्ति है। यह न होता तो यह न हो सकता था और यह है इस कारण वह अवश्य है। सारी युक्तियो का अनुमानका एक यही आधार रहता है, किसी तरहका अनुमान कर लो।

निरपेक्ष पूर्णज्ञानकी सारभूतता— भैया! ये ज्ञानकी किस्मे बतायी जा

रही हैं जो हममे उत्पन्न हुआ करती हैं। इन सब ज्ञानोमे सारभूत ज्ञान तो वह है जो आत्म शक्तिसे बिना मर्यादाके स्वभावत समस्त सत्को जाने ये हम आप लोगोके छुट पुट ज्ञान जिनपर लोग घमड करते है, मैने बहुत जाना, मैने बहुत विद्याये सीख ली, मै बहुत कलामे निपुण हूँ इस प्रकार जो अहकार भाव होता है जिन छुट पुट ज्ञानोमे वे ज्ञान तो सारे अपूर्ण है। पूर्ण ज्ञान हो जाय वहाँ अहकार असम्भव है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। उसका स्वभाव जानना है। वह तो स्वभावसे निरन्तर जानता रहता है और जानता है सत् को, जो है उसे जानता है सामने हो चाहे न हों। सत् है तो जाननेमे आ जायगा। यह तो हम आप लोगोके लिए एक कलक जैसी बात है कि हम सामने की चीजको तो जान सकते है और जो सामने न हो उसे नही जान सकते, ऐसा भेद ज्ञानमे नही पडा है ज्ञानकी ओरसे। पर कर्म बन्धनसे हम आप मलिन है, ऐसे ही आवरण पडे है, ऐसे ही विभावोने हम पर हुकूमत कर लिया है उस परिस्थितिमे हम इतने कमजोर है कि थोडा ही जान पाते है, जो सामने हो उसको ही जान पाते है, सर्वसत्को नही जान सकते, पर ज्ञानमे ज्ञानकी ओरसे यह अपूर्णता नही पडी है। ज्ञान तो समस्त प्रमेयको जो कुछ भी सत् हो उस सबको जान लेता है। तो ज्ञानोमे सारभूत ज्ञान सकल प्रत्यक्ष है जो समस्त पदार्थोंको एक साथ स्पष्ट बिना इन्द्रिय मनकी सहायताके केवल आत्मशक्तिसे जान लेता है।

निरपेक्ष पूर्वज्ञानके विकासका उपाय एकमात्र सहज ज्ञानस्वभावका अवलम्बन - अब साथ ही यह भी समझिये कि ऐसे सकल प्रत्यक्षका उत्पन्न करने का उपाय है अपने आत्मामे सहज सनातन स्वत सिद्ध जो एक ज्ञानस्वभावमे ज्ञान-स्वभावको जाने, मैं ज्ञानमात्र हूँ, इस प्रकार जो अपने ज्ञान स्वभावको जाने, अपने ही केन्द्रमे मग्न हो जाय तो यह सहज आत्मपरिज्ञान सकल प्रत्यक्षका कारण बनता है। इसमे सारभूत ज्ञान तो अपने ही ज्ञानस्वरूपका ज्ञान करना है। इसीमे ही शरण मिलता है, इसीमे समस्त अशान्ति दूर होती है। तो हम आप इस ज्ञानस्वभावकी उपासनाके प्रसादसे विशुद्ध ज्ञान उत्पन्न करें और ससारके दु खोंसे सदाके लिये छुटकारा पा ले, ऐसा पुरुषार्थ करे तो इसमे ही इस मनुष्य जीवनकी सफलता है।

अर्थापत्ति और अनुमानमे भेद सिद्ध करनेका प्रयास - अर्थापत्तिप्रमाण-वादी यहाँ अपना मन्तव्य रख रहे है -साधनसे सपक्षदृष्टान्तमे प्रवृत्त हुए प्रमाणसे, सर्वोपसहाररूपसे अर्थात् व्याप्तिरूपसे अपने साध्यके अविनाभावपनेका निश्चय होता है और अर्थापत्तिका उत्थापन करने वाले पदार्थसे प्रकृत साध्यधर्मीमे ही प्रवृत्त हुए प्रमाण से सर्वोपसहाररूपसे अदृष्ट अर्थके अन्यथानुपपन्नत्व अर्थात् अविनाभावपनेका निश्चय होता है। यह अनुमान और अर्थापत्तिमे भेद है। इसका आशय यह है कि, जैसे यह अनुमान बना कि इस पर्वतमे अग्नि है धुवा होनेसे, जहा जहा धुवा होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है जैसे रसोईघर। इसमे साधन धूम पहिले रसोईघरमे माना और उससे

वहा अग्निका ज्ञान किया फिर व्याप्ति बनी उससे जहा जहा धुवा होता है वहा वहा अग्नि होती है यह अविनाभाव बना फिर पर्वतमे साध्य अग्नि सिद्ध हुई। किन्तु अर्थापत्तिमे सीधे ही प्रमाणप्रसिद्ध अर्थमे अपने ही प्रकृतधर्ममि अदृष्ट अर्थके अन्यथानुपपन्नत्व का निश्चय हो जाता है। यह दोनोमे अन्तर है। इस कारण अर्थापत्तिका अनुमानमे अन्तर्भाव नहीं होता।

अर्थापत्ति व अनुमानमे पार्थक्यकी आशङ्का-समाधान—अर्थापत्ति और अनुमानके भेदकी आशङ्कापर आचार्य महाराज उत्तर देते हैं कि साधन सपक्षमें अन्वितमात्र होनेमे साध्यका गमक नही है किन्तु अविनाभावमे अथवा विपक्षमे अन्वित न हो इससे गमकताकी दृढता होती है जैसे अनुमान बना कि वज्रलोह लेख्य है अर्थात् लोहेकी छेनीस उसपर लिखा जा सकता है पार्थिव होनेसे। तो यहा यह व्याप्ति साध्यावगमनमे समर्थ है कि जो लोहलेख्य नही होता है वह पार्थिव भी नही होता है। इसमे अन्तर्व्याप्तिका बल है जिससे साध्यसिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि अन्यथानुपपन्नत्व सिद्ध हो तो साधन साध्यका गमक होता है। फिर सपक्षान्वयकी युक्तिसे क्या लाभ है, यदि कहो कि सपक्षानुगम न मानें तो साधन साध्यका कैसे गमक हो। इसका समाधान यह है कि जैसे अर्थापत्तिमें अन्यथानुपपत्तिमे अर्थ अदृष्ट तत्त्वकी सिद्धि करता है। इसी प्रकार साधन भी अन्यथानुपपत्तिसे साध्यका गमक होता है। इस तरह अर्थापत्ति अनुमान ही है।

अविनाभाविताके लक्षणसे अर्थापत्ति और अनुमानमे अपार्थक्य—सपक्षानुगम व अननुगमका अनुमान व अर्थापत्तिमे भेद भी जचता हो तो भी इतनेमात्र से उसमे पार्थक्य नही कहा जा सकता है, अन्यथा कोई अर्थापत्ति तो पक्षधर्मसहित होती और कोई अर्थापत्ति पक्षधर्मरहित होती है तो यो ये भी दो प्रमाण अलग अलग हो जावेंगे। पक्षधर्मत्वरहित भी अर्थापत्ति होती है। जैसे नदीपूरको देखकर ऊपर वृष्टि हुईका ज्ञान किया तो यहा जिस क्षेत्रमे वृष्टि है वहा नदीपूर नही और जिस क्षेत्रमे नदीपूर है उस क्षेत्रमे वृष्टि नही। यहा पक्ष 'ऊपर वृष्टि हुई है" यह तो ऊपर' अर्थापत्ति बताने वाला अर्थ याने नदीपूर कहा है। इससे अन्तगत सूक्ष्म भेद भी हो तो भी इतने मात्रसे अर्थापत्ति व अनुमानमे भेद नही माना जा सकता, क्योकि, अभाव अविनाभाव वाले अर्थसे अन्य अर्थका ज्ञान होना यह मूल लक्षण अर्थापत्ति और अनुमान दोनोमे पाया जाता है। यद्यपि सपक्षानुगम अर्थात् दृष्टान्तोमे साध्य साधनका पाया जाना तथा विपक्षानुपलम्भ अर्थात् विपक्षोमे साध्य साधनका न पाया जाना भी, अनुमानकी समीचीनताके साधक हैं तथापि यह सब सुगम अनुगम करनेके लिये विस्तारसे प्रतिपादन है, वास्तवमे तो जहा अन्यथानुपपत्ति पाई जावे वहा अनुमान प्रवृत्त होता है और ऐसे ही अन्यथानुपपत्ति प्रवृत्त होती है। इससे अर्थापत्ति अनुमानमे पृथक् नही है।

शक्तिके अभावकी आशङ्का—अर्थापत्तिके उदाहरणमे यह बात कही गयी थी कि अग्निको देखकर अग्निकी शक्तिका परिज्ञान करना यह अर्थापत्ति प्रमाण होता है अर्थात् यदि शक्ति न होती तो यह अग्नि जला कैसे देती ? अग्निमे जला देनेकी शक्ति है, इस अदृष्ट अर्थका ज्ञान अर्थापत्तिसे होता है। इसको सुनकर नैयायक लोग जो कि पदार्थके समूहको कार्यकारी मानते है, पदार्थमे कोई शक्ति अलग है यह स्वीकार नही करते सो ही नैयायिक लोग यह प्रश्न कर रहे हैं कि आगका स्वरूप तो प्रत्यक्षसे ही समझमे आ रहा है यह है- आग। अब उस आगके अलावा कोई उसमे अतीन्द्रिय शक्ति है इस बातको जाननेमे कोई प्रमाण नही है फिर अर्थापत्तिमे प्रमाणपना कैसे आ सकता है ? शक्ति कोई विशेष नही है, चीज है, चीज मिल गयी तो काम हो गया। उस शक्तिका अभाव कर रहा है यह नैयायक सिद्धान्त। शक्तिके विषयमे नैयायिक लोग अपना मतव्य रख रहे है कि पदार्थमे पदार्थ स्वरूप ही स्वय शक्ति है। पृथ्वीमे पृथ्वीपनाका ही नाम शक्ति है और उस पृथ्वीपनेके सम्बन्धसे वे पृथ्वी आदिक कार्यकारी होते हैं। शक्ति अलग कोई चीज नही है। कई चीजोके मेलसे कार्य बनता है, उसमे जो अतिम मेल है वह कार्यकारी होता है। जैसे बहुतसे सूत इकट्ठे हो गये फिर भी उससे कपडाका कार्य नही बनता जब तक कि अन्तिम ततुका सयोग न हो जाय। तो अन्तिम ततुका सयोग होना यही एक शक्ति है। शक्ति कोई अलग वस्तु नही है। यह नैयायिक सिद्ध कर रहा है।

सामग्रीसे ही कार्य होनेके हेतुसे शक्तिके अभावकी मान्यता—शक्तिके विषयमे कुछ लोग तो यह मान लिया करते है कि शक्ति कुछ अलग वस्तु है, वस्तु कुछ अलग है। जैसे कि आजके विज्ञानमे भी लोग ऐसा कहा करते है कि यह पदार्थ है, भौतिक पदार्थ यह अलग चीज है और शक्ति अलग वस्तु है। कोई लोग तो शक्तिको इतना पृथक् मानते है और कुछ लोग यह भी कह सकते हैं कि शक्ति न आँखो दिखती है न कुछ नजर आती है। जो पदार्थहै उस पदार्थका जो स्वरूप है, उस पदार्थका जो भाव है वही शक्ति है। कुछ लोग इस तरह कहते है। तो यहाँ शक्तिका अभाव बताने वाले अपना मतव्य यह रख रहे हैं कि पदार्थका सयोग हुआ जिस तरह पदार्थोंका जुटना शुरू हुआ और उसमे जो अन्तिम बात बनी उससे कार्य बना ही, शक्ति कुछ अलग नही है। जब कोई यह पूछेगा कि कार्य होना है और कुछ तथा पदार्थ है और कुछ। जैसे कपडा है वह तो है एक दूसरा पदार्थ और सूत ततु यह दूसरा पदार्थ है। तो एक पदार्थ दूसरे पदार्थकी शक्ति कैसे बन जायगा ? पदार्थका ही नाम यदि शक्ति है, शक्ति कुछ अलग चीज नही है तो जैसे कभी हवासे पानी बन जाता है तो एक पदार्थ क्या दूसरे पदार्थकी बिना शक्तिके बन गया ? तो इसके उत्तर मे नैयायिक कहते हैं कि यह प्रश्न तो वहा भी रखा जा सकता है जो शक्तिको पदार्थ मे मानते है और शक्तिसे अभिन्न मानते हैं। जब शक्तिसे अभिन्न पदार्थ हो गया तो पदार्थ कह लो या शक्ति कह लो। कोई अलग चीज तो नही रही।

शक्तिकी अनुपयोगिताका मन्तव्य - कदाचित् यह कहो कि शक्ति उन पदार्थोंका उपकार करती है पदार्थोंके मेलसे कार्य तो बनता है, पर उन पदार्थोंके मेल मे एक ऐसी स्पीड आती है, उपकार होता है, वेग आता है कि कार्य होने लगता है। तो यह उपकार शक्तिने किया, अतीन्द्रिय शक्तिके द्वारा शक्तिमय पदार्थका उपकार किया जाता है। तो यहा पूछा है कि शक्तिने जो शक्तिमान पदार्थका उपकार किया वह भिन्न है कि अभिन्न ? यदि भिन्न है तो उपकार करनेवाली शक्ति भी भिन्न है तो उसका भी अन्य शक्तिसे उपकार हुआ, इस तरह अनवस्था दोष आता है। जैसे रसोई बनती है, आग जलाया, बटलोहीमे पानी भरकर व चावल भरकर चूल्हेपर रख दिया तो चावल पक गए तो चावल सब चीजोका सम्बन्ध रखकर बन गए। अब उसमे शक्तिकी क्या कल्पना करना ? देखते है रोज कि किन किन पदार्थोंका मेल करनेमे कौनसा काम बनता है, बनते जा रहे है काम। शक्तिकी क्या जरूरत ? ऐसा शक्तिको न मानने वाला सिद्धान्त कर रहा है।

अनुमान प्रमाणसे शक्तिकी सिद्धि– शक्तिका अभाव मानने वालोकी शङ्काके समाधानमे आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि तुम शक्तिका अभाव कहते हो तो क्या इस वजहसे शक्ति नही मानते कि शक्तिको बताने वाला कोई प्रमाण नही है अथवा इस कारण तुम शक्तिको नही मानते कि वह शक्ति अतीन्द्रिय है। शक्ति बतानेवाला कोई प्रमाण नही है, यह बात तो तुम्हारी गलत है क्योकि कार्यकी उत्पत्ति अन्यथा बन ही नही सकती, इस हेतुसे उत्पन्न हुए अनुमानसे शक्तिका ग्रहण होता है। यदि अग्निमे दाहक शक्ति नही होती तो अग्निमे जलानेका काम हो ही नही सकता था। एक आग है एक मिट्टीका ढेला पडा है। मिट्टीके ढेलेमे जलानेकी शक्ति नही है, आग मे जलानेकी शक्ति है। मिट्टीका ढेला क्यो नही जला पाता ? यह प्रश्न किया जाय तो क्या उत्तर दोगे ? उत्तर यही होगा कि उस मिट्टीके ढेलेमे जलानेकी शक्ति नही है तो अनुमानसे शक्तिका सद्भाव सिद्ध होता है।

सामग्रीसे कार्य होनेमे भी शक्तिका चमत्कार यदि यह कहो कि शक्ति की बात ही नही है वहाँ, सामग्री कई मिल गयी उनमे कार्यकी उत्पत्ति हो गयी। ईंधन जल गया, इसमे शक्तिकी कौनसी तारीफ है ? तो उनको समाधान कराया जा रहा है कि हम सामग्रीका निषेध नही कर रहे, सामग्री इकट्टी जुडेगी तब कार्य बनता है यह बात सही है। सामग्रीका स्वरूप कार्यकारी है, किन्तु अमुक सामग्री अमुक प्रकार का कार्य करेगी, इसमे व्यवस्था शक्तिसे होती है। ईंधन मिला, आग मिली तो आग जल गयी, यह ठीक है रोज रोज देखते हैं, उसका हम निषेध नही करते किन्तु आग जलानेके कामका कारण बनता है इसमे हेतु क्या है ? प्रतिनियत सामग्री प्रतिनियत कार्यको करती है इसको अतीन्द्रिय शक्तिका सद्भाव माने बिना नही बताया जासकता।

सामग्री होनेपर भी प्रतिबधक द्वारा शक्तिप्रतिबध होनेसे कार्यका

अभाव कभी अग्निके पास कोई प्रतिबन्धक मणि रख दिया जाय कि फिर अग्नि जलानेका काम नही कर सकती। जैसे लोग किन्ही समारोहोपर ऐसा चमत्कार दिखाते हैं कि यह लो जलती हुई धधकती हुई लोहेकी साकलको भी हाथोसे खीच रहे है फिर भी हाथ नही जलता। तो वह करता क्या है कि हाथमे कोई ऐसी जडीका रस लगा लेता है कि फिर हाथपर अग्नि भी रखले तो हाथ नही जलता। तो वहाँ अग्नि तो वही है वह जलानेका काम क्यो नही कर पाती ? यदि सामग्री मिलकर कार्य किया करती है तो सामग्री तो मिली मिलाई है, फिर वहाँ आग क्यो नही जलाती ? यो नही जलाती कि उस समय जो भी मणि रखी है या जो भी जडी- बूटीका रस पडा है उसने अग्निकी शक्तिमे रुकावट कर दी है। शक्ति माननी पडेगी। यदि शक्ति व शक्तिका प्रतिबन्ध न मानोगे तो फिर यह बतलावो कि उस मणिने अग्निका स्वरूप मिटा दिया या सहकारियोका स्वरूप। अग्निका स्वरूप तो ज्योका त्यो दिख रहा है ? क्यो नही फिर ईंधनको वह आग जलाती ? तो बात वहाँ यह हुई कि उस मणिने अग्निकी शक्तिका प्रतिबंध कर दिया। सहकारी भी सब मौजूद है, ईंधनका सयोग है, धधकती हुई अग्नि पासमे पडी है, सब कुछ है फिर क्यो वह आग काम नही कर रही है ? यो नही कि उस मणिने शक्तिकी रुकावट कर दी।

शक्ति और शक्त्यशोका उपलम्भ—पदार्थोमे शक्ति पडी हुई है। जीवमे ज्ञानकी शक्ति है, वह जानता है। ये चौकी आदिक पदार्थ क्यो नही जानते, जीव ही क्यो जानते ? अरे, जीवमे ज्ञानकी शक्ति पडी है और जीवोमे भी जो ऐसी विभिन्नताएँ देखी जाती है कि अमुक जीव कम और अमुक जीव अधिक जानता है तो वहाँ कौनसा अन्तर आ गया ? एक शक्तिके विकासका अन्तर है। शक्तिमे डिग्रियाँ होती हैं जिसे अविभाग प्रतिच्छेद कहते है, उसके अश। जैसे बुखारमे अश पडे रहते है, इसमे १०१ अशका बुखार है, इसमे १०२ अशका है। अच्छा बतावो कि किसीके १० अशका बुखार भी होता है क्या ? ९६ डिग्रीसे कम तो बुखार होता ही नही है। ९५ डिग्री बुखार हो या उससे और कम हो तो फिर जीवित ही नही रहता। तो यद्यपि किसी ने अशका बुखार नही देखा, ९०–९० अशका बुखार नही जाना लेकिन वह जो १०० अशका बुखार है उसमे जो इस प्रकारका माप है उसके अश बन जायें तो एक करके ऐसा १०० अश बुखार है यह कहा जाता है।

शक्तियोके लोकदृष्टान्त—दूधमे चिकनाई होती है बकरीके दूधमे कम चिकनाई होती है, गायके दूधमे उससे अधिक, भैसके दूधमे उससे अधिक और गाडर के दूधमे सबसे अधिक। तो उनमे अन्तर क्या पडा ?, चिकनाईका अश बढ गया। और, बताने वाले कहते भी है कि इस दूधमे १०० अश चिकनाई है इसमे १५० अश चिकनाई है, इसमे २०० अश चिकनाई है। तो शक्तिके अश होते है। और उन अशों का विकास जैसे होता है तैसे पदार्थमे कार्य बनता है। शक्तिका लोप नही किया जा

सकता है। एक मनुष्य बहुत अधिक बोझ उठाकर फेंक देता है और एक मनुष्य ५ सेर बोझ नही उठा पाता, तो क्या अन्तर आ गया ? वह अन्तर है एक शक्तिका। शक्ति सभी पदार्थोंमे हुआ करती है। अभी इस तख्तपर ८ आदमी बैठना चाहे तो बैठ सकते है क्योकि नया है, पर २०–२५ वर्ष बाद जब कि यह पुराना हो जायगा, पुराना हो जायगा तो फिर इसमे दो चार आदमी न बैठ सकेंगे। बैठेंगे तो वह फट टूट जायगा। तो अब क्या हो गया ? उसकी शक्तिमे अन्तर आ गया। शक्तिके अश कम हो गये। तो शक्ति माने बिना पदार्थ कार्य कर सकेगा यह बात नही घटायी जा सकती।

सामग्री होनेपर भी प्रतिवन्धक व उत्तम्भकके सद्भावके प्रभावसे शक्तिकी सिद्धि पदार्थ हैं और वे निरन्तर परिणमते रहते हैं। उनमे उस प्रकार के परिणमनकी शक्ति पायी जाती है जिससे पदार्थ भिन्न-भिन्न काम कर रहे हैं तो वे सब पुद्गल। भौतिक। उनमे यह बात कही गयी कि यह पदार्थ इस तरहका काम करे, यह पदार्थ इस तरहका काम करे, उनमे उस प्रकारकी शक्ति पायी जाती है। तो केवल इतना माननेसे काम न चलेगा कि चीजे इकट्ठी हो गयी तो कार्य बन गया, शक्ति नामकी कोई चीज नही है। अगर चीजोके मिलनेसे ही कार्य बन जाता है, उस मे शक्तिकी कोई बात नही मानी जाती है तो जब अग्नि धधकती है, ईंधन भी पडा हुआ है, वहाँ कोई प्रतिवन्धक मणि वगैरह रख देनेसे उस ईंधनको वह अग्नि क्यो नही जलाती ? क्या उस मणिने या उस जडी बूटीके रखने उस अग्निका स्वरूप मिटा दिया या उस सहकारीका स्वरूप मिटा दिया ? नैयायिक कहते हैं कि उस प्रतिबधक मणिने न तो अग्निका स्वरूप मिटाया और न सहकारी का, किन्तु अग्निका स्वभाव ही विकृत कर दिया, इसलिए अब जलानेका कार्य नही बनता। जैसे पानी बर्तन आग आदि सभी चीजें इकट्ठी हो तो चावल पक जाते हैं, कार्य बन जाता है। तो जैसे यहाँ सामग्री है इसी प्रकार एक सामग्री यह भी है कि अग्निका स्वभाव मिटाने वाली प्रतिबधक चीजका अभाव भी हो वह भी एक सामग्रीमे सामिल है क्योंकि प्रतिबधक वस्तुके अभाव बिना अग्नि कार्य नहीं कर पाती। तो इस सिद्धान्तने यह कहा है कि जैसे सब चीजें इकट्ठी होती है तब कार्य बनता है तो एक कारण यह भी और होना चाहिये कि एक चीजमे बाधा डालने वाली जो दूसरी चीज है, वह भी पास न हो तो कार्य बनता है। तब उनसे पूछा जा रहा है कि ऐसी भी हालतमे कि अग्नि आदिक सब सामग्री हैं और प्रतिबन्धक मणि पासमे रखी है तो अग्नि कार्य नही कर पाती। एक मणि यदि उत्तम्भक और पासमे रख दे तो आग कार्य करने लगती है। तो उत्तम्भक मणिके रख देनेपर वह कार्य न होना चाहिए पर होता जरूर है इससे यह बात बतलाना व्यर्थकी है कि सामग्री इकट्ठी हो जाय यों काम होगा। और सामग्री इकट्ठी मिलनेपर काम तो होता है, पर उस सामग्री मे उस प्रकार काम करनेकी शक्ति है तब कार्य होता है। शक्ति न हो तो पदार्थ कार्य करनेमे समर्थ नही है।

शक्तियोके कारण पदार्थ व्यवस्था– शक्तियोका नाम जैन सिद्धान्तमे गुण रखा है आत्मामे कितनी शक्तियां है ? जाननेकी शक्ति, देखनेकी शक्ति, वही रमनेकी शक्ति, ये सारी शक्तिया इस आत्मामे मौजूद हैं पुद्गलमे कुछ अन्य जातिकी शक्तिया है, रूपशक्ति है जिससे इसमे रूप उत्पन्न होता है। रसकी शक्ति है, स्पर्शकी शक्ति है, गधकी शक्ति है इस प्रकार अनेक शक्तिया इस पुद्गलमे है और, इन्ही शक्तियो के कारण यह भेद पडता है कि यह अमुक जातिका पदार्थ है। यदि शक्ति न मानी जाय तो सारा विश्व एकान्तात्मक हो जायगा ये न्यारे–न्यारे पदार्थ कुछ न रहेंगे। ये पदार्थ जो न्यारे–न्यारे समझमे आ रहे है, यह रूई है यह मक्खन है, यह आग है, यह पानी है, यह पलङ्ग है, यह पुस्तक है, ऐसी जो न्यारी–न्यारी बाते समझमे आ रही हैं वे इसी कारण तो है, ये न्यारे–न्यारे पदार्थोंकी शक्तिया भिन्न–भिन्न है, सबका अलग–अलग स्वरूप है सबमे अलग–अलग काम करनेंकी शक्ति है।

पर्यायशक्तिकी प्रकटरूपता– शक्ति पदार्थमे दो प्रकारसे रहती है एक तो शाश्वत शक्ति (ओघ शक्ति) और एक पर्याय शक्ति। जो पदार्थ जिस हालतमे है उस हालतमे जो शक्ति रह सकती है वह उसी हालत तक रहेगी। पर्याय मिटी कि उस प्रकारकी शक्ति भी मिटी। जैसे मनुष्यमे शक्ति नाना प्रकारके हिसाब आदिक काम करने की है और यह ही मनुष्य मर कर यदि पेड होगया तो जीव तो वह ही है, क्या वह भी हिसाब किताब लगाता रहेगा, क्या वह भी यहाँ की जैसी व्यवस्थाएँ बना सकेगा ? तो पर्याय शक्ति पर्याय तक रहती है, पर उन सब पर्यायोमे भी मूलभूत शक्ति पदार्थमे सदा काल रहती है ? न उस तरहकी शक्ति भी रही पेडमे, पर यह शक्ति तो उसमे पायी जाती कि जडको मिट्टी मिले पानी मिले तो जडसे ही खीच खीच कर वे अपना सारा आहार पानी ले लेते हैं। यह शक्ति मनुष्यमे नही है कि परोमे मिट्टी पानी लगा दे तो सारे शरीरमे भोजन चला जाय यह बात इस पर्यायमे नही है। तो जिस पर्यायमे जो बात हो सकनेकी है वह बात उस पर्याय तक है।

उल्टा वृक्ष—अरे देख तो जरा, यह मनुष्य एक उल्टा पेड है पेडोकी जडे नीचे होती है पर मनुष्यकी जड ऊपर हैं जड तो एक होती है और उसके बाद फिर शाखाये फूटी हैं। हाथ पैर तो शाखा हैं मनुष्यके, जड यह शिर है और वह पद्धति भी देख लो कि पेड जडसे आहार लेते है तो मनुष्य शिरने आहार लेते हैं। मुखसे आहार लेते हैं। जो जडसे आहार इस उल्टे पेडने भी लिया और सीधे पेडने भी लिया। ऐसी ही बातें देखकर चूंकि यह जीव ही ब्रह्मस्वरूप है और जीवोमे श्रेष्ठ जीव मनुष्य है सो ब्रह्मका स्वरूप कुछ लोगोने ऐसा बताया है कि इसकी जड ऊपर है और नीचे शाखायें है वेदका एक वाक्य है कि उस ब्रह्मकी जड तो ऊपर है और शाखाये नीचे हैं। यह इसीका ही तो वर्णन है। जीवोमे श्रेष्ठ जीव मनुष्य है और मनुष्यका आकार ऐसा है कि इसकी जड तो ऊपर है जिससे यह भोजन पान करता है और शाखाये नीचे लटक रही है।

शक्तिका प्रकट प्रभाव—जिस पर्यायमे जिस प्रकार होनेकी शक्ति है उस पर्यायमे वैसा ही हो सकता है। तो कुछ शक्ति पर्यायके साथ रहती है और कुछ शक्ति द्रव्यमे शाश्वत रहा करती है। शक्तिका लोप नही किया जा सकता। इतने बडे बडे काम चल रहे हैं। एक यही ले लो—इजन कितनी बडी रेल गाडीको खींच रहा है, उसमे जो स्टीम बना है उस स्टीममे इतनी शक्ति है कि इतने बडे वजनको खींच दे कि जिस वजनको ५० हाथी मिलकर भी नही खींच सकते। तो ये सब चीजें शक्तिके चमत्कारकी दिख तो रही है, शक्तिका कैसे अभाव किया जा सकता है ? कोई धातु परिमाणमे बहुत छोटी है मगर उसमे वजनकी शक्ति, गम की शक्ति कार्यकी शक्ति अधिक है। कोई कितनी ही धातु वजनके परिमाणमे बडी है और उसमे शक्ति कम है तो ये सब पर्यायोकी अपनी अपनी भिन्न भिन्न शक्तियां है।

शक्तियोका विचित्र प्रभाव उन शक्तियोंमे भी एक दूसरेकी शक्ति मिटा दे, प्रतिबंध कर दे ऐसी भी शक्तिया हैं। अग्निमे जलानेकी शक्ति है, ईंधनको जला देगी। अग्निके पास प्रतिबन्धक मणि रख दे तो अग्नि जल नही सकती और उसके पास उत्तम्भक मणि रखदे तो वह जलनेका काम करती है। एकने शक्ति रोका और एकने शक्ति रोकने वालेको रोका तो कार्य होने लगा। तो यह कैसी विचित्र शक्ति है और यह सारा जगत शक्तिका ही तो खेल है। जितने वैज्ञानिक चमत्कार आज चल रहे हैं—राकेट बेतारका तार, रेडियो प्रोग्राम, ये सब क्या हैं ? सब शक्तियोका ही जगाना है। तो पदार्थमे ऐसी भिन्न भिन्न अनेक शक्तिया होती हैं, उन शक्तियोका अनुमान किया जाता है।

अर्थापत्तिका अनुमानमे अन्तर्भाव और अनुमानकी परोक्षरूपता—अर्थापत्ति प्रमाणवादी तो यह कह रहे है कि शक्तिका ग्रहण अर्थापत्तिने किया, उसपर जैन शासन यह कह रहा है कि उन शक्तिका ज्ञान अनुमानसे होता, जिसे तुम अर्थापत्ति कहते हो, अर्थात् अगर जलानेकी शक्ति न होती तो आग जला नहीं सकती थी। इस बुनियादपर शक्तिका ज्ञान हुआ तो इसी बुनियादपर तो अनुमान बनता है, इसलिए शक्तिका अनुमान किया गया है। अर्थापत्ति कोई जुदा प्रमाण नहीं है। अभी यहाँ अनेक प्रमाण बताये जा रहे थे कि आगम भी प्रमाण है, अर्थापत्ति भी प्रमाण है, अनुमान भी प्रमाण है, अभाव भी प्रमाण है। सभी प्रमाणोको कुछ जैन शासन की ओरसे कुछ अन्य दार्शनिकोंकी ओरसे बताया जा रहा था। अब उन सब प्रमाणोको प्रत्यक्ष और परोक्षमे अन्तर्भाव करनेके लिये यह सब बताया जा रहा है कि अमुक प्रमाण अमुकमे अन्तर्भूत होता है और वह परोक्ष है या प्रत्यक्ष ? अर्थापत्तिका अनुमानमे अन्तर्भाव है और यह ज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं, इस प्रकार ज्ञान सब दो भागोमे बटे है। कोई ज्ञान प्रत्यक्ष है जो कि स्पष्ट जानता है। कोई ज्ञान परोक्ष है जो कि अस्पष्ट जानता है। इस प्रकार आत्माके ज्ञान स्वरूपके विकास इन दो ढङ्गोंमे हो रहे हैं।

शक्तिमान सामग्रीसे कार्य निष्पत्ति---अर्थपत्ति अथवा अनुमान प्रमाणसे पदार्थोंकी शक्ति सिद्ध होती है। प्रत्येक पदार्थ शक्तिमान है और उस शक्तिके ही आधारपर पदार्थ काय किया करते है, किन्तु नैयायिक लोग पदार्थमे शक्ति नही मानते। उनका कथन है कि पदार्थ मिल गये तब कार्य होने लगा। शक्तिके माननेकी क्या जरूरत है। आग ईधन मिल गये तो जलने लगा। अब उसमे किसी अतीन्द्रिय शक्तिकी क्या कल्पना करना। उनके समाधानके लिये यह बताया गया है कि यदि, एक सामग्रीका मिल जाना ही कार्यको करने वाला है, उसमे शक्ति कुछ नही मानी जाती तो फिर यह बतावो कि जिस समय अग्निके पास प्रतिबधक मणि रख दी जाय तो अग्नि कार्य क्यो नही करती ? प्रतिबधक उसे कहते है जो सब कुछ सामग्री मिल जानेपर भी कार्य न होने दे। जैसे कोई मत्रवादी मत्र पढकर पदार्थके कार्य करने की शक्तिको न होने दे तो ये सब प्रतिबधक कहलाते है। इसपर उनका उत्तर था कि सामग्रीका मिलना कार्यकारी है तो उसी सामग्रीमे यह भी एक सामग्री कहलाती है कि प्रतिबधकका वहा अभाव है। तब उन्हे फिर समाधानमे कहा गया कि प्रतिबधक भी मौजूद है, सामग्री भी मौजूद है और एक उत्तम्भन मणि और रख दी जाय, उत्तम्भक उसे कहते है तो प्रतिबधका अभाव नही है, वह मणि भी मौजूद है फिर कार्य क्यो नही हो रहा है ?

शक्तिके द्वारा ही प्रतिबधकत्व व उत्तम्भकत्वकी सिद्धि---बात वहा यह थी कि प्रतिबधक मणिने अग्निकी शक्ति रोकी थी और उत्तम्भक मणिने फिर प्रतिबधककी शक्ति रोकी तो अग्नि अपना कार्य करने लगी; पर ऐसा न मानकर एक अभावको ही सामग्री माना जा रहा है। इसपर कहा जाता कि चलो अभाव भी एक सपकारी सामग्री सही अब यह तो बतलावो कि प्रतिबधक वस्तु और उत्तम्भक वस्तु दोनोका अभाव होनेपर अर्थात् दोनो ही न हो तो अग्नि अपने कार्यको करती है कि नही करती ? नही करती यह तो कह नही सकते क्योकि प्रत्यक्षमे हर जगह देखा जा रहा है कि आग है तो वह रोटी पका देती, चीजोको जला देती। यदि कहो कि प्रतिबधक और उत्तम्भक मणि मत्रके अभाव होनेपर अग्नि अपना कार्य करती है तो उत्तम्भकका अभाव कार्यकारी हुआ या प्रतिबधकका अभाव या उनमेसे किसी एकका अभाव या दोनोका अभाव ? यदि कहो कि दोनोका अभाव कार्यकारी है तो दोनो ही न हो तब कार्य होना चाहिए। पर उत्तम्भक रखा और कार्य हो जाता है। यदि कहो कि एकका अभाव कार्यकारी है तो किसका अभाव कार्यकारी है। यदि कहो कि प्रतिबधकका अभाव कार्यकारी है तो प्रतिबधकके होनेपर कार्य क्यो हो गया ? यदि कहो कि उत्तम्भकका अभाव कार्यकारी है तो उत्तम्भकका अभाव है और प्रतिबन्धक मौजूद है तब कार्य हो जाना चाहिए। मतलब यह है कि शक्ति सीधा मान लो तो सारा कार्य प्रबध समस्या सुलझ जाती है। पदार्थमे शक्ति है। उस शक्ति का प्रतिबध कोई करे तो कार्य नहीं हो सकता। उस शक्तिका अनुमान

प्रमाणसे ग्रहण होता है।

तुच्छाभावमे सहकारीत्वका अभाव प्रसग तो यह है अर्थापत्तिका अभाव अनुमानमे बतानेका, किन्तु प्रसगवश विषय छिड गया कि शक्ति वास्तवमें पदार्थमे है अथवा नही ? प्रतिबन्धका अभाव कार्यमे सहकारी माना है तो वह कौन सा अभाव सहकारी है ? अभाव होते हैं चार। प्रागभाव प्रध्वसाभाव इतरेतराभाव, और एक सर्वथा अभाव। तो प्रतिबधकका प्रागभाव कार्यकारी यो नही है कि फिर प्रतिबधक हट जानेपर वह तो प्रध्वस बन गया, फिर कार्य न होना चाहिए। और प्रध्वसाभाव यो कार्यकारी नही कि जब प्रतिबधक भी न था, प्रागभाव था तब कार्य न होना चाहिए था। इतरेतराभाव तो सदा है चाहे प्रतिबन्धक उत्तम्भक दोनो कहीं हो। जब प्रतिबधक भी सामने है और उत्तम्भक भी सामने है या भिन्न भिन्न स्थानमे है, इतरेतराभाव तो है ही तो प्रतिबन्धकमे उत्तम्भक नहीं और उत्तम्भकमे प्रतिबन्धक नहीं तब कार्य हो जाना चाहिये या न होना चाहिए। यह सब व्यवस्था एक शक्ति माने बिना नही हो सकती। बात यही सही है कि जहा अन्वयव्यतिरेक कार्यके साथ लगा हो वह अभाव वहा सहकारी है। और प्रकारसे अभावकी व्यवस्था बन ही नही सकती।

शक्तिवैचित्र्यका दर्शन—पदार्थ है उसमे शक्ति है और उस शक्तिका निरन्तर कोई न कोई परिणमन चलता है चाहे उसका कम विकास हो या अधिक निरन्तर शक्ति रहती है और उस शक्तिका विकास भी कुछ न कुछ रहा करता है। शक्ति नही है तो पदार्थ भी कुछ नही है। पदार्थ क्या अशक्त है। किसी कामके करनेमे सामर्थ्य नही है क्या ? काम हो रहे हैं क्या ये सामर्थ्य बिना हो रहे हैं। शक्ति है और उस शक्तिसे ही सारी ससारकी व्यवस्था नीति व्यवस्था, आत्माके परिणमनकी व्यवस्था सब कुछ उसीके आधारपर है। शक्ति न मानने वालो यही बतावो अच्छा कि अग्नि वही है, मनुष्य बहुतसे खडे हुए हैं, उस अग्निके सम्पर्कमे एक मत्रवादी किसी पुरुषके प्रति मत्र पढता है और वह अग्नि उसपर असर नही कर पाती शेषोपर असर कर देती तो यह भेद कहाँसे आया कि वही अग्नि उस ही समय दूसरेको तो जला दे और जिसपर मत्र किया है उसे न जलाये ? यह भेद कैसे पड गया ? यदि सामग्रीसे ही कार्य बने तो सामग्री दोनोके लिये एकसी है, यह भेद बना क्यो ? कोई पूछे जैन शासन वादियोसे भी कि तुम बतावो क्यो भेद बना ? भेद यो बना कि वस्तु अनेक शक्त्यात्मक होती है। यदि उनमेंसे किसी शक्तिका किसी पुरुषके प्रति किसी मत्र द्वारा अगर प्रतिबन्ध कर दिया तो अन्य शक्तिका प्रतिबन्ध तो नही हुआ। उसीके प्रति ही शक्तिकी रुकावट की गई है, इस कारण वहा कार्य नही करती और और चीजें जला देती है। तो अभाव सहकारी कारण है यह बात नही बनती।

शक्त पदार्थसे ही कार्यनिष्पत्ति— अभाव नामक कोई तत्त्व ही नही है।

जितने भी अभाव माने जाते है, कहे जाते हैं वे सब किसी वस्तुके सद्भ्रूवरूप होते है। अभाव कोई तत्त्व नही। अगर अभाव वास्तविक चीज हो तो अभाव सामान्य सहित होगा, और जो सामान्य सहित होता है वह द्रव्य होगा या गुण होगा या क्रिया होगी, नैयायिक सिद्धान्तके अनुसार दोषापत्ति की जा रही है। यह बात अयुक्त है कि प्रतिबधक न हो और सामग्री मिल जाय तो कार्य बन जाता है, उसमे अतीन्द्रिय शक्तिकी अपेक्षा नही होती। जहां उस ही पदार्थसे केवल कार्य नही होता वहाँ दूसरा पदार्थ सहायक होता है। जैसे केवल आग ईंधनको जला देती है पर केवल सूत कपडेको नही बना देता, उसके लिए अनेक सामग्री चाहिएँ। यह सब असङ्गत है, क्योकि ऐसा होने पर भी सर्वत्र शक्ति कार्य करती है। अन्यथा यह बतलावो कि सूत तो जो सड गया वह भी है पर उससे कपडे क्यो नही बन जाते ? यही तो कहोगे कि अब उस सूतमे ताकत नही रही। तो ताकतका ही नाम तो शक्ति है। शक्ति बिना कुछ पदार्थ नही है कपडा बहुत जीर्ण शीर्ण हो जाय, पकडते ही फटने लगे तो फिर वह काममे तो नहा लिया जा सकता, अथवा कोई कपडा जल गया, जलनेपर भी वह मानो कपडेकी तरह ही पडा हुआ है तो वह काममे तो नही लिया जा सकता। उठाते ही वह बिगड जायगा, वह तो राख है केवल सकल रह गयी, तो क्यो नही उसका उपयोग होता कि उसमे शक्ति समाप्त हो गयी। तो शक्ति बिना पदार्थ कुछ करनेमे समर्थ नही है।

शक्तिका अभाव माननेके दुराग्रहमे अदृष्ट व ईश्वरत्वका भी लोप—अगर शक्ति नही मानते तो फिर अदृष्ट भी मत मानो। जैसे कहो कि भाग्य (पुण्य) है क्या ? जिसको जो कुछ मिल गया सो मिल गया। महल मिलना आज्ञाकारी पुत्र होना, स्त्री होना, ये सारी बाते हो गयी ठीक हैं, उसके सिवाय और कुछ अदृष्ट नही है, तो अदृष्ट भी न रहा, पुण्यका भी अभाव हो गया और फिर ईश्वरका भी अभाव मान लो। नैयायिक लोग ससारकी सृष्टिमे ईश्वरको कर्ता मानते है, कारण मानते है, तो आखिर ईश्वर भी तो अदृष्ट है, दिखता भी नही, जो कुछ दिख रहा है, जो पदार्थ का पुञ्ज है वह अपने आप कार्य कर रहा है। पानी वर्षा तो जमीन गीली हो गयी, घास उगी, यो सारे काम अपने आप हो रहे है, फिर ईश्वर माननेकी क्या जरूरत है, पुण्यके माननेकी भी क्या आवश्यकता है ? यदि कहो कि इसके बिना व्यवस्था नही बनेगी तो ऐसी ही शक्तिकी बात है। शक्ति माने बिना कार्यकी व्यवस्था नही बन सकती।

शक्तिके अविश्वासमे उद्धार असम्भव—जो कार्य होता है वह अपने विशिष्ट धर्मसे सहित कारणसे ही होता है, केवल सहकारी कारणमात्रसे नही होता। जैसे सुख होता तो उसमे पुण्य कारण है पुण्य कर्म बँधा हो, पुण्य भाव किया हो तो सुख हो सकता है, अदृष्ट कारण है। ऐसे ही जितने भी कार्य है ये सारे के सारे कार्य नव शक्तिको सिद्ध करते हैं। शक्ति यद्यपि अतीन्द्रिय है, आँखोसे नही दिखती, इन्द्रिय

से नही पहिचानी जाती, किन्तु अग्निका अभाव नही है। केवल आँखों ही दिखे, उतना ही तो पदार्थ नही है। आगममें, युक्तिमें, अनुमानमें भी जो जाना जाता है वह भी पदार्थ है। जो शक्तिपर विश्वास नही करते उन लोगोंका जीवन धर्म श्रद्धासे दूर रहता है। किसलिए अच्छा काम करें ? जब जैसा होना है हो जाता है। जो शक्तिकी श्रद्धा नही रखते उन्हे अविश्वास ही हो जाता है। अपने आपके आत्माकी शक्तिका जिसे विश्वास नही है वह जीव घृणित कार्योंसे दूर हो ही नही सकता। अरे मैं तो प्रभुकी तरह अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त सुखका स्वरूप वाला हूँ। मुझमें तो दुःखका नाम ही नही है। मेरेमें तो वह सामर्थ्य है कि सर्वविशुद्ध होकर विश्वको जान जाऊँ फिर भी रंच मात्र भी क्षोभ न हो सके। अपनी शक्तिका जहा विश्वास नही है वहा यह खोटे कामोंसे हटकर आत्माके हित वाले काममें कैसे लगेगा।

ज्ञानशक्तिके अश्रद्धानमें संसार बन्धन—अनादि कालसे यह जीव कायर स्थितिमें बना हुआ है, कर्म बन्धन चला आ रहा है ये ही ये काम करता चला आया, आहार किया, भय किया, कामसेवन किया, परिग्रहमे तृष्णा किया ये ही काम करता चला आया यह जीव, उसमे यह कायर बना हुआ है। इसकी कायरता हटे इसका उपाय अपनी शक्तिका विश्वास है। नही है शक्तिका विश्वास तो इस कायरता को कोई दूर नही कर सकता। विशुद्ध ज्ञानमे अद्भुत शक्ति है यह जीव अपने ज्ञान-स्वरूप दृष्टि नही दे रहा, इसका विश्वास नही कर रहा, इसको नही अपना रहा तो बाह्य पदार्थोंमे दृष्टि उलझ जानेसे इसके व्यर्थके संकट बढ गए। अपने आपके बारेमे सोचिये कि यह मैं जीव सबसे निराला बिल्कुल अकेला अपने ही स्वरूप सत्त्व रखने वाला अपने आपके परिणमनसे ही परिणमने वाला एक स्वतंत्र पदार्थ हूँ। इस आत्मा का किसी भी अन्य जीवसे कुछ सम्बन्ध नही है। बाहरी पदार्थोंका संग तो यह सारा धोखा है।

सब जीवोमे शक्तिसाम्य—सभी जीव एक समान हैं। किसी जीवका किसी जीवके साथ कोई वैरूप्य नही है। सभी चैतन्यस्वरूप हैं, सबमे ज्ञान और आनन्द पाया जाता है। सभी जीव रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित हैं। सबमें ज्ञानप्रकाश है। सभी जीवोका स्वरूप एक है, लेकिन मोहका कैसा अंधेरा छाया है कि यह जीव किसी से राग करता है और किसीसे द्वेष करता है। किसीको अपना मानता है और किसी को गैर मानता है। अरे ! किससे राग करना न किससे द्वेष करना। घरमे बसने वाले जिन दो चार जीवोमे राग किया जा रहा है वे भी तो वैसे ही जीव हैं जैसे कि जगत्के अन्य जीव हैं। स्वरूपकी दृष्टिसे सभी जीवोमे समानताका भाव लाइये ! उस शक्तिका विश्वास करिये ! वह शक्ति सबमे समान है। चेतना शक्ति, जिसको भूलकर यह जीव अनादिकालसे अब तक चारो गतियोमे भटक रहा है। जिस चैतन्य शक्तिमे यह स्वयं तन्मय है उस शक्तिका श्रद्धान रखिये ! बाह्य पदार्थोंमे किसीमे भी अपनी रुचि न बनाइये !

वाह्य पदार्थकी रुचिमे सकटविस्तार—भैया ! परमे विश्वास न बनाइये, जो पदार्थ जिसको जितना अधिक प्यारा है वह पदार्थ उसका उतना ही अधिक वैरी है, अनिष्ट करने वाला है। खूब निर्णय करके देख लो, मोहमे लगता है ऐसा कि यह मेरा बहुत प्यारा है। अरे वह प्यारा आपका हित क्या कर रहा है ? आपको कुछ शान्ति दे रहा है क्या ? वह तो आपकी अशान्तिका ही कारण बन रहा है। लोग कहते है कि आपका उदय होता है तो कुपूत पैदा होता है। किन्तु यह तो बतावो कि कुपूतसे आपको कुपूत होनेके कारण राग नही रहता, उसमे प्रेम नही रहता, उससे उपेक्षा हो जाती है। और, कभी कभी तो इतना आप कर सकते है कि ऐलान करदे, गजटोमे प्रकाशित करदें कि मेरा इससे कोई वास्ता नही, यह कोई गलत कार्य करे तो खुद जिम्मेदार है। आप देखो सभी सङ्कटोसे बचे हुए हैं, पर घरमे यदि सुपूत होजाय बडा आज्ञाकारी, कलावान, विनयशील अगर पुत्र उत्पन्न हो जाय तो उस पुत्रके लिये आप जीवनभर कितना कष्ट सहकर पालन-पोषण करेंगे ! आप यह निर्णय बनायेंगे कि हमारी चाहे कुछ भी हालत हो, हम चाहे हीन परिस्थितिमे रह जायें पर इस पुत्र को मैं सर्वोच्च बनाऊँगा। फिर आप उन पुत्रको धनिक बनानेमे, योग्य समर्थ बनानेमे सारे जीवनभर कष्ट सहते है। तो कष्टकी दृष्टिसे यह बतलाओ कि कुपूतके कारण आपको अधिक कष्ट भोगना पडा या सुपूतके कारण ? कहते हैं कि पापके उदयसे कुपूत हुआ, पर पाप नाम है किसका ? पाप नाम है मोहका ! कुपूतमे आपका मोह ज्यादा नही हो पाता और सपूतमे आपका मोह अधिक बढता है तो पाप सुपूतके सम्बन्धमे बढा या कुपूत के ?

अदृष्ट फल—यह वस्तुके स्वरूपकी बात कही जा रही है। ससारका ढङ्ग तो इस प्रकार है कि जिसके पुण्यका उदय है उसकी सेवाके लिये अनेक लोग निमित्त बनते है पुण्यका उदय है तो कोई किसी बालकको पैदा होते ही कही छोड आयें तो भी दूसरा कोई ऐसा मिल जाय जो कि आपसे भी बढकर उसकी सेवा करेगा तो इस अदृष्टका पुण्यका (भाग्यका) कौन मना कर सकता है ? यहा जो ये भेद नजर आते कोई श्रीमान है कोई गरीब है, कोई यशवान है, कोई यश रहित है किसीका सम्मान है किसीका अपमान है, इन सब बातोमे कोई आन्तरिक कारण तो है। और वह आन्तरिक कारण है कर्म। कर्मोकी विचित्रता है। जिसके जिस ढङ्गका उदय है उसके उस ढङ्गकी व्यवस्था बनी हुई है। जो देश साम्यवादके लानेका प्रयत्न रख रहे हैं उन देशोमे भी चाहे लूट-मार करके धनकी अपेक्षासे समता बना दे, किसीको न रहने दे धनी, धनिकोसे छुडाकर गरीबोको बाट दे, परन्तु उस देशमे भी किसीकी इज्जत है, कोई चपरासी है कोई मत्री है, किसीको सलामी दी जा रही है, कोई सलामी कर रहा है, इस बातको कोई मेट सकता है क्या ? किसी भी देशमे हो अदृष्टको कोई समाप्त नही कर सकता, अर्थात् अदृष्टका कोई निषेध नही कर सकता। है वह अदृष्ट। हाँ योगीजन उस अदृष्टका विनाश करके भाग्य कर्मसे दूर होकर विशुद्ध परमात्मा बन

जायें तो वह भी एक तत्त्व है पर शक्ति सर्वत्र है। शक्तिका अपलाप करके पदार्थकी व्यवस्था नहीं बनायी जा सकती।

विशिष्ट शक्ति बिना मात्रसामग्रीसे कार्यकी अनिष्पत्ति जो लोग पदार्थोंमें शक्ति नहीं मानते उन्होंने यह भी कहा था कि शक्ति क्या है? पृथ्वी है उस पृथ्वीमें जो पृथ्वीपना है वही उसकी शक्ति है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। तो उनसे पूछा जा रहा है कि देखो मिट्टीका ढेला है वह भी पृथ्वी है, घड़ा बनता है वह पृथ्वी है। कपड़ा बनता है, वह पृथ्वी है। नैयायिक सिद्धान्तमें, जो चीजें ग्रहण की जा सकती है रखी जा सकती हैं वे सब पृथ्वी कहलाती हैं। तो जब पृथ्वीका पृथ्वीपना घड़ा बना देगा तो वह पिण्ड कपड़ा क्यों नहीं बन जाता? कपड़ा भी बन जाय क्योंकि पृथ्वीपनमें कार्य बनता है। कोई भी कार्य बन जाय, कपड़ा बननेमें जो कारण वेम सलाका आदिक हैं वे भी उसके पास रखदें तो क्यों नहीं कपड़ा बन जाता? यदि कहो कि पृथ्वीपना है, इतना मात्र पृथ्वीको उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं किन्तु ततुपना सहित पदार्थमें कपड़ा उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य है। तो उनसे कहा जा रहा है कि ततु तो कोई सड़ा हुआ हो वह भी है, उसमें कार्य क्यों नहीं बनता? यदि कहो कि वह उस अवस्था विशेषसे युक्त हुआ तो कार्य कर सकता है। तो वह अवस्था विशेषका ही नाम तो शक्ति है। शक्ति हो तो उससे कार्य बनता है, शक्ति नहीं है तो कार्य नहीं बनता। जैसे ये तन्तु आदि पुद्गल गल सड़ जाय तो वहाँ कार्यकी क्षमता नहीं रहती इसी प्रकार यह जीव विषय कषायोंसे गल सड़ जाय तो इसमें आत्मीय आनन्द पानेकी या ज्ञान जागृतिकी सामर्थ्य नहीं रहती।

आत्मबलके आश्रयमें कल्याण - आत्मबल किसका नाम है? अपने आपको ऐसा निरखना कि यह मैं ज्ञानमात्र हूँ, इस ज्ञानस्वरूप आत्मामें किसी भी पर तत्त्वका प्रवेश नहीं है। यह ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व स्वयं अपने स्वरूपमें अपने आप है। इसमें शरीर भी नहीं है, अन्य किसी प्रकारकी वेदना भी नहीं है, यह तो एक भावस्वरूप मात्र है ऐसा अपनेको केवल ज्ञानमात्र अनुभव करें, इतनी ही मेरी दुनिया है। मैं जानता हूँ इतना ही मेरा अनुभव है। इसको ही मैं भोगता हूँ इससे बाहर कहीं कुछ मैं नहीं हूँ, इस प्रकार ज्ञानस्वरूप अपने आपकी दृष्टि बने उसका नाम है आत्मबल। आत्मबली, पुरुषको कहीं भी अशान्ति नहीं है। किसी शत्रुने मार काट भी कर दी, तिस पर भी उसे अशान्ति नहीं है क्योंकि वह शरीरको अपना स्वरूप ही नहीं समझता। शरीर पर ही तो प्रहार हुआ है, शरीरसे निराला यह एक जीव है और उस जीव तक ही मेरा नाता है, वह जहाँ है वहाँ ही मेरा सब कुछ है। यहाँ जीवन, रहा किसी भी लोकमें चला गया तो वहाँ भी यह मैं हूँ, अपनेको निहारूँगा अपनेमें रहूँगा तो सब कुछ वैभव वहाँ भी हमें मिला ही रहेगा। जो केवल अपनेको ज्ञानस्वरूपमात्र निरखते है वे ही आत्मबली कहलाते है और उनके इस सूक्ष्म विवेचक दृष्टिसे समस्त कर्म क्षीण हो

जाते हैं। विशुद्ध आत्मीय सहज आनन्दके वे अनुभवी है। शक्तिका ही सारा चमत्कार है। शक्तिको जो कोई नही मानता वह वस्तुके स्वरूपको ही नही मान रहा है वह फिर धर्म पालन ही क्या करेगा, मुक्ति मार्गको वह क्या अपनायेगा। उस शक्तिका ग्रहण अनुभवन प्रमाणसे होता है ऐसा यहाँ इस प्रकरणमे सिद्ध किया जा रहा है।

शक्तिशून्यतावादियोका विकल्प—प्रमाणके भेदोके प्रकरणमे अर्थापत्ति वादियोने अर्थापत्ति प्रमाणके समर्थनमें दृष्टान्त दिया था अग्निका। अग्निमे जलानेकी शक्ति है अन्यथा अग्नि जला नही सकती। जलानेकी शक्ति अतीन्द्रिय है, आँखोसे दिखती नही है, ऐसी शक्तिका भी ज्ञान होना यह अर्थापत्ति प्रमाण है। इसे जैन शासन ने बताया कि ज्ञान तो सही है, पर यह अनुमान प्रमाण है, अर्थापत्ति अनुमानसे जुदी चीज नही है यदि जलनेकी शक्ति न हो तो ता यह जला नही सकती। जो आग नही है, चौकी आदिक है ये जला नही रहे, अत सिद्ध है कि इनमे जलानेकी शक्ति नही है, तो शक्तिका परिज्ञान करनेका दृष्टान्त दिया जा रहा था, उसपर शक्तिको न मानने वाले सिद्धान्तोने शक्तिका खण्डन किया और यह शक्तिके खण्डनमे युक्ति दे रहे है कि यह बतलावो कि पदार्थमे जो शक्ति मानी जा रही है वह शक्ति नित्य है या अनित्य? सदा रहने वाली है या होती है मिटती है?

शक्तिको नित्य अथवा अनित्य माननेपर दोषका प्रस्ताव—यदि कहो कि शक्ति नित्य है तो सदा कार्य होते रहना चाहिए क्योकि शक्ति सदा मौजूद है काम क्यो नही होता? और फिर सहकारी करणोकी अपेक्षा भी न रखना चाहिये क्योंकि सहकारी कारण मिलनेसे पहिले ही कार्य बन गया क्योंकि शक्ति नित्य है। यदि कहो कि शक्ति अनित्य है तो अनित्यके मायने तो यह है कि कभी बनी। जो पहिलेसे नही है अभी बनी है उसका अर्थ है कि अब यह शक्ति बनी। तो शक्ति बनी है तो किसी शक्तिमान पदार्थसे बनी है या अशक्तिमान पदार्थसे बनी है। शक्तिमानसे बनी है तो उसमे जो शक्ति है वह भी किसीसे बनी होगी, यो अनवस्था दोष आ जायगा। यदि कहो कि अशक्तसे बनी तो शक्ति रहित पदार्थसे जब शक्ति बन गयी तो शक्ति माननेकी जरूरत ही क्या है? सीधा पदार्थ कार्य कर लेता है। यही मान लो इस सिद्धान्तने यह बताया मे कि चीजे मिली कार्य बन गया। जैसे विज्ञानमे अनेक पदार्थोंका सयोग करके कोई नई चीज बनायी जाती है तो पदार्थोंका संयोग हुआ, नवीन चीज बन गयी तो इसमे शक्तिका क्या काम? ऐसा वह शक्तिको न मानने वाला कह रहा है।

शक्तिकी नित्यानित्यात्मकता—शक्ति तो प्रत्येक पदार्थमे रहती ही है। शक्तिके बिना कार्यबन ही नही सकता। उत्तरमे यह कह रहे हैं आचार्यदेव कि शक्ति, नित्य है या अनित्य है ऐसा जो तुम प्रश्न कर रहे हो तो किस शक्तिके बारेमे कर रहे हो? पदार्थमे दो तरहकी शक्ति होती हैं एक द्रव्य शक्ति और दूसरी पर्यायशक्ति।

द्रव्यशक्ति तो नित्य रहती है सदा रहती है और पर्यायशक्ति अनित्य रहती है प्रत्येक पदार्थ द्रव्य पर्यायात्मक है अर्थात् वह द्रव्य सदा रहता है और उस पदार्थमे प्रति समय नवीन नवीन अवस्थायें बनती हैं। तो द्रव्य शक्ति नित्य ही है क्योंकि द्रव्य अनादि कालसे है, अनन्तकाल तक रहेगा। किसी भी सतका कभी विनाश नही होता और न किसी दिनसे उत्पन्न होता है यह भी बात है। तो द्रव्य चूँकि अनादि निधन है, यह द्रव्यका स्वभाव है। द्रव्यका स्वरूप द्रव्यकी शक्ति भी अनादि अनन्त है। हाँ, पर्यायशक्ति अनित्य ही है क्योंकि पर्यायकी आदि है और पर्यायका अन्त है। वस्तुमे जो भी परिणमन होता है वह सब किसी समय हुआ और किसी समय समाप्त होगा। मिट्टीमे घडा बना तो घडा पर्याय है वह किसी समय बना और कभी खतम होगा। लोग मकान बनवाते है तो वे मकान भी किसी दिन बने है तो किसी दिन खतम हो जायेंगे। आज कल तो मकान लिफाफा जैसे बनते है, इनकी तो बात ही क्या ? जो राजा महाराजावोंके बडे दृढ किले कभी बने थे वे भी आज खंडहर रूपमे दीख रहे हैं, तो आजके ये बने हुए मकान भी १००–२०० वर्ष बादमे खतम हो जावेंगे, गिरकर ढह जावेंगे। तो पर्याय जितनी भी है वे सब अनित्य है। तो शक्ति अनित्य है या नित्य है ? इसका उत्तर तो यह है कि द्रव्यशक्ति नित्य है और पर्यायशक्ति अनित्य है।

पर्यायशक्तिसमन्वित द्रव्यशक्तिकी कार्यकारिता - शक्ति नित्य होनेसे यह दोष न आयगा कि पदार्थमें सदा कार्य होते रहना चाहिए। उन सहकारी कारणों की उसमे जरूरत न रहना चाहिए। यह दोष इस कारण न आयगा कि शक्ति नित्य तो जरूर है मगर वह शक्ति पर्याय शक्तिसे सहित होकर ही कार्य करने वाली होती है। केवल द्रव्यशक्ति काम नही करती। द्रव्यशक्ति जब पर्याय शक्तिसे सहित होती है तब उसमे कार्यकी उत्पत्ति होती है। जैसे मिट्टीमे घडा बननेकी शक्ति सदा मौजूद है। जो मिट्टी पर्वतके नीचे पडी है उसमें भी घडा बननेकी शक्ति है, पर उस मिट्टीको निकाले कौन ? बिना उस मिट्टीको निकाले घडा न बनेगा मगर उस द्रव्यमे शक्ति तो है, चीज तो है। द्रव्यशक्ति तब कार्य करती है जब पर्याय शक्ति भी मिल जुल जाय। तो विशिष्ट पर्यायमे परिणत जो द्रव्य हो वही कार्य कर सकता है। और, विशिष्ट पर्यायकी परिणति बने यह सहकारी कारणकी अपेक्षासे होता है। याने पर्याय शक्ति उसी समय होती है जब सहकारी कारण वहाँ मिला–जुला हो।

विशिष्टपर्यायपरिणत द्रव्यके कार्यकारित्वकी सिद्धिमे दृष्टान्त— मिट्टीमें घडा बनानेकी शक्ति है पर जब उस मिट्टीको पानीसे गीला किया हो चक्रादिक कुम्हारके हथियार मौजूद हो, उस मिट्टीको चाकपर चढाया गया हो, वे सभी साधन मिले हो तो मिट्टीमें घडा बनता है। तो पर्यायशक्ति मिल गई ना, घडा बननेकी शक्ति अब आयी है। द्रव्यमे शक्ति तो सदा थी पर पर्यायका सहयोग न मिला था जो सोने की खान है उनमें मिलता क्या है ? मिट्टी है, और कुछ नजर नहीं आता। वहाँ सोने

के टुकडे या सोनेकी छोटी छोटी बूंदे सी या सोनेका टेला जैसा नहीं होता, वहाँ तो सारी मिट्टी ही मिट्टी दिखती है। उस मिट्टीको लाकर भट्टीमे पकाते है, उसका शोधन करते है, तब उसमे समझो, कई दो मन मिट्टीमे एक दो रत्ती सोना निकल आता है। तो पर्यायशक्ति उसमे कब हुई ? जब उसे विधिपूर्वक आँचमे लाया गया, उसकी प्राप्ति की गई। तो पर्यायशक्ति मिले तब द्रव्यशक्ति काम करती है। इसलिए यहाँ दोष देना अयुक्त है कि शक्ति है तो वह सदा काम करे। कार्य, करनेका जिसमे सामर्थ्य है, सामर्थ्य तो है, मगर कुछ सहकारी कारण और मिलते तब वह कार्य कर पाते है।

शक्त्यपलापवादियोके अदृष्ट और ईश्वरकी कार्यकारिताकी प्रसिद्धि
जैसे अदृष्ट, भाग्य, पुण्य यह सुखको उत्पन्न करनेमे समर्थ है। पुण्यका उदय हो तब तो सुख मिलता है मगर वह मात्रपुण्य कर्मका उदय आया और सुख मिल गया ऐसी बात तो नही है। घर हो, स्त्री हो बच्चे हो, इज्जत हो, मित्र हो गोष्ठी हो, ये सभी चीजे हो याने नो कर्म मिले तभी तो सुख मिलेगा। तो उसका सहकारी कारण भी चाहिए यदि नित्य होनेसे सदा कार्य होने मना जाय तो अदृष्ट पुण्य भी सदा सुख पैदा करता रहे। उन साधनोकी अपेक्षा न रखे और ईश्वर भी सदा समस्त सृष्टि रचता रहे, क्योंकि उसमे सदा शक्ति तो है। नैयायिक मतके अनुसार ईश्वरको वे सदा सृष्टि रचनेमे शक्तिमान मानते हैं अत उनकी ही बात उनके लिए कही जा रही है कि यदि वह ईश्वर सदा शक्ति रखता है तो फिर उसका सदा सृष्टि करना चाहिए। सहकारी कारणोकी अपेक्षा फिर व्यर्थ है। इस तरह शक्तिका अवलंप करना ठीक नही है।

अपनी शक्तिके मार्गणका ध्यान—शक्ति है उनकी डिग्रिया है, उनके अशो के विकास भी होते है जिससे हम यह निर्णय करते है कि यह पदार्थ इतना शक्तिवान है यह इतना शक्तिवान है। जैसे हम अन्य पदार्थोमे शक्तिकी खोज करते है इसी प्रकार हम कभी अपने आपमे अपनी शक्तिका खोज करने चले, ऐसी रुचि जगे कि मैं अपने आत्मा को तो पहिचानू, उसमे क्या शक्ति है, क्या प्रताप है, क्या प्रभाव है, इस ओर अपना कदम बढे अपनी शक्तिका अनुभव होवे तो समझिये कि यह आत्मा ससारके सङ्कटोसे सदाकालके लिए छुट जायगा। आत्मशक्तिका विश्वास होना उस ही के बनता है जो ससारके झझटोसे छूटकर परम पवित्र बनेगा। मोही जीव तो बाह्य पदार्थोमे ही अपना हित मानते हैं। उन्हे अपने आपकी शक्तिका कुछ पता ही नही है। इसीसे वे अपने आपको कायर अनुभव करते है, पर पदार्थोकी आशा करके उनसे सुखकी भीख मागते है। जरा अपने आपकी शक्तिका कुछ विश्वास तो कीजिए, और अनुभव भी कीजिए। आत्मामे ज्ञानशक्ति मुख्य रखिये उसका ही सारा प्रताप है, ज्ञानकी कला पर ही सुख दुःख आनन्द आदि सब निर्भर है। आत्मा ज्ञान शक्तिमान है और, इस ज्ञानबलके द्वारा ही वह आत्मा समस्त दुःखोमे दूर रहा करता है। शक्ति है और प्रत्येक सत्मे है। शक्तिके बिना सत्की सत्ता ही नही रह सकती।

शक्तिमान्से नव नव पर्यायशक्ति होते रहनेका अनादिप्रवाह शक्तिका विरोध करने वाले सिद्धान्तने कुछ और प्रश्न रखे थे। कहा था कि यह बतलावो कि शक्ति अनित्य है, तो शक्तिकी उत्पत्ति किसी शक्तिमान पदार्थसे होती है या शक्ति रहित पदार्थसे होती है। और उसमें दोष भी दिया था अनवस्थाका और शक्ति रहित पदार्थ से शक्ति बनने लगे तो शक्ति रहित पदार्थका सीधा कार्य क्यों न बनने लगे ? यह दोष भी दिया था, किन्तु यह अवसंवाद सङ्गत नहीं है, क्योंकि शक्तिकी उत्पत्ति शक्तिमान पदार्थमें ही होती है, पर इसमें भी अनवस्था दोष न आयगा, किन्तु एक अनादि प्रवाह सिद्ध होता है। पूर्व शक्तिमान पदार्थने एक नवीन कार्यके स्थानमें दूसरी शक्तिके द्वारा तीसरा कार्य किया। बीज और अकुर की तरह अनादिसे चले आ रहे हैं कोई भी मनुष्य अनादिसे शक्तिमान था और वर्तमान शक्तिके द्वारा हुए पर्यायको उसने उत्पन्न किया। तो जो शक्ति जब जब मिले उस शक्तिसे उसके अगले समयकी बात उसने पैदा की। अगले समयकी शक्ति सहित पदार्थने उसके अगले समयकी परिणति बनायी। इस तरह शक्तियोंसे कार्योंकी उत्पत्ति अनादिसे चली आ रही है।

अनादिप्रवाहके कुछ दृष्टान्त जैसे बीज और अकुर वृक्ष बीज, बतलावो वृक्षसे बीज बना या बीजसे वृक्ष बना ? दोनो ही बातें हैं। यह बतलावो कि सबसे पहिले क्या था, बीज था या वृक्ष ? कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यदि कहो कि सबसे पहिले बीज था, तो बीज आया कहासे ? बीज वृक्षसे ही तो आया करते हैं। यदि कहोगे कि सबसे पहिले वृक्ष था, तो वृक्ष आया कहासे ? बीजके बिना वृक्ष कहाँ से आया ? पितासे पुत्र हुआ तो वह पिता भी तो किसीका पुत्र था, फिर उसका पिता भी किसीका पुत्र था। यो बापोकी सतति भी बीज वृक्षकी तरहसे अनादिसे चली आयी है। इसी प्रकार जितने भी कार्य उत्पन्न होते है अर्थात् पूर्व पर्याय परिणत द्रव्यसे उस समयकी शक्तिसे कार्य उत्पन्न होता है। जिस समय जिस पदार्थमें जो कार्य उत्पन्न हुआ उस समय उस पदार्थमें जो शक्ति थी उस शक्तिसे हुआ। वह पहिली शक्तिसे हुआ, वह पहिली शक्तिसे हुआ। इस तरह पहिली पहिली शक्तियो से कार्य होता चला आया है वर्तमान शक्ति पहिली शक्ति सहित पदार्थके द्वारा ही प्रकट की गई और वह पहिली शक्ति उससे शक्तिमान पदार्थके द्वारा ही प्रकट की गई। पूर्व पूर्व शक्तियुक्त पदार्थसे उत्तर अवस्था उत्पन्न होती है। इसी तरह आगे भी अनन्तकाल तक पदार्थोंसे कार्य उत्पन्न होता रहेगा।

भेदाभेदैकान्तमे अदृष्ट और ईश्वरकी भी अकार्यकारिता—इस तरह विकल्प करके कि शक्तिमान पदार्थसे शक्ति उत्पन्न हुई या शक्तिरहित पदार्थसे ? यो विकल्प करके शक्तिका जो खण्डन करते हैं वे अदृष्ट और ईश्वरकी बात भी सिद्ध नहीं कर सकते क्योंकि वहाँ उनसे फिर पूछा जायगा कि अदृष्ट सुखको देता है, पुण्य सुख उत्पन्न करता है तो यह बतलावो कि वह अदृष्ट किसी अन्य अदृष्टसे युक्त आत्माने

उत्पन्न किया, पुण्यवान आत्माने पुण्य उत्पन्न किया या पुण्य रहित आत्माने उत्पन्न किया ? यदि कहो कि दूसरा पुण्य उसके पास था ऐसे पुण्यवान आत्माने पुण्य उत्पन्न किया तो वह पुण्य कहाँसे आया ? वह पुण्य दूसरे पुण्यसे आया, वह पुण्य पहिले पुण्य वानसे आया, इस तरह अनवस्था दोष हो जायगा । अनवस्था नही होती है, वहाँ भी परम्परा है, पर यो जो नही मानते हैं उनको दोष दिया जा रहा है । यदि कहो कि पुण्यरहित आत्मामे पुण्य उत्पन्न किया तो फिर जैसा मुक्त आत्मा है वह पुण्यरहित है तो वह तो पुण्य नही उत्पन्न करता, वह तो धर्ममय रहता है । इस तरह ये ससारी जीव भी पुण्यरहित होकर पुण्य उत्पन्न करने लगे यह बात सम्भव नही हो सकती ।

पुण्य और धर्मका स्वरूप—देखो पुण्यमे और धर्ममे अन्तर है । पुण्यमे होता है शुभभाव और धर्ममे होता है वीतरागभाव । तीन तरहके भाव होते है—शुभभाव, अशुभभाव और वीतरागभाव । विषय भोगनेके भाव, क्रोधादिक करनेके भाव ये तो अशुभभाव हैं । भगवत्भक्तिके भाव, जीव दयाके भाव, दान आदिकके भाव ये सब शुभभाव है और जहाँ न विषय कषायोंका भाव है न दया, दान आदिक के भाव है, किन्तु ज्ञातृत्वमात्र है वे सब वीतरागभाव कहलाते है । वीतरागभावमे केवल एक ज्ञानमय परिणति है, केवल ज्ञाता द्रष्टा है, जिसमे जानन जाननका ही प्रकाशक भरा हुआ है उसे कहते है धर्म । मुक्त आत्मा तो धर्ममय होते है, पुण्य पाप भावोसे रहित होते है । इसी प्रकार ये ससारी जीव भी पुण्य रहित होकर पुण्य उत्पन्न कर लें यह कैसे सम्भव हो सकेगा ?

शक्तिके नित्यानित्यैकान्तके दोषका परिहार—शक्ति है और वह नित्य भी है अनित्य भी है और उसमे जो पर्याय शक्ति है वह अनित्य है । इस तरह यदि न मानोगे और यह ही आग्रह करोगे कि नित्य होनेसे सदा कार्य क्यो नही होता शक्ति इसलिये कुछ है नही । तो यह बतलावो कि तुम्हारा महेश्वर जो सृष्टि करने वाला है वह शक्ति रखता है कि नही ? फिर सदा सभी कार्य क्यो नही कर देता ? एक मनुष्यको १०० वर्षोंमे जो परिस्थिति बनेगी वह एक ही दिनमे क्यो नही बना देता ? तो वह सहकारी कारणोको लेकर कार्य करता है या सहकारी कारणोको न लेकर कार्य करता है ? सहकारी कारणोको लेकर यदि वह कार्य करता है तो सहकारी पदार्थमे भी और सहकारी कारण चाहिए । यो अनवस्था दोष होगा और सहकारी कारणोंसे रहित होकर यदि ईश्वर काय करता है तो सदा कार्य होना चाहिए । तो जैसे वहाँ तुम यह बतलाते हो कि पहिले पुण्यसहित आत्माने पुन्य उत्पन्न किया उस से सुख हुआ इसी तरह जैन शासनमे भी यही बात है कि पहिले शक्तिमान पदार्थने ही एक नवीन शक्ति वाला कार्य किया फिर वह शक्तिमान पदार्थ नवीन शक्ति वाला कार्य करेगा । यो परम्परा चलती है । तो ये सब तर्क करना कि शक्ति नित्य है कि अनित्य है, शक्तिने क्या किया, यह सब कोरा बकवास है ।

शक्तिकी शक्तिमानसे भेद व अभेदका विकल्प—शक्ति बिना जगतमें कुछ भी कार्य नहीं हो सकता। शक्ति न मानने वाले एक ऐसी भी उलझन डालते हैं कि यह बतलावो कि पदार्थ है उसमें है शक्ति तो उस शक्तिसे वह पदार्थ भिन्न है कि अभिन्न है। उस शक्तिसे वह पदार्थ जुदा है या तन्मय है। यदि कहो कि तन्मय है तो एक बात कुछ कहो। या शक्ति या पदार्थ। दो चीजें नहीं रह सकती। यदि कहो कि भिन्न है तो यह शक्ति इस पदार्थकी है इतना भी तुम सिद्ध नहीं कर सकते। जैसे यह चौकी कागजसे भिन्न है तो बतलावो चौकीका कागज है या कागजकी चौकी? अरे चौकी चौकी है, कागज कागज है। दोनो स्वरूप जुदे हैं। इस तरह पदार्थसे शक्ति जब न्यारी मान ली गई तो फिर किसकी शक्ति? शक्ति जुदी चीज है, शक्तिमान पदार्थ जुदी चीज है।

आधुनिक विज्ञानवादियोके भी शक्तिकी पदार्थसे भिन्नताकी आशङ्का—आजकल के वैज्ञानिक लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि शक्ति एक जुदा तत्त्व है और पदार्थ जुदा तत्त्व है। जैसे नैयायिक सिद्धान्तने माना ये सब प्राचीन मत हैं, उन्हीको ये वैज्ञानिक भी दुहरा रहे है। उनका कथन है कि पदार्थ जब फूटता है, बिखरता है, नष्ट होता है तो उसमेंसे फिर घोर शक्ति उत्पन्न होती है और वह केवल शक्ति शक्ति रहती है पदार्थ वहाँ नहीं रहता है। यदि ऐसी शक्ति निराधार पदार्थ बिना रहने लगे तो इसका अर्थ है कि शक्ति एक स्वतन्त्र पदार्थ हुआ और परमाणु आदिक स्वतन्त्र पदार्थ हुए। पर ऐसा कहना जैन शासनके अनुसार युक्त नहीं है कि शक्ति जुदी चीज है और पदार्थ जुदी वस्तु है। अभी जरा वे और खोज करें। जैसे वह पदार्थ तो है स्कन्ध और जो बिखर गए वे सब हैं अणु अणु। अणु अणु प्रमाणकी रचना कोई कर नहीं सकता। न उनके औजार हो सकते न हथियार। स्कंधोंको कुछ छोटा छोटा तो किया जा सकता है किन्तु उन स्कंधोंसे जो वास्तविक परमाणु है, जो निरंश है जिसका दूसरा हिस्सा नहीं हो सकता वह किसी भी प्रयोगसे उत्पन्न नहीं किया जा सकता। और ऐसा सूक्ष्म परमाणु है, वह शक्तिमान है। शक्ति निराधार नहीं होती।

शक्तिकी शक्तिमानसे भेदाभेदात्मकताकी सिद्धि—यहाँ नैयायिकोने जो पूछा था कि शक्ति शक्तिमान पदार्थसे भिन्न है अथवा अभिन्न? तो उसका उत्तर यह है कि शक्ति शक्तिमान पदार्थसे कथंचित् भिन्न भी है कथंचित् अभिन्न भी है। शक्तिमान पदार्थसे शक्ति भिन्न यों है कि हमें पदार्थ तो आँखो दिखता है, शक्ति आँखो नहीं दिखती, इससे शक्तिका स्वरूप और है, पदार्थका स्वरूप और है। और वह शक्ति अनुमानसे ग्रहणमें आती है, पदार्थ तो प्रत्यक्षसे ग्रहणमें आ रहा है और पदार्थ मे रहने वाली शक्ति अनुमानसे ग्रहणमें आ रही है। इससे शक्तिका स्वरूप और है पदार्थका स्वरूप और है, लेकिन उस शक्तिको शक्तिमान पदार्थसे कभी भी अलग नहीं किया जा सकता। शक्ति एक जगह रख दें और पदार्थ एक जगह रख दें तो

तो फिर न शक्तिकी सत्ता रहेगी न पदार्थ की। इस कारण शक्ति पदार्थसे अभिन्न है भिन्न और अभिन्न देखनेकी दृष्टियां हैं। इसमे कोई विरोधकी बात नही है क्योंकि भेदाभेदात्मकता होना यह पदार्थमे बुद्धिगत होता हुआ है। हम पदार्थको अनेक धर्मो की दृष्टियोसे जान पाते है, अगर दृष्टि हम न लगाये तो सारा व्यवहार खतम हो जायगा।

स्याद्वादसे विवादोका समाधान—जरा पूछ बैठना चाहिए शक्तिके विरोधी के प्रति कि यह बताओ आत्मा शरीरसे भिन्न है कि अभिन्न ? यदि यह कहोगे कि शरीरसे जुदा है आत्मा तो प्राणीका गला घोटदे कोई तो हिंसकको दोष न लगनेका प्रसङ्ग होगा, क्योंकि आत्माको तो शरीरसे जुदे ही मान लिया। उस आत्माका क्या नुकसान है ? और, यदि कहो कि हम शरीरसे भिन्न नही है, शरीर और आत्मा एक है तो गला घोटदे तो इसमे आत्माका क्या बिगाड है ? अरे तुम्हारा आत्मा तो अमर है। तो किसी भी पदार्थको एकान्तसे कोई धर्म माना जाय तो उसमे विवाद उठता है, स्याद्वादसे उसका समाधान मिलता है कि आत्मा शरीरसे कथंचित् न्यारा है, क्योंकि आत्माका स्वरूप चैतन्य है, शरीरका स्वरूप जड है। और, आत्मा शरीरसे कथंचित् न्यारा नही है, क्योंकि एक क्षेत्रावगाह है, और परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। तो स्याद्वादसे शक्ति व शक्तिमानका भी यही उत्तर है कि पदार्थकी शक्ति पदार्थसे कथंचित् भिन्न है और कथंचित् अभिन्न है। शक्तिका अवलोप नही किया जा सकता शक्ति है और उस शक्तिके अनुसार पदार्थ निरन्तर अपना कार्य करता रहता है।

शक्ति और शक्तिमानकी धर्मधर्मिरूपता—चूंकि शक्तिमानसे शक्ति भिन्नाभिन्न है अतः शक्तिके न मानने वाले पुरुषोका शक्तिलोप करनेके लिये यह उपालम्भ देना भी बेकार है कि शक्तिने शक्तिमानका उपकार किया या शक्तिमानने शक्तिका उपकार किया। इस उपालम्भमे वे इन विकल्पोंसे वातावरण क्षुब्ध कर देते हैं कि किसीने भी किसीका उपकार किया मान लिया जाय तो वह उपकार भिन्न है या अभिन्न है। अभिन्न है तो किया ही क्या वह तन्मात्र ही रह गया। यदि भिन्न है तो अनवस्था दोष हो जायगा। शक्तिमानका यह उपकार है या शक्तिका यह उपकार है इस सम्बन्धको सिद्ध करनेके लिये अन्य उपकारकी कल्पनासे अन्य शक्ति व शक्तिमानकी कल्पना करना पडेगी। ये सब शिकायतें यों उपयुक्त नही है कि उपकार तो पदार्थका स्वयका जो परिणमना है वही है। पदार्थ द्रव्यत्वशक्तिके कारण निरन्तर परिणमते रहते है। शक्ति कोई स्वतन्त्र द्रव्य नही है जो अन्यान्य उपकारके नये विकल्पोका शिकार बने। पदार्थ शक्तिमान है और उसकी शक्तियां पदार्थसे कथंचित् भिन्न है व कथंचित् अभिन्न हैं। शक्ति और शक्तिमानमे भेद और अभेदके माननेमें विरोध और संकरदोष नही आता। क्योंकि भेदकी अपेक्षा अन्य है व अभेद की अपेक्षा अन्य है। शक्ति और शक्तिमान पदार्थ भिन्न भिन्न प्रमाण द्वारा ग्राह्य हैं

इस कारण भिन्न हैं। शक्तिमान पदार्थका जैसे अग्निका तो ग्रहण प्रत्यक्षसे हो रहा है, किन्तु दाहकत्व शक्तिका ग्रहण अनुमानसे हो रहा है। शक्ति शक्तिमानमे अभिन्न यो है कि ये जुदे जुदे प्रदेशमे नहीं है ये दोनो स्वतत्र सत् नही है। एक ही पदार्थमे समझानेके लिये धर्मधर्मीका व्यपदेश किया गया है। शक्तिमान पदार्थ धर्मी है और शक्ति धर्म है, अत इनका एकत्र न विरोध है और न सकरता है।

शक्तिका एक अनेक विकल्प द्वारा खडनका प्रयास— नैयायिक सिद्धान्त मे कारण सामग्रीके होनेसे कार्य होना बताया है और उसी आधारपर कारक साकल्यको प्रमाण भी बताया गया है। ये शक्ति नही मानते तो शक्तिके खण्डनमे वे अपना उपान्तिम विकल्प रख रहे है कि पदार्थमे शक्ति एक होती है या अनेक। जैसे आग ईंधन वस्तुको जला देती है और आगमे जलानेकी शक्ति है तो आगमे जो कुछ भी शक्ति है वह शक्ति एक है या आगमे अनेक शक्ति पडी हुई हैं? यदि कहोगे कि उसमे शक्ति एक है तो फिर एक साथ उसमे अनेक कार्य न होना चाहिए, जैसे आग जलती है और प्रकाश भी करती है, गर्मी भी लाती है, जलका शोषण भी करती है तो अग्नि जो अनेक काम करती है वह एक शक्ति से कैसे कर सकती है? अगर एक ही शक्ति है तो अनेक कार्य न उत्पन्न होने चाहिएँ। यदि कहो कि उस आगमे अनेक शक्तिया होती है तो फिर अपने आपमे उन अनेक शक्तियोको जो धारण करना है वह अनेक शक्तियों से धारण करेगा। फिर वे अनेक शक्तियाँ कैसी हैं उनको अन्य शक्तियोसे धारण करेगा, यो अनवस्था दोष आयगा। इस प्रकार ये नैयायिक जन शक्तिका अभाव बनानेके लिए यह आखिरी विकल्प रख रहे हैं कि पदार्थमे एक मानी जाय तो आपत्ति आती है और अनेक मानी जाय तो आपत्ति आती है, इस कारण शक्ति कुछ नही है। पदार्थ हैं और वे पदार्थ सब इकट्ठे मिल जुल जायें तो उनमे कोई एक कार्य बन जाता है।

पदार्थमे अनेक शक्तियोकी सिद्धि— अब शक्तिके एक अनेककी समस्याके समाधानमे आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि शक्ति एक है अथवा अनेक है, ऐसा विकल्प असङ्गत है उसमे दोष देना युक्त नही है। पदार्थमे शक्ति एक ही होती है ऐसा नही है। पदार्थमे अनेक ही शक्तिया हुआ करती है। अनेक शक्तियोसे सहित कारण हुआ करता है, क्योकि कार्य अनेक देखे जाते हैं अथवा इस तरह अनुमान कर लीजिये कि ये नाना प्रकारके जो कार्य नजर आते है वे अनेक शक्ति युक्त कारण से उत्पन्न होते हैं। क्योकि ये विचित्र कार्य होते हैं जैसे नाना पदार्थोके नाना कार्य होते हैं और उन नाना कार्योसे नाना पदार्थोकी सिद्धि है इसी प्रकार एक पदार्थके द्वारा भी जो अनेक कार्य देखे जाते है उससे यह सिद्ध है कि उस पदार्थमे अनेक शक्तिया हैं। कारण शक्तिका भेद माने विना ये नाना प्रकारके कार्य नही बन सकते हैं जैसे हम एक ही पदार्थमे रूपका भी ज्ञान करते हैं, रस, गध और स्पर्श आदिकका ज्ञान करते हैं तो वे गुण चार हैं तभी तो उनका ज्ञान हो रहा है।

जैसे एक आमका फल है वही आमका फल देखा तो रूपका ज्ञान हुआ, छुवा तो स्पर्श का ज्ञान हुआ, सूँघा तो गधका ज्ञान हुआ और चख लिया तो रसका ज्ञान हो गया। तो उस आममे ये चार स्वभाव है तभी तो चार प्रकारके ज्ञान बने। उस आममे रूप की शक्ति है, रूप है तो चक्षुसे रूप नजर आया। उस आममे रस-शक्ति है तो रसना इन्द्रियसे रस ग्रहणमे आया। इसी प्रकार गध और स्पर्श है। तो जैसे ये आममे चार प्रकारके ज्ञान है तो चार प्रकारके विषय हैं, चार कारण है। जानते है तब उनका बोध हुआ। अगर रूपादिक नाना नही हैं तो फिर एक चीज बन जायगी। भिन्न भिन्न ज्ञान नही हो सकते इस कारण जैसे कि आममे रूप आदिक चार शक्तिया है, तत्त्व है तब ४ प्रकारके ज्ञान बने। इसी प्रकार किसी भी पदार्थमे जो अनेक तरहके कार्य देखे जाते है तो उसमे अनेक शक्तिया है।

शक्तिकी अनेकताकी सिद्धिमे कुछ दृष्टान्त —जैसे दीपक जला तो कितने कार्य हुए दीपकसे? बत्ती जली, तेल सूखा, प्रकाश हुआ, गरमी भी आयी। अनेक काम बने कि नही? तो दीपकमे वे अनेक शक्तिया है तब अनेक कार्य बने। कदाचित् यह कहो कि चक्षु आदिक बुद्धिमे केवल रूप आदिक प्रतिभासमे आये है सो वे प्रतिभासमे आ रहे है तो उस आममे ये चार चीजें हैं, यह कैसे सिद्ध करोगे? यदि प्रतिभासके कारण वे है तो कहते हैं कि यही बात तो प्रकृतमे कही जा रही है। एक प्रदीप तेलको सो सोखना, बत्तीका दाह, पदार्थका प्रकाश आदिक ये जो नाना कार्य कर रहा है इस अनुमानकी बुद्धिमे भी शक्ति है यह प्रतीतिमे आ रहा है फिर उनसे रहित पदार्थको कैसे कहा जाय? अर्थात् पदार्थ है और पदार्थमे अनेक शक्तियाँ है जिन शक्तियोके कारण पदार्थ नाना प्रकारके कार्य किया करते है।

शक्ति माने विना मात्र सामग्रीसे कार्यकी अनुपपत्ति – यह भी नही कह सकते कि आमके रूप रस आदिक तो प्रत्यक्ष बुद्धिमे आ रहे हैं इसलिए वह तो वास्तविक सत हैं, पर शक्तियाँ तो अनुमानमे आ रही है इसलिए वह सत्य नही है। अनुमानमे जो बात आ गयी वह क्या असत्य होती है? यदि अनुमानकी बात असत्य होने लगे तो कर्म, भाग्य, अदृष्ट, ईश्वर ये सब अदृष्ट हो जायेगे, क्योंकि ईश्वरको, भाग्यको, अदृष्ट आदिकको प्रत्यक्ष कौन देख रहा है? ? कार्य देखकर ही उसका अनुमान करते है कि हाँ, यह भाग्यका उदय है, न होता भाग्य तो इतना वैभव इतना समागम, इतना यश ये कैसे मिलते? तो इसका जो अनुमान किया गया है वह यह सत्य ही तो है। असत्य अनुमान नही है। शायद यह कहो कि प्रदीप आदिक द्रव्य तो वह एक है और उसमे सहकारी कारण अनेक है, बत्ती है तेल आदि है तो उस सामग्रीके भेदसे दलन शोषण आदिक नाना कार्य बन जाते है, पर उनमे शक्तिका भेद नही है, स्वभाव शक्तिया नही है यह भी बात ठीक नही। यों तो रूप आदिक भी कुछ नही हैं यह भी सिद्ध कर दिया जायगा। यह कहोगे कि आँखोंसे देखा तो आममे रूप नजर आया,

नासिकासे जाना तो गंध नजर आया और स्पर्शसे छुवा तो उससे स्पर्श समझमे आया, हैं कुछ नही उसमे ये चीजें ? केवल जाननेकी सामग्रीके भेदसे ये भिन्न-भिन्न समझमें आये हैं। तो यो रूप आदिक भी स्वतम हो जायेंगे। इससे पदार्थमे शक्ति है और वे पदार्थ उन शक्तियोंसे ही कार्य किया करते हैं। उस शक्तिका अनुमानने ग्रहण किया।

मूलमे प्रमाणकी द्विविधताका प्रतिपादन अर्थापत्तिवादीने यह कहा था कि शक्तिका ग्रहण अदृष्ट अर्थका ग्रहण अर्थापत्तिसे होता है । किन्तु अर्थापत्ति कोई अलग प्रमाण नही है, वह अनुमानमें ही अन्तर्भूत है। इस प्रकार जो अनेक प्रमाण बना दिये गए थे अब उन प्रमाणोको सकोच करके एक लक्षणमें लक्षित करके उन्हें दो भेदरूपमे लाया जा रहा है। प्रमाण दो प्रकारके हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष । जो स्पष्ट ज्ञान है वह तो प्रत्यक्ष है और जो अस्पष्ट ज्ञान है वह परोक्ष है। अनुमान अस्पष्ट ज्ञान है इसलिए शक्ति आदिकका ग्रहण करने वाले जो अनुमान हैं वे परोक्ष ज्ञान हैं। अब क्षणिकवादियोके द्वारा माने गए प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसे दो प्रमाणोंका खण्डन करनेके लिए जो मीमासक मतके अनुसार अभाव प्रमाण बताया गया था, उस अभाव प्रमाणको बतानेमे पहिले अर्थापत्ति प्रमाणकी एक उपान्तिक बातका खण्डन किया जा रहा है।

अर्थापत्तिपूर्वक अर्थापत्तिका भी अनुमानमे अन्तर्भाव—अर्थापत्तिपूर्वक भी अर्थापत्ति होती है, ऐसा बताया गया था। जैसे शब्दको सुनकर पहिले तो यह जानना कि शब्दोमे पदार्थको बतानेकी शक्ति है, जैसे घडी शब्द बोला तो झट घडीका ज्ञान हो जाता है कि यह कहा गया है। तो घ और डी इन शब्दोमे घडी नामक पदार्थको बतानेकी शक्ति है तो सबसे पहले वाचक शक्तिकी अर्थापत्ति की तत्पश्चात् वाचक शक्तिके द्वारा यह जाना कि शब्द नित्य है। अगर नित्य न होते तो इस शब्दका यह अर्थ है इसका यह अर्थ है, यह बात नियत न रहती। ऐसी अर्थापत्तिपूर्वक अर्थापत्तिको सिद्ध किया गया था। वह भी असिद्ध बात है, क्योकि वाचक सामर्थ्य है शब्द मे, शब्द पदार्थोंका ज्ञान कराता है, इतने मात्रसे नित्यपनेके साथ अविनाभाव नही बन जाता। नित्यपनेकी बात और है और शब्दने यह ज्ञान करा दिया, यह बात और है। शब्द नित्य होता ही नही है, इस बातको आगे भी सिद्ध करेंगे और सक्षेपरूपसे यह जान जायें कि शब्द उत्पन्न होता है और फिर नष्ट हो जाया करता है। शब्द एक मैटर है, शब्दका घात होता है। मुखके पास हाथ करके बोलो तो बराबर उन शब्दो की चोट लगती रहती है। कमरा बन्द करके भीतर बोलो तो आवाज बाहर नही प्रकट हो सकती, भीटसे भिड जाती है। और, आजकल तो लोग शब्दोको रिकार्डमे बन्द करने लगे हैं। क्या है वहाँ असली बात ? यद्यपि कही शब्द नही बन्द होते हैं, उन शब्दोके निमित्तसे उस मसालेमे एक प्रकृति बनी है कि वह सूई आदिकका सयोग पाये, यत्रका सम्बन्ध पाये तो उससे नित्य नवीन-नवीन शब्द प्रगट होते रहते हैं।

शब्द नित्य नहीं है और अर्थापत्तिपूर्वक अर्थापत्ति भी कुछ हो तो वह भी अनुमानमे गर्भित हो जाती है और उसे यों कह लेना चाहिए कि अनुमानपूर्वक अनुमान है। वह अर्थापत्ति कोई अलग प्रमाण नहीं है।

अभावार्थापत्तिकी मीमांसा—अर्थापत्तिके प्रसङ्गमे एक अभावपूर्वक अर्थापत्ति भी बतलाया। जैसे घरमे किसीने देखकर किसीसे कहा कि देवदत्त घरमे नहीं है, कही बाहर गया है तो घरमे नहीं है यह अभाव 'बाहर है' यह ज्ञान कराता है, यह अभावपूर्वक अर्थापत्ति है। जैन शासनके अनुसार प्रथम तो अभाव कोई चीज नहीं है। अभाव नाम है उसका कि जिसमे तुम अभाव देखना चाहते हो तो उस वस्तुसे रहित उस पदार्थका सत्त्व रहनेका नाम अभाव है। जैसे इस कमरेमे घडा नहीं है, यह कहा तो घडेका अभाव मायने घडेके बिना कमरेका रहना, तो कमरेका जो निषेध्याधाररूपसे सद्भाव है वही घडेका अभाव है। निषेध करने योग्य पदार्थके आधारके सद्भावका नाम अभाव है और फिर अभावपूर्वक अर्थापत्ति भी हो तो वह अनुमान है। अनुमानसे बाहर और कुछ नहीं है।

अभावार्थापत्तिके दृष्टान्तका प्रयोग व अनुमानसे साधन—जैसे यह कहा है अर्थापत्तिवादियोने कि जीवित देवदत्त अन्यत्र है क्योकि घरमे नहीं है तो यह बतलावो कि घरमे जो जीवन रहता था उसी जीवितपनेसे विशिष्ट घरमे देवदत्तके अभावका विशेषण है या बाहर होनेवाले जीवनसे विशिष्ट देवदत्तके अभावका विशेषण है? तर्क ऐसा होता है कि तर्कमे तर्क उठाते जावो तो वातावरण ही ऐसा बन जाता है कि उसकी सिद्धि नहीं हो पाती। यह पूछ रहे है कि घरमे जो जीवित रहता था उस जीवनसे सहित देवदत्त बाहर है या बाहर जो जीवन बन रहा है उस जीवनसे सहित देवदत्तका घरमे अभाव है। यदि कहो कि घरमे जो जीवन था उससे युक्त देवदत्तका बाहर सद्भाव सिद्ध किया जा रहा है तो यह बात तो अयुक्त है क्योकि घरमे जो जीवन है उस जीवन सहित तो बाहर नहीं है। बाहर जो जिन्दा है वही उसका जीवन है। घरमे रहते हुए जीवनका घरमे अभाव है यह बात तो वचनविरुद्ध है और फिर जीवनकी सत्ता उसमे किससे जानी गयी? जिससे जानी गई उसीसे देवदत्त जाना गया। अभावपूर्वक अर्थापत्तिका जीवन किस प्रमाणसे ज्ञात है? उस जीवनकी सिद्धि यदि अर्थापत्तिसे मानें तो उसमे अन्योन्याश्रय दोष है। अर्थापत्ति सिद्ध हो तो उसका जीवन सिद्ध हो जीवन सिद्ध हो तो अर्थापत्ति सिद्ध हो। इतना भी नहीं सिद्ध कर सकते कि देवदत्त घरमे नहीं है, इसलिए बाहर है। यह भी स्याद्वादका सहारा लिए बिना सिद्ध नहीं किया जा सकता है। यदि कहो कि हम निश्चित जीवनकी बात नहीं कह रहे। हम यह कह रहे कि यदि घरमे न रहता हुआ देवदत्त जीवित है तो जीवित देवदत्त अन्यत्र है। तो ये सब अर्थापत्तिया सदेह युक्त होनेसे कोई स्वरूप नहीं रखती, न प्रमाण है किन्तु यदि अविनाभाविता है जिस किसी अर्थापत्तिमे तो

वह अनुमान है। यहाँ अनुमान बनता कि जीवित देवदत्तका उस घरमे अभाव होनेसे उसका बाहरमे सद्भाव न होता तो घरमे इस जीवित देवदत्तका अभाव भी न होता। इसमे प्रतिज्ञा हेतु आदिक सभी चीजें आती है तो यह अनुमान तो बना, पर अर्थापत्ति नामका कोई प्रमाण नही है।

अपने ज्ञानके प्रकारोका दर्शन – यह सब अपने ज्ञानकी बात चल रही है। आत्मा सभी ज्ञानस्वरूप है और सबका ज्ञान पदार्थोंको जानता रहता है। कुछ प्रत्यक्ष से हम आप जानते हैं। आखो देखें, कानोसे सुने सब प्रत्यक्षसे भी जानते रहते हैं, कुछ बातें हम परोक्ष भी जानते रहते हैं। जैसे हमने पहिले जानी हुई चीजोंका ख्याल किया तो यह भी तो ज्ञान है, हम दो चीजोंकी तुलना कर रहे हैं। यह इससे भिन्न है, यह इससे अभिन्न है, यह इसके समान है, यह इससे असमान है, यह वही है, यह वह नही है, ये सब ज्ञान हो रहे हैं ना ! हम कोई तर्क और युक्तिया भी देते रहते हैं। यदि ऐसा है तो यो होगा, ये सब विज्ञान चलते है। तो हम आप सब लोगोके ये ज्ञा चलते रहते हैं, इन्हीं ज्ञानोका स्वरूप बतलाया जा रहा है कि किस ज्ञानका क्य स्वरूप होता है ? प्रत्यक्षज्ञान कौन कहलाता और परोक्षज्ञान कौन कहलाता ? ये स ज्ञान करके हम अपने ज्ञानके स्वरूपका निर्णय बनाते है। विस्तृत रूपसे जानने प्रयोजनभूत बात भी बहुत स्पष्ट जान ली जाती है। जैसे किसी मित्रसे कोई का कराया तो जितना काम कराना है उससे अधिक ज्ञान उस चीजका वह रखता हो त अच्छे ढङ्गसे उस कामको वह कर लेगा और जितना काम कराना है उतना ही सिर्फ ज्ञान वह रखता है तो उस कामको अच्छे ढङ्गसे वह न कर पायगा। विशेष ज्ञान जह है उसका प्रयोजनभूत सामान्यज्ञान स्पष्ट रहा करता है। तो हम अपने आत्माके ज्ञा स्वरूपका यथार्थ निर्णय करें इसके लिये यह भी आवश्यक है कि हम इन ज्ञानकला को भी जाने कि ज्ञान किस किस प्रकारसे अपनी कलासे जाना करता है।

अपना स्वरूप दु खका अकारण—मूलमे तो ज्ञान एक जाननेका काम करता है, इसमे और कोई ऐब नहीं है, पर देखा यो जा रहा है और लोग यो सोचते हैं कि आत्मा यदि जानता न होता कुछ तो इसको कोई दु ख न था। यह जानता है इसलिए इसमें दु ख आते है। ये चौकी मेज आदिक पदार्थ कुछ जानते नही तो इनको दु ख भी कुछ नही होता। इस प्रकारकी कल्पना करना उनका एक अज्ञान है। जानने से दु ख नही होता, जानना तो एक उत्कृष्ट तत्त्व है, मान लो कि जगतमे कोई जानने वाला पदार्थ यदि न होता और सारे पदार्थ यो ही पडे रहते तो कोई जगतकी व्यवस्था भी थी क्या ? इस जाननहार आत्माके कारण पदार्थकी व्यवस्था भी ज्ञात है पदार्थ भी है फिर पदार्थ किसलिए होता है ? जानना दु खके लिये नही होता। जाननेके साथ जो राग द्वेष मोह लगे हैं वे दु खके लिए हैं। अरहत सिद्ध परमात्मा तो समस्त लोकालोकको जानते हैं उनको क्या क्लेश है ? तो जाननेसे कोई क्लेश नही होता है,

मोह रागद्वेषसे क्लेश होता है। जब कभी सडकसे आप जाते है तो रास्तेमे सैकडो हजारो लोग मिलते है तो किसीको देखकर आपको कष्ट तो नही होता ? और, यदि कोई अपना आदमी मिल जाय, जिसमे राग हो वह यदि लगडाता हुआ आ रहा है तो उसे देखकर आप झट व्याकुल हो जाते हैं, और चाहे बहुतसे लगडे आते जाते दिख जायें पर उनको देखकर आपको क्षोभ नही होता तो क्षोभ जाननेसे नही होता, किन्तु रागसे होता है। तो अशान्ति मेटनेके लिए यह कल्पना न करिये कि जानना मिट जाय ऐसी विधि बनाइये कि ये रागद्वेष मिट जाये।

मोहकी दुखकारिताका एक दृष्टान्त—एक दृष्टान्त दिया गया है राजवार्तिकमे कि एक पुरुष किसी दूसरे गाव जा रहा था तो उसने यह देखा कि एक १० वर्षके बालकको हाथीने अपनी सूंडसे पकडकर फेंक दिया और वह बालक मर गया। उस मनुष्यका भी १० वर्षका बालक उसीकी सकलसे मिलता जुलता था, तो उसको भ्रम हो गया कि यह मेरा ही बालक है जो मर गया। तो ऐसे भ्रमके बाद वह एकदम बेहोश होकर गिर पडा। उसको बेहोश हालतमे गिरता देखकर एक व्यक्ति उसके निकट गया। वह मनोविज्ञानका कुछ अधिकारी था तो यहाँ वहाँ देखकर सामनेकी उस बालक वाली घटनाको निरखकर उसने यह जान कि इसको अपने पुत्रका शोक हुआ है, इसको यह शङ्का बन गयी है कि मेरा पुत्र गुजर गया। क्योकि वह मर जाने वाला बालक भी इसीकी सकलका व इसीकी उमरका है। तो उसने उसकी बेहोशी मिटानेके उपायमे सर्वप्रथम यह उपाय किया कि झट उसके घर खबर भेज दी और कहा कि उस बालकको झट लावो। वह बालक आ गया। वहा उपचार भी किया जा रहा था थोडा उपचारसे उसे शान्ति मिली और आँखें जहाँ खोली ता सामने उसका बालक खडा मिल गया। तो उसका भ्रम दूर हो गया। समझ गया कि जो लडका मरा है वह मेरा नही है। मेरा तो यह है। उसकी बेहोशी सब समाप्त हो गयी। तो उसे जो दुख हुआ था वह लडकेके मरनेसे दुख न हुआ था किन्तु यह मेरा लडका है जो गुजर गया, इस प्रकारका जो राग भाव था उस राग भावसे उसे क्लेश हुआ।

रागकी क्लेशमूलताकी घटनायें—रेलगाडीमे मुसाफिरी करते हुएमे उसी डिब्बेमे किसीसे थोडा स्नेह हो जाय बोल-चालसे तो क्या होता है कि जब उसपर कोई दूसरा व्यक्ति किसी बातसे गुस्सा होता है तो वह मुसाफिर भी खेद मानने लगता है। अरे उससे उसका कुछ लेन देन नही, कोई बात नही, थोडी देरके लिए एक साथ बैठे हुए है पर व्यर्थमे वह व्यक्ति उसके पीछे दुखी होता है। तो वह चूंकि उसके प्रति राग भाव बना लेता है, इसलिए दुखी होता है। किसी लडका-लडकीका सम्बन्ध निश्चित् हो जाय, सगाई हो जाय, तो यद्यपि अभी सम्बन्ध नही बना, सगाईके बाद भी बात छूट सकती है लेकिन सगाई होते ही अपनी आत्मीयताकी कल्पना हो

बैठी कि यह मेरा सम्बन्धी है यह मेरा घर है, अब वहाँ कोई आपत्ति आये तो यह भी दु खी होने लगेगा। और, सगाई–सम्बन्धसे पहिले कोई आपत्ति न मानता था। तो जाननेमे दु ख नही है किन्तु उसके साथ जो रागभाव लगा है उस रागभावके कारण दु ख है। तो दु ख मिटानेके लिए ज्ञानबल बढाना चाहिए जिससे रागद्वेष मोह दूर हो, यह शान्तिका उपाय है।

क्लेशविनाशमे भेदविज्ञानकी साधकतमता रागद्वेष मेटनेके उपायमे एक भेदविज्ञान ही खासा उपाय है। हम सब पदार्थोंको भिन्न–भिन्न पहिचान ले फिर रागद्वेष मोह न रहेंगे। यह मैं आत्मा इन सब आत्मावोंसे अत्यन्त निराला केवल अपने ही गुणपर्यायमे रहने वाला हूँ। मेरा किसी भी जीवसे कोई सम्बन्ध नही है। मैं आत्मा अपने परिणमनोको ही करता रहता हूँ, मुझमे किसी अन्य जीवका सम्बन्ध नही है। जब भेदविज्ञान हो तो इस ज्ञानके प्रतापसे स्वय ही राग उसका छूट जायगा, मोह तो छूट ही जायगा। अज्ञान तो रहेगा ही नही। ज्ञान तो यथार्थ जग गया कि सर्व पदार्थ अपने अपने स्वरूपसे सत् बने हुए है। कोई किसीकी सत्ता बनाता नही है, तो यह स्वातन्त्र्यका परिज्ञान होते ही मोह दूर हो जाता है। मोह दूर हुआ कि उसके सारे क्लेश समाप्त हो जाते हैं। सभी क्लेश मोहके आधारपर निर्भर हैं। जो परपदार्थ हैं उन्हे मानना कि ये मेरे है यह महान अज्ञान है। अरे मैं मैं हूँ, ये ये हैं, मेरा कहीं कुछ नही है, तो ऐसा ज्ञान जगे जिससे मोह दूर हो जाय तो वह ज्ञान इस जीवका उद्धार कर सकने वाला है, तो ज्ञानबल बढानेका उपाय करना चाहिए कि जिससे हमारे सारे क्लेश शान्त हो जाएँ। उस उपायमे सर्वोपरि उपाय भेदविज्ञानका है। भेदविज्ञान वस्तुस्वरूपके ज्ञानसे जगता है, इससे वस्तुके स्वरूपको बताने वाले शास्त्रका हम ज्ञान बढाये और सम्यक्त्व प्राप्त करें तो इस सम्यक्त्वके प्रतापसे ही हम ससारके समस्त क्लेशोसे मुक्ति पा सकते हैं।

अभावप्रमाणवादियोके प्रति निषेध्याधारमे निषेध्यसे संस्पृष्ट या असंस्पृष्ट होनेका विकल्प—जैसे आँखोसे निरखकर वस्तुको हम जान लेते है कि यह चौकी है, पुस्तक है आदि, तो उसे हम प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं, इसी तरह किसी चीज का अभाव हो, कोई वस्तु न हो और 'वहाँ यह नही है" ऐसा ज्ञान किया जाता है तो वह अभावज्ञान कहलाता है। अभावप्रमाणवादी इस अभावको अलग एक प्रमाण मानते हैं। उन्होने यह बताया था कि जिस चीजका निषेध करते हैं जिस चीजका अभाव बताते हैं, उसकी जो आधारभूत वस्तु है उसका ग्रहण होनेसे अभावज्ञान बनता है और वह तीन प्रकारसे उत्पन्न होता है आदिक जो कुछ बताया उसके सम्बन्धमे उनसे पूछा जा रहा है कि तुमने जो यह जाना कि यहाँ घडा नही है तो निषेध हुआ घडे का, घडेका हम यहाँ अभाव बताना चाहते हैं, उसकी आधारभूत वस्तु हुई यह जमीन, यह फर्श, यह कमरा सो उस वस्तुके ग्रहणमे अभावका ज्ञान हुआ, तो

निषेधका आधारभूत भूतलका जो ग्रहण है वह प्रतियोगी घटसे न छुआ हुआ भूतलका ज्ञान हुआ या घटसे सहित जमीनका ज्ञान हुआ ? इन विकल्पोका स्पष्ट भाव यह है कि हम जिस कमरेमे जाकर वहाँ घडा नही देखते है और कहते है कि यहाँ घडा नही है । तो क्या देखकर तुमने कहा ? जमीन देखकर ही तो कहा । तो वह जमीन घडेसे छुई हुई देखी या घडेसे बिना छुई हुई देखी ?

निषेध्यससृष्ट निषेध्याधारकी असगतता - घडेमे सहित जमीन देखकर यह कहा कि वहाँ घडा नही है तो यह स्ववचनविरुद्ध बात है । घडेसे स[ह]ित जमीन देखा और फिर कहा कि घडा नही है तो प्रतियोगीके सम्पर्कसहित आधारको देखकर अभावज्ञान तो बनता न[ही] और फिर भी अभावज्ञान जबरदस्ती माने तो वह प्रमाण-भूत नही है । जैसे दरी सहित कमरेको निरखकर कोई कहे कि वहाँ दरी नही है, तो इसे कौन मान लेगा ? इससे जिस चीजका निषेध करना है उस चीजसे सहित आधार का ग्रहण नही हो सकता ।

निषेध्यासमृष्ट निषेध्याधारमे अभावप्रमाणकी असिद्धि – यदि यह कहो कि उस चीजसे रहित आधारका ज्ञान हुआ अर्थात् घडा न था, घडेसे सहित कमरेका ज्ञान हुआ, फर्शका ज्ञान हुआ तो यह बात तो प्रत्यक्षसे ही जान ली । घडा नही है, यह जमीन है यह तो प्रत्यक्षसे ही जान लिया, फिर अभाव प्रमाण माननेकी क्या आवश्यकता रही, क्योकि प्रत्यक्षसे ही उस प्रतियोगीका अभाव जान लिया गया । घडा नही है यह आखोसे देख लिया, फिर उसमे एक अलग अभाव प्रमाण मानना यह तो व्यर्थ है । बात यहा यह कही जा रही है कि जैसे यह ज्ञान समक्ष र[ह]ने वाले पदार्थको प्रत्यक्षसे जान लेता है इसी प्रकार यह ज्ञान प्रत्यक्षसे ही अभावको जान लेता है । जहा आखोसे निरख करके अभाव बताया वह प्रत्यक्ष ज्ञान है । अभाव नामका कोई अलग प्रमाण नहीं है आप अपने ज्ञानसे रोज रोज यह सब काम लेते रहते है उस ही ज्ञानकी बात कही जा रही है कि आप ज्ञानसे किस तरहका काम लिया करते है । और वह किस किस्मका ज्ञान होता है । तो ये दो विकल्प करके अभावका खण्डन किया है । घडेमे छुवा हुआ कमरा नही जाना गया और घडेसे न छुवा हुआ कमरा सीधा प्रत्यक्षसे जान ही लिया, फिर अभाव प्रमाण माननेकी आवश्यकता नही रही ।

प्रतियोगीसे असंसृष्ट आधारकी साधनामे प्रश्नोत्तर—शायद यह कहो कि घडेसे न छुवा हुआ यह कमरा है ऐसा ज्ञान तो घडेके अभावके प्रमाण द्वारा जाना गया है तो पूछते है कि वह भी अभाव प्रमाण अन्य प्रतियोगीसे न छुए हुए वस्तुके ग्रहणसे जाना जायगा और वह वस्तुसे नही छुवा हुआ है । प्रतियोगीसे रहित है यह अन्य अभावसे जाना जायगा तो यह अनवस्था दोष होगा । अगर कहो कि जिस अभाव प्रमाणसे घडसे न छुई हुई यह भी जान लिया गया तो इसमे इतरेतराश्रय

दोष होगा। जब घडेसे न छुई हुई जमीन है वह आने तो अभाव ज्ञान बने। जब अभावज्ञान बने तो यह जमीन घडेसे असंसृष्ट है यह ज्ञान बने। तो अभाव प्रमाण कोई स्वतन्त्र प्रमाण नही है किन्तु प्रत्यक्षज्ञानकी ही वह एक किस्म है। कोई कोई अभाव ज्ञान अनुमानसे भी बनता तो वह अनुमानमे गर्भित है। जैसे यह अनुमान किया कि इस चौकीमे जलाने की शक्ति नही है, चौकी किसी अन्य पदार्थको जला नही सकती, उसमे दाहक शक्तिका अभाव है क्योंकि यह किसीको जलाती नही है। तो उसमे दाहक शक्तिका जो अभाव जाना वह प्रत्यक्षमे तो नही जाना, अनुमानमे ही जाना। तो अभाव जिन-जिन प्रमाणोंमे जाना जाय उन-उन प्रमाणोंरूप है। अभाव कोई स्वतंत्र प्रमाण नही है।

अभावप्रसगमे प्रतियोगीके स्मरणमे आशंकित विकल्प— अभाव प्रमाण वादी यह विधि बतला रहे थे कि जिसका अभाव बताते उसके आधारका तो ग्रहण होना है और जिसका अभाव बताते उसका स्मरण होता है। तो अभाव ज्ञान होता है। व्यवहारमे ऐसा लगता भी है लेकिन यह सब प्रत्यक्ष आदिक ज्ञानोंमे बन जाता है। कोई अलग अभाव प्रमाणकी जरूरत नही रहती। तो प्रतियोगीके स्मरणकी जो बात अभावप्रमाण वादियोंने कही थी सो पूछा जा रहा है कि प्रतियोगीका स्मरण अर्थात् जहा नहीं है तो उस घटका जो स्मरण है वह जमीनका छुए हुए घटका स्मरण है? यदि घटसे सहित जमीनका स्मरण है तो अभाव प्रमाण बन ही नहीं सकता। घडा तो मौजूद है। यदि न छुए हुएका स्मरण है तो अनवस्था दोष और इतरेतराश्रय दोष आते हैं।

अभावकी वस्त्वन्तरसद्भावरूपता - हम सीधे ही जल्दी ही बता देते हैं कि ये ये चीजे है या नही? उसमे कोई तर्क नहीं निकलता। किसीने कहा कि जरा देखो अलमारीमें समयसार ग्रन्थ रखा है उठा लावो। अलमारी खोला तो वहा एक भी पुस्तक न थी। वह कहता है कि यहा समयसार ग्रन्थ नही है। देखकर ही तो बताया तो वह अभाव प्रत्यक्षमे अन्तर्गत हुआ। अभाव तुच्छ अभावरूप नही हुआ करता। कुछ नहीं का, केवल न का ज्ञान नही हुआ करता यह मनुष्य, किन्तु उस पदार्थसे रहित वस्तुका ज्ञान हुआ करता है। न दो प्रकारके होते है—एक शून्यरूप और एक दूसरेके सद्भावरूप। जैसे चौकीपर दो तीन किताबें रखी है और किसीसे कहा कि तुम 'जिन-वाणीसग्रह' मत लाओ। तो उसका अर्थ यह निकल सकता है कि और सब किताबें ले आवो। यह भी अर्थ निकलता है कि कुछ भी मत लावो। तो न के दो अर्थ हुआ करते हैं। यहा न का अर्थ सद्भावरूप है। किसी भी वस्तुका अभाव कहा जाय तो अन्य वस्तुके सद्भावरूप अभाव पडेगा उस वस्तुका प्रत्यक्षमे ज्ञान होता, अनुमान आदि से ज्ञान होता। इसलिए अभावका ज्ञान कराने वाला कोई अलग प्रमाण नही है। यह ज्ञानविलासकी ही बात चल रही है, कोई अन्य पदार्थकी बात नही है, यह खुदकी

बात है। हम स्वय जानते है तो किस ढङ्गमे जानते रहते है। जानते सब है। यह अभावज्ञानकी भी बात सवपर गुजरती है। छोटे बच्चेसे लेकर बडे तक भी इस ज्ञानका उपयोग करते है। पर वह ज्ञान किस प्रकार उत्पन्न होता है और उसकी पद्धति क्या है, स्वरूप क्या है। उसका तो ज्ञान सब नही कर पाते। उस ही स्वरूप को यहा बताया जा रहा है। अभाव प्रमाण अलग नही है, किन्तु प्रत्यक्षसे ही हम जान जाते है कि अमुक चीज यहाँ नहो है।

अभावप्रसङ्गमे प्रतियोगिस्मरणकी मीमासा – अभाव प्रमाणवादी कह रहे है कि भाई पदार्थको प्रत्यक्ष कर लेनेपर भी जिस चीजका हमे अभाव बताना है, अमुक चीज नही है ऐसा बताना है, उस चीजका स्मरण तो होता ही है। यदि घटका स्मरण न हो तो कोई यह नही कह सकता कि यहाँ घट नही है। इसलिए प्रतियोगी का स्मरण होता है, उसका फिर ज्ञान हुआ वह अभाव ज्ञान है, तो आचार्यदेव उत्तर देते है कि जिसका भी स्मरण होता है उसका स्मरण होता है तब जब कि वह अनुभवमे आये। जिन जिन वस्तुवोका ख्याल करते है उन वस्तुवोका ख्याल आपको तभी आयगा जब उनको हमने कभी देखा है, जाना है। जो चीज आज तक जानी नही गई उसका कौन स्मरण करता है। तो अभावमे आप प्रतियोगीका स्मरण वतला रहे है तो प्रतियोगी भी प्रत्यक्षमे आकर स्मरणमे आ सकेगा। तो प्रतियोगीका जो अब स्मरण हो रहा है वह अन्य वस्तुसे सहितका हो रहा है या रहितका। इसमे भी वही सब विडम्बना समझलो, अनवस्था और अन्योन्याश्रय दोष है। अभाव किसी स्वतत्र अभाव प्रमाणसे नही जाना जाता। सीधा जान लेते है है तो "है जान लिया देखकर, नही है तो 'नही" जान लिया।

सर्वथा अभावके अवगमकी असभवता – अभाव अन्यके सद्भावरूप हुआ करता है। क्या कोई ऐसे भी अभावको जानता है कि जहां किसी वस्तुका ज्ञान कुछ भी नही हो कुछ भी सत्पदार्थ विकल्पमे न हो रहा हो और अभाव समझा जा रहा हो ? ऐसा अभाव किसीके द्वारा नही जाना जाता है। जिस वस्तुको आप इस तरह जानते है कि यह नही है तो कुछ जान गए तभी तो कहोगे कि यह नही है। किसी पुरुष को देखकर पहिले आपको किसीको देखकर यह सदेह हो जाय अपने भाईके प्रति कि यह अमुक चन्द आ रहे है और था वह दूसरा कोई। पासमे आने पर वह जान सका कि यह तो कोई दूसरा व्यक्ति है। तो जिसको निरखकर उसे अपने भाईके अभाव का ज्ञान आया उसका तुच्छ अभाव तो नही हुआ। तो असत् कोई भी वस्तु नही है। असत्का ज्ञान कैसे हो सकता है ? यहाँ अभावको तुम असत्‌रूप कह रहे हो, किसी अन्य वस्तुके सद्भावरूप वता नही रहे हो तो अवस्तुका कही ज्ञान हो ही नही सकता।

अवस्तुकी ज्ञेयरूपताका अभाव – कदाचित् कोई ऐसा भी जानले कि

आकाशका फूल, गधेका सींग । जो बात है ही नहीं उसे भी कोई जाने तो वहाँ भी सर्वथा असत्का ज्ञान हुआ । यद्यपि आकाशमें फूल नहीं उगते, फूल पेड़में ही होते हैं गधेके सींग नहीं हुआ करते गाय भैंस आदिकके ही सींग होते हैं लेकिन जब गधेके सींग नहीं है, ऐसा जाना तो गधा गधा तो है और सींग सींग तो है, कहीं भी हो। सींग कोई वस्तु ही न हो तब तो आपत्ति दे । गधा अलग वस्तु है, सींग अलग वस्तु है । अब अलग रहने वाली वस्तुओंको हम एक जगह जोड़ते हैं। कल्पना बना रहे हैं तो यह कल्पना हमारी असत्य हुई, पर जो कुछ भी ज्ञानमें आता है वह पदार्थ नियमसे है कहीं भी हो, तब ज्ञानमें आता है । जो कुछ भी न हो तो ज्ञानमें क्या है ? स्वप्नमें भी कभी कभी अटपटी चीज दिखनेमें आती हैं जिसे कभी हमने जाना भी नहीं है, हमारी कल्पनामें भी नहीं था, इस जीवनमें कभी भी अटपट बात दिखती है, लेकिन वे अटपट भी किसी स्वप्नमें । तो स्वप्न तकमें भी जो वस्तु सर्वथा असत् है, हुआ ही न करती हो, किसी भी तरहसे वह दिख गयी हो यह बात नहीं है, चीज है, कहीं हो, कभी हो; सत् है जो स्वप्नमें भी ख्याल आता है उसका, जागृत अवस्थामें भी ख्याल होता है उसका, पर जो वस्तु है ही नहीं सर्वथा असत् है उसका कौन ख्याल करता है ?

अभावप्रमाणमें अभावसिद्धिकी अव्यवस्था — जिस स्थानपर घट नहीं है उस स्थानको देखकर घटका अभाव कहा । यह अभाव प्रमाणको बताने वाली पद्धतिमें नहीं हुआ । उस पद्धतिमें बतलाते है कि प्रतियोगी घटका स्मरण होता है तब अभाव प्रमाण होता है और घटका प्रतियोगी भूतल है, भूतलका प्रतियोगी घट है, प्रतियोगी उसे कहते हैं जो जिससे अलग है उसका उससे मुकाबला करें तो एक दूसरेका प्रतियोगी हो जाता है । जैसे दो पद्धतियोंमें वाद विवाद हो तो उसमे किसीका भी नाम लेकर पूछ सकते हैं कि इसका प्रतियोगी कौन है । तो घटका प्रतियोगी हुआ भूतल और भूतलका प्रतियोगी हुआ घट । यदि यह कहो कि प्रतियोगी भूतलके ख्याल आनेसे यह जाना गया कि यह घट भूतलसे सहित नहीं है, रहित है और घटसे रहित है उसके स्मरणमें भूतलका ज्ञान हुआ कि यह घटसे रहित है तो इसमें इतरेतराश्रय दोष है । जब तक घटसे रहित जमीनका स्मरण नहीं होता तब तक यह घट जमीनसे नहीं छुए हुए है यह ज्ञान नहीं हो सकता । जब तक घटको यह भूमिसे छुवा हुआ नहीं है यह स्मरण न हो तो जमीन घटसे रहित है यह प्रतिपत्ति नहीं हो सकती ।

भावांशकी तरह अभावांशका भी प्रत्यक्षसे ज्ञान — अभावांश का ज्ञान भावांशके प्रत्यक्षकी तरह है । जैसे प्रत्यक्षसे भावांशका ज्ञान कर लेते हैं ऐसे ही इस प्रत्यक्षसे अभावांशका ज्ञान भी कर लेते है । यह घड़ा घड़ा है, यह चौकी आदिक अन्य कुछ भी नहीं है, ये दोनो बातें हमने आंखोंसे देखकर बताया या हम बड़े सोच विचार में पड़ गए और चौकीका ख्याल कर चटाईका ख्याल करा दुनियाभरकी समस्त अन्य वस्तुओंका ख्यालकर और फिर वहां यह जाना कि देखो घटमें चौकी आदिक कुछ नहीं

है, कोई ऐसा विलम्ब करता है क्या ? क्या कोई यो अन्य चीजोका ख्याल करता रहता है जिसका कि घडेमे अभाव बताना है ? घडी देखा और तुरन्त जान गए। घडी घडी है, चौकी आदिक नही है। इस घडीमे घडीके ही कलपुर्जोका सद्भाव है और वस्तुवोके पुर्जोका अभाव है, यह बात हम प्रत्यक्षसे ही तो जान लेते है, अन्य अभाव प्रमाण जैसी कल्पता करनेकी क्या आवश्यकता है ?

प्रमाणके लक्षणका अनुस्मरण – यह प्रमाणभूत ज्ञानकी चर्चा की जा रही है। कौनसे ज्ञान प्रमाणभूत होते ? प्रमाणका लक्षण सर्वप्रथम यह बताया गया कि जो अपनेको और अपूर्व अर्थको निश्चय करा दे उस ज्ञानका नाम प्रमाण है। देखो प्रमाणभूत ज्ञानमे ये दो प्रकृतियाँ पडी हुई होती है कि वह ज्ञान अपने आपका भी निर्णय रखता है कि यह प्रमाण है और पदार्थका भी निर्णय रखता है कि यह प्रमाण है। जैसे आप अपने मित्रको देखकर यह ज्ञान करते है कि यह मित्र है तो उस समय आपका दो जगह पूरा निश्चय बना हुआ है कि यह मित्र है ऐसा जो मुझे ज्ञान हुआ है यह बिल्कुल पक्का है और यह मित्र है यह भी बात बिल्कुल पक्की है। तो ज्ञान की पक्कायतमे दो जगह पक्कायतका निर्णय रहता है। तो जो ज्ञान स्व और अपूर्व अर्थका निर्णय करायें उस ज्ञानको प्रमाण कहते है।

प्रत्यक्ष ज्ञानोके प्रकार– वह ज्ञान कितने प्रकारका है उसके प्रकार फैलाव कई मिलेंगे। एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। इन इन्द्रियोसे जो कुछ हमने सीधा जान लिया है वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। जैसे जानते है कि पट्टा है, दरी है, चौकी है, पुस्तक है, ये सब ज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। एक अवधिज्ञान प्रत्यक्ष है। अतीत कालकी बात अथवा बाहरी क्षेत्रकी वस्तु एक आत्मीय शक्तिसे ही जानी जाती है। वहा इन्द्रिया काम नही देती। तो दूरवर्ती और अतीत भविष्यकालकी वस्तु आत्मीय शक्तिसे जान ली जाय उसे अवधिज्ञान कहते है। अवधिज्ञानमे रूपी पदार्थ ज्ञानमे आते हैं। एक मनःपर्ययज्ञान प्रत्यक्ष होता है। दूसरेके मनमे क्या भाव भरा है, क्या विकल्प है, इसने क्या सोचा है, क्या सोचा था ? यह क्या सोचेगा ? उन सब विचारोको जान लेना यह भी आत्मीय शक्तिसे होता है। यह भी प्रत्यक्ष है, और भगवानका केवलज्ञान जिसके द्वारा समस्त लोकालोक जान लिया जाता है, वह भी प्रत्यक्ष है। वह सकल प्रत्यक्ष है।

परोक्ष ज्ञानोमे स्मरण और प्रत्यभिज्ञान अब परोक्षज्ञानोको देखिये — स्मरण ज्ञान–जैसे किसी वस्तुका स्मरण आ जाय कि वह है, वह कैसा है, वह कहाँ है। तो वहके रूपमे तत् शब्दके रूपमे जिसकी मुद्रा बनी है ऐसी परोक्षभूत वस्तुका स्मरण होना स्मरण ज्ञान है। जैसे किसी नगरमे जहाँ जहाँ आपका सम्बन्ध है व्यापार है वहाका ख्याल आये तो वह स्मरण ज्ञान है, यह परोक्षज्ञान है। कभी दो वस्तुवोमे तुलनाका भी ज्ञान होता है। जैसे यह चीज दूसरी इस चीजकी तरह है।

तो यह प्रत्यभिज्ञान ज्ञान हुआ। एक पदार्थका तो प्रत्यक्ष हो और दूसरे पदार्थका स्मरण होवे और फिर उसमें उसमाकी बात जानी जाय, कुछ भी जोड लगाया जाय उसे प्रत्यभिज्ञान कहते है। यह पुरुष वही है जिसे हमने कल देखा था यह प्रत्यभिज्ञान है। प्रत्यभिज्ञानमे तीन बातें होती हैं, एक चीजका प्रत्यक्ष, दूसरी चीजका स्मरण और फिर उन दोनोमे किसी बातका सकलन करना। यद्यपि एकत्व प्रत्यभिज्ञादमे एक ही चीज जानी गई, किन्तु उसका ही स्मरण होनेपर स्मरण रूपसे जो जाना गया वह अन्य पद्धतिसे है। इसलिये वह अन्य हुआ। और, प्रत्यक्षरूपसे जो जाना गया वह अन्य पद्धतिसे है इससे यह अन्य हुआ। अब इन दोनोका एकत्व जोड दिया यह प्रत्यभिज्ञान है। यह उससे छोटा है यह उससे बडा है, यह उससे अधिक चतुर है, यह उससे अधिक रूपवान है आदिक कुछ भी प्रतियोगिता बताना वह सब प्रत्यभिज्ञान है। यह ज्ञान भी परोक्ष ज्ञान है।

परोक्षज्ञानोमे तर्क, अनुमान और आगमज्ञान – एक ज्ञान होता है तर्क ज्ञान। जैसे तर्कणा कर रहे हैं, अविनाभाव बता रहे हैं–जहा जहा धुवा होता है वहा वहाँ अग्नि होती है, जहा अग्नि नही होती वहा धुवा नही होता। एक तर्क कर रहे हैं। यह ज्ञान न प्रत्यक्ष है न अनुमान है, न स्मरण है, किन्तु एक युक्तिसे बात लायी जा रही है। तो तर्क भी एक सम्यग्ज्ञान होता और प्रमाणभूत होता, फिर उसके तर्कसे अनुमानकी उत्पत्ति होती है। जब तर्कसे यह जान लिया गया कि धुवासे अग्निका अविनाभाव है तो वह धुवा देखकर अग्निका अनुमान करना अनुमान ज्ञान है। तो यह अनुमान भी परोक्षज्ञान है। एक आगमज्ञान होता है। आपने कोई बात कहा, उन शब्दोसे हमने कुछ जान लिया, यह आगमज्ञान है। शास्त्रमे जो बात लिखी है वह शब्द ही तो है यह शब्द मुद्रामे है और मुखसे बोला गया शब्द एक साक्षात् आकारमे है। जैसे भगवान और भगवानकी मूर्ति। जो २४ तीर्थङ्कर हुए हैं वे जब हुए थे वे तो साक्षात् थे और उनकी यहा मूर्ति बनाई गयी, उन जैसा आकार बनाया गया, वह उनकी मुद्रा हुई। इसी प्रकार शब्द जो मुखसे बोले जाते हैं वे तो सीधे साक्षात् शब्द है और लिपियोमें जो लिखे जाते है यह उन शब्दोकी प्रतिमा है। तो शब्दोकी मूर्ति रूप आगमसे जो हमने जाना वह आगमज्ञान है। वह भी परोक्षज्ञान है।

अभावका सद्भावग्राहक प्रमाणमे अन्तर्भाव—प्रत्यक्ष और परोक्षके प्रकारोमे अनेक ज्ञानोका विस्तार है। और, यह ज्ञानोका विस्तार युक्तिसगत है। सबके विषय अलग अलग है और ये सब प्रत्यक्ष और परोक्ष इन दोनोमे गर्भित होते हैं। यह तो है, प्रमाणकी सही पद्धति। इस पद्धतिको न मानकर कोई कोई लोग और–और तरहसे भी ज्ञानोको प्रमाण माना करते हैं जिसका वर्णन बहुत कुछ हो चुका है। उन प्रमाणोमे अभाव प्रमाणकी बात चल रही है कि अभावप्रमाणवादीका मन्तव्य है कि अभाव भी एक अलगसे प्रमाणज्ञान हुआ करता है। किन्तु सिद्धान्तसे यह सिद्ध

हुआ कि अभावप्रमाणका प्रत्यक्षादि प्रमाणमे अन्तर्भाव है। यहा इतना ध्यान देना है कि अभाव प्रमाणवादी अभावको तुच्छ अभाव मानते हैं किसी दूसरी चीजके सद्भाव-रूप नही मानते। किन्तु, तुच्छ अभाव तो व्यवहारसे भी परे है, अभाव तो वस्त्वन्तर के सद्भावरूप है। जैसे किसी पुरुषको देखकर आप तह ज्ञान करे कि यह नही है हमारा भाई, आपके भाई जैसा ही उसका डील डौल था कि हमारा भाई आ रहा है पर निकट आनेपर यह ज्ञान हुआ कि यह नही है हमारा भाई। तो हमारा भाई नही है ऐसा जो ज्ञान बनासो इस पुरुषको देखकर ही तो बन रहा है। अभावका किसी सद्-भावसे तो लगाव है। तब अभाव जाननेमे आता है। ऐसा अभाव जाननेमे नही आता कि ज. कुछ भी सत् नही है असत् है और वह ज्ञानमे आया। असत् पदार्थ ज्ञानका विपक नही होता। ज्ञानका विषय सत् पदार्थ ही हुआ करता है। तो यो अभाव प्रमाणवादी अभावको प्रमाण कह रहे थे। उसके खण्डनमे इस समय प्रत्यक्षमे यह अभाव गर्भित है यह सिद्ध किया जा रहा है। जिस किसीको निरखकर हम उसके पदार्थका अभाव कहते हैं तो वह तो देखी जाने वाली वस्तुके सद्भावरूप है। इसलिये प्रत्यक्षगम्य है, वह अभाव। अभाव कोई स्वतत्र प्रमाण नही है।

दर्शनस्मरणकारणकविधिमे अभावज्ञानकी प्रत्यभिज्ञानरूपता—अभाव प्रमाणवादी यहाँ यह कह रहे है कि प्रतियोगीके स्मरण बिना जो ज्ञान होता है वह तो प्रत्यक्ष ज्ञान है, किन्तु प्रतियोगीके स्मरणके अनन्तर जो उसका अभाव जाना जाता है वह अभाव प्रमाण है। भूतलसे ससृष्ट घटका जिसने अनेक बार दर्शन किया जिससे सस्कार बना, धारणाज्ञान हुआ अब फिर कभी घटसे रहित भूतलके देखनेपर उस प्रकारके याने भूतलससृष्ट घटका स्मरण हो आया उसके बाद यह ज्ञान हुआ इस कारण यह अभावज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाणसे अलग है अतएव अभावप्रमाण हुआ। इस आशकाके समाधानमे आचार्यदेव कहते हैं कि भूतलको प्रत्यक्ष देखा और घटका स्मरण हुआ तदनन्तर जो अभावका ज्ञान बनाया वह तो प्रत्यभिज्ञान हुआ। इस ढङ्गसे जो अभाव जाना गया वह इस मुद्रामे रहा कि इसका यहा अभाव है, घर का इस कमरेमे अभाव है। यह परिज्ञान दर्शन स्मरणकारण हुआ। अत प्रत्यभिज्ञान हुआ।

अभावज्ञानकी अनुमानरूपता—साख्यसिद्धान्तमें अभावको प्रत्यक्षगम्य नही माना गया तो वहा अनुमानगम्य बताया गया है जिसका रूपक यह कहा गया है 'इस भूभागपर घट नही है दृश्य होनेपर भी अनुपलब्ध होनेसे। जहा जो दृश्य होनेपर भी अनुपलब्ध होता है वह उसका अभाव होना है जैसे तमोगुणमे सत्त्व गुणका अभाव है। इस इस अनुमानमे दिये गये दृष्टान्तकी चर्चा नही करनी है, किन्तु यह जाननेकी बात है कि सैद्धान्तिक दृष्टान्त देकर यहा अनुमान विधिमे अभाव सिद्ध किया गया है सो यह अभावज्ञान अनुमान प्रमाण हुआ। अभावप्रमाणका कही स्थान भी नही है।

अभावप्रमाणमे प्रतियोगिनिवृत्तिकी असिद्धि- अभाव प्रमाणके सम्बन्ध मे एक बातका और अवलोकन कीजिये कि अभाव प्रमाणने यदि अभावका ग्रहण किया तो अभावका ही ज्ञान होना चाहिये न कि प्रतियोगीकी निवृत्तिका अर्थात् उस प्रकार ज्ञान नही होना चाहिये कि यहाँ घट नही है, घटकी निवृत्तिरूपसे परिज्ञान नही होना चाहिये। यदि कहो कि अभावके ज्ञानमे प्रतियोगीकी निवृत्तिका भी ज्ञान हो जाता है तो बताइये वह निवृत्ति प्रतियोगीके स्वरूपसे सम्बद्ध है या असम्बद्ध है ? निवृत्तिका प्रतियोगीके स्वरूपसे सम्बद्ध तो कह नही सकते, क्योंकि भाव और अभाव का तादात्म्य आदिक कोई सम्बन्ध नही हो सकता। यदि निवृत्तिको प्रतियोगीके स्वरूपसे असम्बद्ध कहोगे तो उस भूतलको, जो कि घटस्वरूपसे असम्बद्ध है और पटादिस्वरूपसे भी असम्बद्ध है, देखकर यह निर्णय कैसे बनेगा कि यहाँ घट नही है, क्योंकि घटकी तरह पट आदिकसे भी तो भूभाग असम्बद्ध है, उन सभीका अभाव है। तात्र अभावका ज्ञान बन ही नही सकता। अभाव वस्त्वन्तरके सद्भावरूप है सो उस वस्त्वन्तरका जिस प्रमाणसे ग्रहण हो, उसी प्रमाणसे अभावका ज्ञान होता है अभाव प्रमाण पृथक् कुछ नही है।

अभावप्रमाणकी सिद्धिमे त्रिकारताकी कल्पना - जैसे सामने नजर आने वाली वस्तुको प्रत्यक्ष प्रमाणसे जाना जाता है इसी प्रकार सामने न हो तो उस पदार्थको अभाव प्रमाण द्वारा जाना करते हैं। इस प्रकारका श्रद्धान करने वाले अभावप्रमाणवादियोने यह कहा था कि अभावमें तीन प्रकारता होती है। अभावका ज्ञान करनेमे तीन बाते आवश्यक होती हैं। प्रथम तो पाचो प्रमाणोका अभाव अर्थात् जहा प्रत्यक्ष, अनुमान, अर्थापत्ति, उपमान और आगम ये पाचो प्रमाण वहा न लगते हो वहाँ अभावका ज्ञान होता है, क्योंकि ये ५ प्रमाण भावात्मक तत्त्वको जानते हैं। प्रत्यक्षसे कोई चीज ही तो जानी जायगी, अनुमानसे भी वस्तु ही जानी जायगी, आगम अर्थापत्तिसे, उपमानसे कोई वस्तु जानी जायगी तो ५ प्रमाणोका अभाव होना यह अभावके ज्ञानमे एक प्रकार है। दूसरा प्रकार यह है कि जिसका अभाव करना है, अभाव जानना है उसके अतिरिक्त अन्य वस्तुका ज्ञान होना। जैसे इस कमरे मे घट नही है, यहा घटका अभाव समझना है तो घटसे अन्य जो कमरा है उसका ज्ञान होना अभाव जाननेमे अर्थात् अमुक वस्तु यहा नही है ऐसा ज्ञान करनेमे दूसरा प्रकार यह है कि वह दूसरी बात ज्ञानमे आये। तीसरी बात यह है कि आत्मा ज्ञानसे रहित हो, अर्थात् जिसका अभाव करना है उसका वैसा ज्ञान नही हो रहा है। तीन बाते अभावमे हुआ करती है।

अभावज्ञानमे प्रमाणपञ्चकाभावकी हेतुताका निराकरण आचार्यदेव अभावप्रमाणमे त्रिप्रकारताका आशङ्कापर समाधान करते है कि यह बात युक्त नही है। तीन बातोंका क्रमसे खण्डन करते हुए सर्वप्रथम पाचो प्रमाणोका अभाव

है उसमे अभावप्रमाण जाना जाता है इसका खण्डन कर रहे है। किसी पदार्थका अभाव जाननेका प्रथम प्रकार तो यह बताया है कि पाचो प्रमाण जहा नही रहे वहा अभाव प्रमाण होता है। अनुमान आदिककी जहा गति नहीं है ये प्रमाण नहीं हो रहे है। वहा जाना जा रहा है कि यह घडा नहीं है, तो पाच प्रमाणोका अभाव होना इसका कोई अर्थ ही नही है। अभाव तो निःस्वभाव होता है। अभावमे कोई डिग्रिया नही होती। जैसे सद्भावमे अश होते हैं किसी अवस्थामे डिग्रिया होती है ऐसे ही क्या अभावमे डिग्रिया होती है? जैसे यह दूध १०० डिग्री चिकना है, यह दूध ९५ डिग्री चिकना है तो जैसे उस दूधकी चिकनाईमे डिग्रिया हैं, उस दूधमे जैसे भाग पाये गये इस तरह क्या दूधके अभावमे भी डिग्रिया हैं? गिलासमे दूध नही है तो कोई डिग्री भी नही है। उस अभावकी कितनी डिग्रिया है यह तो सम्भव नही है। तो ५ प्रमाणों का जो अभाव है वह तो निःस्वभाव है। वह अभावका कैसे परिज्ञान करेगा। प्रमेयके भेदमे ज्ञान करना कुछ भी ज्ञान करना वह तो ज्ञानका धर्म है। ५ प्रमाणोका अभाव जान लिया गया यह बात ठीक नही बैठी क्योकि जानना ज्ञानका, अभावका धर्म नही है।

अवस्तुके ज्ञानकी अशक्यता यदि यह कहो कि ५ प्रमाणोंका अभाव प्रमेयके अभाव विषयक ज्ञानको उत्पन्न करता हुआ उपचारसे अभाव प्रमाण कहलाता है तो यह भी बात ठीक नही है। अभाव तो अवस्तु है उसको कैसे ज्ञान पैदा करेगा। जैसे यह चौकी है, तो है ना यह, इसलिये इसका ज्ञान हो गया। जहाँ कुछ भी नही है, शून्य है, अभाव है उसका ज्ञान कैसे हो? अवस्तुका ज्ञान नही होता। वह चीज हो तब ज्ञान होता है। कोई आकाशमे कुछ चलतेसे मच्छर नजर आये, है नही वहां पर नजर आने लगें तो मच्छर दुनियामे हुआ करते है तब तो वहाँ मच्छरका भ्रम हुआ। जो चीज होती ही नही उसका भ्रम होता नही, संशय होता नही, ज्ञान होता नही, न कल्पनामे ही बात आ सकती है। तो अभाव प्रमाणवादियोने अभावका "न" रूपमें ही रूप माना है, 'हाँ" रूप नही माना है।

अभावकी वस्त्वन्तरसद्भावरूपता जैन शासनमे अभावको किसी अन्य वस्तुके सद्भावरूप माना है। जैसे रोटी बनाते हैं तो जिस समय लोई बनाये हुए है उस समय लोईमें रोटीका अभाव है कि नही? अभी लोई है, रोटी कहां है। तो रोटीका जो अभाव है वह लोईके सद्भावरूप है, अवस्तु नही है। जब रोटी बन चुकी तब लोईका अभाव हो गया। अब लोई कहाँ रह गयी? तो रोटीमे लोईका अभाव है सो लोईका अभाव रोटीके सद्भावरूप है, अभाव बिना भाव नही होता। अभाव किसी सद्भावरूप होता है, तो जो लोग अभावको कुछ नही मानते, अवस्तु मानते अवस्तुक ज्ञान उत्पन्न नही हो सकता, अवस्तु ज्ञानजनक नही हो सकता। वस्तु ही कार्य उत्पन्न कर सकती, अवस्तु नही क्योंकि जो अवस्तु है उसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल भावका भी अभाव है और जो भी वस्तु है उसमे द्रव्य क्षेत्र, काल, भावका सद्भाव है। जैसे

अभाव हो वहाँ अभावका ज्ञान होता है। तो प्रत्यक्ष आदिक ज्ञानका अभाव ज्ञान होकर कारण बना या अज्ञात होकर ? यदि कहें कि ज्ञात होकर कारण बना तो किससे ज्ञात हुआ ? यदि तद्विषयक ५ प्रमाणोंके अभावसे ज्ञात हो तो अनवस्था दोष आ गया। अब ५ प्रमाणोंका अभाव जाननेके लिए दूसरे ५ प्रमाणोंका अभाव चाहिए। उसका अभाव जाननेके लिए ५ प्रमाणोंका अभाव चाहिए। यदि कहो कि प्रमेय वहाँ नहीं है घट नहीं है इसलिए ५ प्रमाणोंका अभाव जान लिया गया तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष है। जब यह ज्ञात हुआ कि ५ प्रमाणोंका यहाँ अभाव है तो फिर नहीं है यह जाननेमें आये नहीं है यह जाननेमें आये तो प्रमाणपञ्चकका अभाव जाना जाये।

अज्ञातप्रमाणपञ्चकाभावकी ज्ञानहेतुताका अभाव—यदि कहो कि अज्ञात होकर ही पाँचों प्रमाणोंका अभाव अभावका ज्ञान करा देगा तो यह बात बिल्कुल अयुक्त है। जो खुद ज्ञानमें न आये, जो खुद नहीं जाना गया वह किसी अन्य पदार्थका कैसे ज्ञान करा देगा ? यदि यह कहो कि ये आँखें जाननेमें तो नहीं आ रही हैं मगर ये आँखें दुनियाके पदार्थोंको जान रही हैं तो जो यह कहते है कि जो बात नहीं जानी जा सके वह दूसरेका ज्ञान नहीं करा सकती यह बात तो ठीक नहीं बैठी। आँखें हमारी जाननेमें नहीं आ रही पर जान रहे हैं हम बहुतसे पदार्थोंको तो जो अज्ञात है वह भी दूसरेका ज्ञान करा देता है। इसके उत्तरमें आचार्य देव कहते है कि आँखें तो कारक है इसलिए वे अज्ञात होकर भी ज्ञानका कारण बन जाती है, मगर ज्ञान तो ज्ञापक है, वह अज्ञात होकर ज्ञान नहीं करा सकता। जैसे हमने समझा कि यह पुस्तक है, तो यह पुस्तक है ऐसा जो ज्ञान हुआ है वह ज्ञान यथार्थ है, और यह ज्ञान हमारा यथार्थ है ऐसा अनुभव भी करते है। तो कारक तो अज्ञात होकर वस्तुका ज्ञान करानेका कारण बनता है, पर ज्ञापक अज्ञात होकर ज्ञान करानेका कारण नहीं बनता।

अभाव प्रमाणके प्रस्तावमें त्रिप्रकारताका प्रसङ्ग—यहाँ यह प्रसङ्ग चल रहा है कि ज्ञान कितने प्रकारसे हुआ करते है। तो सिद्धान्त यह रखा कि ज्ञान दो प्रकारसे होते है प्रत्यक्ष और परोक्ष पर प्रत्यक्ष और परोक्ष इस प्रकार दो ज्ञान क्षणिकवादियोंने नहीं माने। मानते वे भी दो हैं पर प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसे दो भेद माने है। उस द्विविधताका निराकरण करते हुए बहुत से ज्ञानोंकी सिद्धि की थी। उपमान भी ज्ञान है अर्थापत्ति भी ज्ञान है, आगम भी ज्ञान है। उन अनेक ज्ञानोंका सद्भाव कुछ जैन शासनकी ओरसे कुछ अन्य शासनकी ओर से बताये। तो मीमांसकोंने एक अभाव प्रमाण भी रख दिया था कि अभावका ज्ञान होना भी एक प्रमाण है। तो अब उन सब ज्ञानोंका प्रत्यक्ष और परोक्षमें ही अन्तर्भाव है यह बतलानेके प्रकरणमें यहाँ यह कहा जा रहा है कि अर्थापत्तिका जो अनुमानमें अन्तर्भाव होता अनुमानका प्रत्यभिज्ञानमें अन्तर्भाव है और अभाव प्रमाण कोई अलग प्रमाण ही नहीं है, क्योंकि अभाव तुच्छ अभावरूप नहीं हुआ करता, किसी अन्य वस्तुके सद्भावरूप हुआ करता

रूप है तब ज्ञान बनता है। यदि अभाव किसीके सद्भावरूप न माना जाय तो वह अवस्तु है, असत् है, उसका ज्ञान बन ही नही सकता देखिये पदार्थमे यह स्वरूप पडा हुआ है कि पदार्थ सत् स्वरूप होता है घडा घडा है अन्य चीज नही है यह बात बिल्कुल स्पष्ट समझमे आ रही है। तो अन्य चीज नही है, ऐसा जो अभाव है वह घडी के सद्भावरूप है।

अभावप्रमाणके लिये आत्माकी ज्ञाननिर्मुक्तताकी मीमासा—अब तीसरी बात जो यह कही गई थी कि ज्ञानरहित आत्माका होना यह अभावज्ञानका कारण है, जैसे कमरेमे घडा नही है यह जाना तो घडेके ज्ञानसे रहित है आत्मा, यह भी एक प्रकार है, अभावके जाननेमे। तो पूछते हैं उनसे कि क्या यह आत्मा सर्वथा ज्ञानसे रहित है। सभी ज्ञानसे रहित है या कथचित् ज्ञान रहित है ? उस कमरे को देखकर यहाँ घडा नही है ऐसा ज्ञान करने वाले पुरुषने क्या घडेका अभाव नही है ऐसा जाना तो वह पुरुष क्या सर्वथा ज्ञानरहित है ? या उस समय घडेके सद्भावके ज्ञानसे रहित है ? यदि कहो कि सर्वथा ज्ञानरहित है, तो यह स्ववचनविरोध है। घडेका यहाँ अभाव है ऐसा ज्ञान करते जा रहे और कहते हैं कि सर्वथा ज्ञानसे रहित है। कोई पुरुष यदि ऐसा कहदे कि मेरी माता बन्ध्या है तो कोई इसे मान लेगा क्या ? अरे स्वय कह रहा कि मेरी माता, फिर कह रहा कि बन्ध्या है तो यह स्वय विरोध है। घडेका अभाव है, ऐसा ज्ञान कर रहा है कमरेको निरखकर और कहता कि यह आत्मा सर्वथा ज्ञानरहित है, इसमे स्ववचनविरोध है। यदि आत्मा सर्वथा ज्ञानरहित है तो अभावका ज्ञान कैसे कर लिया ? जितने भी जानन होते है, जितने भी परिच्छेदन होते है वे ज्ञानके धर्म हैं, यदि कहो कि वहाँ अभावका परिच्छेदन होता है तो सर्वथा ज्ञानरहित आत्मा कैसे बना ? यदि कहो कि कथचित् ज्ञानरहित है तो बात बिल्कुल सही है। जिसका अभाव जाना जा रहा है उसके सद्भावका ज्ञान नही है और उससे रहित सारे कमरेका ज्ञान चल रहा है। तो अभाव किसीके सद्भावरूप हुआ करता है तो जो सद्भावका ज्ञान है वही अन्यके अभावका ज्ञान है। यो अभावज्ञान प्रत्यक्ष आदिक रूप पडता है कोई अभाव प्रमाण स्वतत्र अलग प्रमाण नही है।

प्रत्यक्षज्ञानका विधान यह अपने ज्ञानकी गतियोका ही विचार चल रहा है कि हमारा ज्ञान किस किस प्रकारसे जाननेमे प्रवृत्त होता है। तो मूलमे तो दो पद्धतिया है ज्ञानकी। एक ज्ञान तो ऐसा स्वच्छ है कि इन्द्रियकी सहायताके बिना केवल आत्म शक्तिसे जान लेता है। देखिये केवल आत्मशक्तिसे ज्ञान होता है इसमे कुछ भी सदेह नही है। यह दृढता लाने के लिए कभी आप ऐसा प्रयत्न करें स्थिर आसनसे बैठकर शरीर तकका भी ख्याल न रखकर किसी भी परवस्तुका विकल्प न रखकर बडे विश्राम से बैठ जाये किसी भी परवस्तुको न जानना, सर्वपर पदार्थ भिन्न है उनसे मेरा कोई हित नही है क्यो कि उनमें अपना उपयोग लगाऊँ ऐसा दृढ निर्णय रखकर किसी भी

ज्ञान न चाहिए। केवल मेरा जो सहज ज्ञानस्वरूप है उस ज्ञानस्वरूपका ही मेरेको ज्ञान रहे तो वह ज्ञान है अतीन्द्रिय। वह ज्ञान है आत्मशक्तिसे जाना जाने वाला। तो उस ज्ञानशक्तिके ज्ञान करनेमे वह शक्ति विकास होता है कि सारे विश्वके पदार्थ फिर उसके ज्ञानमे आत्मशक्तिमे स्पष्ट झलकने लगते है।

केवल अभावांशके ग्रहणका अभाव – अभाव प्रमाण मानने वालोने यह कहा था कि पदार्थ अपने स्वरूपसे सत्रूप है और पररूपसे असत्रूप है। जैसे यह चौकी चौकीके रूपमे तो है और चौकीसे अन्य जो पदार्थ हैं उन रूपोसे नही है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे तो हैं और दूसरेके स्वरूपसे नही है, ऐसा तो जैनशासन भी मानता है। तो ऐसे सत् असत् स्वरूप पदार्थमे कोई सत्को जानता है कोई असत् को जान लेता है। किसीने सद्भाव जान लिया, किसीने अभाव जान लिया। समाधान मे आचार्यदेव कहते हैं - यह बात ठीक नही है। कारण यह है कि पदार्थ सत् असत् रूप तो है, अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नही है किन्तु जब भी पदार्थ जाना जाता है तो उभयरूप पदार्थ जाना जाता है। अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नही है, ऐसा एक साथ जाना जाता है। ऐसा नही है कि कभी कोई उसमेसे सत्रूप ही जाने। जैसे यह घडी है तो जो भी जानेंगे तो इस रूपसे जानेंगे कि घडीके रूपमे तो यह है और चौकी आदिकके रूपमे नही है। उभयरूप ज्ञान होता है। उसमेसे एक भावांश कोई ज्ञान करले, कोई अभावांशका ज्ञान करे यह बात नही होती। क्योंकि यदि अलग अलग भाव और अभाव हो जाय तो न कुछ पदार्थ ही रहेगा न तत्त्व ही रहेगा। इस से यह जानना चाहिए कि समस्त पदार्थ कथञ्चित् सत् है कथञ्चित् असत् है। अर्थात् वे उभयरूप हैं तो अभावप्रमाणकी सिद्धि एक अंश बताकर नही की जा सकती है।

भावसे अभावके ग्रहणकी सभवता—और, भी जो कहा था कि पदार्थमे भाव और अभाव दोनो हैं तो जिस समय भावकी उत्पत्ति होती है तो भाव बनता है, जब अभावका ज्ञान करते हैं तो अभाव बनता है, यह भी ठीक नही है, क्योंकि अभावका अनुभव हुआ, तो अनुभवमे आयी हुई जो चीज है वह अभावरूप नही रहती। यह भी बात नही है कि जैसे लोगोको पदार्थोंके जाननेका भाव होता है इसी प्रकार पदार्थोंके अभाव जाननेका भी भाव होता हो। और जो जिघृक्षाकी बात कही सो जाननेकी इच्छा होनेसे ज्ञान नही होता किन्तु इन्द्रिय और मन मात्रसे ज्ञान की उत्पत्ति होती है। अर्थात् इन्द्रिया प्रबल हैं। मन समर्थ है उसके सहारे ज्ञान बन गया। कोई जाननेकी इच्छा करे तो भी ज्ञान बन जाता है और कभी न जानने की इच्छा करे, कुछ भी जानना न चाहे फिर भी ज्ञान हो जाता है। जैसे सामनेसे बहुत सी चीजें गुजरती हैं उनको जाननेकी कौन इच्छा करता है पर ज्ञानमे आ जाती हैं इसलिये जाननेकी इच्छा करें तो, न करें तो, जब इन्द्रिया और मन सब विधि योग्यता मिल जाती है तो ज्ञान बन जाता है।

भावसे अभावका परिज्ञान— एक सिद्धान्त अभावको प्रमाण मान रहा है। जैसे चौकीको देखकर चौकी है ऐसा ज्ञानप्रमाण है और वह ज्ञान होता प्रत्यक्ष इसी प्रकार जो चीज भी नहीं है, जैसे यहाँ लोटा नहीं है तो न देखा प्रत्यक्ष है, यह अभाव ज्ञान है यह भी प्रमाण है। ऐसा मानते हैं किन्तु जैन शासन यह कह रहा है कि लोटे से रहित चौकीका ज्ञान होना ही लोटेके अभावका ज्ञान है। तो अभावप्रमाणवादियोंने यहाँ यह कहा था कि जिस प्रकारका प्रमेय होता है उस प्रकारका प्रमाण होता है। यदि सद्भावरूप है तो ज्ञान प्रमाण भी सद्भावरूप होगा। और कोई ज्ञेय अभावरूप है तो प्रमाणभी वैसा होगा, तो इस पर आचार्यदेव समाधान करते हैं कि जो तुम्हारा कहना है कि भावरूप प्रत्यक्षसे अभाव नहीं जाना जाता यह कहना युक्त नहीं है, भावसे अभाव भी जाना जाता है और कभी अभावसे भाव भी जाना जाता है। किसी चीजके होनेसे अमुक चीज नहीं है यह भी तो ज्ञान हुआ करता है। किसी चीजके न होनेसे अमुक वस्तु है यह भी ज्ञान हुआ करता है। घटाभाव प्रत्यक्षसे ही जाना जा रहा है। घटसे रहित चौकीको जान लिया तो प्रत्यक्षसे ही तो समझ लिया कि यहाँ पर लोटा नहीं है। तो झूठी प्रतिज्ञा अथवा समर्थन जहाँ प्रत्यक्षसे भी बाधा है, कैसे उचित हो सकता है। जैसे कोई कहने लगे कि अग्नि ठंडी होती है क्योंकि पदार्थ है, जो जो पदार्थ होते हैं वे ठंडे होते हैं जैसे पानी। वह भी पदार्थ है तो अनुमान तो तुम बना लो, पर इसमें तो प्रत्यक्षसे बाधा है। जो ऐसा कहता हो कि अग्नि ठंडी होती है तो झट उसके हाथपर आग उठाकर धर दो तब उसे पता हो जायगा कि ठंडी होती है या गरम। जहाँ प्रत्यक्षसे बाधा आती हो उसमें बहुत तर्क उठाना मजबूत नहीं है।

भाव और अभाव दोनोंसे अभाव और भाव दोनोंके ग्रहणकी सभवता— जो यह कहते थे कि जैसे भावात्मक जो प्रमेय है उसमें अभावकी प्रमाणता नहीं हो सकती। ऐसे ही अभावात्मकप्रमेयमें भावप्रमाण नहीं हो सकता। अभाव प्रमाणसे ही अभाव जाना जाता यह बात तुम्हारी गलत है अभावसे भी अभाव जाना जाता व भावसे भी अभाव जाना जाता है, जैसे आकाशसे कोई पत्ते नीचे नहीं गिर रहे तो पत्ते स्थिरतामें ठहरे हैं तो उससे यह जान गये कि यहाँ वायु नहीं चल रही है, पत्ते नीचे गिर रहे हों तो जानते हैं कि वायु चल रही है। भावसे अभावकी भी प्रतीति होती है, जैसे अग्निमें गर्मी है तो उस गर्मीको निरखकर ऐसा बोलकर कि इसमें ठंड नहीं है तो शीतलताके अभावका ग्रहण हो गया यह कहना युक्त नहीं कि जब कोई अभाव है तो प्रमाण भी अभाव होगा।

भावसे अभावका उद्भव और परिग्रहण— यह कहना भी युक्त नहीं कि जो जैसी वस्तु होती है वह उस ही प्रकारसे ग्रहणमें आती है अभाव है तो अभाव प्रमाणसे ग्रहणमें आयगा, भाव है तो भाव प्रमाणसे ग्रहणमें आयगा। यह कहना यों ठीक नहीं कि भावसे अभाव भी किया जाता है और भावसे अभाव भी जाना जाता

है। नहीं तो घडामे डंडा मारो और फूट जाय तो डंडा भावरूप है और उससे घडेका हो गया अभाव तो भावरूप डंडामे घडेका अभाव नही होना चाहिए, पर ऐसा होता है। अत यह सिद्ध नही होता कि जो जिस प्रकारका पदार्थ है वह उस प्रकारसे ही किया जाता है। जैसे सद्भाव भावके द्वारा किया जाता है घडा मिट्टीसे ही बनेगा। घडा भी सद्भावरूप है और मिट्टी का पिण्ड भी भावरूप है। भाव अभावसे ही किया जायगा, अभाव अभावसे ही किया जायगा। यदि कहो कि इसमें तो प्रत्यक्षसे भी बाधा है तो दूसरी जगह भी मान लो कि प्रत्यक्षसे बाधा है अर्थात् अभाव भावमे जान लिया जाता है।

आत्मामे भावसे अभावकी परख —आत्मामे रागद्वेप नही है, इसकी परख इस शान्तिसे, धीरतासे, विशुद्ध ज्ञानसे कर ली जाती है। रागद्वेपका अभाव है इस आत्मामे, इसके जाननेके लिए कोई अलग अभाव प्रमाणकी जरूरत नही पडती। शुद्ध ज्ञान देखा, शुद्ध विचार देखा और जान गए, इसमे पक्षपात नही है। आत्मा स्वभावत अपने स्वभावरूप है परके स्वभावरूप नही है। आत्मामे ज्ञान और आनन्दभाव है। कभी कर्मोंके उदयके वश होकर आत्मामे राग और द्वेष उत्पन्न तो हो जाते है, पर ये आत्माकी चीज नही हैं, आत्मा इन रागद्वेप आदिकसे प्रभावित होकर ससारमे खिचता फिरता है। रागद्वेषमे उपयोग न लगे, रागद्वेषरूप अपनेको न माने, ज्ञानमात्र अपनी श्रद्धा बनाये और यह सस्कार बना रहे, इसकी दृत्ति जगती रहे, तो नियमसे आत्माको मुक्ति होगी। पर रागद्वेषमे यह आत्मा लगा रहता है इसमे ससारमे चक्कर खाता है, दु खी होता है। इस आत्माका कल्याण करने वाला एक सम्यक्त्व ही है। अपने आपके स्वरूपका सच्चा परिचय हुए बिना कोई जीव ससारके दु खोमे छूट नहीं सकता। मोहमे यह जीव जिस पर्यायमे पहुचता है उस ही पर्यायरूप अपनेको मान लेता है पशु हुआ तो पशुरूप अपनेको समझा मैं यही तो हूँ, मनुष्य हुआ तो मनुष्यरूप अपनेको समझा, मैं मनुष्य हूँ, पुरुष हैं, तो यह अनुभव करते हैं कि मैं पुरुष हूँ स्त्री नही हूँ स्त्री है तो वे यह अनुभव करती हैं कि मैं स्त्री हूँ पुरुष नही हूँ। अरे आत्मा न तो स्त्री है न पुरुष है। पुरुष पर्यायमे रहकर भी आत्मा पुरुष नही है पुरुषपना तो एक पर्यायमे लगी है। आत्मा इन पर्यायो रूप तो नही है, न देहका पुरुषत्व है। आत्मा देहसे निराला है। तो जो अपने आपको सही स्वरूपमे विश्वास करेगा वह इन झझटोमे छूट जायगा, जो रागद्वेपको अपनायेगा, उसका अकल्याण होगा।

विकारोंकी परमार्थसे अवस्तुभूतता— देखो भैया! सारा व्यर्थका रागद्वेप है और छोड़ते बनता नही। रागद्वेप करनेसे कल्याण नहीं मिलता, जीवन ही गुजार रहे हैं। किसीसे प्रेम छोड़ देवें यह हिम्मत भी नही करते। विकार तो अत्यन्त असार बात है। प्रेम रागद्वेप मोह ये विकार न जगें फिर आत्मा तो विशुद्ध आनन्दमय है। इसके आनन्दमे कोई बाधक बन ही नही सकता यह जीव खुद रागद्वेपमे गिरकर

बाहरी वस्तुओंको अपनाकर अपने आप दुःखी होता है। जैसे कोई पुरुष क्रोधके वश होकर ढेलेसे अपने आप अपना सिर फोड लेता है क्योंकि वह क्रोधसे विवश है, इसी तरह यह आत्मा रागद्वेषके वश होकर अपने आपको समारमे भ्रमण कराता रहता है। सत्संगति और स्वाध्याय इन दो उपायोंमे यह ज्ञानी अपने ज्ञान स्वरूपकी ओर रहना चाहता है। तो जिस उपायसे यह आत्मा अपनेको ज्ञानरूप निरखा करे वह ही उपाय आत्माका भला कर सकने वाला है।

आत्महितके लिये तत्त्वज्ञानकी परम आवश्यकता आत्महितके लिये हमे तत्त्वज्ञानके उपयोगकी आवश्यकता है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे ही है, परके स्वरूपसे नही है। कोई पदार्थ अपने स्वरूपसे नही है। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका कुछ कर सकता नही है। कोईसा भी दृष्टान्त ले लो। प्रेरकमें प्रेरक दृष्टान्त ले लो। कुम्हारने चाकपर मिट्टीका पिण्ड रखकर घडा बनाया तो लगता ऐसा है कि देखो यह मिट्टीमे जबरदस्ती घडा बना रहा है, पर स्वरूप दृष्टिसे देखो तो उस समय भी कुम्हार अपने आपके अवयवोंसे अपना कार्य कर रहा है। पर वहा ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक भाव है कि उस मृत्पिण्ड पर जिस प्रकारसे वह कुम्हार अपने हाथका परिणमन कर रहा है उस प्रकारका वहा उस पर्यायका उद्भव हो रहा है। जैसा हाथ चलाता उसके अनुकूल उसमे पर्याय होती है इतनेपर भी कुम्हारने हाथसे मृत्पिण्डमे कुछ नही किया। एक पदार्थका दूसरे पदार्थमे अभाव है तब फिर एक दूसरेका क्या करे? कुछ नही कर सकता।

प्रत्येकका अन्य पदार्थोंपर अनधिकार यह मनुष्य चाहता है कि दुनिया के लोगोंमें हम अच्छे कहलायें और ये दुनियाके लोग मेरे बारेमें प्रशंसा करने लगें। अरे दुनिया ही खुद सपना है। तुम भी खुद सपना हो। चाहना अज्ञानता है और फिर चाहनेमें होता भी क्या है? तुम क्या दूसरे पदार्थके कुछ परिणमनको कर दोगे? जब लडका आज्ञा नही मानता तो पिता विवश हो जाता है। जिसपर वह अपना पूरा अधिकार समझता था वह भी बात नही मान रहा। अरे वह तो मोहमें उसपर अपना अधिकार समझता था। किसी भी पदार्थका किसी भी अन्य पदार्थपर कोई अधिकार नही। यदि कोई किसीके आधीन रहना चाहता है तो या तो वह हितबुद्धिसे रहना चाहता है कि मेरा इससे हित होगा, मेरा आत्मा सावधान बना रहेगा। ज्ञानदृष्टि रहेगी, कल्याण होगा, और या फिर किसी विषयके साधनोंके भावसे आधीन रहना चाहता है। मैं इसके आधीन रहूँगा, आज्ञा मानूंगा तो विषयोंके सब साधन ठीक–ठीक मिल जायेंगे। तो जो कोई भी किसीके आधीन रहना चाहता है वह अपनी स्वतन्त्रतासे ही अपने आपके भावोंके अनुसार अपनी ही ओरसे आधीन रहता है। कोई किसीको आधीन रखता नही है। प्रत्येक पदार्थ स्वयं परिपूर्ण है और वह अपने आपमें ही अपना सर्वस्व रखता है। किसी दूसरेका किसी दूसरेपर कुछ भी

अधिकार नही है। देखिये ! जो कुछ भी अभाव है वह अपनी व्यवस्थासे है। जिस शरीरमे चैतन्यका अभाव है, चेतनमे रूप रस, गध, स्पर्शका अभाव है तो ये सब उन पदार्थोंके स्वरूप हैं और वह अभाव वस्तुके असाधारण धर्मको देखकर जान लिया जाता है कि इसका अभाव है। अभाव जाननेके लिये कोई अलग प्रमाण नही माना जाता है।

उपचारात्मक अभावके औपचारिक भेद अभावप्रमाणवादियोंने यह भी एक घोषणा की थी कि अभाव वास्तवमे प्रमेय है और उसका ज्ञान फिर अभाव प्रमाण है। यदि अभाव प्रमेय न होता, चीज न होती तो उसके ये चार भेद क्यों किए जाते ? प्रागभाव प्रध्वसाभाव इतरेतराभाव और सर्वथा अभाव। आचार्यदेव समाधान करते हैं कि यह अभावोका जो चार प्रकारका राग्ना है वह कथनमात्र है। क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपने ही कारण समूहसे अपने ही अपने स्वभावमे व्यवस्थित है, वे पदार्थ अपने ही कारणसे उत्पन्न होते हैं और उनके अपनेको किसी परसे कुछ मिलता नही है। यह पदार्थमे स्वय एक स्वभाव पडा हुआ है। जैसे घडी अपने कल-पुर्जोंसे उत्पन्न है, अपने ही स्वभावमे पिण्डमे व्यवस्थित है और यह घडी चौकी आदिक पदार्थोंमे अपनेको मिला नही रही है एकमेक नही कर रही है। घडीसे अन्य जो पदार्थ हैं वे सबके सब घडीसे जुदे है, उन अन्य समस्त पदार्थोंमे जुदा एक घडी यह अपना स्वरूप रख रही है, इसमे अभाव अलगसे क्या है ? यह तो पदार्थका स्वरूप ही है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमे रहता है। किसी पर पदार्थ मे अपनेको मिलाता नही है। क्योंकि जो पदार्थ अपनेसे भिन्न अन्य समस्त पदार्थोंमे अलग रहनेका स्वरूप रख रहा तो बस वह भावात्मक है।

प्रत्येक पदार्थकी स्वभावत अन्यव्यावृत्तिरूपता देखिये, पदार्थोंमे यह उनकी एक विशेषता है वस्तुका स्वरूप है कि प्रत्येक पदार्थ अन्य वस्तुसे हटा हुआ रहता है उससे भिन्न अभाव माननेकी कोई जरूरत नही है, अगर अभाव भी कोई भिन्न वस्तु हुई तो अभाव अन्यसे भिन्न है, तो और और अभावकी कल्पना करें, फिर तो यह अभाव अभावसे अलग है, फिर रहा क्या ? सारा विश्व एक स्वभावरूप हो जायगा। पदार्थ स्वय अपनेमें ऐसा स्वरूप रखते है कि अपने रूपसे तो वे है और पर रूपसे नही हैं। अब अभाव प्रमाण माननेकी क्या बात ? भाव जान लिया उससे ही अभावका ज्ञान होता है, एक अभाव माना गया इतरेतराभाव। मायने एक पदार्थमे दूसरे पदार्थका अभाव होना जैसे चौकी नही, चौकीमे घडी नही, तो इतरेतराभाव कोई जुदा अभाव नही है किन्तु उन भिन्न पदार्थोंका ऐसा स्वरूप है कि वह उसमे नही है यह उसमें नही है। सत्मे यह गुण पडा हुआ है अन्यथा सत्नाम किसका। यदि पदार्थ पररूपसे भी सत् हो जाय तो पदार्थ ही क्या रहा तो घटादिक घडी चौकीसे जो अलग हो रहे है वे अपने स्वरूपमे ही हो रहे हैं, इतरेतराभावके कारण नही हो रहे है

अन्यथा उन्हीं अभावोंमें बतलावो जो चार प्रकारके अभाव माने—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव आदिक ये भी अपनेमें एव दूसरेसे अलग हैं कि नहीं। फिर उनमें और अभावकी कल्पनाएँ करें यों अनवस्था हो जायगी।

दृष्टिसे लौकायतिकत्वका निर्णय – जितने पदार्थ हैं वे सब भावाभावात्मक हैं। वस्तुमें अनन्त धर्म होते हैं—और अनन्त धर्मात्मक वस्तुवोंको उन उन दृष्टियोंकी अपेक्षा जानना बताना इसीके मायने है अनेकांत स्याद्वाद। स्याद्वाद कितना निर्विवाद सिद्धान्त है कि दृष्टियोंको बताकर प्रतिपादन किया जाय तो हर एक कोई माननेको तैयार हो जाय। जितने भी लोग हैं उन सबने जो जो कुछ भी समझा है तत्त्वके बारेमें वह सब किसी न किसी दृष्टिसे सर्वसिद्ध हो जाता है। जो कोई भी जो कुछ कहता है उसकी दृष्टि पहिचानिये कि यह किस दृष्टिसे ऐसा कह रहा है। चारवाक भी जो कह रहा है कि जीव आत्मा कुछ नहीं है। जो कुछ है सो यही है जो लोगोंको नजर आता है। सो यह जब तक है सो है और जब नहीं रहा तो बस लोग कहते हैं कि मर गया, एक शरीरमें जो बिजली थी वह बिजली बुझ गई, नहीं रही, इसे लोग मरना कहते हैं। लोग उसे जला देते हैं, गाड़ देते हैं। जीव और आत्मा कुछ नहीं है ऐसा चारवाक कह रहा है तो जरा उसकी दृष्टि तो पहिचानिये कि किस दृष्टिसे कह रहा है। वह कह रहा है मात्र व्यवहारिक प्रत्यक्षकी दृष्टिसे। जो कुछ नजर आता है इतना ही मात्र सब कुछ है इतना ही भाव रखकर कह रहा है। तो वह गुस्सा किये जाने लायक नहीं है कि उसपर नाराज हों। बेचारेको इतनी ही दृष्टि मिली और उस दृष्टिसे ही सबका निर्णय करना चाह रहा रहा है। उसने अपनी बाहरमें दृष्टि लगाई है। अरे जरा बाहरसे आँखें बन्द करके इन्द्रियका व्यापार रोककर कुछ देखो तो सही। न देखो बल्कि शान्त होकर बैठो तो सही। किसी भी पर पदार्थको अपने ज्ञानमें मत लो और निरखो कि अपने आपमें कोई ज्ञान ज्योति मालूम पड़ती है कि नहीं। वह जान जायगा और समझेगा कि यही मात्र तत्त्व नहीं है जो इन्द्रियसे नजर आया। अतीन्द्रिय भी तत्त्व है। फिर आत्माका स्वरूप वर्णन करिये। विश्वास कर लेगा।

दृष्टिसे क्षणक्षयताका निर्णय – जो लोग आत्माको सर्वथा विनाशीक मानते हैं, उत्पन्न हुआ और तुरन्त नष्ट हो गया, वह देर तक ठहरता ही नहीं क्षणक्षयवादियोंने यह कहा है कि जैसे दीपक जल रहा है तो उस दीपकमें नया नया तेलका बूँद जल रहा है, लगता ऐसा है कि वही दीपक है। जो १५ मिनटसे बराबर जल रहा है पर १५ मिनट पहिले जो दीपक था जो बूँद जल रही थी वह बूँद वह दीपक अब नहीं है। इस समय नया दीपक है, तो जैसे वह प्रति समय दीपक जल रहा है और अज्ञानमें रहनेके कारण हमें एक समझमें आता है इसी प्रकार इस शरीरमें आत्मा प्रति समय नये नये बनते रहते हैं और अपसे चूँकि वे सिलसिलेमें नये बन रहे हैं इससे एक मालूम होते हैं। तो ऐसे सर्वथा एक अनित्य मानने वाले

असाधारण धर्मके ही कारण अन्यपदार्थोंमें व्यावृत्तिकी सिद्धि-- अब यह भी बतावो कि चार जो अभाव हैं वे अभाव एक दूसरेसे अलग हैं या नहीं ? जैसे प्रकरणमे इतरेतराभावका कथन चल रहा है तो इतरेतराभाव प्रागभाव आदिकसे हटा हुआ होता है या नही ? नही हटा हुआ तो कह नही सकते। अन्यथा फिर सभी अभाव एक हो जायगे। यदि हटा हुआ है तो अपने आप हटा हुआ है या अन्य इतरेतराभावके कारण हटा हुआ है ? यदि अपने आप अन्य पदार्थोंसे हटे हुए रहते हैं। ऐसा माननेमे क्या आपत्ति है ? यदि इतरेतराभाव अन्य इतरेतराभावके कारण प्रागभाव आदिक अभावोंसे हटा हुआ है तो अनवस्थादोष हो जायगा। फिर उसमे भी प्रश्न चलेंगे। इससे यह मानना चाहिए कि प्रत्येक पदार्थ स्वय अपने ही असाधारण धर्मके कारण अपने आपके स्वरूपसे तो है और परके स्वरूपसे नहीं है। परके स्वरूप से पदार्थ नही है ऐसा माननेमे कोई अभाव नामक प्रमेय माननेकी जरूरत नही है।

इतरेतराभावके स्वरूपकी असिद्धि- अभी एक प्रश्न और किया जा रहा है कि इतरेतराभाव भी कुछ अपना स्वरूप रहता है या नही ? असाधारण धर्म बिना तो पदार्थकी विशेषता बनती ही नही। इतरेतराभाव भी यदि प्रमेय है तो उसमें कोई न कोई धर्म अवश्य होना चाहिए। तो इतरेतराभावमें जो भी स्वरूप माना जो भी असाधारण धर्म माना तो यह बतलावो कि उस असाधारण धर्मसे नही हटा हुआ इतरेतराभाव है या असाधारण धर्मसे नही हटा हुआ इतरेतराभाव है या असाधारण धर्मसे हटा हुआ है ? दोनोमे ही पूर्वकी तरह दोष आयगा, और, पदार्थमे भी बतलावो कि किसी पदार्थका यह इतरेतराभाव भेद करता है ? क्या असाधारण धर्मसे न हटे हुए पदार्थका भेद करता है या असाधारण धर्मसे हटे हुए पदार्थका भेद करता है ? जैसे- घडा कपडा आदिक नही है तो घडेका जो कपडेसे भेद किया तो किस प्रकारके घडेमे भेद किया ? घडेमे रहने वाला जो असाधारण धर्म है उससे सहित वाले न हटे हुए घडेका भेद किया या घडेमे जो भी स्वरूप पाया जाता है उस स्वरूपसे रहित घटेका भेद किया ? यदि कहो कि असाधारण धर्मसे न हटे हुए घडेका भेद किया तो फिर एक व्यक्तिमे भी भेद क्यो नही बना डालते ? जब असाधारण धर्मसे सहितका भेद किया जाने लगा तो घडा कपडेसे अलग है बजाय इसके घडा घडे से भी अलग है, ऐसा क्यो नही मान लिया जाता ? यदि कहो कि असाधारण धर्मसे हटे हुएका भेद करता है तो स्वय भी घट कोई वस्तु नही रही। भेद कहां कहेगे ? घटमे घटका कोई धर्म ही नहीं रहा। हां घटमे रहने वाला जो असाधारण धर्म है, उससे घडेका भेद किया तो स्वय ही वह कपडा आदिकके धर्मोसे हटा हुआ था ही। फिर इतरेतराभाव माननेकी क्या जरूरत है ?

स्वय परव्यावृत्त पदार्थोंमे इतरेतराभावके कथन द्वारा परव्यावृत्तिका प्रतिपादन---प्रत्येक पदार्थ अन्य पदार्थके असाधारण धर्मसे स्वय रहित है इतरेतरा-

भावको परस्पर व्यावृत्तिरूपता बतानेके लिये, समझानेके लिये उपचारसे कहा गया है। पदार्थ तो स्वय ही अपने आप अन्य पदार्थोंके अस्तित्वसे हटा हुआ रहता है। तो जब पदार्थ स्वय ही अन्य पदार्थोंके असाधारण धर्मोंसे रहित रहा करता है तो इतरेतराभावकी कल्पना करनेकी कोई आवश्यकता ही नही है। जो स्वय हटा होता है पर पदार्थोंसे उसकी बात समझानेको इतरेतराभाव कहा गया है कि देखो एक पदार्थका दूसरे पदार्थमे अभाव है।

असद्रूप इतरेतराभावसे घटमे पटके प्रतिषेधकी असिद्धि—अच्छा बतावो कि इतरेतराभाव एक वस्तुका दूसरे वस्तुमे अभाव बतलाता है, जैसे घटमे पट नही है तो इस प्रतिषेधके प्रसङ्गमे इतरेतराभाव घटमे क्या पटका प्रतिषेध कर रहा है या पट सामान्यका, याने समस्त कपडोमे जो कपडापन है उस सामान्यका निषेध किया जा रहा है या पट व्यक्ति और पटता जाति दोनोका निषेध कर रहा है? प्रश्नमे यह पूछा गया है कि एक पदार्थमे जो अन्य पदार्थका अभाव बताया है इतरेतराभावके कारण और उसे प्रमेय कहा है तो अन्य पदार्थोंकी व्यक्तियोका अभाव है या व्यक्ति और जाति दोनोका अभाव है? ऐसे तीन प्रश्न किए गए। पहिले पक्षके माननेमे अर्थात् घटमे पटका निषेध है तो यह बतलावो कि पट सहित घटमे पटका निषेध है या पटरहित घटमे पटका निषेध है? यदि कहो कि पट सहित घटमे पटका निषेध है तो यह प्रत्यक्ष विरुद्ध है। कपडेसे अलग है यह, चाहे वह इस प्रकारसे ही समझमे आ रहा है फिर उसे पट विशिष्ट कहना यह प्रत्यक्ष विरुद्ध हुआ। यदि कहो कि घटमे पटत्व सामान्यका निषेध किया जा रहा है तो बतलावो कि पटसे विविक्त वह घट तो पटरहितपना जो घटमे है वह क्या इतरेतराभावसे अलग चीज है या इतरेतराभाव ही "घटमे पटरहित है, इस रहितता" शब्दसे कहा गया है। यदि कहो कि घटकी जो पटरहितता है वह इतरेतराभावसे अलग है, तो यह तो माननेकी सही बात है। इतरेतराभाव अलग पडा रहे तो घटमे पटका अभाव अपने आप हो गया। फिर इतरेतराभावकी कल्पना करनेसे कोई लाभ नही? यदि कहो कि इतरेतराभाव ही घटकी पट रहितता शब्दसे कहा जाता है तो जिस अभावसे पटरहित घटमे पटके अभावका व्यवहार किया गया वह अभाव अन्य है और रहित शब्दसे कहा गया अभाव अन्य है, सो एक वस्तुमे दो इतरेतराभाव आ गए।

असाधारण धर्म द्वारा ही एक पदार्थमे अन्य पदार्थोंके प्रतिषेधकी सिद्धि—भैया! इतरेतराभावकी विडम्बना करनेकी जरूरत नही है। समस्त पदार्थ अपनी सत्ताको लिये हुए हैं और अन्य पदार्थकी सत्तावोसे जुदे है। यह पदार्थका ही स्वरूप है इसीका नाम असाधारण धर्म है। जो अन्य पदार्थोंमे न पाया जाय उसे असाधारण धर्म कहते हैं जैसे आत्माका चैतन्यस्वरूप है तो चैतन्य असाधारण गुण है अर्थात् आत्माको छोडकर अन्य पदार्थमे चित्त्व गुण पाया नही जाता है। इसीसे

असाधारण धर्म न हो पदार्थमें तो पदार्थ अपना अस्तित्व रख ही नहीं सकते। सभी पदार्थोंमें असाधारण धर्म है। जीवमें ज्ञान दर्शनका होना यह जीवका असाधारण धर्म है, पुद्गलमें रूप, रस, गंध स्पर्श इत्यादिका होना असाधारण धर्म है। इस असाधारण धर्मसे ही पदार्थोंकी सारी व्यवस्था बनी हुई है। पदार्थ अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे रहित है। इस व्यवस्थाको बनानेके लिये कोई अभाव नामक जुदा प्रमेय माना जाय उसकी कोई आवश्यकता नहीं और अभाव तो तुच्छ अभाव है। तुच्छ न होना, इस अभावसे तो कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अभाव ज्ञानमें आ ही नहीं सकता। सो या पदार्थ स्वयं है और स्वयं ही अन्य पदार्थोंसे रहित है, यह बात प्रत्यक्षसे ही देखी जा रही है। अब उसके बीचमें कोई अभाव प्रमेय है, भावकी तरह वह भी वस्तु है। यह तो किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है कि अभाव भी कोई वस्तु है अथवा प्रमेय है और फिर उस अभावका ज्ञान करनेके लिए कोई अन्य प्रमाण माना जायगा यह व्यवस्था नहीं बनती है।

विवक्षित प्रत्येक पदार्थमें स्वसद्भाव व पराभाव धर्मकी स्वतः व्यवस्था——प्रत्येक पदार्थ सद्भावात्मक है और उसका ही सद्भाव अन्य पदार्थोंका अभाव कहलाता है और वह धर्म वस्तुगत है। पदार्थमें अपने स्वरूपका अस्तित्व होना और अन्य पदार्थोंके स्वरूपका नास्तित्व होना, ये अस्तित्व और नास्तित्व उस ही पदार्थके दोनों धर्म हैं। एक अनुजीवी धर्म है। एक प्रतिजीवी धर्म है। तो अन्य पदार्थोंका नास्तित्व होना, पदार्थका स्वयंमें धर्म न माना जाय जैसे घटमें पटका नास्तित्व होना यदि यह घटका धर्म न माना जाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि घटमें पटके अभावरूप धर्मका तो अभाव रहा, तो वह घट पट बन गया। वस्तुसांकर्य हो जायगा। यदि वस्तुका ही स्वयंका यह धर्म न माना जाय कि अन्य पदार्थका नास्तित्व उस वस्तुमें है तो समस्त वस्तुओंका सांकर्य हो जायगा। इससे यह तुरन्त व्यवस्था मानना ही चाहिए कि पदार्थ अपने स्वरूपसे है यह भी पदार्थका धर्म है और अन्यके स्वरूपसे नहीं है, यह भी उसी पदार्थका धर्म है।

पदार्थमें प्राप्त व अप्राप्त पररूपताके प्रतिषेधके विकल्प——इतरेतराभावके दृष्टान्तमें घट और पटके अन्योन्याभावका उदाहरण दिया है अर्थात् घटमें पट नहीं है इस प्रकार पटरूपताका जो प्रतिषेध किया जा रहा है अभाव प्रमाणवादियों द्वारा सो वह पटरूपताका प्रतिषेध क्या प्राप्तका प्रतिषेध है या अप्राप्तका। याने घटमें पटरूपता प्राप्त थी उसका निषेध किया जा रहा है या घटमें पटरूपता है ही नहीं उसका निषेध किया जा रहा है। तो प्राप्तका यदि निषेध होने लगे तो पटमें भी पटरूपताका निषेध होने लगे क्योंकि पटमें भी पटरूपता प्राप्त है। यदि कहो कि अप्राप्त पटरूपताका प्रतिषेध है अर्थात् पटरूपता घटमें नहीं है, उसका निषेध है तो जो प्राप्त ही नहीं है उसका निषेध क्या किया जा सकता है। जो पहिले हो, जिसकी

है उसका किसी अन्य जगह सम्बन्ध नही है इस कारण उस पटत्वका प्रतिषेध भी नही बनता, किन्तु पदार्थ ही दो अलग अलग हैं और प्रत्येक पदार्थमे उसका अपने आपका रूप आदिकका सम्बन्ध पाया जाता है। एकमे दूसरेका सम्बन्ध नही पाया जाता यह वस्तुका स्वयका स्वरूप है और उसी तरह दोनोका भी प्रतिषेध नही बन सकता, क्योंकि व्यक्तिरूप पटका निषेध किया इस विकल्पमे और पटत्वका प्रतिषेध किया इस विकल्पमे जो दोष दिये गये है वे सब दोष उभय प्रतिषेधमे आते है इस कारण यह बात नही बन पाती कि इतरेतराभावके द्वारा घटमे पटके अभावकी व्यवस्था बने, किन्तु पदार्थ स्वय है, अपने अपने सद्भावका लिए है एकमें दूसरेका अभाव स्वय अपने आप है।

इतरेतराभावपरिज्ञानपूर्वक घटपरिज्ञानकी असिद्धि— अब अभावप्रमाणवादीसे यह पूछा जा रहा है कि घटमे अन्य पदार्थ नही है इस अभावका अर्थात् इतरेतराभावका ज्ञान होनेसे घटका ज्ञान होता है, अथवा यह घट है ऐसा घटज्ञान होनेसे इतरेतराभावका ज्ञान बनता है अर्थात् असद्रूप इतरेतराभावको प्रमाण मानने वालोसे पूछा जा रहा है कि घटका जो ज्ञान बना है वह इतरेतराभावके ज्ञानपूर्वक बना है वह इतरेतराका जो ज्ञान बनता है वह घटके ग्रहण पूर्वक बनता है पहिले विकल्पमे यह पूछा है कि इतरेतराभाव तुमने जाना तब घटकाज्ञान हुआ या घटको तुमने जाना तब इतरेतराभावका ज्ञान हुआ ? इन दोनो पक्षोमेसे यदि पहिली बात कहोगे कि पहिले इतरेतराभावका ज्ञान हुआ तब फिर घटका ज्ञान हुआ तो इसमे अन्योन्याश्रय दोष है वह इस प्रकार है कि इतरेतराभाव यहाँ यह माना है कि घटमे अघटोका अभाव, यह घटका इतरेतराभाव है, इस प्रकार घटके सम्बन्धीरूपसे ग्रहण किया हुआ इतरेतराभाव है तो वह इतरेतराभाव घटका विशेषण बना न कि अन्य पदार्थोंके सम्बन्धी रूपसे उपलभ्यमान इतरेतराभाव घटका विशेषण होगा। अन्यथा याने यदि एकके सम्बन्धसे होनेवाला विशेषण अन्य पदार्थका विशेषण बनजाय तो सब ही सबके विशेषण बन जायेंगे तो वस्तु व्यवस्थाका लोप हो जायगा फिर कुछ भी न रहेगा जैसे कौवा काला है तो कालापनके सम्बन्धसे जैसे उपलभ्यमान है इसी प्रकार कालेपनके सम्बन्धसे अन्य पदार्थ भी उपलभ्यमान हो जायेंगे तो फिर कौवाका क्या विशेषण रहा ? सभी कृष्ण बन गए। तो घटसे सम्बन्धी यह इतरेतराभाव है यह परिज्ञान घटके परिज्ञान होनेपर ही हो सकता है। जैसे जान लिया कि यह घडा है, तो जैसा स्वय यह अपने आप है उस घटका जब ग्रहण हो जाता है तभी तो उससे सम्बन्धित इतरेतराभावका ज्ञान हो सकता है सो वह भी पट आदिकसे व्यावृत है जुदा है इस प्रकार जान लेना चाहिए। तो जब तक पहिले घटके सम्बन्धीरूपसे व्यावृत्तिकी उपलब्धि न हो इतरेतराभावका ज्ञान न हो, तब तक व्यावृत्तिसे विशिष्ट याने इतरेतराभावसे विशिष्ट घट नही जाना जा सकता। जब तक पट आदिकसे व्यावृत रूपसे घट न जान लिया जाय अर्थात् इतरे

तरेतराभावसे विशिष्ट घट न जान लिया जाय तब तक यह भी नहीं बता सकते कि यह घटका इतरेतराभाव है। यों अन्योन्याश्रय दोष होता है।

इतरेतराभावकी पृथक् व्यवस्थाका अभाव--इतरेतराभावकी अलगसे भी व्यवस्था नहीं बनती है। कहीं भी अभावका ज्ञान करके कोई पुरुष तुच्छाभावका ज्ञान नहीं करता, किसी वस्तुके सद्भावका ही ज्ञान किया करता है। कोई भी प्रसंग ऐसा न मिलेगा जहाँपर किसी पुरुषने असत्का, अभावका बोध किया। जो है ही नहीं कुछ उसका बोध त्रिकालमें हो ही नहीं सकता है। वे सब किसी वस्तुके सद्भावरूपमें ही माने जा पाते हैं तो अभाव कोई वस्तु नहीं, प्रमेय नहीं, तो अभावका ज्ञान करने वाला कोई अलगसे अभाव प्रमाण नहीं है।

घटपरिज्ञानपूर्वक इतरेतराभावकी असिद्धि यदि यह कहोगे कि इतरेतराभावका जो ग्रहण है वह घटज्ञानपूर्वक है अर्थात् पहिले घटका ज्ञान हुआ पश्चात् इतरेतराभावका बोध होता है? घट जान लिया जैसा कि वह अन्य वस्तुओंसे रहित है ऐसा केवल अपने स्वरूपमें रहने वाले घटका ज्ञान किया तो इतरेतराभावका ग्रहण हुआ कि इस घटमें अन्य पदार्थोंका अभाव है। तो इसकी मीमांसामें आचार्यदेव कहते हैं कि यहाँपर भी अभाव विशेष्य है और घट विशेषण है तो जो विशेषण बना उसका ग्रहण पहिले होना चाहिए। क्योंकि विशेषणका ग्रहण न होनेपर विशेष्यमें बुद्धि नहीं होती जैसे कि लक्षणका ग्रहण न होनेपर लक्ष्यमें इतरेतराभावका ग्रहण माना जाय तो घट जो पट आदिकमें व्यावृत्त है उसका तो पहिले ग्रहण हो जाना चाहिए। जब तक अन्य वस्तुवोंसे व्यावृत्त घटका बोध न हो तो उसके इतरेतराभावका बोध कैसे होगा? यदि घटका ग्रहण पहिले किया जाता है तो यह बतलावो कि घटका जो ग्रहण हो रहा है वह पट आदिकसे व्यावृत्त याने न मिले हुए घटका ग्रहण हो रहा है या पटादिकसे मिले हुए घटका ग्रहण किया गया? पट आदिकसे मिला हुआ यदि घट है तो वह घटरूप हो ही नहीं सकता। जैसे पटमें मिला हुआ पट है तो वह क्या पट बन जाता है? यदि कहो कि अन्य पदार्थोंसे अलग रहते हुए घटमें घटरूपताकी प्रतिपत्ति होती है तो यह बतलावो कि क्या कुछ ही कपड़े आदिकोंसे व्यावृत्त घटकी घटरूपताकी प्रतिपत्ति हुई या समस्त पट आदिक पदार्थोंसे व्यावृत्तमें घटरूपताकी प्रतिपत्ति हुई? यदि कहो कि कुछ ही पट आदिकोंसे वह दूर है इससे उसमें घटरूपताका प्रतिपत्ति हुई तो कुछ अन्योंसे व्यावृत्त ही ज्ञान हुआ सब अन्योंसे व्यावृत्त तो ज्ञात न हुआ और कौन सा वह एक कारण है कि कुछसे वह अलग रहा और समस्त पटादिक व्यक्तियोंसे अलग नहीं रहा? और समस्तसे अलग न रहा तो उनरूप घट हो गया यदि कहो कि समस्त पट आदिकमें यह घट अलग है तो समस्त पट आदिक तो बहुत हैं उनकी व्यक्तियाँ भी अनन्त हुई, अनन्तोंका ज्ञान नहीं हो सकता। जब उनका बोध कर लिया जाय तब यह जाना जा सकेगा कि सभी पटोंसे रहित यह घड़ा है। तथा इसमें भी

इतरेतराभावदोष है। जबतक पट आदिकोंमें रहित घटकी कल्पना नहीं बनती तबतक घटसे पट आदिकोंका अलग नहीं सिद्ध किया जा सकता, और जब तक घटसे पृथक् हुए पट आदिकोंकी घटादिक कल्पना न बने तब तक पट आदिकोंसे घट अलग है यह सम्भव नहीं हो सकता। इसमें एक वस्तुका पोषण करनेके लिए और युक्तियां ढूंढना और जैसे जैसे उन युक्तियोंमें बाधाओंसे तत्पर रहना इसमें कौन सा हित है?

सद्भावकी यथार्थ मान्यतामें ही चित्तकी समाधानरूपता — भैया ! जो बात सीधी है उसे मान लेना चाहिए। ज्ञानमें जो कुछ आता है वह सत् आता है। ज्ञानमें असत् नहीं आता। यदि असत् किसी रूपमें ज्ञानमें आता है तो वह सर्वथा असत्रूप अभाव नहीं आता किन्तु किसी सद्का ज्ञान होता उसके सहारे किन्हीं अभावोंका रूपक ज्ञान किया जाता है। जो कुछ भी नहीं है, तुच्छ है, असत् है उसका तो नाम तक भी रखा हुआ नहीं हो सकता। जितने भी नाम हैं। शब्द हैं वे सब किसी सत्को बतलाते हैं। तो जो कुछ है भी नहीं उसका कोई ज्ञान कर ही नहीं सकता है। तो अभाव है, तुच्छरूप है उसका ज्ञान करने वाला कोई अलग प्रमाण है यह युक्त नहीं बैठता, किन्तु सद्भूत वस्तु ही प्रत्यक्ष अनुमान आदिक प्रमाणोंसे जाना जाता है और वह वह अन्य वस्तुवोंसे भिन्न है इस प्रकार प्रत्यक्षसे जान रहे हैं अर्थात् जैसे घटमें घटपनेका प्रत्यक्ष हो रहा है इसी प्रकार घटमें अन्य पदार्थका अभाव है यह प्रत्यक्षसे ज्ञान हो रहा है। यह यह ही है, यह अन्यरूप नहीं है। यह सब चीज उस एक प्रत्यक्ष प्रमाणसे है और जहां अनुमानसे जाना हो पदार्थ वहां अनुमानसे अभाव जान लिया जाता है। अभाव वस्तुको जाननेके लिए कोई अलग प्रमाण माननेकी आवश्यकता नहीं है। तो इतरेतराभावसे जो एक निर्देशको बताया था कि अभावमें चूंकि भेद है तो अभाव और कुछ है। जो कुछ भी न हो उसका भेद कैसे किया जा सकता है? तो बताया गया है कि अभाव भी एक सद्भावक ज्ञान के माध्यमसे जाना जाता है, इस प्रकार ये इतरेतराभाव आदिक भी अभाव एक वस्तुके सद्भावके माध्यमसे जाने जाते हैं। कोई ये अलग प्रमेय नहीं है जिससे जानने वाले अभाव नामका कोई अलग प्रमाण माना जाय, इस प्रकार अभाव नामक न कोई प्रमाण प्रमेय सिद्ध होता है और न अभावको जाननेके लिए अभाव प्रमाण ही अलग सिद्ध होता है।

अभावविषयक सिद्धान्त — जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण माना जाता है कि आंखोंसे देखा और सद्भाव जान लिया कि अमुक पदार्थ है तो जैसे प्रत्यक्ष प्रमाणसे सद्भाव जाना जाता है इसी प्रकार जैसे घडा यहां नहीं है और जान गए उसका अभाव है, तो अभाव प्रमाणसे जाना जाता है। ऐसा मीमांसक लोग कहते हैं। जैन शासनमें अभाव प्रमाण कोई अलग ज्ञान नहीं है प्रत्यक्षसे ही कमरा जान लिया और प्रत्यक्षसे ही घडा नहीं है यह भी जान लिया तो अभावका ज्ञान प्रत्यक्षसे यहां माना गया है,

लेकिन मीमांसक लोग अभावको अलग प्रमाण मानते हैं और एक विवरण और भी देते है कि अभाव प्रमाण अगर कोई अलग वस्तु नही होता तो उसके ४ भेद क्यों किए जाते ? प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, इतरेतराभाव और अत्यन्ताभाव। तो उसमेसे इतरेतराभावकी बात चल रही है। इतरेतराभावका अर्थ है कि एक पदार्थका दूसरे पदार्थमे अभाव। जैसे घडेमे कपडेका अभाव और कपडेमे घडेका अभाव। एकका दूसरेमे अभाव होना इतरेतराभाव है। तो जैनशासन अलग इतरेतराभाव प्रमाण नही मानता। जैनशासनका सिद्धान्त है कि घट ही अपना ऐसा स्वरूप रख रहा है कि अपने स्वरूपसे तो है और परके स्वरूपमे नही है यह पुस्तकका निजी स्वरूप है।

असद्रूप इतरेतराभाव द्वारा विवक्षित घटकी अन्य घटोसे व्यावृत्ति की असिद्धि यदि परव्यावृत्तिको विवक्षित वस्तुगत धर्म न मानोगे और इतरेतराभाव कोई अलग प्रमेय है उस इतरेतराभावके कारण यह व्यवस्था है कि घडेमे कपडा नही, कपडेमे घडा नही। तो यह बताओ कि घटकी व्यावृत्ति जैसे घडा आदिक से की गई तो उसी तरह अन्य घटोसे भी तो उसे अलग करना चाहिए। एक घडा है, यह घडा कपडा आदिक पदार्थसे जुदा है तो अन्य घडोसे भी तो जुदा है। तो पट आदिकसे घटको तो तुमने जुदा सिद्ध कर लिया कि कपडा आदिक पदार्थोसे घट अलग है इतरेतराभावके कारण घटकी व्यावृत्ति मान ली, पर अन्य घटसे व्यावृत्ति कैसे मानोगे ? क्या विवक्षित घटको घटरूपसे व्यावृत्त मानोगे या अघट रूपमे। याने जैसे घडेको अन्य घडोसे जुदा समझते हैं तो क्या वह घडा अन्य घडोसे घटरूपताके कारण जुदा है या अघटरूपसे ? याने यह घडा अघट रूप है इस कारण अन्यसे यह अलग है या यह घडा घट रूप है इस कारण जुदा है। दूसरे भी घडे हैं यह भी घडा है। अब यह घडा अन्य घडोसे जुदा समझा जाय तो घटरूपताके कारण या अघटरूपताके कारण ? यदि कहो कि घटरूपताके कारण जुदा समझा गया अर्थात् यह घडा तो घडा है, इसमे तो घटके लक्षण हैं, तो अन्य घडेमे अगर घडेसे अगर घटरूपताके कारण जुदा समझा तो घडा है इस कारण अन्य घडोसे जुदा है ऐसा मानोगे तो वे अन्य घडे न रहे क्योकि यही घडा रह गया यह घडा ही घटरूपताको रख रहा है इस कारण अन्य घडोसे जुदा है ऐसा अगर मानोगे तो इसका अर्थ है कि अन्य घडे घडे नही रह गए। अगर कहो कि यह घडा अघट है इस कारण अन्यसे जुदा है तो इसका अर्थ है कि घटमे घटपना नही है तो फिर यह अन्य चीज बन गयी। यह स्वय घडा नही रहा।

स्वरूपास्तित्वके कारण विवक्षित घटकी अन्य घटोसे व्यावृत्ति—भैया ! पदार्थ स्वय अपने स्वरूपमे है परके स्वरूपमे नही है यह बात यदि नहीं मानते और एक इतरेतराभाव अलगसे मानते हो कि इतरेतराभावके कारण यह पदार्थ अन्य पदार्थसे जुदा है तो अनेक आपत्ति आती है। अगर स्वरूपकी बात मान

लो तो यह घडा भी घडा है मगर अपना स्वरूप अलग रख रहा है अन्य घडे भी घडे है पर वे अपना स्वरूप अलग रख रहे हैं इतरेतराभावके कारण यदि व्यवस्था न मानोगे तो या तो यह घडा रहेगा या चौकी आदिक सर्वस्व। यह घडा अन्य घ से अलग है यह तुमने कैसे समझा ? इतरेतराभावके कारण समझो तो आपत्ति है और स्वरूपदृष्टिसे समझो तो आपत्ति नही है। यह घडा अन्य घडोसे समान है, किन्तु इसकी आवान्तर सत्ता इसीमे है, अन्य घडोकी उनकी सत्ता उनमे है।

अभाव व्यवहार हेतु द्वारा अभाव प्रमाणकी सिद्धिका प्रस्ताव—अब मीमासक शङ्का रख रहे हैं कि अभावको यदि जुदा प्रमाण न माना तो फिर अभाव के निमित्तसे जो व्यवहार चल रहा है, यह घडा नही है, अमुक चीज नही है ता नही है का फिर व्यवहार कैसे चलेगा ? मीमासक यह कह रहा है कि अभाव नामका प्रमाण है। मगर अभाव प्रमाण न माना तो अमुक चीज नही है, अमुक नही है तो ऐसा न न का व्यवहार फिर कैसे चलेगा ? इससे सिद्ध है कि व्यवहार न न का चल रहा है तो अभाव कोई अवश्य प्रमाण है जिसके बलपर न का व्यवहार चला करता है। जैसे जमीन है इस पर घडा नही है तो यह बतलावो कि क्या घटसे सहित जो भूतल है उसका नाम घडेका अभाव है या घटसे रहित जो भूतल है उसका नाम घडेका अभाव है। मीमासक जब अपना पक्ष रख रहे हैं कि अभाव प्रमाण न मानोगे तो न का व्यवहार नही चल सकता क्योंकि बतलावो कि जैसे कहा कि इस कमरेमे घडा नहीं है तो घडा सहित कमरेका नाम घडेका अभाव है या घडा रहित कमरेका नाम घडेका अभाव है। घडा सहित कमरेको घडेका अभाव कह नही सकते, इसमे प्रत्यक्ष विरोध है यदि घडा सहित भूतल है ता घडाका अभाव कहा रहा। यदि घडे से रहित भूतलका नाम अभाव है तो यह नाम मात्र ही भिन्न रहा, चाहे उसे घट रहितपना कहो, चाहे घटाभाव विशिष्टता कहो, बात एक ही है।

अभावज्ञानकी भावज्ञानपर निर्भरता—समाधानमे आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि कोई भूतल, जमीन क्या घटके आकार है जिससे तुम यह कहते कि घडा नहीं है, ऐसा कहनेपर प्रत्यक्ष विरोध है। याने घडेके आकार भूतल नही है। जो भूतल है वह घडेके आकाररहित होनेसे घडा नही ही है। घडा घडा है भूतल भूतल है यहा मीमासक पूछ रहे हैं कि यदि भूतलसे भिन्न कुछ घटका अभाव नही है तो घटका सम्बन्ध होनेपर भी भूतलपर घट नही है यह परिज्ञान होना चाहिए। किन्तु ऐसा तो है नहीं। अत जैसे भूतलसे भिन्न घट है इसी प्रकार भूतलमे भिन्न घटका अभाव भी है। इस शङ्कापर आचार्यदेव उत्तर दे रहे हैं कि घटमे न होने वाला भूतलमें होने वाला जो असाधारण धर्म है उस असाधारण धर्मसे सहित जो भूतल है उसका नाम घटाभाव है। घटका अभाव किसे कहते हैं ? जो जमीनमें लक्षण हैं वे लक्षण घटमें नहीं पाये जाते हैं, तो घटमे न पाये जाने वाले और जमीन

मे रहने वाले असाधारण धर्मसे सहित जो भूतल है, जमीन है उस ही जमीनका नाम घटका अभाव है। और घटसे सहित दिखती है अनेको जगह कि इसमे घट है और फिर कमरेकी उसी तरहकी स्थिति न ज्ञात हो तो उसका नाम घटका अभाव है।

अभावकी वस्तुधर्मता – देखिये भैया ! इतरेतराभाव क्या है कि जैसे चौकीमे पुस्तक नही, पुस्तकमे चौकी नही, तो यह व्यवस्था बनानेके लिए कुछ अलग से अभाव न माना जायगा। क्या अभाव पुस्तकमे रखा है या अभाव चौकीमे है या चौकी और पुस्तकके बीचमे अभाव है ? चौकीका पुस्तकमे अभाव और पुस्तकका चौकीमे अभाव जो बताया जा रहा है वह किस जगह रखा है चौकीमे या पुस्तकमे या बीचमे ? बीचमे तो है नही। पुस्तकमे जो चौकीका अभाव है तो यह चौकीका धर्म है या पुस्तकका ? पुस्तकका धर्म है, पुस्तकमे जैसे पुस्तकका सद्भाव है तो यह पुस्तकका धर्म है और पुस्तकमे चौकीका अभाव है यह धर्म भी पुस्तकका ही है। पुस्तक अपने स्वरूपमे है और चौकी आदिकके स्वरूपमे नही है। यह जो धर्म है यह पुस्तकमे ही है। अस्तित्व और नास्तित्व ये इस ही पुस्तकगत धर्म हैं। चौकीमे नही है, बीचमे नही है, ये जो इतरेतराभाव हैं, पुस्तकमे चौकीका अभाव यह जो अभाव है यह न तो बीचमे पडा है और न चौकीमे रखा है किन्तु पुस्तकमे यह धर्म है। पुस्तकमे पुस्तकके अतिरिक्त अन्य समस्त चीजोका अभाव है, यह पुस्तकका धर्म है। स्याद् अस्ति स्याद् नास्ति ये जो दो विकल्प है कि चीज कथचित् है कथचित् नही है। पुस्तक पुस्तकके रूपसे है, पुस्तक अन्य रूपसे नही है, तो यह है पुस्तकका धर्म, पुस्तक अन्यरूपसे नही है यह भी पुस्तकका धर्म है। अब इस नास्तित्वको माननेके लिए अलग इतरेतराभाव मानना और इतरेतराभावकी फिर यह व्यवस्था करें कि इतरेतराभावके पुरुषार्थसे ही पुस्तकमे अन्य चीजें नही पहुँचती तो इसमे आपत्तिया है। इसकी सिद्धि ही नही होती। इतरेतराभाव कोई अलग प्रमाण नहीं है।

असन्मात्र प्रागभावकी असङ्गतता —एक माना गया है प्रागभाव। इतरेतराभाव तो दो वस्तुओमे घटाया गया है कि पुस्तकका चौकीमे अभाव, चौकीका पुस्तकमे अभाव, इन दो पदार्थोंमे घटाया गया है। प्रागभाव एकमे ही घटता है। जैसे मिट्टीके लोदमे घडा बनता है तो जब तक वह मिट्टीका पिण्ड है तब तक घडा तो नही है तो मृत् पिण्डमे घडेका प्रागभाव है। जब तक घडा नही बनता तब तक घडे का मृतपिण्डमें अभाव है तो मृतपिण्डमें घडेका प्रागभाव है ऐसा मीमासक लोग कहते हैं कि प्रागभाव वास्तविक चीज है। देखिये ! मिट्टी पिण्डमे घडेकी सत्ता नही है तो वह अभाव प्रागभाव है। जैनशासन प्रागभाव नामका कोई तुच्छ अभाव नही मानता किन्तु घडेका मृत्पिण्डमे अभाव है, इसका अर्थ है कि मृत्पिण्ड है, मृत्पिण्डके सत्वके मायने ही घडेका प्रागभाव है। घडेका अभाव कुछ अलग चीज नही है। मृत्पिण्डका जो सद्भाव है वही उस घडेका अभाव है। अर्थात् उत्तर पर्यायका पूर्वपर्यायमे अभाव

प्रागभाव कहलाता है। तो प्रागभाव पदार्थसे भिन्न कुछ भी नहीं है।

सत्प्रत्ययविलक्षणता हेतु द्वारा प्रागभावकी वस्तुताका प्रस्ताव अब यहाँ अभावप्रमाणवादी कहता है कि घड़की उत्पत्तिसे पहिले घड़ा न था यह जो ज्ञान हुआ अर्थात् जब तक घड़ा नहीं बना उससे पहिले अर्थात् मृत पिण्डके समयमें घड़ा न था। जब घड़ा बन गया तो घड़ा बननेपर जो यह ख्याल आता है कि घड़ा न था पहिले, यह जो ज्ञान हुआ तो असत्के विषयमें ज्ञान हुआ, क्योंकि सत्के विषयमें होने वाले ज्ञानसे विलक्षण है यह ज्ञान। घड़ा नहीं है ऐसा जो ज्ञान है वह असत्का ज्ञान है। मृतपिण्ड है यह सत्सम्बन्धि ज्ञान है। इस लिए असत् भी कोई वस्तु है अभाव भी कोई वस्तु है, सद् विषयक जो ज्ञान होता है वह सत्ताके ज्ञानसे विलक्षण नहीं होता, जैसे सद् द्रव्य। यह ज्ञान है तो सत्ता सम्बन्धी है और घड़ा नहीं है यह सत्ताके ज्ञानसे विलक्षण ज्ञान है इसलिए इस अनुमानसे सिद्ध होता है कि प्रागभाव कोई भिन्न प्रमाण है।

प्रागभावकी वस्तुताकी सिद्धिके लिये दिये गये सत्प्रत्यय विलक्षणता हेतुकी सदोषता —प्रागभावकी समस्यापर आचार्यदेव कहते हैं कि यह प्रागभावमें वस्तुत्वकी प्रतीति भी मिथ्या है। प्रागभाव मायने पर्यायका पहिली पर्यायमें अभाव होना घड़ेका मृत पिण्डमें अभाव होना इसका नाम प्रागभाव है और जब घड़ा बन गया तो अब घड़ा बननेपर मृत्पिण्डका अभाव हो गया तो इसका नाम प्रध्वंसाभाव है घड़ा फूट गया, खपरिया बन गयी तो घड़ेका प्रध्वंसाभाव हो गया खपरिया बन गयी, तो जैसे प्रागभाव नामकी तुम कोई चीज मानते हो तो इसी प्रकार प्रध्वंसाभाव नामकी भी कोई चीज रही। अब यह बतलावो कि प्रागभावमें प्रध्वंसाभाव नहीं है, यह ज्ञान होता है कि नहीं होता? प्रागभावादिकमें प्रध्वंसाभावादिक नहीं है यह भी ज्ञान होता तो इसमें तुम्हारा हेतु व्यभिचारी हो गया। यदि कहा कि वह भी असत् को विषय करता, तो अभावकी अनवस्था हो जायगी इस कारणसे प्रागभाव कोई अलग अभाव है यह नहीं माना जा सकता। जो पूर्व पर्यायका अस्तित्व है वही उत्तर पर्यायका प्रागभाव है, प्रागभाव कोई अलग वस्तु नहीं है।

वस्तुत्वविज्ञानमें मोहध्वंसकी क्षमता संसारमें जीवका दुःखका कारण है तो मोह है। वह मोह कैसे मिटे इसका उपाय सभी सिद्धान्तोंने अपने अपने ढङ्गसे बताया है। किसीने बताया कि ईश्वरकी भक्ति करें, वही संसारमें भटकाता है और वही संसारसे उतार देगा, दुःखोंसे वही छुटायेगा। जैनशासनने यह बताया कि तुम वस्तुके सही स्वरूपको जान जावो फिर संसारके दुःखोंसे छूट जावो। वस्तुके सही स्वरूपको जाननेसे मोह छूट जाता है। वस्तुके सही स्वरूपके ज्ञानमें चित्तमें यह भाव बैठ जाता है कि प्रत्येक पदार्थ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। किसी पदार्थका कोई पदार्थ कुछ नहीं है। तो वस्तुका स्वरूप यह है कि वह अपने स्वरूपसे तो है और परके

स्वरूपसे नही है। उसी वस्तुस्वरूपने ये सारी बातें घटाई जा रही हैं कि वस्तु अपनी नवीन नवीन पर्यायें बनाती रहती है। कोई दूसरा ईश्वर वगैरह पदार्थकी परिणति नही करता किन्तु पदार्थमे अपने स्वभावके कारण नवीन नवीन परिणतियां उत्पन्न होती रहती है। पुरानी अवस्थाएँ विलीन होती रहती हैं। प्रथम अवस्थामे अगली अवस्था नही है इसका तो नाम है प्रागभाव और वर्तमान अवस्थामे गुजरी हुई अवस्था नही है इसका नाम है प्रध्वसाभाव। वस्तुकी सत्ताका ही नाम अन्यका अभाव पडता है। अभाव नामकी कोई चीज अलग नही है। यदि अभाव कोई अलग प्रमेय होता तो इसके मायने है कि अभाव भी कोई वस्तु बन जाता। जो चीज है उसका भी ज्ञान किया जा सकता है और जो चीज नही है उसका कभी ज्ञान नही हो सकता। तो अभाव न कोई अभावका ज्ञान करने वाला प्रमाण है। जैसे अभाव जाना कि मृत पिण्डमे घडा नही है तो वह हुआ प्रागभाव और जैसे यह जाना कि इस जमीन पर घडा नही है तो यह हुआ इतरेतराभाव। ये सब सद्भावरूप है।

उपचरित अभावसे सर्वसांकर्यका प्रसङ्ग— अब यहा शङ्काकार कह रहा है कि जहापर जमीन है, सद्भाव है उसपर घट आदिक नही है ऐसा जो ज्ञान होता है वह तो मुख्य अभावका विषय करता है और प्रागभाव आदिकमे प्रध्वसाभाव आदि नही है ऐसा जो ज्ञान है वह उपचरित अभावको विषय करता है इस कारण अनवस्थादोष न आयगा, यह कहना ठीक नही है, क्योकि फिर तो परमार्थसे प्रागभावादि मे साङ्कर्य हो जायगा देखिये जब मृत्पिण्ड है तब घडा नही है इसका नाम है प्रागभाव और जब घडा बन जायगा तो अब घडामें मृत् पिण्ड नही है। जब घडा बन बन जायगा तो वह मिट्टीका लोधा नहीं रहा, इसका नाम है प्रध्वसाभाव। तो प्रागभाव अलग है- प्रध्वसाभाव अलग है। प्राक् मायने पहिले, अभाव मायने नही। जैसे घडा बननेसे पहिले उस मिट्टीके लोंदेमे घडेका प्रागभाव है तो यह बतलावो कि प्रागभावमे प्रध्वसाभाव है कि नहीं ? ऐसा कहनेपर कि उपचारसे प्रागभावमे प्रध्वसाभावका अभाव हैं। तो जब उपचारसे ही एक अभावमे दूसरे अभावका अभाव है, मुख्यतासे नहीं तो तुम्हारे प्रागभावको अथान्तर कहना ठीक नही है। परमार्थसे तो सब एक हो गये। उपचरित अभावसे वास्तवमें भेद सिद्ध नही होता। फिर तो प्रागभाव प्रध्वसाभाव अन्य कुछ नहीं रहे अन्यथा अर्थात् उपचरित अभावसे ही वास्तविक भेद बनने लगे तो फिर मुख्य अभावकी कल्पना करना व्यर्थ है। अतः अभाव कोई चीज नही, चीज है वह अन्यके सद्भावरूप है।

वस्तुस्वरूपके ही कारण सकरताका अभाव—यहा यह बात बतलायी जा रही है कि जितनी भी चीजें हैं वे अपने स्वरूपसे हैं पर स्वरूपसे नही है। यह वस्तु मे स्वभाव पडा हुआ है। फिर कुटुम्बीजनोंका आत्मा मेरे स्वरूपसे कैसे कहा जायगा, वे सब मुझसे त्रिकाल भिन्न है। जैसे दुनियाके अन्य लोगोंको अपरिचित मानते हैं

वैसे ही ये घरके जीव भी गैर हैं, उतने ही ये भी भिन्न हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि मैं कभी उन रूप हो जाऊँ और वे कभी मुझ रूप हो जायें। चाहे किसीमे कितनी भी अधिक प्रीति हो पर कोई किसी दूसरे रूप हो नहीं सकता, क्योंकि वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है, मर्यादा ही ऐसी है तभी अस्तित्व रहता है तो एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका अभाव होना अथवा एक ही पदार्थमें अपनी आगामी पर्यायका अभाव होना, और पहली गुजरी हुई पर्यायका अभाव रहना यह तो वस्तुका स्वरूप है। इसकी व्यवस्था करने वाला कोई अलगसे अभाव प्रमाण नहीं है।

अभावकी प्रमेयता सिद्ध करनेके लिये दिये गये सर्वदाभावविशेषणत्व हेतुकी व्यभिचारिता —अभावप्रमाणवादियों ने जो यह कहा था भावस्वभाव प्रागभाव आदिक नहीं है अर्थात् प्रागभाव सद्भावस्वरूप नहीं है, सर्वदाभावके विशेषण होनेसे यह भी कथन ठीक नहीं है, क्योंकि यह हेतु पक्षमे पूर्णरूपसे व्यापक घटित नहीं होता। अनेकों अभाव अभावविशेषकारक भी होते हैं। प्रागभाव प्रध्वंसाभाव आदिकमें नहीं है। यह अभाव दोनों अभावका विशेषण बन रहा है अभावको सिद्ध करता है। कोई भाव भावविशेषणक भी होवें, जैसे गुण भावस्वरूप है और भावात्मक पदार्थका विशेषण है, सो इन गुण आदिकके द्वारा भी अनेकान्त बन गया। सर्वदा भावविशेषण होनेसे यह हेतु अभावको सिद्ध न कर सका। मैं घटके रूपको देखता हूँ इस व्यवहारमें स्वतन्त्र सद्भावात्मक गुणकी प्रतीति है और सर्वदा भाव-विशेषणत्वके अभावमें "अभाव तत्त्व है" यों स्वतन्त्रकी प्रतीति है इस कारण सर्वदा भावविशेषणत्व हेतु असिद्ध है। तब सो अभावका प्रमाण नहीं बनता। अर्थात् जैसे रूप आदिक सद्भावरूपमें हमें नजर आते हैं इसी प्रकार अभाव नजरमें नहीं आता।

ज्ञानी पुरुषोंके मोह न होनेका कारण – किसी पदार्थका किसी दूसरे पदार्थमें अभाव होना या एक ही पदार्थकी वर्तमान पर्यायका उसीकी अन्य पर्यायोंमें अभाव होना, यह जो अभाव है यह सही चीज है। जैसे चश्माघरमें चश्मा रखा है तो चश्मा चश्माघररूप नहीं हो गया और चश्माघर चश्मारूप नहीं हो गया। एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका अभाव है, एक पर्यायमें अन्य पर्यायका जो अभाव है वह भी वस्तु-स्वरूपमें है। कोई अभाव नामका अलग प्रमाण हो और उसने यह व्यवस्था बनायी हो ऐसा नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे अस्तित्व रखा करते हैं इसीके मायने यह हुआ कि दूसरेके स्वरूपसे वे नहीं रहा करते हैं। ज्ञानी जीवोंका जो मोह नहीं आता वह इसी बलपर नहीं आता कि उन्हें वस्तुके स्वरूपका निर्णय है कि प्रत्येक पदार्थ मात्र अपने स्वरूपमें रहा करते हैं। कोई अन्य मुझमें कभी त्रिकाल आ ही नहीं सकता है। मैं जो कुछ कर सकता हूँ सो अपने ही भावोंका कर सकता हूँ अपने भावोंसे आगे मैं अन्य कुछ करनेमें समर्थ नहीं हूँ। मैं केवल अपने ही भावमें जो कुछ भी परिवर्तन करूँ वही कर पाता हूँ, क्योंकि पर पदार्थोंमें मेरा कोई प्रवेश नहीं है।

लोकमे सब कुछ तो होता और एक ज्ञानमय पदार्थ न होता, आत्मा न होता तो लोक क्या था ? किसीके ज्ञानकी ही बात न थी, कोई ज्ञानमय पदार्थ ही न था अथवा ज्ञानमय पदार्थ नही है तो लोक भी कुछ नही है । जितने यहा ये पुद्गल है, जितने भी ये सब पौद्गलिक ठाठ हैं ये कैसे बने ? ये सब जीवके काम है । इन सबमे जीव था । जो जो भी चीजे दिखनेमे आ रही है उनमे या तो इस समय जीव है या पहिले जीव था । जीवके सम्बन्धके बिना ये सब कुछ बन नही सकते । यह पत्थर खडा है, कभी तो खानमे था तब जीव था । यह द ी पडी है, यह पेडमे थी, उसीका ही सूत बनकर यह दरी बन गयी है जो भी पदार्थ नजर आते है वे सब जीवके काम हैं । जीव न होता तो ये कुछ भी काम न बनते । फिर क्या था लोकमे ? लोकमे समस्त पदार्थोंमे सार तो है आत्मा और आत्मामे भी सार है आत्माका शुद्ध स्वभाव । आत्मा तो सभी का ही नाम है । जो क्रोधी है, विषय कषाय वाला है, पेड वगैरह है अथवा कोई भी भवकी पर्याय धारण किए हुए हैं ये तो सब जीवकी अवस्थाएँ है ये तो सारभूत नही है । जीवका जो अनादि अनन्त सहज ज्ञानस्वभाव है वह सारभूत है उस ज्ञानस्वभाव के जो परिणमन चलते है उनसे फिर लोककी व्यवस्था बनती है । हम जानते है कि यह क्या है तो ज्ञानको ही जानते हैं । तो जिस ज्ञानसे लोकालोककी व्यवस्था चलती है वह ज्ञान प्रमाण है किसी भी बातको पक्का करने वाला तो ज्ञानही होता है । तो वह ज्ञान क्या क्या जाना करता है और उस ज्ञानके कितने प्रकार होते है उसका यह प्रकरण चल रहा है ।

मीमासक सिद्धान्तमे अभावका स्थान — मीमासक सिद्धान्तने जिसने यज्ञ की विधियोका अधिक प्रचार किया और यज्ञमे पशु होमे जायें इसका भी आदेश दिया । उस सिद्धान्तने एक अभाव प्रमाण भी माना । जैसे हम पदार्थोंको जानते हैं तो पदार्थो की सत्ता समझ लेते हैं उसका प्रत्यक्ष होता है, अनुमान होता है, उस सद्भावका ज्ञान होता है । मीमासक कहते है कि सद्भावका भी ज्ञान होता है और अभावका भी ज्ञान होता है, और उनका अभाव तुच्छ अभाव है, याने कुछ न नजर आये, शून्य पना होना, न होना, न का नाम अभाव है, पर अन्य सिद्धान्त और जैनशासन भी यही मानता है कि कुछ न हो ऐसा अभाव जाना नही जा सकता । अभाव किसी न किसी सद्भावके रूपमे ही जाना जाता है । केवल अभाव हो कुछ न हो, असत् हो तो वह जाननेमे नही आ सकता । जाननेमे वही आता है जो सत् हो । जो असत् है वह ज्ञानका विषय नही हो सकता । तो जो अभाव प्रमाणवादी हैं उनका कहना है कि अभाव भी यदि वस्तु न हो, अभाव भी यदि प्रमेय नही है तो फिर अभावके जो चार भेद किए हैं प्रागभाव, प्रध्वसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव ये भेद किस बलपर किए हैं ? इससे सिद्ध है कि अभाव कोई वस्तु है और उसका ज्ञान होना सो अभाव प्रमाण है ।

प्रागभावका भाव — प्रागभावका क्या अर्थ है ? जैसे मिट्टीके पिण्डका घडा

बनाया जा रहा है तो जब तक वह मिट्टीका पिण्ड है तब तक वह घडा तो नहीं है। तो घडेका प्रागभाव मिट्टीका पिण्ड है, मायने घडेसे पहिले घडेका अभाव होना। तो घडेसे पहिले है वह मृत पिण्ड, उसमे है घडेका अभाव। तो यह अभाव प्रमाण वाला तो यह कहता है कि अभावसे यह व्यवस्था बनती है कि घडा मृत्पिण्डमे नहीं है और जैनशासन यह कहता है कि अभाव कोई वस्तु नहीं होती जो कि व्यवस्था बनाता फिरे। पदार्थमे अपने ही सत्त्वके कारण स्वय यह व्यवस्था है कि एक पर्यायमे दूसरी पर्यायका अभाव रहे। जिस पदार्थमे अपने ही स्वरूपके कारण यह व्यवस्था है कि यह अपने स्वरूपमे तो है, अपने प्रदेशमे तो है अपने पिण्ड और विकासमे तो है और अन्य पदार्थके पिण्डन गुणोसे, स्वरूपसे यह नहीं है, यह व्यवस्था उस पदार्थकी सत्ता के कारण स्वय अपने आप बनी है, किन्तु मीमासा वाले कहते है कि एक अभाव नामका पदार्थ है जो सभी जगह मौजूद है वह अभाव यह व्यवस्था बनाता है कि किसी चीजमे दूसरी चीज न आये। इसी प्रकार एक पदार्थकी अनन्त पर्याये होती है। उन पर्यायोमे एक पर्यायमे दूसरी पर्यायका अभाव है, यह वस्तुमे वस्तुके ही कारण व्यवस्था बनी है। अगली पर्यायका पहिली पर्यायमे अभाव होना सो तो प्रागभाव है और अगली पर्यायमे पहिली पर्यायका अभाव होना प्रध्वसाभाव है।

असद्रूप प्रागभावके कालापेक्षया विकल्पोका प्रश्न—यहा प्रागभावकी चर्चा चल रही है। तुम्हारा यह प्रागभाव बतलाओ सादिसान्त है या सादि अनन्त है, या अनादि अनन्त है या अनादि सान्त है? घडका मृत्पिण्डकी अवस्थामे जो अभाव है वह अभाव क्या किसी समयसे हुआ है और किसी समय खतम होगा? ऐसा है तो जिस समय शुरू हुआ है प्रागभाव घडेका पर्यायमे अभाव होना जिस समय शुरू होता है उससे पहिले तो घटेका अभाव न था यह अर्थ हुआ। तब घडा पहिले बन जाना चाहिए। यदि प्रागभाव सादि अनन्त माना जाय तो प्रागभावमे पहिले घटकी उपलब्धि हो जाना चाहिए क्योकि घटकी उपलब्धिका विरोधी प्रागभाव है। जब तक प्रागभाव रहता है तब तक इसके उत्तर पर्यायकी उत्पत्ति नहीं होती है। प्रागभाव न मिले तो घटकी उत्पत्ति हो पडेगी। यदि कहो कि यह सादि अनन्त है याने इसकी शुरूआत तो होती है पर प्रागभाव होनेके बाद फिर प्रागभाव अनन्त काल तक रहता है। तो इसका अर्थ यह हुआ कि शुरू होनेसे पहिले घटकी उपलब्धि होना चाहिए और फिर वह प्रागभाव अनन्त है तब फिर सदा घटकी अनुपलब्धि होना चाहिए। यदि कहो कि प्रागभाव अनादि अनन्त है अनादिसे था और अनन्त काल तक रहेगा तो अनादि हो गया प्रागभाव, इसलिए जैसे पहिले कभी भी घटकी उपलब्धि नहीं हो सकती थी वैसे ही अनन्त मिल गया प्रागभाव तो आगे भी घडा न रहेगा। यदि कहो कि वह प्रागभाव अनादि सान्त है, अनादिसे तो चला आया है पर प्रागभावका अन्त हो जायेगा। इसका पक्ष कुछ मजबूत सा है कि घटका प्रागभाव अनादिसे है इसलिए पहिले कभी घट नहीं बन पाया और इसका अन्त हो जाता है तो घट बन जाता है,

लेकिन इसमें आपत्ति यह है कि जब घट उत्पन्न हुआ तो प्रागभाव तो मिट गया। तो जब प्रागभाव मिट गया तो घटकी तरह सभी कार्य एक साथ बन जाना चाहिए। प्रागभाव तो प्रागभाव ही है वह सबका प्रागभाव था। समस्त कार्य जो उत्पन्न होंगे उन सबका प्रागभाव एक है।

अनेक प्रागभावोंकी मान्यतापर विचार यदि कहा कि जितने भी कार्य हैं उतने ही प्रागभाव होते हैं एक पदार्थमें, उनमेंसे एक प्रागभावका विनाश हो तो शेष उत्पत्स्यमान याने आगे होने वाले कार्योंके प्रागभाव तो मौजूद हैं सारी पर्यायें न बनेंगी। तो ऐसा मानने पर फिर अनन्त प्रागभाव बन गए। तो वे सब प्रागभाव स्वतन्त्र हैं या किसी पर्यायके आधीन हैं? यदि स्वतन्त्र हैं तो क्यों न वे भाव स्वभाव बन जायेंगे? सत्तारूप बन जायेंगे काल आदिककी तरह। यदि कहो कि किसी पर्याय के आधीन हैं तो जो उत्पन्न हुई पर्याय है उसके आधीन है या जो उत्पन्न होगी पर्याय उसके आधीन है या जो उत्पन्न होगी पर्याय उसके आधीन है? उत्पन्न हुई पर्यायके आधीन मानना तो बन नहीं सकता, क्योंकि उत्पन्न हुए भावके कालमें प्रागभाव है नहीं। अगर आगामी उत्पन्न होने वाली पर्यायके आधीन मानोगे तो जो असत् हैं पर्यायें, उनके आधीन माना ही नहीं जा सकता। यदि असत्के आधीन कुछ बन जाय तो प्रध्वंसाभाव भी जो पर्याय नष्ट हो गयी उसके आधीन बन बैठेगा। इससे प्रागभावकी सिद्धि नहीं होती। अभाव नामका कोई अलग प्रमाण नहीं है। जो कुछ जाना जाता है वह पदार्थका सद्भाव जाना जाता है।

मोहविध्वंसका उपाय तत्त्वज्ञान देखिये ये चर्चायें यद्यपि थोड़ी कठिन हैं, पर इन चर्चावोंसे वस्तुके स्वरूपका ज्ञान होता है। और, जब वस्तुके स्वरूपका सही ज्ञान होगा तब मोह मिटेगा। आप दसों उपाय कर लें मोह मिटानेके पर वस्तु केसम्यग्ज्ञान बिना मोह मिट नहीं सकता। आप क्या उपाय करेंगे? मोह मिटानेका सो बतलावो? घर छोड़कर आप जंगलमें भाग जायें यही तो कर सकेंगे, पर जंगल में भागकर भी यदि सम्यग्ज्ञान नहीं है तो दिल तो वहां भी है, वहां रहकर भी यह कुछ न कुछ सोचा करेगा। मोह मिटा लेगा क्या? मोह मिटानेके लिये आप और क्या उपाय कर सकते हैं? कुछ हो तो बतावो। आप एक उपाय यह भी बना सकते हैं कि जिससे मोह होता है उससे बिगाड़ कर लें। कोई ऐसी अटपटी घटना बना कर खड़ी कर दें कि उससे चित्त हट जाय, फिर वह बुरा बोलने लगे, तो शायद मोह हट जायगा। अरे उससे भी मोह नहीं हट सकता' क्योंकि मोहके फल दो हैं—राग और द्वेष। पहिले तो मोह रागके रूपमें फल रहा था अब यह मोह द्वेषके रूपमें फलने लगा। इसका ख्याल तो नहीं भुला दोगे। मोह तो रहा ही। जैसे लोग कहते हैं कि यह मेरा मित्र है, उस मित्रके प्रति ममता बनाते हैं, इसी प्रकार यह भी तो कहते हैं कि यह मेरा शत्रु है। अरे मेरा शत्रु है ऐसा माननेमें भी तो ममता बना ली। तो मोह

स्वरूप ही तो है। यह न समझमे आये तो मोह हटानेका और क्या उपाय हो सकता है? और स्वरूप समझमे आया और जान गए कि बिलकुल स्वतंत्र सब जीव हैं, कुछ सम्बन्ध नही है हमारा इनसे। ये भी कर्मोंसे लदे है। सभी अपने अपने कर्मों का ही फल भोग रहे है। इस प्रकारका सही ज्ञान बन जाय तो मोह शीघ्र ही मिट जायगा। जो वस्तुका स्वरूप जान गया है वह ही इस मोहको मिटा सकता है।

पदार्थमे प्रतिसमय एक एक परिणमन होनेकी निरन्तर नियमितता—भैया! जैसे एक पदार्थमे दूसरे पदार्थका अभाव है इसी प्रकार एक ही वस्तुमे पर्यायो का भी एक दूसरेमे अभाव है, यह यहाँ बताया जा रहा है। दृष्टान्तमे यहाँ अजीव ले लो कि जब मृत्पिण्ड है तब घडेका अभाव है और जब घटा बन गया तो मृत्पिण्ड का अभाव है। हमारे आपके आत्मामे इस समय जो परिणमन है वह परिणमन है, इसमे अगला परिणमन नही है और पिछले परिणमनका भी अभाव है। तो जो पिछले परिणमन हो गये उनका अभाव तो ऐसा पक्का है कि फिर कभी आ नही सकता, पर जो अगले परिणमन होंगे उनका इस समय अभाव है, ये आ सकते है, पर एक परिणमनमे अन्य परिणमनका अभाव है तो यह प्रागभाव और प्रध्वसाभावकी बात है।

ज्ञानानुभवकी परिणतिसे अशुद्ध परिणतिका ध्वस अभावविषयक मर्मविज्ञानसे हम आप यह शिक्षा लेते है कि जैसे प्रध्वसाभाव होनेपर अर्थात् उत्तर पर्याय उत्पन्न होनेपर पिछली पर्यायें सब नष्ट हो गयी, वे नही रही तो कल्पना करो कि किसी मनुष्यने बहुत पाप किए और एक समय उसका शुद्ध परिणाम आ जाय, एक ज्ञानस्वरूपको जाननेका उपयोग चले तो उस ज्ञानानुभवके समय उसके क्या कोई पापभाव रहा है। परिणमन एक समयमे एक होता है। जिसमे ज्ञानानुभवका परिणमन है उस समयमे कोई पापका परिणमन है क्या? तो मतलब यह है कि इस तरह समस्त पाप नष्ट हो गए कि नही? जीवकी सत्तामे नही रहे। कर्म जो बँध गए उन पापपरिणामोंके कारण वे अभी सत्तामे हैं इसलिए कहा जायगा कि अभी उनका सस्कार तो है पर आत्मानुभवके समयमे भाव पाप एक भी नही है। चाहे कितने भी पाप भाव किये हो उस जीवने सैकडो जीवोकी हत्या भी की हो, या अनेक व्यसन भी सेये हो लेकिन किसी समय उसका परिणाम सुधर जाय और ज्ञानका अनुभव बन जाय तो जिस समय ज्ञानका अनुभव है उस समय उस ज्ञानानुभवका ही तो परिणमन रहेगा। भाव पापका परिणमन न रहेगा। तो आत्मामे परिणमनकी दृष्टिसे उस समय सब पाप नष्ट हो गए। अब रह गयी इतनी सी बात कि पहिले जो पाप परिणाम किया था उसके कारण कर्म बधे हुए थे वे अभी सत्तामे है तो ऐसे पाप कर्म भी जो निर्जराको प्राप्त होने है वे आत्मानुभवके बलसे ही तो होते है, उसमें समय लगेगा, पर आत्मानुभवके समयमे समस्त भाव पापका अभाव हो चुका। इससे

सर्वथा असत्‌की प्रमेयताका अत्यन्त अभाव — प्राभाकरो मीमांसक जन स्वतन्त्र वस्तु मानते हैं यह छठा प्रमेय है और उसका ज्ञान करने वाला छठा प्रमाण है किन्तु अभाव कोई वस्तु नहीं है जिसका ज्ञान किया जा सकता है। हम जब जब भी अभावका ज्ञान करते हैं तो किसी पदार्थके सद्भावका ज्ञान बनाते हैं तब हमें अभावकी कल्पना आती है। जैसे कहा कि उस कमरेमें मुकुट उठा लावो। वह कमरेमें गया, सारे कमरेमें अच्छी तरह देखकर वह लौट आता है और कहता है कि उस कमरेमें मुकुट नहीं है, तो क्या उसने उस मुकुटको देखकर कहा कि यहाँ मुकुट नहीं है? जो चीज वहाँ है ही नहीं जो असत् है वह भी आपको दिख सकती है क्या? तो उस मुकुटका कमरेमें जो सद्भाव जाना गया वह मुकुटका अभाव है, जो अभाव है वह किसी भी ज्ञानका विषय नहीं है, न उसे अभाव प्रमाण जान सकता, न मतिश्रुत ज्ञान जान सकते और न केवलज्ञान जान सकता। केवलज्ञान तो बिल्कुल नहीं जान सकता। हम आप तो उसकी कल्पना बना सकते हैं, पर केवलज्ञानमें तो कल्पना भी नहीं। वहाँ तो सीधा स्पष्ट जो भी सत् है वह जाना जाता है। जैसे हम आप लोग कल्पना करके

माना करते हैं कि यह अमुक चन्दका घर है, यह अमुक व्यक्तिकी चीज है वैसा ज्ञान भगवानको नही होता। भगवान यह नही जानते कि यह अमुक चन्दका मकान है। यदि वे ऐसा जान जाॅ तब तो फिर उस मकानकी पक्की रजिस्ट्री हो गयी, वह घर फिर उससे कभी छूट ही नही मकना। यहाँकी रजिस्ट्री तो फेल हो सकती है, पर भगवानके द्वारा की हुई रजिस्ट्री फिर फेल न हो सकेगी, पर ऐसा नही है। भगवान तो सत्को स्पष्ट जानते हैं असत् कभी प्रमेय नही होता। अभाव असत् है, कुछ भी नही है, तुच्छाभाव है, तो उस अभावका न ज्ञान होता है और न वह अभाव कोई प्रमेय है, किसी पदार्थका सद्भाव ही अन्य पदार्थका अभाव कहलाता है और इसी प्रकार किसी भी वस्तुमे जो एक पर्याय बनी है उसमें अन्य पर्यायका अभी अभाव है। तो ये सब प्रागभाव आदिक जो अभावके भेद किए गए हैं ये कोई मुख्य विषय करने वाले नही हैं। तो अभाव कोई प्रमेय नही और न उस अभावका जानने वाला कोई ज्ञान प्रमाण है। अभाव किसीके सद्भावरूप हुआ करता है, ऐसे अभावके ज्ञानका प्रत्यक्ष आदिकमे अन्तर्भाव बताया है।

पदार्थगत शक्तिसे भावाभावव्यवस्था प्रत्येक पदार्थमें ६ साधारण गुण होते हैं पदार्थ कोई सा भी हो। जैसे एक जीव ले लीजिए तो यह जीव है यह उसका पहिला गुण है। यह जीव अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नही है यह दूसरा गुण है, यह जीव निरन्तर परिणमता रहता है अवस्थाये बनाता रहता है यह तीसरा गुण है, यह जीव अपनेमे अपनी ही अवस्था बनाता है दूसरेकी अवस्था नही बनाता यह चौथा गुण है। यह जीव अपने प्रदेशरूप है यह पाचवा गुण है और जीव वस्तु किसी न किसीके ज्ञानमे जानी ही जाती रहती है यह उसका छठा गुण है। इस प्रकार ६ गुणो से व्याप्त प्रत्येक पदार्थ है। इस आधारपर पदार्थ निरन्तर अपनी पर्यायका उत्पन्न करता रहता है। वे सब पर्यायें क्रमसे होती हैं। वर्तमान, भूत और भविष्यकी सब पर्यायें पदार्थमे एक साथ नही हो सकती ऐसा वस्तुका स्वरूप है। तो जब प्रत्येक अवस्थायें क्रमसे हुआ करती हैं तो वहाँ हम यह जान लेते हैं कि जिस समय जो पर्याय है उस समय उसीका सत्त्व है आगे होने वाली पर्यायका अभी सत्त्व नहीं है। तो आगे होने वाली पर्यायका वर्तमानमे अभाव होना इसका नाम प्रागभाव है। तो ऐसा अभाव कोई वस्तुभूत चीज नही है किन्तु पर्याय यह है और उस पर्यायीकी ही यह विशेषता है कि उसमे तब अन्य पर्याय नही है।

विशेषणभेदसे प्रागभावको भिन्न–भिन्न माने जानेकी मीमासा-- पदार्थ स्वय अन्यसे व्यावृत्त रहता है, यह न मानकर मीमासक सिद्धान्तने अभावको अलग पदार्थ माना। तो उनमे यह पूछा गया था कि प्रागभाव उसे कहते हैं जिसके मिटनेपर कार्य हो। जैसे मिट्टीका पिण्ड है, उसमे अभी घडा पर्याय नहीं बनी है, जब घडा पर्याय बनता है तो उस मृत्पिण्डका अभाव हो जाता है, जिसका अभाव होनेपर

अगली पर्याय बने उसको प्रागभाव कहते हैं। तो वस्तुमे प्रागभाव नही रहा और अभावको तुमने एक ही पदार्थ माना है, तो प्रागभावके नष्ट होनेपर कार्य एक साथ हो जाने चाहिएँ। उसके उत्तरमें यह कहा था कि नही, प्रागभाव नाना हैं तो उसकी भी व्यवस्था नही बनती। तब मीमासक सिद्धान्तने यह अपना पक्ष रखा कि एक ही अभाव विशेषणके भेदसे प्रागभाव भिन्न-भिन्न माने जाते है। यह घटका प्रागभाव है, यह पटका प्रागभाव है। जितनी वस्तुएँ है वे सब वस्तुएँ जिस समय जिस पर्यायमे है उस समय उस ही पर्यायमे है। उस समय अगली पर्याय नही हैं। तो जितने पदार्थ है उतने अभावके विशेषण है, यह घड़ेका प्रागभाव है। ये चौकी आदिक जो अनेक प्रकारके अभाव दिखते हैं वे विशेषणके भेदसे भिन्न-भिन्न दिखते है सो जो अवस्था उत्पन्न हुई उनके विशेषणरूपसे प्रागभाव न होगा, पर जो अवस्थाएँ आगे उत्पन्न होगी उनके विशेषणरूपसे प्रागभाव नष्ट नही हुआ। इसलिए वह अभाव तो नित्य है, ऐसा यदि मानते हो तो फिर जैसे एक प्रागभाव माना और उसके विशेषण अनेक माने तो यो एक अभाव मान लिया जाय जो प्रागभाव प्रध्वसाभाव आदिके विशेषण रूपसे भिन्न भिन्न कहलायेगा।

भावकी भांति अभावको विशेषणभेदसे ही भिन्न माननेका प्रसङ्ग—अभावप्रमाणवादियोसे कहा जा रहा है एक अभावकी मान्यताके प्रसङ्गमे कि विशेषण रूपसे लोकव्यवहार भी होता है अर्थात् दिखनेभरका एक अभाव है और उसमे विशेषणके भेदसे भेद होता है। जैसे कि ब्रह्मवादियोने माना है कि दुनियाभरमे सत्ता एक है, जीव सत् हैं, पुद्गल सत् हैं, ऐसा भिन्न-भिन्न नही माना। सर्वव्यापक एक सत् है और वह सदा विशेषणके भेदसे भिन्न-भिन्न मालूम होता है। यह द्रव्य सत् है, यह गुण सत् है। जैसे विशेषणके भेदसे भिन्न-भिन्न सत्ता मान लेते हो पर हैं एक ही। इसी प्रकार अभावको मान बैठें कि विशेषणके भेदसे भिन्न-भिन्न अभाव जाने जाते हैं कि यह घटका अभाव है, पर अभाव मूलमे एक ही है। यो अभावको फिर एक ही मान लेना चाहिए। आचार्यदेव मीमासकोके प्रति आपत्ति बतला रहे हैं। देखो! एक ही अभाव जब पूर्वकालसे विशिष्ट अर्थ लेते हैं तो उसका नाम प्रागभाव है। जैसे मृत् पिण्डसे घडा बनता है तो उस घडेके पूर्वकालसे विशिष्ट जो अर्थ है उस घडेका पूर्व अगली पर्यायसे विशिष्ट जो भाव है वह प्रध्वसाभाव है। घड़ा फूट गया तो खपरिया बन गयीं। नाना पदार्थोंमें रहने वाला जो अभाव है वह इतरेतराभाव है। तीनों कालमे नाना स्वभावरूप सहित जो अभाव है, अत्यन्ताभाव है - जैसे गधेके सीग, आकाशके फूल ये सदा अभावरूप है तो वह अत्यन्ताभाव हुआ। इसी प्रकार ज्ञानभाव भी होता है तो जैसे सत्ता एक होनेपर भी द्रव्यादिकके विशेषणमें तुमने भाव माना है इसी प्रकार अभाव भी एक मान बैठो और विशेषणोके भेदसे नाना अभाव ज्ञानमे आते हैं, ऐसी समझ बनालो।

सत्त्वके एकत्वकी मान्यता—बात यहाँ सिद्धान्तमें तो यों है कि जितनी भिन्न–भिन्न परिणतियाँ चल रही हैं, भिन्न–भिन्न उनमें अर्थक्रियायें चल रही हैं उतने पदार्थ हुआ करते हैं। जैसे जीव जुदा पदार्थ है, पुद्गल जुदा पदार्थ है और जीवोंमें भी जाति अपेक्षासे सभी जीवोंमें समानता है तिसपर भी प्रत्येक जीव अपने आपमें अपनी ही परिणतिका अनुभव करता है कोई जीव किसी दूसरेकी परिणतिका अनुभव नही करता। अतएव ये जीव भी अलग–अलग अनन्तानन्त हैं, यो सत् अनन्तानन्त हैं लेकिन थोडा मीमासक सत्को एक ही मानते हैं एक ही ब्रह्म है, सत्स्वरूप है, एक ही वस्तु है, विशेषणोके भेदसे ये भिन्न–भिन्न मालूम पडते हैं। दृष्टान्त यो देते हैं कि जैसे आकाश एक है लेकिन विशेषणोके भेदसे भिन्न–भिन्न मालूम पडता है—यह घडेका आकाश है, यह भगोनेका आकाश है, यह सन्दूकका आकाश है, पर आकाश सर्वत्र एक व्यापक है। इसी प्रकार ये सत् भी भिन्न–भिन्न मालूम पडते हैं पर वे सब एक हैं, विशेषणके भेदसे वे सब भेद मान लिए जाते हैं कि यह द्रव्य सत् है, यह गुण सत् है, यह कर्म सत् है, ऐसा उनका कथन है। इसपर भी विचार करिये।

अनन्तस्वरूपास्तित्व माननेसे ही व्यवस्था सत्ताको मात्र एककी मान्यताके सम्बन्धमें मूलमें तो यह गल्ती हुई है कि जो अलग–अलग सत् हैं उनको तो अलग–अलग सत् माना नहीं और जो अलग सत् नही हैं उनको सत् माना है। जैसे द्रव्य अनन्तानन्त हैं, तो उन सबमें अनन्तानन्त पदार्थ हैं, यो तो माना नही और गुण और कर्म ये कोई अलग सत् नही है। जीव पदार्थ है, उसका गुण अलग सत् नहीं है, वह जीवकी विशेषता है, जीवका स्वरूप है। चेतनमे जो कुछ भी क्रिया होती है वह क्रिया अलग सत् नही है, वह चेतनकी अवस्था है। तो यो जो सत् है उसके भेद नहीं करते और जो सत् नही है उसके भेद करते है। फिर दूसरी बात यह है कि एक ही सत् हो दुनियामें तो जैसे आपके शरीरमे एक जीव है तो चाहे पैरमे चोट लगे चाहे शिरमे चोट लगे, सारे उस जीवमे एकमे अनुभव होता ही है। इसी तरह अगर दुनियाभरमें एक ही सत् है तो हमे कोई दुःख हो तो सारे जीवोमे वही उसी समय दुःख होना चाहिए। जब एक सत् है, एक बाँस है तो उसके हिलानेपर सारा बाँस न हिले, वही एक पोर हिलता रहे ऐसा भी सम्भव है क्या ? उसको तो हिलानेपर सारा बाँस हिल पडेगा। इसी प्रकार दुनियाभरमे यदि एक ही सत् है तो किसी जीवके दुःखी होनेपर वही दुःख सबको एक साथ हो जाना चाहिए, पर यहाँ तो ऐसा नहीं देखा जाता। इससे सिद्ध है कि जितने परिणमन हैं उतने पदार्थ हैं।

भावकी भाति अभावके भी एकत्वका प्रसङ्ग—देखिये ! ऐसे भी कुछ सिद्धान्तवादी हैं जो सत्ताको एक मानते हैं और असत्को अभावको नाना मान रहे हैं, जो अभाव उन्हींके सिद्धान्तमें कुछ भी नही है, तुच्छाभाव है उसको तो मानते हैं नाना रूपोंमें, और जो सत् है, भावात्मक तत्त्व है उसे मानते हैं केवल एक ही। उनके प्रति

कहा जा रहा है कि जैसे तुम सत्को एक मानते हो और विशेषण भेदसे भिन्न–भिन्न मानते हो, इसी प्रकार अभाव भी एक बन जायगा और विशेषणभावसे नाना भेद हो जायेंगे। यदि यह कहो कि भाई समस्त पदार्थोंमे ये भी सत् है, ये भी सत् है तो है है के ज्ञानकी इसमे विशेषता है, समानता है और उन पदार्थोंके सत्त्वमे विशेष कोई चिन्ह नजर नही आता। इसलिए सत्ता एक है अर्थात् है पनेमे भेद क्या ? घोडा है तो उसमे है मात्र है गधा है तो इसमे है मात्र है इन दोनोके है शब्दमे क्या फर्क है? पर जो विशेषण है उसमे फर्क है, सो विशेषणसे सत् भिन्न–भिन्न है पर वे सत् हैं सब एक, ऐसा तो मानते ही हो सो अभावको भी एक मानलो ऐसा माना जा सकता है कि ना कि अभाव असत्को विषय करता है। जैसे इस कमरेमे लोटेका अभाव है, उस कमरेमे पुस्तकका अभाव है, तो लोटेका, पुस्तकका इसमे उसमे विशेषता है, भेद रहा, पर "नही है, नही है", इतने मात्रमे क्या भेद होगा ? तो अभावको भी एक [illegible]।

भावोका नानात्व और अभावकी भावरूपता- यदि यह कहो कि अभावके बारेमें तो यह बोध होता है—यह पहिले न था, यह आगे न होगा, यह इसमे नही है ऐसा भेद पडता है इसलिए अभाव ४ प्रकारका मान गया है तो कहते है कि सत्तामे भी तो यह भेद पड रहा है। यह पदार्थ पहिले था, यह अवस्था आगे होगी। तो इससे भी प्राक् सत्ता, देश सत्ता आदि अनेक भाव मानलो। और देखा भी जाता है—यह अमुक नगर है, यह अमुक नगर है तो यो अलग–अलग देशोकी सत्ता है। तुम मानते भी हो कि ये द्रव्य है ये गुण हैं, ये धर्म हैं, यह द्रव्यादिके भेदसे अलग सत्ता है। ज्ञान होता है जुदा–जुदा, इससे यो सत्तामे भी भेद क्यो नही मान लिए जाते ? तो जो यह कहा था कि ज्ञानमे फर्क जरूर आया, किसी पदार्थकी सत्ता जानने में ज्ञानके भेद जरूर हुए मगर उन ज्ञानभेदोसे उनका विशेषण ही भेदा जाता है, वह ही भिन्न–भिन्न माना जाता है, सत्ता नही। इसी प्रकार अभावको भी मान लो कि अभावमे नाना अभावोका ज्ञान तो हुआ पर नाना भावोके विशेषणोसे पदार्थ ही भेदे गए अभाव नही। तो इस प्रकार अभावको एक माननेमे भी आपत्ति नाना माननेमे भी आपत्ति। अभाव प्रमाण माननेमे विडम्बनाका कारण यह है कि अभाव अवस्तु है जैसे घडी है, इसका जो भाव है, जो सत्ता है वह कुछ चीज है कि नही ? और, कहो कि यह घडी, चौकी नही है तो ऐसा जो नही पना है उसको कोई पकडकर दिखा सकता है क्या ? नही दिखा सकता। जो चीज है उसीको सभी पकडकर दिखा सकते हैं। जैसे घडीका सद्भाव है तो उसे पकडकर दिखाया भी जा सकता है। तो "न" कोई बात ही नही होती। हम इस घडीको देखकर ही घडीमे गुणोको हां रूपसे कहते हैं और अन्यके गुणोको न रूपसे कहते कहते हैं। तो ये अस्तित्व और नास्तित्व दोनो धर्म घडीमे हैं। अभाव नामका कोई अलग पदार्थ नही है।

अभावकी भांति भावमे भी दोषापत्ति- अभावप्रमाणवादी यहां कहता

है कि अभावको अगर एक मान लिया जाये तो क्या दोष होगा कि जैसे घड़ेका प्रागभाव मृत्पिण्ड है यानें पहिले मिट्टीका लोंदा बनता है उसके बाद घड़ा बनता है तो घड़ेका मृत्पिण्डमें अभाव है, पहिली अवस्थामें अभाव है, तो घड़ेका प्रागभाव मृत्पिण्ड कहलाया। वह मृत्पिण्ड जब मिट गया तो घड़ा बन गया। तो प्रागभावके मिटनेसे कार्यकी उत्पत्ति हुई। तो एक कार्य होनेपर प्रागभावका तो अभाव हो गया, फिर दुनियाभरके सारे काय उत्पन्न ही हो जायें। जैसे मृत्पिण्डके मिटनेपर घड़ा बन गया तो अन्य चीज क्यों नहीं बन गयी ? दुनियाकी सारी चीजें बन जाना चाहिए, क्योंकि प्रागभावका अभाव हो गया। एक अभाव माननेपर सारे काय अनादि अनन्त हो जायेंगे और सर्वात्मक हो जायेंगे, यह आपत्ति आती है इसलिए अभाव नाना मानने चाहियें। इसपर आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि यह बात तो तुम्हारी सत्ताकी एकतामें भी कह सकते हैं। सत्ता तुम एक मानते हो तो जैसे मृत्पिण्डके समयमें मृत्पिण्डकी सत्ता है और मृत्पिण्ड मिट गया तो मिट्टीके लौंदेका अभाव हो गया कि नहीं ? तो जब एक सत्ता मिटी तो सारी सत्तायें मिट जायें, सभी चीजोंका अभाव हो जाय। एक अवस्थाका अभाव होनेपर फिर सारी दुनियाका अभाव हो जायगा, क्योंकि सत् तो एक ही रहेगा। रहे तो सब कुछ रहे न रहे तो कुछ न रहे। जब एक ही चीज है तो एकमें कुछ रहे कुछ न रहे यह भेद नहीं हो सकता। फिर यों सारा जगत् शून्य हो जायगा।

प्रतिबन्धकत्वकी कल्पनासे भी भाव अभावकी अर्थक्रियाकारिताकी असिद्धि—अभावप्रमाणवादी यहाँ कहते हैं कि विवक्षित कार्यका विध्वंस होनेपर भी सत्ताका नाश नहीं होता, अन्यथा एक कार्यके होनेपर सत्ता नष्ट हो जाय तो फिर उस समय अन्य पदार्थकी सत्ताका ज्ञान न होना चाहिए। यह बात असङ्गत है, क्योंकि ऐसी बात अभावमें भी कह सकते हैं – किसी एक विशेषरूप कार्यका अभाव हो जाय, तो अभावका अभाव होनेसे भी वहाँ सर्वत्र अभाव न होगा क्योंकि अन्य-अभावमें अभावकी प्रतीतिका अभाव हो जायगा। तो जैसे सत्ता नित्य एकरूप है इसी प्रकार अभाव भी नित्य एकरूप बन बैठेगा। अभाव नामका कोई वस्तु न एक मानकर सिद्ध किया जा सकता है और न अनेक मानकर सिद्ध किया जा सकता है। अभाव कोई वस्तु नहीं है। पदार्थ हैं और उन पदार्थोंको निरखकर हम नाना उसमें प्रतिपादन किया करते हैं। यह जीवका पदार्थका स्वरूप है, अपने आप हैं, अपने स्वरूपसे हैं, परके स्वरूपसे नहीं हैं, यह आपकी विशेषता है कि आप दूसरे नहीं हैं, यह बात बनानेके लिये कोई अभाव नामका पदार्थ हो और वह सबका अभाव आपमें कर रहा हो यह बात नहीं है। आप स्वरूपतः अन्य समस्त पदार्थोंसे अलग हैं यह सत्ताकी प्रकृति ही है। यदि ऐसा माना जाय कि सत्ता एक पदार्थ है फिर भी सत्ता जो अवस्था नहीं हो रही है उस अवस्थाको रोक रही है। तो अभाव भी जिन कार्योंकी उत्पत्ति नहीं है उसकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्धक है, ऐसा मान डाला जाय। तो ऐसा

माननेपर यों विडम्बना बनेगी कि जब सत्ता एक है तो रोके तो सबको रोके और न रोके तो किसीको न रोके। जब अभाव एक है तो प्रतिबन्धक रोके तो सबको रोके और न रोके तो किसीको न रोके।

भेदवादका आशय—देखो, वस्तुमे तत्त्व तो यह है कि वस्तु अनेक शक्तिरूप है और प्रत्येक शक्तिका कुछ न कुछ प्रत्येक समयमे परिणमन होता है और उसमे परिणमन होता चला जाता है यह वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है, उस स्वभावकी दृष्टि के लिये अलगसे अभाव माने, समवाय माने तो व्यवस्था नहीं बन सकती। ये मीमासक सिद्धान्त वाले अभावको अलग प्रमाण मानते हैं, वह तो मान ही रहे है, उसका तो प्रकरण ही चल रहा है किन्तु पदार्थमे गुण भी अलग है, पदार्थमे पदार्थकी परिणति भी अलग है पदार्थमें जो सामान्य स्वरूप है वह भी अलग है और जो विशेष स्वरूप है वह भी अलग है। इतना बिखरा हुआ सिद्धान्त है यो समझिये। ब्रह्माद्वैत और मीमासक सिद्धान्त रीति–रिवाजमे तो दोनो एकसे हैं लेकिन सिद्धान्तमे अन्तर है। एक तो अभेदवादियोने सब चीजोको एकमेक माना और दूसरे भेदवादियोंने ऐसा चूर चूर किया है एक एक तत्त्वको कि जहा एक भी स्वरूप भिन्न नजर आया उसको झट एक पदार्थ अलगसे मान लेंगे। जैसे कहने–सुननेमें आता है ना कि आत्मामे ज्ञान है, ज्ञान मायने जानना और आत्मा मायने जानने वाला। ये दो चीजें अलग होगयी। ऐसा मीमासक लोग मानते हैं। जरा सा भी स्वरूपका भेद नजर आया, एक शब्दका भी फर्क आया तो झट वे मीमासक उसको अलगसे पदार्थ मान लेते हैं। यह मीमांसकोंका एक आग्रह है।

अभेदात्मक वस्तुकी शक्ति और परिणतियोमे सत्ताभेदका अभाव – तो अब रहा क्या कि जैसे आत्मा एक द्रव्य अलग है और आत्माके चैतन्य गुण अलग हैं तो वह सदा अकेला है और चैतन्यमे जो जाननक्रिया हो रही है वह सब अलग है। और जो एक चैतन्य सामान्य है जिससे हम सब चेतनोंको, सब जीवोको एक समान निरखते हैं वह सामान्य अलग है और पदार्थका जो विशेष है वह भी अलग है। वह दूसरेमे नही है, ऐसा जो विशेष भाव है वह भी अलग है और ये अलग–अलग हैं, किसी दूसरेमे अभाव है ऐसा अभाव एक अलग है। तो ये पदार्थ नाना भेद मानने वाले सिद्धान्तमे जो पार्थक्यकी नीति है वह नीति स्वरूपसे विरुद्ध नीति है। एक ही पदार्थ है और वह ही पदार्थ गुण, कर्म, सामान्यविशेष, समवाय और अभाव सर्वरूप है, अलग–अलग जो चीज हैं उनकी सत्ता स्वीकार करना तो वे भूल गए, पर एक ही सतमें गुण कर्म आदिकको अलग–अलग माननेकी उन्होने ठान ली। कुछ विरुद्ध दशामें उनका मन्तव्य पहुँचता है। एक ही घडीको जिसे हम कहते हैं कि यह सफेद है तो घडीकी सफेदी क्या घड़ीसे न्यारी है? लेकिन मीमासक सिद्धान्त वाले कहते हैं कि घडी अलग वस्तु है और घडीकी सफेदी अलग वस्तु है। अरे वह सफेदी घडीकी ही

इस समयकी विशेषता है, इस प्रकार घडी है और घडीमे चौकी आदिक सब पदार्थोंका अभाव है तो यह अभाव घडीसे कोई अलग चीज है । मीमांसक मानते हैं कि हाँ अभाव अलग चीज है और घडीका जो होना है यही अन्य चीजका अभाव है । वह अभाव कोई अलग वस्तु नही है ।

अभावकी अव्यवस्था – जब उनसे पूछा गया था कि एक कार्यके मिटनेपर सत्ता सब क्यो नही मिट जाती ? तो उनका कुछ ऐसा भी कहना है कि भाई बलवान प्रध्वसका कारण मिलनेपर कार्यकी सत्ता ध्वंसको नही रोकती है, अर्थात् कार्य मिटता है और उससे पहिले बलवान विनाश कारण न मिला तो सत्ता ध्वसको रोकती है, याने अभी सत्ता बनी है । इस कारण पहिले प… का प्रसङ्ग नही आता तो यह तो अभावमे भी कह सकते । बलवान उत्पादक कारणके मिलनेपर अभाव कायकी उत्पत्तिको नहीं रोकता । कार्य उत्पन्न होनेसे पहिले चूँकि बलवान उत्पादक कारण का अभाव है इसलिए कार्यकी उत्पत्तिको रोकता है तो इस तरह एक अभाव मानने पर भी पहिले कार्य उत्पन्न न होगा । इससे एक ही अभाव मानो फिर तो कार्य अनादि हो जायगा । प्रागभावका अभाव हो तो सारे कार्य हो गए, उससे पहिले सारे कार्य हो बैठेंगे, इस प्रकार अभाव एक मानो तो नही बनता नाना मानो तो नही बनता ।

स्वरूपसत्त्वसे सकल व्यवस्था – जितने जो पदार्थ हैं, वे हैं, अनन्त जीवद्रव्य हैं, खूब परख लो, सभी जीवोमें उनका अपना-अपना परिणमन बराबर चल रहा है या नही ? तो वे अनन्तानन्त जीव हैं, अनन्तानन्त पुद्गल हैं, सभी अपनी-अपनी सत्तामे हैं, सभी अपना-अपना परिणमन कर रहे हैं । एक धर्म द्रव्य है जो जीव पुद्गलकी गतिमे सहायक है, एक अधर्म द्रव्य है जो जीव पुद्गलके ठहरानेमे सहायक है, एक आकाश द्रव्य है जहाँ समस्त द्रव्य अवगाहना पाते है और असख्यात कालद्रव्य हैं जिनके निमित्तसे समस्त पदार्थोंका परिणमन हो रहा है । यो अनन्तानन्त सत् हैं और उन प्रत्येकमे समस्त अन्य पदार्थोंका अभाव है । मैं जीव हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ, तभी तो हो सकता हूँ, जब मुझमे अन्य पदार्थोंका अभाव हो । मैं मैं ही हूँ, अन्य पदार्थ मैं हू तो फिर मैं क्या रहा ? मैं हूँ, यह सत्ता इसी आधारपर रहती है कि अन्य पदार्थ मैं न बन जाऊँ । मैं तो अन्य पदाथ नही हूँ यह व्यवस्था मेरी सत्ताके ही कारण है । कोई अभाव नामक प्रमेय अलग हो, कोई अभाव अलग फैला हुआ हो और वह व्यवस्था करता हो कि किसी अन्य चीजसे कोई अन्य चीज मिल न बैठे, ऐसी बात नही है । अभाव प्रमेय कोई अलग नही है । जब अभाव प्रमेय कोई अलग नही है तो अभावका ज्ञान करने वाला प्रमाण भी कोई अलग नही है ।

प्रागभावकी पूर्वपर्यायरूपता प्रागभाव तुच्छाभावरूप नही सिद्ध होता, किन्तु अन्यके अभावरूप है । देखो प्रागभाव उसे कहते हैं कि जिसका अभाव होनेपर,

नियमसे कार्य उत्पन्न हो। जैसे घड़ेका प्रागभाव मृत्पिण्ड है, उस मृत्पिण्डसे घड़ा बनता है। घड़ा बननेसे पहिलेकी जो पर्याय है, जो मिट्टी द्रव्य है, उस हीका नाम प्रागभाव है, तुच्छ स्वभावरूप नही। कुछ न होना इसका नाम अभाव नही है। यदि तुच्छ स्वभावरूप अभाव मानोगे तो जैसे गायके दो सींग दायें और बायें एक साथ उत्पन्न होते है तो एक साथ उत्पन्न होने वाली उन दोनों सींगोका उपादान एक हो बैठगा क्योकि प्रागभाव तो दोनोका एक ही रहा। यदि यह कहो कि जिस समय जिस जिस जगह प्रागभावका अभाव है वहाँ उसका उत्पत्ति होती है तो यह कहना भी अयुक्त है, क्योकि यहाँ तो नियम नही बनता कि यह दायें सींगका प्रागभाव है और यह बायें सींगका प्रागभाव है। इनमे अभाव कोई अलग प्रमाण नही है। कोई एक असत् अश हो, अभाव हो, वह चीज ही न हो, और फिर वह अभाव वाली चीज दुनियाकी व्यवस्था बनीती हो यह बात सम्भव नही है। प्रत्येक पदार्थ है, अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नही है, यह इसमे ही विशेषता है।

प्रागभाव और प्रध्वंसाभावकी पूर्वोत्तरपर्यायरूपता—ज्ञान उसका हुआ करता है जो हो। सत्का ही ज्ञान हुआ करता है, जो कुछ है ही नही न था, न होगा, जिसका कोई स्वरूप ही नही ऐसे असत्का बोध हो ही नही सकता। हम किसी भी पदार्थको जाननेके समयमे जो अभावकी अनेक बातें जाना करते हैं वे कोरी अभावकी बातें नहीं हैं किन्तु किसी पदार्थमे सद्भावकी बातें है। जैसे प्रागभावमें उत्तर पर्यायका अभाव पूर्व पर्यायके सद्भावरूप होता है इसीप्रकार प्रध्वंसाभावमें पूर्वपर्यायका अभाव उत्तर पर्यायरूप होता है। जैसे घड़ा फूट गया, उसकी खपरिया बन गयी तो घड़ेका अभाव कहलाया और खपरियोंका उत्पाद कहलाया। तो यहाँ घड़ेका अभाव क्या कोई अलग बात है? खपरिया हो जानेका ही नाम घड़ेका मिट जाना कहलाता है। इस घड़ेका अभाव कपाल (खपरियों) के सद्भावरूप हुआ। प्रध्वंसाभाव कोई स्वतन्त्र पदार्थ नही है किन्तु यह उत्तरपर्यायके सद्भावस्वरूप ही है। प्रध्वंसाभाव उसे कहते है कि जिसके होनेपर नियमसे कार्यका विनाश हो। तो कपालके होनेपर ही घट विनाश होता है। अनन्तर उत्तर पर्यायका नाम पूर्व पर्यायका प्रध्वंस करना होना। अभाव असत् चीज नही है किन्तु किसीके सद्भाव रूप है।

तुच्छाभावके प्रति साधनप्रयोगकी असंभवता—यदि अभाव असत्रूप है, तुच्छस्वभावरूप हो, कुछ भी न हो तो प्रध्वंस करनेके लिए घट मिटानेके लिए फिर मुद्गर आदिकका व्यापार करना व्यर्थ हो जायगा। जो नही है उसपर कौन चलायगा? कोई पुरुष आकाशको मारनेके लिए लाठी नही चलाया करता। यद्यपि आकाश वस्तु है पर पिण्डरूप न होनेसे इस दृष्टान्तमें समझ लो कि कुछ नही है, तो जैसे कोई आकाशको मारनेके लिए लाठी नही उठाया करता इसीप्रकार तुच्छाभाव करनेके लिए मुद्गर न मारेगा। घड़ेको मिटा देना तुच्छाभावरूप है, इसका नाम यदि अभाव है तो मुद्गर आदिकका कोई व्यापार नही कर सकता।

घट और विनाशके सम्बन्धके विकल्प—अथवा यह ही बतावो कि किसी ने मुदगर मारकर घटका अभाव कर दिया याने घट मिट गया, फूट गया तो घट आदिकका जो वह अभाव है जिसे मुदगरने बनाया है वह घटका अभाव घटसे भिन्न है या अभिन्न, घटका विनाश घटसे अलग चीज है या घटरूप ही है ? यदि कहो कि घट से अलग चीज है तो फिर घट तो नही मिटा कहलाया यदि कहो कि विनाशके सम्बन्ध से विनष्ट हुआ कहलाता है तो विनाश और विनाशवानमे भी कोई सम्बन्ध बताना चाहिए। उसमे सम्बन्ध क्या तादात्म्यरूप है या तदुत्पत्तिरूप है या विशेष्यविशेषणभाव रूप है याने तादात्म्यरूप होनेसे विनाशवान है या विनाशवानसे विनाशकी उत्पत्ति हुई, या विशेषण विशेष्य वाला हुआ। तादात्म्य लक्षण तो नही बनता क्योकि घट घटके विनाशका कारण नही है। घटके विनाशका कारण तो मुदगर डडा आदिकका प्रहार है। यदि कहो कि दोनोके निमित्तसे घटका अभाव हुआ तो जैसे घटके फूटनेपर मुदगर ज्योका त्यो रहता है बता सकते हैं कि देखो इस मुदगरने घटको फोडा, सो निमित्त जब दोनो है तो निमित्तका सद्भाव है तो घटका भी सद्भाव होना पडेगा। यदि कहो घट उपादान कारण है तो यह अभाव भावान्तरके स्वभावरूप है यह सिद्ध हो गया।

वस्तुके लक्षणका दिग्दर्शन—य.ा वस्तुका लक्षण भी विदित होता चला जा रहा है। वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त होते हैं। तत्त्वार्थसूत्रमे सभी लोग पढते हैं 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्'। उत्पाद मायने उत्पन्न होना, व्यय मायने विनाश होना ध्रौव्य मायने बना रहना, इन तीन धर्मोसे युक्त प्रत्येक सत् है। सत् कहते ही उसे हैं जिसमे उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीनो तत्त्व सदा पाये जायें। ये तीनो अलग अलग बातें हैं, पर इन्हे कोई अलग—अलग बता सकेगा क्या कि उत्पाद यह पडा है, व्यय यह पडा है और और ध्रौव्य यह पडा है ? अच्छा यह बतावो कि घटका व्यय क्या चीज है और कपालका उत्पाद क्या चीज है ? क्या ये कोई अलग—अलग चीजें हैं ? अरे कपालके उत्पन्न होनेका ही नाम घटका व्यय है।

उत्पादव्ययकी एकपर्यायिरूरताका दृष्टान्त – जैसे कोई आज मनुष्य है, मनुष्य मरकर देव बन गया, तो मनुष्यका तो अभाव हुआ और देवका उत्पाद हुआ तो यह बतलावो कि पहिले मनुष्यका अभाव होगा या देवका उत्पाद होगा ? अरे मनुष्यके अभावका ही नाम देवका उत्पाद है। मनुष्यका अभाव अलग चीज हो और देवका उत्पाद अलग चीज हो ऐसा नही है। यदि कहो कि मनुष्यका अभाव पहिले हुआ तो फिर देवका उत्पाद कहाँ रहा ? और यदि यह कहो कि पहिले देवका उत्पाद हुआ तो फिर मनुष्यका अभाव अभी कहाँ हुआ ? भाई ! मनुष्यका अभाव और तेव देवका उत्पाद दोनो एक साथ हुए। एक साथ भी नही बल्कि मनुष्यके अभावका ही नाम देवका उत्पाद हुआ। जैसे जो बुद्धिमान लोग होते हैं वे किसी अच्छे रोजिगारपर पहिले अधिकार जमा लेते हैं फिर पुराने रोजिगारको छोडते हैं, इसलिए कि कही

ऐसा न हो कि इस रोजिगारसे भी जायें और उससे भी जायें । ऐसे ही कोई यह जवाब अगर दे कि पहिले देव बना पीछे मनुष्य मरा, तो इसका अर्थ तो यह है कि जब देव बना तो उससे पहिले वह मनुष्य था वह अभी मरा ही नहीं। तो देवके उत्पाद का ही नाम मनुष्यका अभाव है ।

अभावकी वस्त्वन्तरसद्भावरूपताका समर्थन— अथवा जैसे यह अगुली अभी सीधी है लो अब इसे टेढी कर दिया, तो यह बताओ कि पहिले सीधेपन का अभाव हुआ या टेढेपनका उत्पाद हुआ ? अरे सीधेपनका अभाव ही टेढेपनका उत्पाद है और टेढेपनके उत्पादका नाम ही सीधेपनका अभा वहै। ये उत्पाद और व्यय उस तरहसे भी नहीं चल रहे हैं जैसे कि दो बैल एक साथ चलते रहते हैं पर ये दोनों एक ही चीज हैं । अभी जो पर्याय है उस दृष्टिसे उसका उत्पाद कहा जाता है और वह पर्याय न रही तो अब उसका विनाश कहा जाता है । तो प्रध्वसा किसी पर्यायके सद्भाव रूप ही हुआ करता है और कुछ वस्तु है अलगमे । अभाव अन्य वस्तुके सद्भावरूप हुआ करता है ।

विधिमे प्रतिषेधकी प्रतिष्ठा— जैसे लोग कहते कि मोह छोडो और ज्ञान पैदा करो। तो मोह छोडना और क्या चीज है ? ज्ञान सही होनेका ही नाम छोडना है। जिसे लोग कहते है माह किसीसे प्रेम किया, स्नेह किया, तो लोग कहते कि इसने मोह किया, तो मोह इसका नाम क्या है ? अरे स्नेह करनेका नाम मोह नहीं है, वह तो राग है । मोह नाम है अज्ञानका । पर वस्तुमे अपनेको जुदा न समझ सके इसका नाम मोह है तो पहिले मोह मिटा लो पीछे ज्ञान करो, ऐसा है क्या ? अरे सच्चा ज्ञान बने उसीका नाम मोहका विनाश । सही ज्ञान बने तो मोह अपने आप मिट जायगा । तो कुछ हित मार्गके लिए यह उपदेश दें कि सही ज्ञान उत्पन्न करो । सही ज्ञान बने तो मोह अपने आप मिट जायगा । अभाव तो करने की चीज नहीं है, करने की चीज तो कोई विधि ही है, "न" करने की बात नहीं होती, "हाँ" करने की बात होती है । जैसे अगुली को कहते हैं टेढी करो, ऐसा कोई नहीं बोलता कि अगुली की सीध मिटा दो । टेढी करनेमें अगुलीकी सीध मिट जाती है मगर सीध मिटा दो ऐसा प्रयोग कोई नहीं करता टेढी करें तो उस विधिमे उसका अभाव हो ही जायगा ।

कर्तव्यमे विधिरूपता कुछ परेशानी तो इसी बातकी हो रही है वे चाहते हैं मोहको नष्ट कर दूँ, और मोहको नष्ट करनेके लिए यत्र तत्र पूछते हैं, अनेक उपाय करते हैं, मोह छोडनेकी दृष्टि बनाते हैं पर ऐसा प्रयत्न नहीं कर लेने कि सम्यग्ज्ञान उत्पन्न करें । सम्यग्ज्ञान उत्पन्न करनेकी धुनि बनायें तो उसमे हमको सफलता मिलेगी, क्योंकि करनेकी कोई चीज तो सामने आये । हमे करना क्या है ? हमें जैसी वस्तु है वैसा सही ज्ञान करना है, तो इसमे करनेकी कुछ बात तो मिली, मार्ग तो है । हम उपयोग बनायें प्रयत्न करें तो हम सही ज्ञान करलेंगे, पर मोह छोडो, राग छोडो,

इसमें हम अन्य कौन सा उपाय बनायें ? ज्ञाता द्रष्टा रहनेका उपाय करें तो राग छूट जायगा। हम जो पदार्थ जैसा है उसका मात्र उतना ही जाननहार रह जावें यह ऐसा है, यह ऐसा है, राग छूट जायगा। राग छोड़नेका प्रयत्न करने वाले पुरुष भी अपने उपयोग को विशुद्ध रखनेका यत्न करते हैं। वहाँ राग छूटता है। तो प्रध्वंसाभाव किसीके सद्भावरूप हुआ करता है इसलिए असत् नहीं है।

प्रकरणकी बाधा टालना स्वपरव्यवसायात्मक ज्ञान—इस ग्रन्थमें सर्वप्रथम प्रमाणका स्वरूप बताया गया है। सम्यग्ज्ञान प्रमाण कहते हैं और ज्ञानोंमें वह ज्ञान प्रमाण है जो अपना भी निर्णय रखे और परका भी निर्णय रखे। जैसे आप कोई भी चीज जानते हैं जैसे आपने जाना कि यह पुस्तक है तो आपको वहाँ दोनों ज्ञान हो रहे हैं। दोनों जगह दृढ़ता आ रही है यह पुस्तक है, यह पुस्तक ही है। पुस्तकके बारेमें भी आपके दृढ़ता है और पुस्तकका जो ज्ञान किया है वह ज्ञान भी सही है ऐसा अपने ज्ञानमें भी दृढ़ता आ रही है। कोई पुरुष पदार्थमें तो दृढ़ता रखे कि यह चौकी ही है और अपने बारेमें यह सोचे कि मैंने जो चौकीको जाना यह ज्ञान हमारा सही है कि नहीं ? तो बाह्य पदार्थोंके बोधमें तो दृढ़ता हो और उस बोधमें सन्देह हो, कि मेरा यह ज्ञान सही है अथवा नहीं सही है, तो बाह्य पदार्थकी दृढ़ता भी नहीं रह सकती। बाह्य पदार्थका हमें पूरा निश्चय है तो तभी है जब हमें अपने ज्ञानका भी पूरा निश्चय है कि जो यह ज्ञान मैंने जाना वह ज्ञान पूर्ण सही है। तो ज्ञानमें ये दो कलायें होती हैं, अपने आपका पूरा निश्चय रखना और पदार्थोंका भी।

आत्मधन स्वपरव्यवसायात्मक ज्ञानसे लक्षित ज्ञानस्वरूप हम आप हैं, यही ज्ञान हम आपका धन है, अन्य कोई हम आपका धन नहीं है। ज्ञानको छोड़कर अन्य वस्तुको अपना मानना यह पाप है, आपत्ति है और जीवकी बरबादीका कारण है। एक तो धन है, कमाई है उपकार कर रहे है यह बात अलग है, पर धन वास्तव में मेरे लिए है ऐसा मानना महापाप है। इसे मिथ्यात्व कहते हैं। धन तो आत्माका ज्ञान है। यही वैभव आत्माका शुद्ध वैभव है जो सदा साथ निभायेगा और शान्ति प्रदान करेगा। उस धनकी तो हम कुछ सुध न लें और जो बिल्कुल भिन्न है, पररूप है, अशान्तिका ही कारण है उस भिन्न पुद्गल वैभवका हम निरन्तर ख्याल बनाते रहें, यह ही तो संसारके मोहकी विडम्बना है।

प्रध्वंसाभावको भावरूप न माननेपर प्रध्वंस और पदार्थमें सम्बन्धकी भी असिद्धि—प्रध्वंसाभाव भी अन्य सद्भावरूप हुआ करता है। प्रध्वंसाभाव यदि कोई अलग स्वतन्त्र चीज है तो यह पूछा जा रहा है कि जैसे मुद्गर मारकर घटका अभाव किया गया तो वह अभाव घटसे भिन्न है या अभिन्न ? यदि भिन्न है तो घटका क्या गया ? विनाश हुआ तो होने दो। घट तो विनाशसे न्यारा है। विनाश हुआ

भी होने दो। घट तो विनाशसे न्यारा है। घट तो ज्योंका त्यों मालूम होना चाहिए। यदि कहो कि नहीं घटका और विनाशका सम्बन्ध है तो कौन सा सम्बन्ध है ? यदि विशेषण विशेष्य भावस्वरूप कहोगे तो यह बिल्कुल असङ्गत है। विनाश और घट इनमें विशेषण कौन है ? यदि कहो कि अन्य सम्बन्धको मान करके हम विशेषण विशेष्य भाव मान लेंगे तो वह अन्य सम्बन्ध क्या है ? कुछ भी नहीं बनता। इसलिए मुदगर आदिक व्यापारसे घटका अभाव घटसे भिन्न बन गया। यदि कहो कि वह घट से अभिन्न है विनाश तो घट मिटा, उसका जो विनाश है वह घटसे यदि अभिन्न है तो विनाश किया गया इसका अर्थ है कि घट ही किया गया, क्योंकि घट और विनाश में तुमने अभेद मान लिया, मुदगर आदिकने क्या किया ? इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रध्वंसाभावको यदि अन्य पदार्थोंके स्वभावरूप न मानोगे तो उसकी सिद्धि ही नहीं हो सकती। पदार्थ है, प्रति समय परिणमता रहता है। यही बात निरखते जावो, कोई भी पदार्थ परिणमे बिना रह ही नहीं सकता, परिणमे बिना वह सत् ही नहीं हो सकता, नवीन पर्याय होती और पुरानी पर्याय विलीन होती है। प्रध्वंसाभाव कोई अलग बात नहीं है किन्तु नवीन पर्यायके सद्भावका ही नाम पहिली पर्यायका प्रध्वंस है।

किसी भी परिणतिका प्रध्वंस होनेपर भविष्यमें सदैव अभाव अब यहाँ अभाव प्रमाणवादी एक शङ्का रख रहा है जैन शासनवादियोंके प्रति कि हे जैन लोगो! तुम यह मानते हो कि प्रध्वंस उत्तर पर्यायरूप हुआ करता है। जैसे घटका विनाश खपरियोंके सद्भावरूप है मनुष्य देवपर्यायका विनाश वपर्यायके सद्भाव रूप है, तो घटका जैसे अभाव हुआ, अर्थात् खपरिया उत्पन्न हुई तो खपरियाँ जब उत्पन्न हुई तो उनके उत्पन्न होनेके समयमें ही घटका प्रध्वंस हो गया कि नहीं हो गया ऐसा मानते ही हो तुम, तो घटका प्रध्वंस कब हुआ ? जब खपरिया उत्पन्न हुई। खपरिया तो उत्पन्न हो जायेंगी, अब उसके बादमें अगले समयोंमें घटका प्रध्वंस तो नहीं रहा तब घट उत्पन्न हो जाना चाहिए। यह भी बात अयुक्त है। आचार्यदेव समाधान करते है कि देखो कार्य तो उपादान कारणका मर्दन करता है पर कारण कार्यका उपमर्दन नहीं करता, अर्थात् कार्य होता है तो अपने उपादान कारणका मर्दन करता है अर्थात् उत्तर पर्यायका कार्य पूर्व पर्यायका विनाश करते हुए होता है, पर कारण कार्यका विनाश करते हुए नहीं माना गया है अर्थात् एक बार प्रध्वंस होनेके बाद फिर उत्तर पर्याय सद्भावरूप उस प्रध्वंसका अभाव होकर वही चीज फिर आ जाय, यह नहीं हुआ करता है, ऐसे ही वस्तुमें उपादान उपादेयका भाव है। अभाव सद्भावरूप है, सिद्धान्त यह रखा जा रहा है। इतनी भी बात यहाँ सिद्ध की जा रही है और इसीसे वस्तुस्वरूप बना हुआ है।

भाव व अभावके ज्ञानका प्रभाव- भाव अभावका यह मर्म कोई न जान

यह तो वस्तुका ज्ञान ही उत्पन्न नहीं हो सकता । और वस्तुके ज्ञान बिना मोह मिट नहीं सकता । आप लोग सोचते होंगे कि मोह मिटानेकी यह बड़ी कठिन दवा बताई जा रही है, समझमें नहीं आ रही है, यह जो प्रकरण चल रहा है क्या यह पूरी तरह समझमें न आये तो मोह न मिटेगा ? ऐसी शङ्का आप अपने मनमें ला सकते हैं । तो बात यह है कि जो वर्णन यहाँ किया जा रहा है उसकी वर्णन विधिका चाहे आप ज्ञान न करें, पर उस वर्णनमें जो बात बताई गई है उस स्वरूपका दर्शन यदि नहीं हुआ तो मोह नहीं मिट सकता । जैसे ग्रन्थोंमें करणानुयोग सिद्धान्तमें कर्मोंके क्षयका बहुत विशेष प्रतिपादन है किस श्रेणीमें चढ़ने समय क्या भाव होता है, कैसे कैसे भाव बढ़ते हैं बढ़कर कर्मोंकी किस तरह निर्जरा होती है, काषायिक अवस्थायें प्रारम्भमें कैसी रह जाती हैं, कैसे उनका अनुभाग कम क्षीण होता है, वहाँ पर कैसी गुण श्रेणी निर्जरा होती है ये सब बातें ज्ञान होना जरा कठिन है और अनेक मुनि ऐसे भी हैं कि इन बातोंका जिन्होंने ज्ञान नहीं किया, करणानुयोगके ऐसे विकट शास्त्रोंका जिन मुनियोंने अध्ययन नहीं किया क्या ऐसे मुनि मोक्ष नहीं जा सकते ? वे मुनि भी मोक्ष जाते हैं, चाहे उन्होंने गुणश्रेणी निर्जराका अति स्थापनाओंका अध्ययन नहीं किया लेकिन जो बात उस वर्णनमें बतायी गई कि इस इस तरहसे कर्म खिरते हैं, कर्मोंकी निर्जरा होती है यह बात हुए बिना वे मोक्ष नहीं जाते । कर्मोंकी निर्जराके लिए परिणामोंकी निर्मलताकी आवश्यकता है । कर्म कैसे गिरते हैं, इस समय कैसे कर्म उदयमें हैं अब आगे कितने कर्म उदयमें रह जायेंगे, कैसे निर्जरा हुआ करती है इन कर्मोंके सम्बन्धकी बात कोई न भी जाने, पर पदार्थोंका वर्णन कोई न भी जाने तो इससे आत्माको कोई हानि नहीं है, परन्तु आत्मामें ज्ञान और वैराग्य अवश्य चाहिये जिसके अनुसार कर्मोंकी निर्जरा हुआ करती है ।

वस्तुके बोधसे कल्याण— अनेक मुनि ऐसे हुए हैं जो बहुज्ञान बिना भी मोक्ष गये हैं । जैसे शिवभूति मुनि हुए हैं गुरुने सिखा दिया था मा रुष मा तुष । जिसका अर्थ है मत राग करो मत द्वेष करो । इस मन्त्रको इन मुनिराजने खूब रट लिया इस मन्त्रको बोलते बोलते थोड़ा स्खलित हो गए तो माष तुष रह गया, बोचके अक्षर छूट गए । उन्हें इतना बोध जरूर रहा कि माषके मायने है उड़दकी दाल और तुषके मायने है छिलका । इस अर्थको सभी लोग जानते थे । तो वह मन्त्र तो रट लिया था पर उस मन्त्रका रहस्य न जानते थे, उसका तात्पर्य क्या है इसका उन्हें पता न था । सो एक बार जब कि वह विहार कर रहे थे रास्तेमें देखा कि एक महिला उड़दकी दाल धो रही थी, छिलका अलग कर रही थी और दाल सफेद सफेद अलग कर रही थी । उस दृश्यको देखकर उन मुनिराजके अन्तरङ्गमें यह प्रतिबोध जगा कि देखो—ये दाल और छिलका कैसी अलग अलग चीजें हैं जैसे उड़दकी दालमें यह दाल अलग है और छिलका अलग है इसी प्रकार यह शरीर इस शुद्ध उज्ज्वल आत्मासे अलग है । ऐसी दृष्टि जगी, और ऐसी दृष्टि जगनेपर वहाँ ही उपयोग रहा, वह अपने परिणामोंको

अत्यन्त निर्मल करके अनन्त कर्मोंकी निर्जरा कर गया। तो वह कर्मोंकी निर्जरा करणानुयोग शास्त्रसे हुई।

ज्ञानार्जनकी उपयोगिता—जिसे बहुत बहुत ज्ञान भी नहीं है, उत्कर्षण, अपकर्षण, आवली आदि कर्म सिद्धान्तकी सूक्ष्म बातोंका अध्ययन न भी हो लेकिन ज्ञान और वैराग्यका परिणाम यथार्थ रहे तो कर्म निर्जरा हो ही जाती है, इसी प्रकार चाहे इस प्रभावकी, वस्तुके स्वभावकी जो यह कथनी चल रही है, यह कथनी चाहे इस रूपमे ज्ञात न हो लेकिन पदार्थ जैसा परिपूर्ण सत् है वैसा परिपूर्ण सत् पदार्थके जाने बिना मोह नही छूट सकता, न मुक्ति प्राप्त हो सकती है, तब फिर कोई कहे कि जब होना होगा वस्तुस्वरूपका ज्ञान तो हो जायगा, हम इतनी कठिन चर्चाओमे क्यों पड़ें और अध्ययनका कष्ट क्यो करें ? तो यद्यपि ऐसे विरले ही मनुष्य हुए हैं जो अध्ययन किये बिना, परिश्रम किए बिना शास्त्रोंकी बात समझे बिना उन्हे ज्ञान हुआ है और उनका उद्धार हुआ है लेकिन जैसे किसी अंधे पुरुषको रास्तेमे चलते हुए किसी पत्थरसे ठोकर लग जाय, उस पत्थरको खोद देनेपर उससे बहुत सा धन प्राप्त हो जाय तो यह नियम तो नही बन गया कि अन्धे पुरुषका ठोकर लगनेसे धन प्राप्त होता है ? कोई पुरुष आंखोमे पट्टी बांधकर अन्धासा बनकर चले और जो पहिलेसे ही पत्थर गाड दिया था उसमे ठोकर मारदे और धनकी प्राप्ति हो जाय, ऐसी बात तो नही है, हां भाग्य अच्छा है, उदय अनुकूल है तो कभी इस तरहसे भी धनकी प्राप्ति हो जाती है। तो इस मोहको मिटानेके लिए हम आपको सम्यग्ज्ञानका अर्जन करके, वस्तु स्वरूप की यथार्थ जानकारी करके इस मोहका परित्याग करें।

इतरसकलविविक्त अन्तस्तत्त्वके परिचयमे सम्यग्ज्ञानकी सम्पन्नता—सम्यग्ज्ञान यही है कि अपने आपका ऐसा अनुभवन बने कि मैं सर्व पदार्थोंसे जुदा हूं, मैं स्वयं अपने सत्त्वके कारण अन्य सर्व परपदार्थोंसे भिन्न हूं। मेरेमे जितनी पर्यायें उत्पन्न होती है वे परस्परमे जुदी जुदी हैं, क्योंकि एकके बाद एक पर्याय होती है। इस जुदापनेमे भी कोई दूसरा क्या कार्य करता रहता है ? किन्तु उस सत्त्वका ही ऐसा स्वरूप है कि एक पर्यायमें दूसरी पर्यायका अभाव है। बस यही भाव अभावरूप मे तीन भागोंमे बँटा है—प्रागभाव, प्रध्वसाभाव और इतरेतराभाव। प्रागभाव तो नाम है उत्तर पर्यायका पहिली पर्यायमे अभाव, और प्रध्वंसाभाव नाम है पूर्वपर्यायका उत्तर पर्यायमें अभाव और इतरेतराभाव है एकका दूसरेमें अभाव। अभावोंका मर्म जानकर यह निर्णय करें कि अभाव भावस्वभावरूप है। मैं सबसे भिन्न हूं ऐसा अपने आत्म तत्त्वका परिज्ञान करना यह मोह मिटानेका सच्चा उपाय है और मोह मिटा कि शान्ति और आनन्द अपने आप ही है, क्योंकि आत्मा आनन्दस्वरूप वाला है। आनन्द कहीं बाहरसे नहीं आता किन्तु आनन्दमे बाधक जो विकारभाव है वे हटें तो वह आनन्द तो अपने आपमे सर्वथा विद्यमान है।

प्रध्वंस और उत्पादके कारणभेदका पक्ष—अब यहाँ अभावप्रमाणवादी कह रहे हैं कि मृत्पिण्डका प्रध्वंस होनेपर जो कपालोंका उत्पाद हुआ है वहाँ कपालों नाम ही घटका अभाव नहीं है, अभाव कपालोंसे भिन्न है। इसका कारण यह है कि कपालकी निष्पत्ति भिन्न कारणोंसे हुई है। इसका स्पष्टीकरण यह है घटके अवयवों का वियोग होनेमे जो सयोगका विनाश हुआ इससे उपादान घटका विनाश हुआ याने अभाव हुआ। यह अवयवोंका विभाजन अवयवोंकी क्रियाकी चलन डुलनकी उत्पत्ति से हुआ है। इस क्रियाकी उत्पत्ति बलवान पुरुषके द्वारा प्रेरित मुदगरादिकके अभिघातसे हुई है। इस प्रकार घटके प्रध्वंसका कारण तो अवयवोंके सयोगोंका विनाश है और कपालोंके (खपरियोंके) उत्पादका कारण कपालोंके स्वरूप रचने वाले कतिपय परमाणुवोंका सयोग विशेष है। यो खपरियोंका उत्पादक कारण भिन्न है और घटाभावका उत्पादक कारण भिन्न है। अत कपालोंसे अभाव अर्थान्तर है याने अभाव भिन्न पदार्थ है।

प्रध्वंस और उत्पादके कारणभेदकी मीमासा—भिन्न कारणप्रभवताका हेतु देकर अभावको भिन्न पदार्थ माननेकी शल्यका निराकरण प्रतीतिके बलपर ही हो जाता है। घटके विनाशका प्रकार और कारण जुदा हो और कपालोंके उत्पादका प्रकार और कारण जुदा हो ऐसी किसीकी भी प्रतीति नहीं होती। जो प्रक्रिया कपाल के उत्पाद और घटके विनाशकी बताई गई है उसमे एक ही बात हुई। बलवान पुरुष के द्वारा प्रेरित मुदगरादिके व्यापारसे घटाकाररहित कपालाकार मृत् द्रव्यकी उत्पत्ति हुई है। लोकोंको जो सही सुगम प्रतीति होती है उसका अपलाप करके शब्दशास्त्रके पाण्डित्यका प्रयोग करनेमे कोई हित नहीं है। घटका अभाव और कपालका सद्भाव एक ही समयमे हुआ है और उस ही समयका जो परिणमन है वही घटका अभाव कहलाता है और वही कपालका उत्पाद है।

अभावज्ञानका प्रत्यक्षादिक प्रमाणोमे अन्तर्भावका उपसहार–अभाव भावस्वभाव माना जाय तब ही प्रागभाव आदि अभावोंका प्रतिपादन बन सकता है। जैसे यह कहा कि दूधमे दही आदिक नहीं है तो यहाँ दधि आदिकसे रहित दूध ही तो उत्तर पर्यायके अभावरूपमें प्रत्यक्षमे जाना जा रहा है। दहीमें दूध नहीं है यह कहनेपर दुग्धत्वरहित दही ही तो पूर्वपर्यायके अभावरूपमे प्रत्यक्षसे जाना जा रहा है। घरमे पट नहीं है यह कहनेपर पटसे व्यावृत्त घट ही तो इतरेतराभावकेरूपमें प्रत्यक्षसे जा रहा है। जब उन पदार्थोंका अनुमानआदिसे ज्ञान होता है तब वहाँ प्रागभाव आदिक अवस्वरूपमे अनुमान आदिक प्रमाणसे जाने जाते हैं। न तो अभावनामक कोई तत्त्व स्वतंत्र प्रमेय है और न उसका ज्ञापक कोई अभाव प्रमाण है। अभाव प्रमाणका प्रत्यक्ष अनुमानआदिक प्रमाणोंमे ही अन्तर्भाव हो जाता है। इस प्रकार यह निर्णय हुआ कि प्रमाण प्रत्यक्ष और परोक्षके ही भेदसे ही दो प्रकारका है।

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[नवम भाग]



प्रवक्ता

(अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज)



आत्माकी विभवसम्पन्नतामे गौरव - प्रत्येक आत्मा अपने आपको अनुपम वैभव सम्पन्न बनानेकी इच्छा रखता है। यह सभीकी इच्छा है कि मैं अनुपम वैभव सम्पन्न रहूँ किन्तु अपने आपमे समाये हुए सहज ज्ञानानन्द स्वरूपकी सुध नही है अतएव बाहरमे वैभवकी खोजकर रहे है प्राणी ये पदार्थ जो जड है, पौद्गलिक हैं सडने गलने वाले हैं जिनमे हमारा कोई सम्बन्ध नही, स्वरूप भी न्यारा है, हर एक दिशा विपरीत है, ऐसे इन विपरीत विभावोमे शान्तिकी आशा करते हुए ये मोही प्राणी बाहर ही बाहर भटक रहे हैं। जब काल लब्धि होती अथवा जब उस ज्ञानका जागरण होता है तब ही यह आत्मा पहिचान सकता है कि मेरा सर्वस्व वैभव मेरेमे ही सम्पूर्ण है। मैं मे एक सत् हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ, स्वय आनन्द भावको लिए हुए हूँ। मैं देहसे भी निराला इन समस्त झंझटोमे भी निराला अमूर्त आकाशवत निर्लेप ज्ञानज्योति हूँ।

आत्मविभवपर विश्वास न होनेका कारण—आत्माके ज्ञानानन्द स्वरूपपर प्राणियोका विश्वास एकदम यो नही बैठ पाता कि शरीरका सम्बन्ध चला आ रहा है। और इस सम्बन्धको इस आत्माने अपने आपको ऐसा समर्पित कर दिया है, इन बाह्य पदार्थोमे अपना उपयोग जमा लिया है कि इसे क्षुधा तृषा आदिक अनेक वेदनाएँ सता रही है, लोग तो यो कह भी बैठते है कि क्या धर्म करे, पहिले तो यहाँ भूखका सवाल है, शारीरिक वेदनाओका सवाल है, यही परेशानियां नही मिटती है तो हम धर्म क्या करे ? इन कारणोसे आत्मा स्वय आनन्द स्वरूप है इस बातपर विश्वास नही जमता। लेकिन यह तो बतलावो कि आत्मा यदि ज्ञानानन्द स्वरूप न होता तो इन पदार्थोंके मिलनेपर भी, भोजन वस्त्र आदिक इष्ट समागम मिलनेपर भी इसे आनन्द क्यों न आता ? कोई प्लास्टिकका पुतला आदमीकी तरह बनाकर रख दो और अच्छे भोजनो से डीप तो क्या वह इसे पाकर आनन्द मान सकेगा ? नही मान सकेगा। तो इस

माप जब स्वय आनन्दस्वभावी है तभी उन परपदार्थोंके प्रसङ्गमे भी आनन्द पाते हैं। मेरेमे आनन्द गुण न हो तो बाह्य पदार्थोंके सम्बन्धमे भी हम आनन्द नहीं पा सकते।

आत्मज्ञानकी ही परमार्थविभवता—हमारा आनन्द स्वरूप है और ज्ञान असाधारण लक्षण है। इस ज्ञान और आनन्दभावके स्वरूपका ही मे तकूँ तो अब भी यह अनुभव किया जा सकता है कि मैं सबसे निराला परिपूर्ण ज्ञानानन्दमय सत् हूँ। इसका विश्वास नही है अतएव बाहरी पदार्थोंमे इस जीवका आकर्षण होता है। यह वासना जो चित्तमें बसी है कि मैं इससे अधिक धनवान बन जाऊँ, वैभव सम्पन्न हो जाऊँ इस वासनाके कारण यह जीव उन परपदार्थोंके पीछे खिचा-खिचा फिरता है। प्रथम तो यही बात देख लो कि जिससे बड़ा बननेकी चाह की जा रही है उससे बडा बनकर भी लाभ क्या लूट लिया जायगा? दूसरे, वह वैभव भी तो पर्कवत् है। जैसे पङ्क (कीचड) मे जितना बैठेंगे उतना ही फँसते जायेंगे। इसी तरह इस वैभवमें हम जितना अपना अधिकार मानेंगे उतना ही फसते चले जायेंगे। अनादिसे लेकर अब तक इस जीवने इस परिग्रहकी लालसा रखी अनेक प्रयत्न करने परभी इसे शान्ति न प्राप्त हो सकी वैभवसम्पन्न होना चाहते हैं ठीक है, यह तो गौरव की बात है, दीन बनकर कही रहना चाहिये लेकिन ऐसा वैभवसम्पन्न क्यो नही बनना चाहते कि जिससे फिर कृतार्थ हो जायेंकि वह वैभव है ज्ञान। अच्छी तरहसे निर्णय करलो, हमारा ज्ञान यदि सावधान है तो हम हर परिस्थितियोमें प्रसन्न हैं और यदि हमारा ज्ञान सावधान नही है तो कितने ही वैभवके बीच पडे रहें पर शान्ति नामकी चीज नही प्राप्त हो सकती।

शान्तिकी साधना—शान्ति नाम वास्तवमे है किसका? शान्ति है एक आकुलता रहित अवस्था। जिस जानकारीमे शान्ति होती है वैसी जानकारी बने यही शान्तिका उपाय है और जिस जानकारीमे आकुलता रहती है ऐसी जानकारी करना वह अशान्तिका उपाय है। अपने ज्ञानके परिणमनमे शान्ति और अशान्तिका फैसला है। जो लोग दु खी हैं उनके आत्माका जरा अवलोकन तो करो -यही बात मिलेगी कि वे अपने आपमे कुछ ख्याल बनाकर व्यर्थके विकल्प कर रहे हैं, जिन जीवोंसे कुछ भी सम्बन्ध नही उनमे इष्ट अनिष्टकी कल्पना करके विकल्प बना रहे हैं। तो वहाँ ज्ञानकी ही एक ऐसी दशा बन गयी कि जिससे वे दु खी हो रहे हैं। जो लोग सुखी शान्त हैं योगीजन, ज्ञानी पुरुष, उन्होने ऐसी कौनसी चीज पा ली है, जिससे वे शान्त और प्रसन्न रहा करते हैं? अपने ज्ञानका ही एक ऐसा परिणमन बना रहे हैं कि जिससे उनके परविषयक मूर्छाका विकल्प नहीं है। परसे मेरा हित है, दूसरा मेरा कुछ कर देगा, मैं दूसरेका कुछ कर दूंगा आदिक विकल्पोंसे रहित ज्ञानवृत्तिके प्रताप से वे प्रसन्न हैं। तो वैभव वास्तविक जीवका ज्ञान ही है और उस ज्ञानसे ही हम सब की सही व्यवस्था बनती है।

ज्ञानकी प्रत्यक्ष और परोक्षरूपता ज्ञान ही प्रमाण है। प्रत्येक आत्मामे ज्ञानस्वरूप है और उस ज्ञानस्वभावका क्या क्या परिणमन होता है, किस किस तरह से जानकारियाँ चलती है ऐसे ज्ञानके भेद बताये जा रहे है। ज्ञान दो तरहके होते है एक प्रत्यक्ष और एक परोक्ष। जो आत्मशक्तिसे इन्द्रिय मनकी सहायताके बिना स्पष्ट जाने उसे तो प्रत्यक्ष कहते है और जो इन्द्रिय मनकी सहायताके बिना स्पष्ट जाने उसे प्रत्यक्ष कहते हैं और जो इन्द्रिय मनकी सहायता लेकर जाने उसे परोक्ष कहते है। यह लक्षण सिद्धान्तकी दृष्टिसे है, न्याय दर्शनकी पद्धतिमे थोडा इतना और समझ लेना चाहिए कि जो इन्द्रिय और मनसे भी जो ज्ञान उत्पन्न होता हो, पर स्पष्टसा जँचता हो उसे भी दर्शन पद्धतिमे प्रत्यक्ष कहा गया है, किन्तु उसका नाम है साव्यवहारिक प्रत्यक्ष। जैसे लोग कहते है कि हमने प्रत्यक्ष आँखो देखा, तो आँखोसे देखकर जो ज्ञान किया गया वह सैद्धान्तिक दृष्टिसे यद्यपि परोक्ष ही है, क्योकि इन्द्रियके निमित्तसे वह ज्ञान है लेकिन कुछ स्पष्ट झलकता है इस कारण हम उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। लेकिन यह औपचारिक प्रत्यक्ष है। मुख्य प्रत्यक्ष तो वह है जो आत्म शक्तिसे पदार्थको स्पष्ट जाने। तो प्रत्यक्षके लक्षणमे जो दर्शन पद्धतिसे युक्त बैठे और सैद्धान्तिक पद्धतिसे भी युक्त बैठे' ऐसे प्रत्यक्षका लक्षण अब बतला रहे है।

प्रत्यक्षका लक्षण – 'विशदं प्रत्यक्षम्' – जो विशद ज्ञान है स्पष्ट ज्ञान है उसे विशद ज्ञान कहते है। जिस ज्ञानमे पदार्थ स्पष्ट आ रहे हो वह तो है प्रत्यक्ष और जिस ज्ञानमे पदार्थ स्पष्ट तो नही आते, किन्तु उसके सम्बधमे बहुत कुछ ज्ञान हो रहा है उस ज्ञानको कहते है परोक्ष। देखिये एक प्रत्यक्ष होता है स्वानुभवप्रत्यक्ष। जैसे आँखें खोलकर पदार्थोंको देखते है तो यह बडा स्पष्ट मालूम होता है इसी प्रकार आँखे बन्द करके, अन्य इन्द्रियका भी व्यापार बद करके बाह्य पदार्थोंका विकल्प भी छोडकर मनके द्वारा किसी परवस्तुको न जाने किन्तु अपने आपका यह मैं ज्ञानमात्र हूँ उस ज्ञानस्वरूपको अपने ज्ञानमे लेवे, केवल जाननमात्र एक चैतन्य प्रकाशमात्र केवल मैं ज्योतिस्वरूप हूँ इस प्रकारका उपभोग बनाये तो इस उपभोग बनाये हुएकी स्थिति मे इस आत्माको ज्ञानानुभव होता है, आत्मानुभव होता है, और ज्ञानके रूपसे यह आत्मा ज्ञानमे प्रत्यक्ष भासता है। और, जैसे लोग सामने पडी हुई चीजको यह यह कहकर बोलते है इसी प्रकार ये ज्ञानी योगी स्वानुभवी पुरुष भी इस आत्माको यह यह करके देखते हैं। यह है आत्मा। यह हूँ। मैं जानते है ज्ञान स्वरूपमे अपने आपको और बल्कि यह स्वाधीन प्रत्यक्ष है। इस प्रकार वे स्पष्ट समझते है। तो स्वानुभाव भी प्रत्यक्ष माना गया है जितने समय आत्माको आत्माका अनुभव होता है। केवल ज्ञान का ज्ञानमे अनुभव होना जब इसकी स्थिति होती है अर्थात् यह ज्ञानानुभूति स्पष्ट मात्र ज्ञानके रूपमे जब प्रगट होती है उस समय न इन्द्रिया कुछ काम कर रही है और न मन कुछ काम कर रहा है। तो इन्द्रिय और मनका कुछ प्रयोग हो अथवा न हो, जिस पदार्थको स्पष्ट जाना जा रहा हो उस ज्ञानको प्रत्यक्ष कहते है।

प्रत्यक्षज्ञानकी अनुमानप्रयोगसे सिद्धि - अब प्रत्यक्षके लक्षणके समर्थनमें एक अनुमान बनाया जा रहा है कि प्रत्यक्ष विशदज्ञानस्वरूप होता है क्योंकि प्रत्यक्ष पना होनेसे जो विशद ज्ञानरूप नहीं होता, वह प्रत्यक्ष नहीं होता। जैसे अनुमानमें धुवा देखकर जान लिया कि इसमें अग्नि है तो अग्निका ज्ञान तो हो रहा है। अग्नि न होती यह धुवा कैसे होता। तो धुवेंको देखकर अग्निका जो ज्ञान किया वह यथार्थ है गलत नहीं है लेकिन अग्निका प्रत्यक्षज्ञान तो नहीं हो रहा, स्पष्ट ज्ञान तो नहीं हो रहा और आंखोंसे अग्नि दिख जाय तो वह स्पष्ट ज्ञान कहलाता है। तो स्पष्ट ज्ञान नहीं है अनुमान वाला ज्ञान, वह परोक्ष कहलाता है, और जितने स्पष्ट ज्ञान हैं वे सब प्रत्यक्ष कहलाते हैं।

आत्मप्रत्यक्षतामें लाभ— भैया ! प्रत्यक्ष तो हैं ये सब लेकिन यह चिन्तन कीजिए कि इन इन्द्रियों द्वारा हम पदार्थोंको स्पष्ट सा भी ज्ञान करके लाभ क्या उठा पायेंगे एक अपने आपके स्वरूपको यदि हम स्पष्ट जान लें, अनुभव करलें तो इस अनुभवसे हम अपना लाभ उठा लेंगे। लाभ क्या है ? अशान्ति नहीं रहती यह सर्वोत्कृष्ट लाभ है। जहां अपनेको सबसे निराला ज्ञानमात्र अनुभव किया वहां अशान्ति ठहर नहीं सकती। जहा अपनी सुध भूलकर दूसरोंसे होड मचाने लगते हैं वहां अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। बडी विकट समस्या है यह। और कुछ भी बडी समस्या नहीं है। मात्र इतनी सी बात है कि इन चर्म चक्षुवोंको खोलकर बाहरमें कुछ निरखा, बाहरमें कुछ अपना निर्णय बनाया बस वहां अशान्ति होती है और इन चर्मचक्षुवोंको बन्द करके विशुद्ध ज्ञान नेत्रके द्वारा अपने स्वरूपको देखो और उसे ही निरखनेमें संतोष मानो, तृप्ति मानो कि बस शान्ति ही शान्ति है। किन्तु इस प्रकार शान्तिके मार्गमें चलने वाले पुरुषको लोग मूढ कहेंगे। लेकिन यह तो बतावो कि बाह्यपदार्थोंमें सुधार बिगाड करनेका विकल्प करके, बडे बडे महल खडे करके, बडा वैभव जुटा करके जो कुछ एक बलप्रयोग किया है मोहकी दृष्टिमें, उस समय भी व भविष्यमें भी बलप्रयोगके बावजूद आप अपनेमें लाभ क्या पा लेंगे ? उस पुरुषार्थसे, उस परिश्रमसे जीवको लाभ क्या होगा ? और, यदि अपने आपमें अपने आपका दर्शन करके अपनेमें मग्न होनेका पुरुषार्थ किया तो उससे लाभ क्या होगा ? सदाके लिये सङ्कटोंसे छूट जायगा।

निर्वाणसे स्वपरलाभ—और देखो, आजके हिसाबसे कोई मुक्त हो जायगा तो तुम्हारे यहां जो अन्नसङ्कटकी समस्या है या वैभवपर झगड़े हैं उससे अलग हो जायगा और यहीं सारा वैभव छोड जायगा। जो जीव मुक्त होता है उसने एक लोक दृष्टिसे यह भी तो उपकार किया कि सब वैभवको छोडकर अकेला ही लोकके शिखर पर विराजमान होगा, यह भी एक लोककी दृष्टिसे उपकार है। जैसे कोई पुरुष घरमें सम्पन्न होकर घरका परित्याग करदे, वैभवका परित्याग करदे तो वह वैभव दूसरेके

उपयोग जमाया जाय ? इसको कहीं स्थिरता मिले तब आनन्दकी प्राप्ति हो कहीं इसे न आनन्द प्राप्त होता है न स्थिरता मिलती है, ऐसी स्थितिमें बाहरी पदार्थोंकी ओर इसका चित्त चलता है, तो मन्दिरमें जो भी स्त्री पुरुष मिले उनकी दृष्टि रखकर अपने विकल्प बनाता है. तो यह मन्दिरका दोष नहीं है, यह उपादानका दोष है, जो वहाँ विकारभाव करता है उसका दोष है, और जगह भी तो वह विकारी बनता रहता है, तो अपने आत्माकी सुधि आये बिना भगवानकी भक्ति वास्तवमें हो नहीं सकती, जिसको आत्महितकी धुन है वही भगवानकी भक्तिमें अपनी दृढता रख सकता है, उसे ही अरहंतका स्वरूप, सिद्धका स्वरूप सुहाता है धन्य है परिणमन, धन्य है यह विशुद्ध ज्ञान जिसमें मात्र जानकारी है, रागद्वेषका सम्बन्ध नहीं है, धन्य है यह वीतराग अवस्था जिसके कारण ये उत्कृष्ट हो गए हैं। अब इनको दुनियामें कुछ करनेको नहीं रह गया है, जो करने लायक काम है उसे ये कर चुके हैं कृतार्थ हो गए हैं । तो अपने आपके ज्ञानस्वभावकी ओर हमें दृष्टि देना चाहिए और कुछ इस चर्चामें अपना उपयोग लगना चाहिए कि मैं क्या हूँ, मेरा क्या वैभव है, मेरी क्या कला है, किस तरह ये सब चमत्कार चल रहे हैं। चमत्कार सब कुछ हमारा हममें ही चल रहा है, बाहरी पदार्थों को नहीं चलता, लेकिन इसकी ओर दृष्टि दें तो समझमें आये।

प्रत्यक्ष ज्ञानके प्रकार— मेरास्वरूप ज्ञान है और वह ज्ञान प्रत्यक्ष, परोक्ष इन दो प्रकारोंमें बँटा हुआ है जो विशद ज्ञान है उसे तो प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं, जो अस्पष्ट ज्ञान है उसको परोक्ष ज्ञान कहते हैं। पहिले सिद्धान्तकी दृष्टिसे ज्ञानके फैलाव को देखिये। ज्ञान दो प्रकारके हैं —प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष दो प्रकारका है— साव्यावहारिक प्रत्यक्ष तो इन इन्द्रियोंसे जो सीधा जाना जा रहा वह है और पारमार्थिक प्रत्यक्ष जो आत्मीयशक्तिसे ही जाना जाता है वह है। पारमार्थिक प्रत्यक्षके दो भेद हैं विकलप्रत्यक्ष और सकलप्रत्यक्ष। विकल अर्थात् अपूर्ण पारमार्थिक दो प्रकार के हैं अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान। अवधिज्ञान कहते है उसे जो आत्मीयशक्तिसे भूतभविष्यके रूपी पदार्थोंका, दूरवर्ती पदार्थोंको स्पष्ट जाने और दूसरेके मनके व्यापारों को विकल्पोंको, विचारोंको जो स्पष्ट जान जाय उसे मन पर्यय ज्ञान कहते हैं। सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष केवल ज्ञान है जो वास्तविक और निरपेक्ष स्वतंत्र परिपूर्ण है जिसके द्वारा केवलज्ञानी समस्त लोकालोकको भूत, भविष्य वर्तमानके समस्त पदार्थों को स्पष्ट जानता रहता है।

परोक्षज्ञानके प्रकार— परोक्षज्ञानकी स्मृति प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगमसे ५ भेद होते हैं किसी चीजका हम स्मरण करते हैं तो बतलावो वह चीज स्पष्ट सामने तो नहीं है उसका ख्याल आ रहा है, तो ख्यालमें जो ज्ञान बना उन दोनों ज्ञानोंमें अन्तर है। तो स्मृतिका ज्ञान परोक्षज्ञान है प्रत्यभिज्ञान सामनेकी चीजको देखकर किसी दूसरेका ख्याल करके उन दोनोंमें तुलना करे वह प्रत्यभिज्ञान है। यह

तो परोक्षज्ञान है, स्पष्ट नही हो रहा है। इसी प्रकार तर्क करना, जहाँ जहाँ धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है यह भी परोक्षज्ञान है, इसमे कोई चीज स्पष्ट तो नजर नही आयी। तो जिसमे स्पष्ट नजर न आये ऐसा जो ज्ञान है वह परोक्षज्ञान कहलाता है। शब्द सुनकर अर्थ जान लेना, पदार्थका बोध होना भी परोक्षज्ञान है।

साधनज ज्ञान एव व्याप्तिज्ञानकी परोक्षरूपताकी मीमासा—कुछ लोग अकस्मात् धुवा देखकर यह जान जावे कि यहा अग्नि है, इसको भी प्रत्यक्ष बतलाते और तर्कज्ञानको जिसमे कि व्याप्ति बनायी जाती, जो कुछ भी भाव होता है, जितने भी पदार्थ हैं वे सब क्षणिक है, जितने भी धुवा वाले प्रदेश है वे सब अग्निवान हुआ करते है आदिक जो तर्क है, व्याप्तिज्ञान है जो कि परोक्ष है, कुछ लोग इसे भी प्रत्यक्ष बतलाते हैं। लेकिन यह प्रत्यक्ष नही है, यह ज्ञान भी प्रत्यक्ष माना जाने लगे तो अनुमान भी प्रत्यक्ष बन जायगा, फिर तो एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण रह गया। जो अस्पष्ट ज्ञान है वह तो परोक्ष कहलाता है और जो स्पष्ट ज्ञान है उसे प्रत्यक्ष कहते है।

असीम विशद केवलज्ञानकी लब्धिका उपाय आत्मकैवल्यका अनुभव देखिये! परोक्षज्ञानकी अपेक्षा स्पष्ट ज्ञानमे निर्मलता विशेष है और इन स्पष्टज्ञानोमे भी साव्यवहारिक प्रत्यक्षकी अपेक्षा अवधिज्ञान मन पर्ययज्ञानमे निर्मलता विशेष है और इससे भी अधिक या परिपूर्ण निर्मलता केवलज्ञानमे है क्योंकि केवलज्ञानको प्राप्त करनेका हमारे पास जो तरीका है वह भी एक प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है। उसमे भी निर्मलता अधिक है। केवलज्ञान कैसे प्राप्त हो ? तो जरा शब्दोंके मेलसे और युक्तिसे भी निरखिये! केवलज्ञान—केवल मायने सिर्फ, मात्र ज्ञान ज्ञान रह गया उसका नाम केवलज्ञान है। तो हम अभीसे ही अपने उस केवल मात्र ज्ञानके ज्ञानका ही देखनेका अभ्यास बनाये तो इस अभ्यासके बलसे केवलज्ञान प्रकट होगा अर्थात् अपने उस कैवल्यकी श्रद्धा करे। मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभवमे लें इसे कहते हैं स्वानुभव प्रत्यक्ष। तो इस स्वानुभव प्रत्यक्षके बलसे केवलज्ञान प्रत्यक्षकी उत्पत्ति होगी अर्थात् समस्त वैभव है केवलज्ञानमे सर्वज्ञदेवमे, परमात्मपदवीमे और उस परमात्मपदवीकी प्राप्तिका साधन है आत्मानुभव। मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ, इस प्रकारका आत्माका अनुभव बने तो उस समस्त वैभवकी प्राप्ति होती है। तो हम अनेकानेक पुरुषार्थ करके आत्मज्ञानकी प्राप्ति करें इसमे ही हम आपका हित है।

न्यायविषयमे युक्तियोका बल—यह न्यायविषयका ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमे श्रद्धाके बलपर किसी तत्त्वकी मान्यताको प्रमाण नही माना है। जैसे सिद्धान्तशास्त्रोमे करणानुयोगके ग्रन्थोमें लिखा है स्वर्ग नरक आदिक, स्वर्गलोककी रचना जैसे बतायी है वैसे हम श्रद्धासे मान लेते है। जिन वीतराग प्रभुने सप्त तत्त्वोका जो प्रतिपादन किया, अब उनमे अनुभवमे हम सही उनकी बात उतारते है तो यह श्रद्धा होती है कि जिन प्रभुके प्रणीत तत्त्वका स्वरूप निर्विवाद है उनकी सारी वाणी निर्विवाद है उन

की श्रद्धासे हम सब बातें मान लेते हैं किन्तु न्यायशास्त्रमें श्रद्धाके कारण किसी बात को मान लेनेकी गुन्जाइश नहीं है। किसी तत्त्वको हम श्रद्धासे मान रहे हैं, हम ही तो मान रहे हैं, दूसरोंको हम कैसे मना सकते हैं। दूसरा कोई अपनी श्रद्धासे कुछ मान रहा है तो वह ही तो मान रहा है, उसे हम कैसे मना सकते हैं? तो न्यायग्रंथमें युक्तियोंकी प्रधानता है, जो युक्तिसे, तर्कसे सही बैठे वह बात प्रमाण है और जो बात युक्तिसे न बैठे, खण्डित हो जाय वह अप्रमाण है।

अपना ही प्रकरण अपनी ही बात इस प्रकरणमें अपने स्वरूपका विस्तार ही बताया जा रहा है। हैं तो हम आप भी प्रभुवत् विशदसकलज्ञानस्वरूप, किन्तु अपनी सुधसे पृथक् होनेसे यह अन्तर हो गया है। यहाँ जो कुछ भी कहा जायगा वह युक्तियोंसे शुद्ध हो तब तो सही है। केवल इस मान्यतामें कि हमारे धर्ममें यह बताया है इसलिए सही है इसकी यहाँ प्रतिष्ठा नहीं है, इसी कारण यह विषय कुछ थोडासा क्लिष्ट भी हो जाता है। लेकिन जिस ज्ञानमें बड़े बड़े विवादोंका व्यापारोंका हिसाबोंका निबटारा करनेकी सामर्थ्य है वह ज्ञान क्या इस वस्तुके स्वरूपको नहीं जान सकता? अपना उपयोग निर्मल हो, यहाँ वहाँके राग न सता रहे हों, ध्यान पूर्वक सुना जाय तो यह सब विषय भी बुद्धिगत हो जाता है। यहाँ चर्चा चल रही है ज्ञानकी। ज्ञान दो प्रकारके होते हैं— एक प्रत्यक्ष और एक परोक्ष। प्रत्यक्ष ज्ञान वह है जो स्पष्ट विदित होता है और परोक्ष ज्ञान वह है जो अस्पष्ट समझमें आता है।

मतिज्ञानकी पर्यायोंका विवरण--लक्षणके आधारपर अभी विशदज्ञान आदिककी चर्चा न रखें, केवल एक मतिज्ञानकी ही चर्चा रखें और उसमें इनका विभाजन करें। तत्त्वार्थसूत्रमें बताया है--"मति स्मृति संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।" ये भी मतिज्ञानकी ही पर्यायें हैं। मति—यहाँ मतिका अर्थ मतिज्ञान से नहीं है, किन्तु सांव्यवहारिक प्रत्यक्षसे है। इन्द्रियोंसे जो जाना जा रहा है उस ज्ञानका नाम है मति। स्मृति जो पूर्वमें जानी हुई चीजका स्मरण होता है उस स्मरण का नाम है स्मृति। संज्ञा संज्ञाका दूसरा नाम है प्रत्यभिज्ञान। सामने प्रत्यक्ष नजर आयी हुई चीजमें और स्मरणकी हुई चीजमें जो समानता, एकता या विलक्षणता या अनेक प्रकारकी प्रतियोगिता जानना प्रत्यभिज्ञान है। तर्क व्याप्तिका ज्ञान बना कि जहाँ अमुक चीज नहीं होती वहाँ यह भी नहीं होती। इस प्रकारका अविनाभाव सम्बन्ध बनाना सो तर्कज्ञान है। और अनुमान- साधनको देखकर साध्यका ज्ञान करना अनुमानज्ञान है। ये मतिज्ञानकी ही पर्यायें है---स्मृति, संज्ञा, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान। इनमें केवल मति तो प्रत्यक्ष माना गया है और वह है सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। शेषके स्मरण प्रत्यभिज्ञान, अनुमान और तर्क ये परोक्षज्ञान माने गये हैं। सो आप खुद जान लें कि आँखोंसे देखी और कानोंसे सुनी बात कितनी स्पष्ट विदित होती है। हम बोल रहे हैं, आप सुन रहे हैं तो जो बोल रहे हैं उसमें कुछ सन्देह भी

है क्या ? जैसे अनुमानमे कोई बात आयी, किसी पदार्थका बोध हुआ तो उसमें सदेह जरा जल्दी हो जाता है पर सुनी हुई बातमे व आँखो देखी बातमे किसीको सन्देह तो नही होता, वह तो स्पष्ट ज्ञानमे आता है। यह तो स्पष्ट है पर स्मरणमे आया, अनुमानमे आया, युक्तिसे जहा व्याप्ति बनायी जाय वह सब अस्पष्ट बोध है, देखे हुए पदार्थकी तरह स्पष्ट ज्ञान नही है, इस कारण वह सब परोक्ष है।

सक्षेपमे साधनसे साध्यके ज्ञानमे प्रत्यक्षत्वकी मान्यता—यहाँ क्षणिकवादी जन अपना यह मतव्य रख रहे हैं कि कही धुवा देखकर अग्नि जान ली तो वह भी प्रत्यक्ष है अनुमान नही है, अब यह दृष्टान्त बनाया जाय कि जहा जहा धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है, धुवाँ यहा है इसलिए अग्नि भी होना चाहिए। यहा धुवाँ है तो अग्नि होना ही चाहिए जैसे रसोईघर है। इस प्रकार रूपक बनाया तो वह अनुमान कहलायेगा। अगर अकस्मात् कही धुवा दिखे और तुरन्त जान गए कि यहा आग है। तो वे इसे प्रत्यक्ष मानते हैं। थोडे शब्दोमे यो समझलो कि दृष्टात देकर जो अनुमान बनाया जाय वह तो है उनका अनुमान और दृष्टान्त न देकर यदि केवल सीधा ही कुछ साधन देखकर साध्यका ज्ञान हो जाय उसे वे प्रत्यक्ष कहते हैं। लेकिन धुवा देखकर जो आगका ज्ञान हुआ वह स्पष्ट तो नही हुआ। जैसे आखोसे देखकर आगको हम स्पष्ट जानते हैं इस तरह स्पष्ट बोध नही होता। किन्तु उनका मतव्य है कि अकस्मात् धूम देखनेसे यहा अग्नि है ऐसा जो ज्ञान है वह प्रत्यक्षज्ञान है।

साध्यविज्ञानमे सामान्यविषयत्वकी असङ्गतता अकस्मात् धूम देखनेसे होने वाले अग्निके ज्ञानको प्रत्यक्ष माना जानेपर उनसे पूछा जा रहा है कि अकस्मात् धूम देखकर यहा आग है, ऐसा जो ज्ञान हुआ, इस ज्ञानमे जो कुछ प्रतिभासमे आया, क्या आया ? आग। तो उस सम्बन्धमे जो कुछ भी प्रतिभासमें आया वह सामान्य प्रतिभासमे आया या विशेष ? सामान्य प्रतिभास तो युक्त नही बैठता। क्योकि यदि सामान्य ही प्रतिभासमे आया हो तो वह प्रत्यक्ष न कहलायेगा। बौद्ध लोग विशेष ज्ञानको तो प्रत्यक्ष और सामान्य ज्ञानको अनुमान कहते हैं। और भी बात देखो कि जिस विशेपका ज्ञान उनके यहा प्रत्यक्ष माना गया है वह है निर्विकल्प और जहाँ विकल्प उठें वह बन गया सामान्य। जब कि साधारणतया सभी लोग जानते हैं कि विकल्प सामान्यमे नहीं उठा करते, विकल्प विशेषमे उठा करते हैं लेकिन उनका विशेष निर्विकल्प हुआ करता है और विकल्प उठे उसे सामान्य कहते हैं।

क्षणक्षयवादियोके अभिमत सामान्यविशेषकी व्यवस्थाका कारण—निर्विकल्पको विशेष व सविकल्पको सामान्य माननेका कारण क्या है ? उनका मुख्य सिद्धान्त है कि प्रत्येक पदार्थ क्षण-क्षणमें नष्ट होता है। अभी कोई पदार्थ है, तो एक क्षण बाद दूसरा पदार्थ हो गया, ऐसा वे मानते हैं। जैसा जैनशासन पर्यायका

स्वरूप मानता है कि कोई सी भी पर्याय हो वह एक समयकी हुई और दूसरे समयमें वह पर्याय नहीं रहती, नवीन पर्याय हो जाती है, उसी तरह वे पदार्थका ही नवीन मानते है। ऐसा माननेवाले पर शङ्का होती है कि हमने जो जिन वस्तुओंको कल देखा था वे ही सब तो आज भी बैठे हुए हैं, और तुम कहते हो कि क्षण क्षणमें नये नये आत्मा होते है, नये नये पदार्थ होते है। तो क्षणिकवादियोंका उनके प्रति यह उत्तर होता है कि तुम्हें भ्रम रहा है ऐसा कि यह वही आत्मा है वही पदार्थ है जो कल देखा था, पर यह तुम्हारी कल्पना है, तुम्हारा यह विकल्प है। तो यह सामान्य ज्ञान हुआ था कि जो कल था सो आज है। इस प्रकार जो अनेक समयोंमें रहे, त्रिकालवर्ती रहे उसे ही सामान्य कहते हैं। तो पदार्थमें जो शाश्वत रहनेका बोध होता है वह वास्तवमें होता है विकल्पसे होता है। विकल्प मिट जाये तो यथार्थ तत्त्व जो विशेष है वह ही ज्ञानमें रहे, जो कि निर्विकल्प है, ऐसा क्षणिकवादियोंका मन्तव्य है और इस आधारपर अनुमान तो सामान्यको विषय करता है और प्रत्यक्ष विशेषको विषय करता है। तो जिस ज्ञानमें अकस्मात् धूम देखकर जो बोध होता है कि यहां आग है तो इसमें क्या सामान्य प्रतिभासमें आ रहा ? अगर सामान्य प्रतिभासमें आ रहा तो यह अनुमान कहलायेगा। प्रत्यक्ष कैसे कहते हो ? क्योंकि प्रत्यक्षका विषय सामान्य नहीं माना गया है। अगर प्रत्यक्षका विषय सामान्य भी मान लोगे तो प्रत्यक्षने ही विशेषको जाना प्रत्यक्षने ही सामान्यको जाना, तब एक ही प्रमाण रह गया, फिर अनुमानकी कोई आवश्यकता ही नहीं रही।

साध्यविज्ञानमें विशेषविषयत्वकी असङ्गतता—अगर कहो कि उस ज्ञानमें हमने विशेष ही जाना, अकस्मात् धूम देखकर यहां आग है, इस ज्ञानमें विशेष ही जाना गया तो विशेष जाने गयेमें तो विशेष जाननेपर फिर सन्देह तो नहीं होता, फिर वहां आगे जाननेका यह सन्देह क्यों होता कि वह आग तृणकी है या पत्तोंकी है, तो धुवां खूब हो रहा है तो यह कुछ कुछ अदाज हो जाता है कि यहां तो तृण-पत्ते जल रहे है क्योंकि उसमें अधिक धुवां होता है। तो अग्निका यदि विशेष प्रत्यक्ष होता है तो उसमें यह सन्देह न होना चाहिए कि यह किस चीजकी आग है ? जैसे सामने जलने वाली आगमें यह सन्देह तो नहीं होता कि यह किस चीजकी आग है ? वैसा ही सन्देह ज्ञान होना चाहिए। यदि सन्देह हो तो शब्द और लिङ्गमें भी जो ज्ञान रहे है उसमें भी सन्देह होने लगे, किन्तु शब्द और लिंगमें जाने गयेमें आपने सन्देह नहीं माना। इस कारण यह ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है। साधन देखकर जल्दी ही साध्यका ज्ञान हो जाय तो वह प्रत्यक्ष नहीं है अनुमान ही है वह, क्योंकि साधनसे उसकी उत्पत्ति हुई। दृष्टान्त देकर भी साधनसे साध्यका ज्ञान हो तो वह अनुमान है और दृष्टान्त दिये बिना भी यदि साधनसे साध्यका ज्ञान हो तो वह भी अनुमान है।

वर्त रहे ज्ञानोंका विवरण यहाँ प्रत्यक्ष और परोक्षकी चर्चामें यह बताया

गया है कि जो स्पष्ट ज्ञान हो वह तो कहलाता है प्रत्यक्ष और जो अस्पष्ट ज्ञान है वह कहलाता है परोक्ष। जानते हम आप सब है, जो कुछ नही समझते वे भी सब समझते। जैसे बडे बडे धुरधर पण्डित प्रत्यक्ष और अनुमानकी बात जानते है इसी तरह मूर्ख भी प्रत्यक्ष और अनुमानसे ज्ञान करते है, पर मूर्खोंको यह पता नही होता कि यह ज्ञान किस किस्मका है, इसका स्वरूप क्या है, पर पण्डित लोग उसका स्वरूप जानते हैं। जो ज्ञानका स्वरूप जानते है वे ज्ञानका अनुभव करनेके पात्र हैं, जो ज्ञानके स्वरूपको ही नही जानते वे अनुभव ही क्या करे।

विशिष्ट बोधकी कार्यकारिता— देखिये प्रयोजनभूत बात तो इतनी है कि इतना ही ज्ञान प्रयोजन सिद्ध कर देता है कि हम अपने ज्ञानस्वरूपका ज्ञान करें। ज्ञानका अनुभव बनावे ठीक है, पर इस ज्ञानके बारेमे जितना विस्तृत ज्ञान बने उतना ही स्पष्ट ज्ञानका अनुभव होगा। जैसे कोई पुरुष किसी लडकेको जोड सिखा दे कि ये ये सख्याये है और यह योग हुआ, वह बालक इतने तक ही जानता है और कोई दूसरा बालक बाकी, गुणा, भाग आदि सब कुछ जानता है, तो वह बालक उस हिसाब के सम्बन्धमे बहुत सी बातें जानता है, उसको जोड सम्बन्धी अधिक स्पष्ट ज्ञान है, बल्कि यो कहो कि उसे उसका अधिकारपूर्ण ज्ञान है, किसी भी कार्यको करते हुए उस कार्य सम्बन्धित अनेक बातोका ज्ञान है तो उसके लिए वह कार्य ज्ञान बहुत स्पष्ट ज्ञान है, और जितना कार्य करना है कराना है मात्र उतना ही ज्ञान हो तो उसमे इतना बल नही होता है। तो जब ज्ञानके स्वरूपका अनुभव करना एक आवश्यक चीज है तो हम उस ज्ञानके बारेमे बहुत–बहुत कुछ बाते समझलें तो यह हमारे गुणके लिए है, कोई फाल्तु बात नही है, काममे तो बात आखिर उतनी ही आयगी कि समस्त पदार्थोंसे परभावोसे निराला यह एक ज्ञानस्वरूप है और इसका मूल भी यह सहज ज्ञानस्वभाव है, जो सब ज्ञानोमे रहा करे। सो जो ज्ञान है ज्ञान है, इस प्रकार सामान्य अनुवृत्ति को बनाये हुए है वह है ज्ञानस्वभाव, तो सहज ज्ञानस्वभावका अनुभव हमे करना है, किन्तु इतना कहने मात्रसे हमे वह ज्ञानस्वभाव वह हमारा स्वरूप स्पष्ट नही हो पाता है, हम उस ज्ञानके बारेमे बहुत–बहुत विशेषतावोंः समझ लें, समझ लेनेके बाद अब हमारा उसपर जाननेका अधिकार ठीक हो जायगा तो हम समस्त विकल्पोसे हटकर केवल एक निर्विकल्प ज्ञानस्वभावमे दृष्टि रखें। तो इस प्रकरणमे ज्ञानके भेदोकी बात चल रही है।

तर्कप्रमाणकी परोक्षरूपता— अनुमान ज्ञान प्रत्यक्ष नही है किन्तु परोक्ष है इसी प्रकार एक तर्कज्ञान होता है जिसके आधारपर वकालत चलती है। व्याप्तिका ज्ञान करने वाला तर्कज्ञान भी परोक्षज्ञान है। जहाँ तर्कज्ञानका सहारा नही है वहा युक्ति थोथी है और वह युक्ति कुछ भी करनेमे समर्थ नही है ? किन्तु जहाँ, अन्यथानुपपत्तिसे तर्क पुष्ट होता है वह समर्थ ज्ञान है जैसे अनुमानमें यह व्याप्ति लायी गयी

थी कि यदि अग्नि न होती तो धुवा न हो सकता था। चूंकि धुवा है इसलिये अग्नि नियमसे है। इस अनुमानमें यह सदेह तो नहीं करना क्योंकि व्याप्तिका ज्ञान उसके प्रथम होता है इस व्याप्तिको निरख क्षणवादी लोग प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। लेकिन समस्त व्यवहारोंसे उनोंसे पूछ लीजिए कि इस प्रकार उस व्याप्तिका जो ज्ञान बना है उस ज्ञानमें आग सामने आ गयी या हाथपर आ गयी, या धुवां आ गया? न धुवाका स्पष्ट बोध है न आगका स्पष्ट बोध है किन्तु युक्तिमें उसका अविनाभाव बनाया जा रहा है। प्रमाणको परीक्षावोंमें व्यवहार भी देखा जाता है, व्यवहारके द्वारा प्रमाण की प्रमाणता समझी जाती है।

क्षणक्षयवादियोंका व्याप्तिज्ञानके विषयमें मन्तव्य- क्षणक्षयवादियों का मन्तव्य यह था कि पदार्थोंको देखकर हम झट यह ज्ञान कर लेते हैं कि ये सब क्षणिक हैं अर्थात् यह ज्ञान अनुमान नहीं है किन्तु प्रत्यक्ष है। अरे पदार्थ क्षण भर ही रहता है और नष्ट हो जाता है यह क्या तुम्हें प्रत्यक्ष दिख रहा है? अनुमानसे जाना जाता है कि चूंकि ये सब पदार्थ बनते हैं तो जो बनाये गए पदार्थ हैं वे नष्ट हो जाया करते हैं तो यह कार्य भी बना है अतएव यह भी क्षणिक है। तो कृतक हेतु देकर, चूंकि यह किया गया है, अतएव, यह पदार्थ विनाशीक है ऐसा अनुमान बनाया जाता है किन्तु इनके मन्तव्यमें कृतक है ऐसा जानकर यह क्षणिक है ऐसा ज्ञान सदा प्रत्यक्ष है। जब तक दृष्टान्त न दिया जाय, जब तक बातको लम्बी न बनाकर कहा जाय, जैसा कि अनुमानमें किया जाता है तब तक वे उसे अनुमान नहीं मान सकते। तो यहा साधनसे साध्यका एकदम ज्ञान होना उनका प्रत्यक्ष है।

व्याप्ति ज्ञानको प्रत्यक्ष माननेपर आपत्ति—देखिये! इन दोनोंके बारेमें युक्ति लेना कि जो क्षणिक नहीं होता वह कृतक भी नहीं होता या जो कृतक होता वह क्षणिक हुआ करता है, किसी भी प्रकारकी व्याप्ति बनाना यह व्याप्ति सही तो नहीं है कि जो क्षणिक नहीं होते वे कृतक नहीं होते अच्छा तो उदाहरण देकर बताओ अनेक चीजें ऐसी हैं जो किसीने बनायी नहीं है और नष्ट होती रहती है। खैर कोई सी भी व्याप्ति हो, पर व्याप्तिका ज्ञान अस्पष्ट हुआ करता है, ऐसी व्याप्तिका ज्ञान भी यदि स्पष्ट माना जाता है, प्रत्यक्ष माना जाता है तो फिर अनुमानके लिये कौनसा विषय रह गया कि उसे अलगसे मानते हो? सारे व्याप्य सारे व्यापक प्रत्यक्ष बनते हैं इस ही कारण जब वह सब स्पष्ट हो गया तब अनुमान अलग क्या रहा? यदि स्पष्ट जानकर भी उनको अनुमानसे जाननेकी जरूरत पडे तो योगियोका भी स्पष्ट ज्ञान प्रत्यक्ष न कहलायेगा, वहा भी अनुमान बन जायगा। इससे व्याप्तिके ज्ञानको प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता है। जो स्पष्ट ज्ञान है वही प्रत्यक्ष होता है, उसके बारेमें हम जो कुछ विचारते हैं वह सब अस्पष्ट बोध है।

संदेहविच्छेदके लिये अनुमानकी आवश्यकताका असंगत अभिमत— शायद यह कहो कि धुवा देखकर अग्निका बोध हो गया तो जहाँ जहाँ धुवां है वहाँ वहाँ अग्नि है यह ज्ञान हुआ तो यह तो प्रत्यक्ष है लेकिन कोई इसमें सन्देह न आजाय कोई भूल न बन जाय इसके लिए अनुमान बनाया जाता है। अरे भाई! जो एकबार सुविदित हो गया उसमें संशय आदिक कैसे बन सकते है? निश्चय है और फिर उसमें सन्देह बने? शायद यह कहो कि आगामी कालमें संदेह न बन बैठे, इसलिये अनुमान प्रमाण माना है तो भाई स्मरण ज्ञान है, पहिले जान लिया किसीको और बहुत दिनों के बाद उसीको देखकर फिर भूल हो गयी कि हमने तो नही देखा है, फिर ख्याल आ गया कि हाँ, देखा है, तो समारोप होनेके बाद जो ज्ञान हुआ है वह भी प्रमाण मान लो अर्थात् स्मरण भी प्रमाण है। बौद्धजन स्मरणको प्रमाण नहीं मानते। उनके केवल दो ही प्रमाण हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। जितने भी अन्य अन्य ज्ञान हैं स्मरण आदिक ये सब अनुमान कहलाते हैं लेकिन जब विषय सबका न्यारा न्यारा है तो सब एक अनुमान कैसे हो सकते है? अनुमानसे कुछ समझा जाता, स्मरणसे कुछ समझा जाता और तर्कसे कुछ जाना जाता है, तो ये ज्ञान चूँकि स्पष्ट नहीं है अतः परोक्ष है।

स्वपर घटित करते हुए स्वाध्यायकी आवश्यकता— सूत्रजीमें पढ तो रोज जाते हैं—'मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।' पर यह तो पता नहीं करते कि यह सब बात हमारी ही कही जा रही है। देखिये! प्रथम सूत्रमें, तत्त्वार्थसूत्रमें प्रमाण और नयोंका वर्णन है, पर प्रमाण और नयोंके वर्णनको कुछ समझ भी लें, जान भी लें तो हम इस तरह जाना करते है कि अलग बात है यह कुछ। यह प्रमाणकी बात है, यह नयोंकी बात है इस तरह नहीं जानते कि हम आप की जो परिणतियां बनती हैं उन परिणतियोंकी यह बात कही जा रही है। सुन लेंगे, ज्ञान दो होते हैं - प्रत्यक्ष और परोक्ष। जैसे किसीके धनकी कोई चर्चा कर उसका धन ऐसा है, ऐसा है, इसी तरह ज्ञानकी भी चर्चा कर लेते है कि ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, परोक्ष होता है, उसे पालनमात्र करके कि ज्ञान क्या? वह ज्ञान मैं ही तो हूँ और उस ज्ञानकी ही बात कही जा रही है कि हम कुछ न कुछ ही जानते कोई प्रत्यक्ष रूप होती है कोई परोक्षरूप होती है। तात्पर्य यह कि जितना जो कुछ भी हम पढते हैं उन सबको अपने आपके बारेमें सम्बन्धित बनाकर अध्ययन करें तो उसका लाभ होनेके लिए है और केवल पढ लिया जान लिया पर समझ लिया कि यह है, यह है, अपनेसे अलग करके उस विषयका समझना आत्महितकी बात नहीं है।

प्रत्येक प्रतिपादनोंमें आत्महितका शिक्षण— कुछ भी बात आप पढ लीजिए, उसे अपने हितके लिए अपने आपपर घटित कर सकते हैं। कहीं चारों गतियोंका वर्णन चल रहा हो नारकी जीव ऐसे होते है तिर्यञ्च ऐसे होते हैं आदि, तो उन वर्णनको सुनकर यदि आत्महितकी दृष्टिसे स्वाध्याय किया जा रहा है तो

यह बात दिमागमे अवश्य रहेगी कि रत्नत्रयकी साधना न बन सकनेसे कुछ ऐसी ऐसी गतिया हमारी होती रहेंगी और उस रत्नत्रयकी साधनाके बिना ये गतियां होती हैं, ये जीव भी मेरे ही स्वरूपके समान हैं, ये सब हमारी ही तरह अपनी अपनी करनीका फल भोग रहे हैं, मैंने भी यदि खोटी करनी की तो इस तरहके दु ख मुझे भी सहन करने होंगे, ऐसी सारी बातें तो उस वर्णनको सुनते हुए मनमे आती ही हैं।

आत्मसात्करणकी पद्धति—अथवा जैसे किसी भिखारीपर किसीने दया उत्पन्न की उसकी वेदनाको देखकर, तो उसने अपने आपमे भी उस भिखारीकी ही भांति वेदना उत्पन्न कर ली तब उसकी वेदनाको मिटानेके लिए भोजन वस्त्र आदिक दिए। तो अपने आपपर किसी न किसी अंशमे यहा भी उसकी परिणतिको घटाया है। उस घटनाके कारण उसमे वह दया उत्पन्न हुई,-यही मर्म है और इसी कारण दयाका दूसरा नाम अनुकम्पा रखा है। अनु मायने अनुसार, कम्पा मायने कंप जाना अर्थात् उस दूसरेकी वेदनाको जानकर उसके अनुसार यहाँ भी कुछ कंप जाना यहाँ भी कुछ दहल उठना इसका नाम अनुकम्पा है। तो जैसे किसी पुरुषमें किसी दूसरेके प्रति दयाभाव उत्पन्न होता है तो वह पुरुष उस दूसरे पुरुषका किसी रूपमे आत्मसात् करता है तब दयाभाव बनता है। इसी प्रकार हम स्वाध्यायमे जो कुछ भी विषय सुनें अथवा पढें उसे आत्मसात् करके पढते हैं तो उससे हमे हितका मार्ग मिलता है और उसे यो ही जानकर पढें कि यह तो एक बात कही जा रही है कुछ बाहर पडी हुई बात है इस तरह जानकर उससे लाभ नही उठाया जा सकता है। चाहे वह एक ज्ञानस्वरूपकी ही बात क्यो न हो। पर जो अपनेसे न्यारा बाहरमे कहीं ज्ञानका स्थापन करके कि इस ज्ञानकी बात यहा कही जा रही है, आत्मसात् नही किया गया तो उससे अपने आपको कुछ लाभ नही उत्पन्न होता है।

प्रत्यक्ष और परोक्षके लक्षणकी दृष्टि—यहाँ यह चर्चा चल रही है कि कि प्रत्यक्ष और परोक्षके स्वरूपको हम अपने आपपर घटाते हुए सुनें तो इससे जो विशेष बोध होगा वह सब हमारे ज्ञानानुभवमे सहायक बनेगा, उससे यह स्पष्टता उत्पन्न करेगा। तो अब तक यह कहा गया है कि जो विशद है स्पष्ट है वह तो प्रत्यक्ष है और जो स्पष्ट नही है वह परोक्ष कहलाता है। सैद्धान्तिक दृष्टिमे प्रत्यक्ष का लक्षण है कि आत्माका ही आलम्बन लेकर इन्द्रिय मनकी सहायताके बिना जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष है। यहाँ दार्शनिक पद्धतिसे, अन्य सिद्धान्तियोमे प्रयोजनीभूत बात सुगमसिद्ध हो इस लक्षणसे, व्यवहारमें यथार्थ विभाजन हो इस पूर्तिके भावसे तथा सिद्धान्तसे भी विरोध न आवे इस शैलीसे यहाँ यह लक्षण कहा जा रहा है कि जो विशद ज्ञान है वह प्रत्यक्ष है तथा जो अविशद ज्ञान है वह परोक्ष है।

हमारे मति श्रुतज्ञान—हम आप लोगोके इस समय मतिज्ञान और श्रुत-

ज्ञान है। श्रुतज्ञानका जो अर्थ है शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान और दूसरोंसे शब्द सुनते हैं तो उन शब्दोंको सुनकर यह पदार्थ विषय कहा गया इस प्रकारका ज्ञान, पुस्तकोंको पढ़नेसे हम यह ज्ञान कर लेते हैं कि यह पदार्थ ऐसा है तो यह श्रुतज्ञान है तथा किसी भी पदार्थको मतिज्ञानसे जानकर उसके सम्बन्धमें और विशेषताओंको जानना यह है श्रुतज्ञान। और, मतिज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमानरूप होते हैं।

सांव्यवहारिककी प्रत्यक्षता और स्मृतिज्ञानकी परोक्षता—सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमें तो हम इन्द्रियके द्वारा सीधा पदार्थोंको जान जाते हैं। जैसे छूकर जाना कि यह ठंडा है अथवा गर्म है, चखकर जाना कि यह मीठा है अथवा कड़वा है, घ्राणसे जाना कि इसमें गंध है, चक्षुसे जाना कि यह अमुकरूप है और कर्णोंसे शब्दोंका ज्ञान हुआ। इसी प्रकार मनसे भी कुछ सीधा जाननेमें आ गया यह सब है सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष अर्थात् वास्तवमें तो परोक्ष है, किन्तु कुछ स्पष्टता इस ज्ञानमें है इस कारण यह व्यवहारसे प्रत्यक्ष कहा जाता है। अब शेषके बचे हुए ज्ञानमें जैसे स्मरण यहां बैठे ही बैठे किसी बातका ख्याल किया जाने लगे, किसी इष्टका अनिष्टका स्मरण होने लगे वह है स्मरण। यह स्मृतिज्ञान बहुलतया सांव्यवहारिक प्रत्यक्षसे जो जाना गया था उसके विषयमें होता है, यह स्मरण है परोक्षज्ञान। इस स्मरणमें सामने खड़े हुए पुरुषकी भांति स्पष्ट ज्ञान हो रहा है जिसका कि स्मरण किया जा रहा है। स्पष्टता नहीं है सो यह परोक्षज्ञान हुआ।

केवल एक मनसे अविनाभाव जाना जा रहा है।

क्षणक्षयवादियोकी ओरसे अस्पष्टताके सम्बन्धमे विकल्प—क्षणक्षयवादी इस व्याप्तिज्ञानको प्रत्यक्ष मानते हैं। तब ये क्षणक्षयवादी अपना पक्ष सिद्ध करनेके लिए यह पूछ रहे हैं कि व्याप्तिज्ञानमे अस्पष्ट ज्ञान हुआ। तो यह जो अस्पष्टता है यह पदार्थका धर्म है अथवा ज्ञानका धर्म है ? जैसे स्मरणज्ञानमे हमने जो कुछ समझा यही बैठे हुए ख्याल कर लिया कि गिरिनार जीमे ५वी टोकमे ऐसी हालत रहती है, तो जो कुछ हमने स्मरणमे जाना, अस्पष्ट जाना तो अस्पष्टके बारेमे कोई यह प्रश्न कर सकता है कि यह अस्पष्टता ज्ञानकी है या टोककी है ? प्रश्न तो किए जा सकते है, इसी प्रकार यहाँ यह प्रश्न किया जा रहा है कि व्याप्तिज्ञानमे जो कुछ भी बोध हुआ अस्पष्ट बोध हुआ। इसी प्रकार व्याप्तिज्ञान अस्पष्ट जानता है, तो यह अस्पष्टता पदार्थका धर्म है या ज्ञानका धर्म है ?

ज्ञानधर्म अथवा अर्थधर्मके रूपसे अस्पष्टताकी अप्रसिद्धिका प्रयास—यदि कहो कि यह अस्पष्टता ज्ञानका धर्म है तो फिर यह अस्पष्टता ज्ञानमें ही रहे, फिर पदार्थमे अस्पष्टता क्यो विदित होती है ? दूसरा अस्पष्ट हो उसके कारण अगर दूसरा अस्पष्ट होने लगे तो इसमे अनेक विडम्बनाएँ है। अगर हम दूरकी चीजे अस्पष्ट जान रहे है तो पासकी चीज भी अस्पष्ट समझमे आये। क्योंकि अब तो यह मान लिया कि ज्ञान अस्पष्ट है और उससे पदार्थ अस्पष्ट बन जाता है। तो कुछ भी अस्पष्ट हो, सब अस्पष्ट बन जायेंगे। इससे अस्पष्टता ज्ञानका धर्म तो साबित कर नही सकते। अगर कहो कि अस्पष्टता उस पदार्थका धर्म है जो जाना गया तो पदार्थका धर्म है अस्पष्ट और तुम कहते फिरते हो कि ज्ञान अस्पष्ट है तो व्याप्तिज्ञान कैसे अस्पष्ट याने अप्रत्यक्ष सिद्ध होगा ? देखिये दूसरी जगह तो हो अस्पष्टता और उससे दूसरेको मानले अस्पष्ट या कुछ भी हो भिन्नाधिकरणके हेतुसे अगर साध्य मान लिया जाय तो जो चाहे भी कह बैठो—कौवा काला है इस कारण यह मकान सपेद है, अरे कोई युक्ति भी है ? ऐसी बात सुनकर तो कोई पागल ही कहेगा। युक्ति फबती ही नही ! तो पदार्थ यदि अस्पष्ट है उसके कारण यदि ज्ञानको अस्पष्ट मान लें तो लोकमे ऐसी अनेक विडम्बनाएँ कही जाने लगेगी।

व्याप्तिज्ञानकी अस्पष्टता न माननेका कारण—यहाँ क्षणक्षयवादी बौद्ध जन यह सिद्ध कर रहे हैं कि व्याप्तिका ज्ञान अस्पष्ट ज्ञान नही है, वह प्रत्यक्ष है, परोक्ष नही है ऐसा कहनेका प्रयोजन यह है कि प्रमाण दो ही हुआ करते है उनके मतमे—प्रत्यक्ष और अनुमान। सो कोई भी ज्ञान हो, उन ज्ञानोका अलग अस्तित्व सिद्ध न होना चाहिए। वह या तो प्रत्यक्षमे गर्भित हो या अनुमानमे। तो व्याप्तिज्ञानको अनुमानमे तो यो गर्भित नही कर सकते कि अनुमानका रूप लम्बा होता है, उसमे

दृष्टान्त होते हैं, उसमें पक्ष साध्य साधन ये सब अवयव होते हैं। तो अनुमानमे तर्क को गर्भित किया नही जा सकता था तो प्रत्यक्षमे गर्भित किया जा रहा है।

अस्पष्टताके विकल्पोका निराकरण - आचार्यदेव तर्कविषयक समस्याका समाधान कर रहे है। प्रथम तो जैसा का तैसा उत्तर देकर समाधान कर रहे है पर बादमे सिद्धान्तकी बात रखकर कहेगे। क्या कहा क्षणिकवादियोने कि यह तो बतावो कि व्याप्तिज्ञानसे जो जानी गयी अस्पष्टता है वह अस्पष्टता ज्ञानका धर्म है या पदार्थ का। अच्छा तुम प्रत्यक्षसे पदार्थका स्पष्ट ज्ञान मानते हो तो बतावो कि प्रत्यक्षसे जो स्पष्ट जाना गया वह स्पष्टता पदार्थका धर्म है कि ज्ञानका धर्म है ? पदार्थका धर्म कहोगे तो पदार्थमे तो स्पष्टता है और तुम ज्ञानमें स्पष्टता मानते तो यह कैसे बनेगा ? ज्ञानका धर्म कहोगे तो उसमे भी यही बात है। ज्ञान स्पष्ट है तो पदार्थ कैसे स्पष्ट हो जायगा ? शायद यह कहो कि विषयमें विषयीके धर्मका उपचार करके बन जायगा, ज्ञानसे जो पदार्थ जाना ज्ञानमे जो धर्म है उस धर्मका उपचार पदार्थोंमे भी किया गया, अर्थात् स्पष्ट तो होता है ज्ञान और उपचारसे कहते हैं कि पदार्थ स्पष्ट हो गया तो ऐसी ही बात परोक्षज्ञानमे भी मानलो अस्पष्ट तो रहता है ज्ञान और पदार्थ अस्पष्ट है ऐसा उपचार किया जाता है।

स्पष्टता और अस्पष्टताके ज्ञानधर्मत्वकी सिद्धि – बात यहाँ यह है कि स्पष्टता और अस्पष्टता तो ज्ञानका धर्म हुआ करता है, और हम ज्ञानसे ही सारा व्यवहार बनाया करते हैं, ज्ञानमे परमार्थसे ज्ञान ही जाना जाता है, पर वह ज्ञान किस ढङ्गका बने किस आकारका बने, उस ज्ञानमें कोई विषय जरूर हुआ करता है तो उस ज्ञानका जो विषय पडा, फिर हम उस विषयके सम्बन्धमे अनेक बातें प्रतिपादित किया करते है, जैसे हम दर्पण ही देखें और दर्पण देखकर पीठ पीछेके बालकोकी सारी हरकतोका वर्णन करते रहते हैं, हमने उन उन बालकोको नही देखा, देखा उस दर्पणको ही पर उन बालकोंकी सारी क्रियावोको देखते रहते हैं और उनका वर्णन करते रहते हैं कि यह वह है और वह यह है इसी प्रकार हम आप सब जीव सदा ज्ञानको ही जानते हैं, ज्ञानका जो आकार बनता है केवल उसमे ही रहते है उसे ही जानते हैं, पर उसे जानकर चूँकि किन्ही पदार्थोंके सम्बन्धमे ही जानकारी बनी है तो हम पदार्थो का वर्णन करते रहते हैं, तो स्पष्ट हो तो ज्ञान है, अस्पष्ट हो तो ज्ञान है। फिर उस ज्ञानमे जो जाना जाता हैं उस पदार्थके सम्बन्धमे यह स्पष्ट समझा गया है, अस्पष्ट समझा गया इस तरहका व्यवहार करते हैं। यदि स्पष्टता पदार्थका धर्म हो तो फिर सदा पदार्थ ज्ञानमे आते रहना चाहिए फिर कभी कोई पदार्थ ज्ञानमे आया और कभी यह ज्ञानमे न आया और कभी यह ज्ञानमे न आया इस प्रकारकी बात न होना चाहिए। इसमे बात तो यही है कि जो ज्ञान विशद हो, स्पष्ट समझने वाला हो वह तो कहलाता है प्रत्यक्ष और जो ज्ञान अस्पष्ट हो उसे कहते हैं परोक्ष।

क्षणिकवादियोके तदाकार व अतदाकारसे स्पष्टता व अस्पष्टताकी व्यवस्था—स्पष्ट और अस्पष्ट ज्ञानके विषयमे क्षणिकवादी लोग ऐसा मानते हैं कि अस्पष्ट ज्ञान वह कहलाता है जिसमे कोई विषय नही होता और स्पष्ट ज्ञानका विषय होता है, इसे और शब्दोमे स्पष्ट समझ लीजिये कि प्रत्यक्षज्ञान तो तदाकार होता है और जितने अतदाकार विषय हैं वे सब अस्पष्ट ज्ञान होते हैं। थोडा सा उपयोग लगा कर सुनिये यह सिद्धान्तकी और अपने आपके स्वरूपके मर्मकी वात वतायी जा रही है और यह भी समझते जावेगे कि वेचारे क्षणिकवादियोने भूल नही की अपनी बुद्धि जितनी थी उसके अनुसार वहुत कुछ अच्छा कहा यह भी थोडा परख लो, और यह भी परखको कि इस सम्बन्धमे त्रुटि किस जगह की जिससे कि ऐसा सिद्धान्त बन गया। जैसे झट आखोसे निरखकर जो समझा गया, जो पदार्थ जल्दी समझा गया वह तो हो गया प्रत्यक्ष अब थोडी देर बाद उसमे कल्पनाएँ उठने लगी तब ये ज्ञान जितने भी हुए ये निर्विषय हुए, जैसा जो है उसे वैसा जानना यह कहलाता है इसका तदाकार ज्ञान और जो पदार्थ नही है उसे जानना वह अतदाकार ज्ञान। क्षणक्षयवादियोका सिद्धान्त बताया जा रहा है।

क्षणिकवाद सिद्धान्तमे निर्विषयत्व और अतदादाकारका रूप—अतदाकार ज्ञानकी अस्पष्टताकी मान्यताके प्रसङ्गमे उनसे पूछा जा रहा है कि कभी कभी दो चन्द्रमा दिखने लगते है निकट ही निकट कुछ ही दूरमें बिल्कुल स्पष्ट दीखते हैं, तो चन्द्रमाका दिख जाना फिर तो प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिए ? इसपर वे क्षणक्षयवादी उत्तर देते है कि हम प्रत्यक्षज्ञानकी बात क्या करें वह तो परोक्षज्ञान भी नही है, वह तो समीचीन भी नही है। तो चन्द्रमा दिख जाना यह अस्पष्ट बात भी नही, क्योकि यो नही है कि दो चन्द्र वहा है नही और जान रहे हैं तो यह तो निर्विषय ज्ञान है, मिथ्या ज्ञान है। जब आखोंका दोष दूर करके बादमे उस चन्द्रमाको देखते है तब तो एक ही चन्द्र दीखता है। तो जैसे यह निर्विषय है इसी प्रकार क्षणक्षयवादी जन उन सारे ज्ञानोको निर्विषय मानते हैं जिनमे कुछ बात समझमे आये। जैसे हम आप लोगो की समझमें आ रहा है कि यह चौकी है। तो यह चौकी है यह जो ज्ञान है यह निर्विषय ज्ञान है। चौकी है ही नही। जैसे स्वप्नमे अनेक चीजे दिखा करती हैं पर वहा कोई भी चीज है नही, इसी प्रकार इस जीवनके लम्बे समयमे ये चीजे दिख रही हैं तो ये कुछ चीजें नही है। तो फिर वास्तविक चीज क्या है ? इन सब पदार्थोंमे जो निरंश अंश है वह वास्तविक चीज है, तो कुछ भी हाथ न आया। वह है तत्त्व और उसका बोध हुआ वह है प्रत्यक्ष। बाकी या तो परोक्ष है या मिथ्या है।

क्षणक्षयवादमे निरंश अंशकी परमार्थरूपता—क्षणिकवादियोका यह सिद्धान्त है कि इस चौकीमे जो ऐसा अंश है कि, जिसका दूसरा टुकडा न हो सके, ऐसा अंश जो दूसरे समयमे न रह सके, ऐसा अंश जिसमे शक्तिकी डिग्रियाँ नही होती

अर्थात् एक जघन्य डिग्री हो शून्यसे उठकर केवल १ नम्बरका ही उसमें पावर हो, ऐसा जो निरंश अंश है वह तो है परमार्थ वस्तु, बाकी जो कुछ दीख रहा है वह सब झूठ है। तो इस सारेका जो कुछ ज्ञान है वह सब मिथ्या ज्ञान है और उस निरंश अंशका जो ज्ञान है वह है सही ज्ञान। उसके जाननेसे मोक्ष मिलेगा, बाकी जाननेसे संसारका बन्धन है। यह क्षणिकवादका सिद्धान्त है।

उत्तरज्ञानसे बाधित होनेसे पूर्वज्ञानकी निर्विषयताकी असिद्धि—दोषनिवारणके लिये क्षणिकवादमे यह कहा गया कि जो दो चन्द्रमा दिखते हैं वह निर्विषय है क्योकि बादमे स्पष्ट ज्ञानसे यह झट मालूम होता है कि नही, चन्द्रमा तो एक ही है। तो बादमे होने वाले स्पष्ट ज्ञानसे बाधा आनेसे यदि पूर्वज्ञान निर्विषय हो जाता है तो बाहरमे हम कोई चीजको अस्पष्ट निरख रहे हैं तो उससे पासमे जो पदार्थका स्पष्ट प्रतिभास हो रहा है वह भी बाधित मान लिया जाय। कदाचित् एक ज्ञानसे दूसरा ज्ञान अगर बाधित भी हो जाता है तो भी पीछे ही तो निर्विषय हुआ। जिस समय ज्ञान जो कुछ जानता है उस समय ज्ञान निर्विषय नही हुआ करता है। ज्ञान है और वह ज्ञान किसी न किसी पदार्थको जानता रहता है। यह ज्ञानका स्वभाव है। जब तक यह ज्ञान मोहवश बाह्य पदार्थोंके जाननेमे प्रवृत्ति बनाये रहता है तब तक इस जीवको आकुलता है और जब यह ज्ञान अपने स्वरूपको जाननेमे प्रवृत्त होता है तो उसकी आकुलता शान्त हो जाती है, ऐसा ही अशान्तिका अभाव यदि कुछ देर तक इसी निर्विकल्प दशामे बना रहे तो उसको कैवल्यकी प्राप्ति हो जाती है।

इच्छासे विकासका विरोध—देखिये भैया! कितना विचित्र जालसा है कि जो वैभवके सचयके लिये शिर उठाये फिरता है उसे वैभव मिलता नही और जो वैभवके सचयसे उपेक्षा रखकर कुछ वाञ्छा ही नही रखता उसके चरणोमे सारा वैभव मानो एकत्रित होकर पूजने आता है। जब तक हम इन सब पर पदार्थोंको जाननेकी तडफन बनाये रहते हैं तब तक जानकारी बनती नही और जब सब परका विकल्प तोडकर विश्रामसे बैठते है, किसी भी पदार्थका जाननेकी इच्छा नही रखते है जब ऐसी बात मनमे ठानकर बैठते है कि किसी भी बाह्य वस्तुमे मुझे लाभ क्या? उनमे पडकर क्यो अपना समय बरबाद करना, क्यो उनमे पडकर अपने उपयोगको मलिन करना, क्यो अपने इस ज्ञानमहलमे इन बाहरी पदार्थोंको स्थान दें। मुझे कोई आवश्यकता नही कि मैं किन्ही बाहरी पदार्थोंको जानू, बाह्यको जाननेसे ही तो हमने क्लेश पाया है, तो किसी भी बाह्यको जाननेको इच्छा जब न रही और विश्रामसे अपने आपमे स्थित हो गया तो उसमे एक ऐसा अद्भुत बल प्रकट होता है कि विश्वके समस्त पदार्थ अवश होकर मानो जानकारी मे उन्हें आना ही पडता है। इस तरह से उसके ज्ञानमें सारे पदार्थ प्रतिबिम्बित होने लगते हैं।

केवलज्ञानमे सर्वजाननकी अनिवार्यता—कोई योगी पुरुष ऐसा कर

सकता है कि मुझे किसी भी पदार्थ को नहीं जानना है, हम तो अपने आपमें ही ठहरे हैं, कोई पदार्थ मेरे जाननेमे मत आये, ऐसी बात अब सर्वज्ञदेवके नही निभ सकती, उन सब पदार्थोंका मानों चैलेन्ज ही है कि हम तुम्हारे ज्ञानमे आये बिना नहीं रह सकते। हम सबको तुम्हें जानना ही पडेगा और एक बार नही, प्रतिसमय निरन्तर तुम्हें जानते ही रहना पडेगा, क्यो सर्वज्ञ हुए? अगर तुम्हें हम सबको जानना न था तो तुम सर्वज्ञ ही न बनते। अगर सर्वज्ञ हुए हो तो तुम्हे हम सबको जानना ही पडेगा यह एक अलङ्कारमे कहा जा रहा है। कहीं वे पदार्थ इस तरहसे कहा नही करते कोई जबरदस्ती नही। इसी प्रकारसे समझ लो, जो व्यक्ति सर्व परका विकल्प त्यागकर एक अपने आपमे स्थित होकर विश्रामसे बैठा हुआ है तो सर्व पदार्थोंको मानो विवश होकर उसकी जानकारीमे आना ही पडता है।

इच्छामात्रमे विकासकी अवरोधकता—अभी एक प्रश्न हुआ है कि जिज्ञासा अर्थात् जाननेकी इच्छा हेय है अथवा उपादेय? तो उसका समाधान यह है कि कुछ पदवियोमे, कुछ स्थितियोमे जहाँ कि अनेक विषय कषाय विकल्प सताते रहते हैं वहाँ कुछ ऐसे तत्त्वके जाननेकी इच्छा बने कि जिसकी जानकारी मिलनेपर ये विकल्प शान्त हो जायें तो उस कालमे उस पुरुषके लिए वह जिज्ञासा उपादेय है, पर जिज्ञासाके उपादेयका निर्णय सर्वरूपोमे इसलिए नही किया जा सकता कि वही पुरुष उस तत्त्वके जाननेके बाद पदार्थोंके सही स्वरूपको समझनेके बाद अब उसे जाननेकी इच्छा भी बुरी लग रही है और अब वह यह चाह रहा है कि कुछ भी बाह्य तत्त्व मेरे जाननेमे न आये, कुछ भी विकल्प मेरे ज्ञानमें न आये। मैं निर्विकल्प रहना चाहता हूँ इसलिए परमार्थको तो जाननेकी इच्छा है। चाहे ज्ञानकी इच्छा हो या अन्यकी इच्छा हो, इच्छा मात्र हेय है। पर स्थितियोंके अनुसार जब वह जिज्ञासा हित करनेमे समर्थ है तब तो उपादेय है, पर परमार्थसे तो इच्छामात्र आत्माके विकासके अवरोधका ही कारण है अर्थात् एक विकल्प ही कारण है।

ज्ञानका स्वरूप और उसकी वर्तमान पद्धतिका कारण—आत्मा तो ज्ञानस्वरूप ही है। ज्ञान स्वरूपसे ही प्रकट होता है, किन्हीं बाह्य साधनोसे प्रकट नही होता है, किन्तु अनादिसे इस आत्मापर ज्ञानावरण कर्म छाया हुआ है, तब जितना जिसके ज्ञानावरणका क्षयोपशम होता है, अलगाव होता है उसके उतने ज्ञानका विकास होता है। इस क्षयोपशमिक ज्ञानविकासके उत्पादकी ऐसी प्रकृति है, वह यथायोग्य बाह्य नोकर्मोंका सन्निधान पाकर होता है। इसी मूल व्यवस्थाके कारण मति-स्मृति, प्रत्यभिज्ञान आदिक ज्ञानोके विकासमें विधि, पद्धति स्थिति विभिन्न हो गई हैं तब इसकी सिद्धिमें नाना सिद्धान्त बन गये हैं। मूल स्वरूपकी दृष्टि रखकर जाननेमे विवाद नही रहता।

स्पष्टता और अस्पष्टताकी ज्ञानधर्मत्वके रूपमे सिद्धि—किसी ज्ञानसे

पदार्थ स्पष्ट जाना जाता है और किसी ज्ञानसे पदार्थ अस्पष्ट जाना जाता है । तो इसमे जो स्पष्टता हुई अथवा अस्पष्टता हुई वह क्या ज्ञानका धर्म है या पदार्थका धर्म है ? इसपर विचार करते हुए यह बात बतायी थी कि स्पष्टता तो ज्ञानका ही धर्म है अथवा अस्पष्टता ज्ञानका ही धर्म है केवल ज्ञानके धर्मको विषयभूत पदार्थोंमे उपचरित करके यह व्यवहार किया जाता है कि यहाँ यह पदार्थ स्पष्ट रहा, यह पदार्थ अस्पष्ट रहा । देखिये व्यवहारमें भी लोग यही कहते है कि हमको वह पदार्थ स्पष्ट लगा और अमुक पदार्थ अस्पष्ट लगा । पदार्थ तो जाना तक भी नही जाता परमार्थसे । जाननेमे तो अपने अन्तरका ज्ञेयाकार आया करता है । आत्मा अपने प्रदेशोंको छोडकर कही बाहरी गुणोका व्यापार नही करता । आत्माके गुणोका जो कुछ भी व्यापार होता है, प्रयत्न होता है वह आत्मप्रदेशोमे ही होता है फिर स्पष्टता व अस्पष्टताको अर्थका धर्म कहना तो असगत ही है ।

पदार्थके प्रदेशोमे ही पदार्थकी सर्वस्वता— देखिये ! किसी भी पदार्थका परिणमन पदार्थसे बाहर नही होता । जैसे लोग झट कह देते है कि यह प्रकाश सूर्य का है । अरे सूर्य कितना बडा मानते हो ? जितना भी बडा मानो, करीब पौने दो हजार कोशका मानो तो सूर्यका प्रताप, प्रकाश, रूप, कान्ति सब कुछ उस सूर्यके प्रदेशो में ही रहेगे । सूर्यके प्रदेशोसे बाहर सूर्यकी कोई भी चीज कभी पहुँच ही नही सकती । तब फिर यह प्रकाश किसका है ? जो चमक रहा है उसीका ही प्रकाश है । भीट चमक रही है तो वह भीटका प्रकाश है, दरी जितना कुछ चमक रही है वह दरीका प्रकाश है, इस प्रकार पदार्थके परिणमन होनेमे निमित्त सूर्य है । अतएव पदार्थके प्रकाशको सूर्यमे आरोपित करके, निमित्तमे आरोपित करके लोग ऐसा व्यवहार करते है कि यह सब सूर्यका प्रकाश है और यह व्यवहार बहुत सुगम लगता है और यह व्यवहार बहुत सुगम लगता है और यह जाननेमे कठिनाई लगती है कि यह प्रकाश तो प्रकाशित पदार्थका ही प्रकाश है सूर्यका नही । तो इसी प्रकार जब कोई व्यवहार किसी कारणसे विशेष प्रचलित हो जाता है तो उसके विरुद्ध कुछ बात सोचनेमे कठिनाई विदित होती है । ज्ञान तो बाहरी पदार्थोंको परमार्थसे जानता तक भी नही है फिर पदार्थको स्पष्ट कहना अथवा अस्पष्ट कहना जरा भी फब नही सकता । लेकिन जैसे प्रकाशित पदार्थके प्रकाशका निमित्तमें आरोप किया गया है सूर्यका प्रकाश है । इसी प्रकार ज्ञानकी स्पष्टता और अस्पष्टताका निमित्तमे अर्थात् विषयमे आरोप किया जाता है , यह स्पष्टता पदार्थकी है ।

स्पष्टत्व और अस्पष्टत्व अर्थकी सिद्धिके स्रोतका प्रश्न— यहाँ क्षणिकवादी कुछ विकल्पोसे अपना पक्ष सिद्ध करना चाहते हैं कि यदि ज्ञानके धर्मका विषयमे उपचार किया जानेसे पदार्थमे स्पष्टता और अस्पष्टताका व्यवहार होता है, थोडी देरको यह मान भी लिया जाय तो भी यह तो बतलाओ कि विषयी ज्ञानमे

अर्थात् जानने वाले ज्ञानमें स्पष्टपना या अस्पष्टपना आया कहाँसे ? इन धर्मपनेकी सिद्धि कैसे करोगे ? यदि अन्य ज्ञानकी स्पष्टता और अस्पष्टतासे ही करोगे तो उसमें अनवस्था दोष होगा अथवा इतरेतर दोष आयगा। यही ज्ञान अपनी स्पष्टताके द्वारा अपने स्पष्टत्व धर्मको जान ले तो अब स्पष्टत्व धर्म सिद्ध हो तो स्पष्टता जानी जाय। और जब स्पष्टता जान ले तब धर्म सिद्ध हो। या अन्य अन्य स्पष्टताबोधक ज्ञान मानने पड़ेंगे तो अनवस्था होगी। यदि, कहो कि स्वतः ही इसके स्पष्टपनेकी और अस्पष्टपने की सिद्धि होती है तो फिर सारे ज्ञानोंमें एक साथ समानरूपसे या तो स्पष्टता आ जानी चाहिये या अस्पष्टता। क्योंकि, सब ज्ञानोंमें स्पष्टत्व या अस्पष्टत्व ज्ञान धर्म-पना तो स्वतः ही हो गया है। ऐसी युक्तियोंसे शून्यवादी विकल्प रखकर ज्ञान-की सिद्धिका निराकरण कर रहे हैं।

यथार्थता और अयथार्थताके परिनयका उपाय विकल्पोंका उत्थापन—इस प्रसङ्गमें एक बात यह भी जान लीजिए कि किसी के मन्तव्यका निराकरण करने के लिए आप उसके स्वरूपमें विधिसे जितना अधिक विकल्प उठाकर पूछेंगे उतना ही उसका पक्ष कमजोर हो जायगा। और यदि कोई गलत बात है तो वह तो उलझ जायगा, उससे उत्तर भी न बन सकेगा और स्ववचन विरोध होगा। यदि कोई सत्य बात है तो कितने ही विकल्पोंसे पूछा जानेपर भी चूँकि उसकी दृष्टिमें यथार्थ बात है तो वह उत्तर देकर अपना निभाव कर लेगा। जैसे न्यायालयोंमें किसी घटनाकी यथार्थता जाननेके लिए अनेक विकल्प करके पूछा जाता है जब यह घटना हुई तो तुम्हारा मुख किस तरफ था किस जगह खड़े अथवा बैठे थे। उस समय तुम्हारे सामने कौन था ? सूर्य तुम्हारे किस बगल था, कितने बजे थे, उस समय कितने लोग थे यों दसों बातें थोड़ी थोड़ी देर बादमें पूछते हैं। यदि घटना यथार्थ है तब तो वह सही उत्तर दे देगा. और अगर घटना अयथार्थ है तो वह कहाँ तक उन दसों बातोंका उत्तर अविरोध पूर्वक दे पायगा, वह तो घबड़ा जायगा। कितने ही विकल्प किए जाने पर भी वह उस घटनाका निभाव नहीं कर सकता।

स्याद्वादसे ही समस्याओंका समाधान—युक्तियां और विकल्प तो ऐसे हैं कि किसी को भी बातके न सिद्ध कर पानेमें मजबूर किया जा सकता है। कोई पूछ बैठे कि यह बताओ कि तुम जिस जीभसे बोलते हो वह तुम्हारी है यह कैसे जाना ? यह जीभ तुमसे न्यारी है या तुमसे मिली है ? अगर तुमसे न्यारी है तो तुम्हारी जीभ क्या रही ? तुम्हारा बोलना क्या रहा, । जीभने कुछ भी कहा, तुमने तो नहीं कहा। वह न्यारी है, तुम न्यारे हो। और, यदि जीभ और तुम एकमेक हो तो जैसे थूलमथूला तुम हो वैसी ही थूलमथूला जीभ हुई, फिर तो वह जीभ तुममें सर्वत्र समा जाना चाहिए। तो भिन्न अभिन्नकी बात उठाकर कितने ही विकल्प करके उस बोलने वाले की जबान बन्द कर दो। तो किसी भी प्रसङ्गमें स्याद्वादका सहारा लिए बिना विजय

नही हो सकती। अरे तुम्हारी जीभ भिन्न है क्योकि तुम कहलाते हो ये पूरे सवा मनके शरीर वाले और जीव है एक छोटा सा अवयव इस कारणसे तुमसे जीभ न्यारी है, किन्तु तुम्हारे इन अङ्गोका इस शरीरसे सम्बन्ध है ना? अङ्गोके समूह बिना तो कोई शरीर नही होता सो जीभ अभिन्न है। धर्मापेक्षाओकी दृष्टि लगावो तो सिद्ध कर लो।

तथाविध ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे स्पष्टता व अस्पष्टताकी सिद्धि — इस प्रसङ्गमे क्षणक्षय वादियोने यह पूछा था कि अस्पष्टता ज्ञानका धर्म है यह सिद्ध तुम कैसे करोगे ? क्या उस हीके अस्पष्टत्वको उसके ही अस्पष्टत्वसे या स्वत । इनोमे आपत्ति देनेपर आचार्यदेव समाधान कर रहे है कि जिस विधिको उठाकर अस्पष्टताका निराकरण किया, इस तरह सिद्धि नही है, किन्तु ज्ञान यह स्पष्ट है यह अस्पष्ट है यह क्यो बना ? इसकी सिद्धि और प्रकारसे है। वह प्रकार क्या है ? देखिये जीवका स्वभाव एक ज्ञानरूप ही है। किसी भी जीवकी ऐसी पहिचान करने जायेगे ना ज्ञान धर्मसे ही पहिचान कर सकेंगे। उसमे जाननेकी शक्ति है और शक्तिका तो कोई प्रत्यक्ष करता नही, किन्तु उसकी वृत्ति देखकर जान रहा है, हिल रहा है, भाग रहा है, खा रहा है, कुछ भी प्रवृत्तिया देखकर यह ज्ञान होता है कि इसमे ज्ञान है। जब यह विदित होता है कि इसमे ज्ञान है तब हम जानते हैं कि यह जीव है। जीवका स्वरूप ही ज्ञान है। ज्ञानके अतिरिक्त आत्माका हम और कुछ स्वरूप नही समझ सकते, ज्ञान लक्षण बिना पहिचाना ही नही जा सकता। यह आत्मा तो आत्मा ज्ञान-स्वभावी है, ज्ञानका काम जानना है। जाननेमे कोई सीमा अथवा शर्त नही हुआ करती है कि ऐसा हो तो हम जानें। लेकिन, अनादिकालसे आत्माके साथ जो ज्ञानावरण कर्मका भार लदा है, जो विषय कषाय आदिक आकांक्षावोका भार लदा है उसके कारण इसका ज्ञान दब गया है, प्रगट नही हो रहा है. आवरण होनेसे वस्तुका प्रकाश नही होता। जैसे कोई यहाँ पर्दा डाल दिया जाय तो भीतर पदार्थ आवृत है, उसका अब प्रागट्य नहीं है, वह स्पष्ट नही है, लोगोको नजरमे नही आता। आवरण हटा दिया जाय तो पदार्थ जाननेमे आ जाता है, इसी प्रकार आत्मामे ज्ञानावरणका एक आवरण लगा है, उस आवरणका जितना क्षयोपशम होता है, अलगाव होता है उतना ज्ञानका प्राकट्य होता है।

ज्ञानप्राकट्यका अन्तरङ्ग निमित्त ज्ञानावरणका क्षयोपशम — देखिये ज्ञानके प्रगट होनेमे मूल पद्धति यह है, इस मौलिक बातको न जाननेके कारण ज्ञानके विकासका कारण कोई लोग प्रकाश मानते हैं, प्रकाश न हो तो हम ये सब नही जान पाते, कोई लोग इन्द्रियको मानते है, इन्द्रिया न होती तो ये सब कैसे जान पाते। कोई लोग पदार्थका समूह मानते है। ये पदार्थ इतने जुटे न होते तो इनका ज्ञान कैसे होता, कोई सन्निकर्ष मानते हैं, यदि पदार्थका और इन्द्रियोका सम्बन्ध न बनता तो कैसे जानने ऐसा मानते है पर उसकी सुधि कोई नही लेता है जो ज्ञानके विकासका वास्तविक

कारण है और जिसके न होनेपर यह प्रकाश भी धरा रहे ये इन्द्रिया भी बनी रहे, यह पदार्थोका जमघट भी बना रहे तब भी ज्ञान नही होता। यहाँ हम आपके ज्ञानविकास का मूल कारण है ज्ञानावरणका क्षयोपशम और अन्तरङ्गमे उस प्रकारका आत्मा का प्रसाद।

आवरणप्रकृतियाँ— *जितने प्रकारके ज्ञान हैं उतने ही प्रकारके ज्ञानावरण* होते हैं। कर्म यद्यपि मूलमे ८ बताये हैं, पर उन ८ कर्मोके भी और भेद होनेसे १४८ प्रकृतियाँ बतायी गई हैं पर उन १४८ प्रकृतियोमे भी प्रत्येक प्रकृतिमे अनन्त प्रकृतियाँ पडी हुई हैं। जैसे ज्ञानावरणके सम्बन्धमे ५ भेद बता दिये—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। किन्तु मतिज्ञानमे जितने भेद पडे हुए हैं उतने उसके यदि विकास नही है तो उतने ही आवरण हैं। जैसे अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा आदि ज्ञानावरण। घटको न जाना तो घटावग्रह ज्ञानावरण, चौकीको न जाना तो चौकीअवग्रह ज्ञानावरण। यो उन्हीके ईहाज्ञानावरण आदिक भी हैं। जितने पदार्थ हैं उतने सत् हैं उन सबको न जान सके उतने ही इनके आवरण होते है। तब कितना विस्तार हो गया कर्मका ? अनन्त विस्तार हो गया।

ज्ञानावरण एव वीर्यान्तिरायके क्षयोपशमके प्रभावसे वर्तमान ज्ञानविकास—उन समस्त ज्ञानावरणोमेसे जिस ज्ञानावरणका क्षयोपशम बना है, जो कि आत्माके प्रसादसे निर्मलतासे बना करता है उतना ज्ञानका विकास होता है। ज्ञानके उत्पन्न होनेका मूल मर्म यह है इस समय। तो जैसे जितने पदार्थ हैं उतने *पदार्थोके ज्ञानके आवरण भी होते हैं, ज्ञान भी होते हैं। तो इसी प्रकार* जानने की जो दो पद्धतियां है स्पष्ट और अस्पष्ट। तो ऐसे भी सब आवरण दो दो प्रकारसे हैं— स्पष्टज्ञानावरण, अस्पष्टज्ञानावरण। उसका क्षयोपशम होता है व साथ ही उसके साथ वीर्यान्तराय कर्मका भी क्षयोपशम होता है तो जब स्पष्ट ज्ञानावरण और वीर्यान्तिरायका क्षयोपशम विशेष प्राप्त होता है तो किसी ज्ञानमे स्पष्टता प्रसिद्ध होती है व किसी ज्ञानमे अस्पष्टता प्रसिद्ध होती है। मूल बात यहासे चली तब कोई ज्ञान स्पष्ट बना और कोई ज्ञान अस्पष्ट बना। जब अस्पष्ट ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे ज्ञान बना तो अस्पष्ट ज्ञान बना। उसका प्रतिबन्धक ज्ञानावरण है। प्रतिबन्धक जब नही रहता है तो पदार्थ प्रकट हो जाया करता है। यह बात लोकमे भी सर्वत्र पहिचान ली जाती हैं। तो स्पष्टता किसका धर्म है ? ज्ञान का धर्म है। कभी बोला भी जाय कि पदार्थ स्पष्ट हो गया, पदार्थका विशेषण बनाकर बोलेंगे तो ज्ञानके धर्मका पदार्थमें उपचार करके व्यवहार किया गया, ऐसा समझना चाहिए।

स्पष्टताके प्रति इन्द्रियके करणत्वकी असिद्धि—अब इस सम्बन्धमे

मीमांसक लोग यह कहते हैं कि नहीं, जो किसी ज्ञान द्वारा किसी पदार्थका स्पष्ट प्रतिभास हुआ, जो स्पष्टता विदित हुई वह स्पष्टता इन्द्रियसे उत्पन्न हुई। इन्द्रियके कारण उनको स्पष्ट जाना। उनके प्रति समाधान दिया जाता है कि यदि इन्द्रियसे ही स्पष्टता होती है इन्द्रिय स्पष्ट ज्ञान करती है तो इन नेत्रोसे जब हम एक मील दूरकी चीज देख रहे हैं तो हमे वह अस्पष्ट क्यो समझमे आता? इन्द्रिय तो वही है, इन्द्रियमे यदि स्पष्टता उत्पन्न होती है तो दूरके पदार्थ देखनेमे भी स्पष्ट प्रतिभास होना चाहिए। तथा उल्लूको दिनमे क्यो नही स्पष्ट ज्ञान होता? उसकी आखें जैसी रातमे है वैसी ही तो दिनमे भी हैं। इन्द्रियसे स्पष्टता मान लेनेपर ऐसी अनेक बातें पूछी जा सकती है।

इन्द्रियके उपघातके कारण इन्द्रियजज्ञानमें अस्पष्टताकी असिद्धि—अब इस सम्बन्धमें यदि यह कहो कि स्पष्टताको उत्पन्न करने वाली जो आँख है वह यदि अत्यन्त दूर देशकी बातको देखे तो दूरकी चीजके द्वारा ये इन्द्रियाँ दब गयी, उपहृत हो गयी, इनपर कुछ दोष पड गया। दूरकी चीज देखनेमे, फिर दृष्टि नही लगती है और उल्लूकी आँखोको सूर्यकी किरणोने दबा डाला जिस कारणसे उल्लूको दिनमे स्पष्ट नहीं दिखता। तब इसपर उनसे पूछा जा रहा है कि उस कारणने इन्द्रियका उपघात किया या इन्द्रियकी शक्तिका? किसको दबाया? यदि कहो कि इन्द्रियको दबाया तो यह प्रत्यक्ष विरुद्ध बात है, इंद्रियाँ तो ज्योकी त्यो साफ पडी हैं। दूरका पदार्थ देखा तो वही आंखें है जिसपर कोई पर्दा भी नही पडा है और उल्लूकी भी आखें वही हैं चाहे दिनमें देखे चाहे रातमे। उस इन्द्रियका स्वरूप ज्योका त्यो बराबर नजरमे आ रहा है।

इन्द्रियशक्तिके उपघातका अर्थ भावेन्द्रियावरण—यदि कहो कि इन्द्रिय का उपघात नही किया किन्तु इन्द्रियकी शक्तिका उपघात किया तो वही बात योग्यता वाली सिद्ध हो गयी कि इन्द्रियमे जो जाननेकी योग्यता है, भावेन्द्रियनामक जो इन्द्रिय ज्ञानावरणका क्षयोपशम है उसके कारण पदार्थ जाना जाता है तो जहाँ स्पष्ट ज्ञान करनेका क्षयोपशम है वहाँ स्पष्ट ज्ञान करनेका क्षयोपशम है वहा अस्पष्ट होता है। इन्द्रियकी शक्ति एक भावइन्द्रियनामक क्षयोपशमके सिवाय और कुछ नही है। वह इन्द्रियकी शक्ति क्या है? जिस शक्तिसे हमने पदार्थको स्पष्ट जाना। कल्पना तो करो जरा, उसे इन्द्रियकी शक्ति कहे या ज्ञानकी शक्ति कहें। ज्ञानरूप ही तो भाव इन्द्रिय होता है तो भाव इन्द्रियका ही नाम ज्ञानकी शक्ति है, और भाव इन्द्रियनामक इन्द्रिय से स्पष्टता होती है, ऐसा माननेपर तो जैन सिद्धान्तकी ही सिद्धि हुई कि जैसी योग्यता है, जैसा क्षयोपशम है वैसा ज्ञान प्रकट होता है।

अपने अपरिचयमे विडम्बना—इस प्रकरणमे प्रत्यक्षके लक्षणकी मीमासा की गई है। प्रत्यक्षका लक्षण क्या है? जो विशद ज्ञान हो उसे प्रत्यक्ष कहते हैं।

जब विशद ज्ञानपर विचार चलने लगे कि विशदता स्पष्टता ज्ञानमें किस प्रकारसे आया करती है। तो सुननेमे आलस्य आ जाता है। क्यो आ जाता है? देखिये ! सब बातें है तो अपने आपकी अपने ही स्वरूपकी ये चर्चायें हैं किन्तु अपने आपके स्वरूपका कुछ परिचय न होनेसे अपनी ही बात अपनी समझमें नही आती। जैसे कोई आवेशी वक्ता ऐसा भी होता है कि जिसका व्याख्यान श्रोताओको सुननेकी रुचि तो नही है, खाली यो ही बैठे रहते हैं श्रोताजन, वे तो चाहते है कि अब यह कुछ भी न बोले तो अच्छा है, पर वह वक्ता यह समझ रहा है लोगोको जो कुछ हम बोल रहे हैं बहुत पसद है। यद्यपि ये श्रोताजन कभी कभी मखौल वाली ताली भी बजा देते हैं न सुननेकी वाञ्छा होनेके कारण, पर वह वक्ता यही समझता है कि सभी लोग जो कुछ हम बोल रहे है उसको सुनकर बहुत खुश हो रहे हैं। और, वह अपने व्याख्यान को और भी बढाता जाता है। वह भावुक वक्ता अपने बारेमे कुछ भी निर्णय नही कर पाता। ऐसे ही नासमझ वक्ताकी तरह ये ससारके सब बाल लोग भी अपने स्वरूपकी सुधसे रहित हैं, जिससे अपनी भी बात अपनी समझ मे नही आती। जो बात स्पष्ट है वह भी ज्ञानसे बाहर हो जाती है, किन्तु बाह्य दृष्टिके कारण अपनी चतुराई अधिक माना करता है। इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि हमारे चित्तमे बाह्यपदार्थोंके प्रति प्रेमकी वासना अधिक बनी हुई है और किसी समय यद्यपि उस बाह्य वस्तुका प्रेम सामने स्पष्ट नजर आ रहा है, ख्याल भी नही हो रहा है लेकिन वासना इस प्रकार पडी हुई है कि वह सस्कार हमारे ज्ञानको इतना बिगाड रहा है कि हम अपने स्वरूपकी सुध लेनेके लिए, स्वरूपकी बात जाननेके लिए, रुचि भी नही करते और न अपनी प्रतीति बनाते है। यह सब बाह्यपदार्थोंसे प्रेम होनेके, परिग्रहमें आसक्ति होनेका सस्कार है, उस सस्कारका यह फल है कि यह आलसी बना हुआ है।

आलस्यका स्वरूप—देखिये ! आलस्य बताया गया है रत्नत्रयमे प्रवृत्ति न करनेमे। कोई भी पुरुष बहुत दौड-धूप करता है, जगह जगह जा कर माल खरीदता है और अनेक प्रकारके कष्ट भोगकर बहुत बडा व्यापार करता है तो लोग कहते हैं कि इसके कुछ भी आलस्य नही है, पर ज्ञानी कहता है कि वह महा आलसी है। मोक्ष मार्गमे उत्साह न होनेको, प्रवृत्ति न होनेको आलस्य कहा गया है। तो यह समझ लीजिए कि हम लोगोका यह प्रमाद है, आलस्य है जो हमारी दृष्टि हमारे ही स्वरूप पर टिक नही पाती और कितनोको ही तो उसका अवलोकन भी नही होता।

जगतकी असारताका परिचय—भैया ! अधिक न बने तो कमसे कम इतना तो हम आप मनुष्य हर एक कोई कर सकता है क्योकि थोडा बहुत परिचय सबको है कि ससार असार है, इसमें कोई किसीका नही है, सभी स्वार्थके साथी हैं, सभी दूसरो को धोखा देते हैं, हमारा कोई वास्तवमे मित्र नही है, इतनी बातोका

ज्ञान तो सभी मनुष्योको है, क्योकि इस जीवनमे इस स्वार्थभरी दुनियामें घटनाये ऐसी दसो बीसो घट चुकी होगी। उस समय चाहे विचार न किया हो, पर तत्काल तो यह विचार किया ही होगा कि सब धोखा है, कोई किसीको चाहने वाला नही है, जब इतना बोध है हम आप सभीको तो इतनेसे ही अपना काम निकाल सकते हैं। न भी तत्त्वस्वरूपका अधिक ज्ञान हो, न भी सिद्धान्तके सूक्ष्म कथनका ज्ञान हो, पर जितना ज्ञान है उतना ही बहुत काफी है। इतना तो जान ही लिया गया कि समस्त बाहरी पदार्थ समस्त ये जीव जिन्हे हम स्त्री पुत्र भी कहते हैं ये सब अपने अपने स्वार्थके हैं और अपने अपने कर्मोंके साथी हैं, इतने ही ज्ञान द्वारा हम कल्याणका उपाय बना सकते हैं।

पदार्थोंकी स्वरूपतः स्वार्थवृत्ति— भैया ! यह कोई ग्लानिकी बात नही है कि यह सोच लिया जाय कि ये सब स्वार्थी हैं चाहे कोई कितना ही घरमे भला हो, घरभरका बडा संरक्षण करता हो, चिन्ता रखता हो। अपने शरीरकी, अपने खाने पीने की चाहे कोई सम्हाल न करता हो, पर घरमे रहने वाले अन्य सभी लोगो की बडी सम्हाल करता हो इतनेपर भी वह बडा स्वार्थी है, स्वरूप ही है ऐसा। उसमे कोई ग्लानिकी बात नही है। प्रत्येक वस्तुका ऐसा ही स्वरूप है कि वह अपने आपमे अपना ही परिणमन करे। कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तुका परिणमन नही कर सकती। तो स्वार्थ मायने स्वका अर्थ, स्वका प्रयोजन। जब चित्तमे कोई कषाय उत्पन्न होती है तो उसके मिटानेके लिये वह प्रयत्न करता है, बस यही उसका स्वार्थ है। बडे से बडे पुरुष भी जब किसी दूसरे दुःखी पुरुषको देखकर दुःखी हो जाते हैं तब अपनी उस दुःखका वेदनाको मेटनेके लिये उस दुःखी पुरुषको भोजन वस्त्रादि देकर उसकी वेदनाको मिटाते हैं। तो इसमे भी उसका स्वार्थ ही रहा। तो ऐसा समझकर किसीसे ग्लानि न करना चाहिए पर प्रत्येक वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है।

समागमकी असारताके परिचयसे कल्याणलाभकी सुगमता— जब ऐसा समझ लिया गया कि प्रत्येक जीव स्वार्थी है, उनके सम्पर्कसे हमे धोखा ही होता है तो इतना जाननेके बाद जरा हिम्मत बना लो, सबकी उपेक्षा कर दो, सबको भूल जावो, किसीको भी अपने चित्तमे स्थान मत दो, ऐसी बात बनानेमे यदि साहस किया और यह स्थिति यदि किसी प्रकार बन गयी तो अपने आपमे वह प्रकाश मिलेगा जो सब समाधान दे देगा कि जगतमें उत्तम तत्त्व क्या है ? आत्माका स्वरूप क्या है ? शान्ति आनन्द किस स्थितिमें है ? यह आत्मा क्या है ? सबका उसे स्पष्ट बोध हो जायगा। तो अब देख लीजिये ! कि कल्याणकी बात प्राप्त करनेके लिये सबमे उतना ज्ञान मौजूद है जिस ज्ञानका यदि उपयोग करें तो हम लोग बिना विशेष शास्त्रज्ञानके भी अपने आपसे यह निर्णय बना सकते हैं और तब विदित होगा कि यह ज्ञानस्वरूप मै कितना स्पष्ट हूँ। उसी विशदज्ञानके स्वरूपके विकासोंकी चर्चा चल रही है।

अब यहाँ इतनी बात सिद्ध की गई कि जो विशद ज्ञान स्वभावमें हो वह ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है।

ज्ञानकी स्पष्टताका तात्पर्य—अब तक यह सिद्ध किया गया है कि स्पष्ट और अस्पष्ट ज्ञान हुआ करता है पदार्थ नहीं होते। और जो स्पष्ट ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष है। जो अस्पष्ट ज्ञान होता है वह परोक्ष है। इसपर एक जिज्ञासा उत्पन्न हुई है कि ज्ञानकी स्पष्टताका तात्पर्य क्या है? ज्ञानकी स्पष्टता कहते किसे हैं? तो स्पष्टता का लक्षण बतानेके लिये सूत्र कहते हैं —

"प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासन वैशद्यम्।" २-४ ॥

ज्ञानान्तरकी आड बिना होने वाले प्रतिभासमे वैशद्यरूपता—इस सूत्रमे स्पष्टताका लक्षण कहा गया है। इस सूत्रका भाव जो भी आगे कहेंगे वह कठिन नही है। साथ ही उसमे बहुतसे तत्त्व अपने आत्माका प्रासाद बढाने वाले मिलेंगे। वैशद्यके लक्षणमे कहते हैं कि अन्य ज्ञानके व्यवधान बिना जो प्रतिभास होता है उसे वैशद्य कहते हैं। वैशद्य कहो या स्पष्टता कहो, एक ही बात है। विशद शब्दसे बनता है वैशद्य और स्पष्ट शब्दसे बनता है स्पष्टता। तो स्पष्टताका लक्षण बताया है कि जिस ज्ञानसे जाना जा रहा है उस ज्ञानका अन्य ज्ञानके व्यवधानसे न हो तो स्पष्टता है। जैसे इसी समय थोडा दृष्टान्त देकर बता दे, आँखोसे देखा झट जान गये, इसमें किसी दूसरे ज्ञानकी प्रतीक्षा नहीं करनी पडी, किसी ज्ञानके हाथ नहीं जोडने पडे कि कोई अन्य ज्ञान और बने तब हम सामनेकी चीजको जान पायें। ज्यो ही आंखे खोली कि पदार्थ जान गए। इसके बीचमे किसी अन्य ज्ञानका उदय नही है और जब अनुमान ज्ञान करते हैं, धूम देखकर अग्निका ज्ञान किया तो अग्निका ज्ञान करना अनुमान कहलाता है मगर उस अग्निका ज्ञान करनेमे धूमका ज्ञान करना पडा। तो धूमके ज्ञानका उसमे व्यवधान आ गया, सीधा ही अग्निका ज्ञान नही बना वहाँ पहिले धूम का ज्ञान किया और फिर तर्क याने व्याप्तिका ज्ञान किया। जहाँ जहा धुवाँ होता है वहा वहा अग्नि होती है, इस प्रकारका ज्ञान हुआ तब जाकर अग्निका बोध हुआ। तो आप जान गए होगे कि अग्निका ज्ञान कराने वाले अनुमान ज्ञानके बननेके लिए अन्य ज्ञानोकी जरूरत पडी, उनकी बात जोही, उनका व्यवधान बना। तो अनुमान ज्ञान परोक्ष ज्ञान हुआ, स्पष्ट ज्ञान हुआ। तो इसी दृष्टिको लेकर इस लक्षणका भेद समझियेगा।

अव्यवधानका भाव—अन्य ज्ञानोंके व्यवधान बिना जो प्रतिभास हो उसे वैशद्य कहते हैं। और, दूसरी बात भी कहते हैं। विशेषताके साथ प्रतिभास होनेको वैशद्य कहते हैं। जहा कहीं भी किसी वस्तुके लिए व्यवधानरहितकी बात कही जाय तो तुल्य जातिकी अपेक्षा कहा जाता है। जैसे वर्णन है कि स्वर्गोंके पटल ऊपर हैं, ना, जो ६२, ६३ पटल हैं और ऊपरके भी विमान वैमानिक देवोके तो उस अधरमे

है, कोई ऐसा कह बैठे कि एक पटलके ऊपर दूसरा पटक कहाँ रखा, उसके बीच तो बहुत आकाश पटा हुआ है या अन्य सूक्ष्म स्कध पडे हुए है तो अन्य जो कुछ बीचमे है उसको नजरसे बाहर कर देते हैं। पटलोकी बात कह रहे हैं। तो एक पटलके ऊपर दूसरा पटल है, उसके ऊपर अन्य पटल हैं। तो जिसकी बात कह रहे उसी जातिकी बात उसके बाद निहारना चाहिए। बीचमें क्या पडा है उसे मत निहारो! जैसे कोई एक कमरा है और उसके बाद फिर जीना है और जीनेके बाद फिर कमरा है। कोई यदि यह कह दे कि देखो इस कमरेके बादके कमरेमे अमुक चीज रखी है! तो वह कहेगा कि इस कमरेके बाद तो वह कमरा ही नही है बीचमे जीना पडा है, तो जीना की बात नजरसे दूर कर दी जाती है। जब कमरेकी बात कही जा रही है तो कमरा जातिका दूसरा पदार्थ नजरमे लिया जाता है। तो अन्य ज्ञान का व्यवधान नही है तो इस अव्यवधानमे तुल्य जातिकी बात ली गई अर्थात् अन्य ज्ञानका व्यवधान न होना चाहिए।

ज्ञानान्तरव्यवधानरहितताका उदाहरण—अन्य ज्ञानके अव्यवधानका क्या भाव है? सो इसे फिरसे थोडा दृष्टान्तमे बताते हैं। कानोसे शब्द सुनते हैं, सुन लिया, झट जान लिया। उस सुननेके बीचमे कुछ हमे और युक्तियाँ नही सोचनी पडती अन्य ज्ञानोकी आवश्यकता नही पडती। कानोमे शब्द आये, झट जान गए तो वह प्रत्यक्ष हुआ, स्पष्ट हुआ, और किन्हीं पर्यायभूत चीजोंके जाननेके लिए स्वर्ग है, नरक है, कुछ भी जाननेके लिए हमे बीचमे कितने ज्ञान बनाने होते हैं तब उसका ज्ञान होता है। तो अन्य ज्ञानोके व्यवधान बिना अथवा विशेषरूपसे जो प्रतिभास हो उसे वैशद्य कहते हैं। ज्ञानकी स्पष्टताका प्रकरण चल रहा है कि ज्ञान स्पष्ट रहता है कोई कोई! तो क्या रहता है? उसमे स्पष्टता क्या आयी? तो कितनी सुन्दर युक्ति के साथ नीतिके अनुसार बताया जा रहा है। अभी किसीसे कहे कि तुम स्पष्टकी व्याख्या करो! स्पष्ट कहते किसे हैं? तो यह बात प्राय किसीको न सूझेगी कि जिसमे अन्य ज्ञानका व्यवधान न हो उस ज्ञानको स्पष्ट कहते हैं। पर यहाँ दार्शनिक दृष्टि कितनी गम्भीर है। कैसा लक्षण बनाया है कि जो लक्षण न तो परोक्षमे जाय और न किसी प्रत्यक्षमे जाय! समस्त प्रत्यक्षोमे वैशद्य है और किसी भी परोक्षमे वैशद्य नही है।

ईहाज्ञानमें अवग्रहज्ञानका व्यवधान बतानेकी शङ्का—अब यहा एक शका की जा रही है कि मतिज्ञानके ४ भेद बताये गये– अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। पहिले एकदम किसी पदार्थको देखा तो उसका जो कुछ थोडासा ज्ञान हुआ उसे अवग्रह कहते हैं, उसके बारेमे फिर कुछ और विशेष ज्ञान हो आकाक्षापूर्वक जैसा तो ईहा ज्ञान हुआ, फिर उस ज्ञानमें निश्चय बने सो अवाय ज्ञान हुआ, और फिर उसे कभी भूल न सके, ऐसी धारणा रह जाय तो धारणा ज्ञान हुआ। ऐसे ज्ञान हम आप

रोज करते है। किसी वस्तुको देखा और सामान्यरूपसे जाना कोई आदमी आ रहा है यह अवग्रह हो गया, यह तो अमुक चद है यह ईहा हो गया। यह तो अमुक चद ही है यह अवाय हो गया। और, इसे अब भूल नही सकते, ऐसा मनमें अवधारण कर लिया तो धारणा हो गया। इस पद्धतिसे सबके ज्ञान हुआ करता है। यहा शकाकार यह शङ्का कर रहा है कि अवग्रह तो ठीक जान लिया, उसमे अन्य ज्ञानका व्यवधान नही पडा है। जिस ज्ञानसे जाना उसी ज्ञानसे सीधा जान लिया। किन्तु जब ईहा ज्ञान होता है तो उसके बीचमे अवग्रह ज्ञान तो पडता है, अवग्रह ज्ञानका व्यवधान हो गया। तब ईहा ज्ञान अस्पष्ट हो बैठेगा, फिर प्रत्यक्ष न रहेगा। देखिये! सिद्धान्तकी बातमें शङ्काकारने किस ढङ्गकी शङ्का बनायी है? अवाय ज्ञान जब होता है तो उसमे अवग्रह और ईहा दोका व्यवधान आ गया। जब इन दोका रूप बने तो अवग्रह ज्ञान बने। फिर यह कैसे स्पष्ट कहला सकेगा।

ईहाज्ञानमे ज्ञानान्तरव्यवधानरहितता—ईहाके प्रति व्यवधान बताकर अस्पष्टताकी शङ्काका उत्तर देते हैं कि भाई! अवग्रहसे जो जाना सो ठीक जान लिया, अब ईहासे जो जान रहे हैं सो अवग्रह ज्ञानको उत्पन्न करने वाले साधनसे नहीं जान रहे, इस ईहा ज्ञानके समय और ही इन्द्रियका व्यापार होता है उससे हमने सीधा ईहा ज्ञान किया। ज्ञानका व्यवधान नही होता, ज्ञानका व्यवधान तो तब ही जब अवग्रहका सम्बन्ध बनाकर उसकी दृष्टि रखकर फिर ज्ञान करें तब ईहाका व्यवधान कहलायगा। पहले आँखोसे जाना अवग्रह, और अब इन आंख आदिकके अन्य व्यापारोसे जाना हमने ईहा—यह अमुक चद है, तो इसमे पूर्वज्ञानका व्यवधान नही हुआ। उसकी अपेक्षा ले करके सिद्ध नही हुआ। एक ही यह मतिज्ञान अवग्रह आदिक अतिशय वाले नवीन नवीन चक्षु आदिक के व्यापारोसे उत्पन्न होता है और स्वतन्त्र स्वतन्त्र रूपसे अपने अपने विषयको लेता है इस कारण ज्ञानान्तरका व्यवधान नही है। तो यहाँ समाधान यह दिया है कि अवग्रह ज्ञान करते समय जो चक्षुका व्यापार होता है उस व्यापारसे अवग्रह जाना तथा ईहा ज्ञान करते समय चक्षुका या मनका अन्य व्यापार होता है प्रथम हुए चक्षुके व्यापारकी अपेक्षा रखकर ईहा ज्ञान नहीं होता। अन्यथा तो इससे अवग्रह ज्ञानकी अपेक्षा सिद्ध हो जाती। ईहा ज्ञानमे अब अवग्रह ज्ञानसे ऊपरकी बात एक स्वतन्त्र रूपसे समझनेकी है। चूंकि यह सब इन्द्रिय और मनके निमित्तसे ज्ञान चल रहा है इसलिये ये सब मतिज्ञान हैं और श्रुतज्ञानका लक्षण इसमें घटित नहीं होता इसलिये ये सब मतिज्ञान कहलायेंगे।

भेदोकी परस्परनिरपेक्षता—एक बात और समझनेकी है। जैसे किसी भी चीजके भेद किए जाते हैं तो उन भेदोमे परस्पर अपेक्षा नहीं रहती। अन्यथा वह भेद न कहलायेगा, वह भङ्ग कहलायेगा। भङ्गमें और भेदमे अन्तर है। मतिज्ञानके ४ भेद हैं, इसका कारण है कि ये चारो स्वतन्त्र हैं, परस्पर एक दूसरेकी अपेक्षा लेकर

नही है। जैसे जीवके दो भेद है—एक मुक्त और एक ससारी। तो क्या यह नही कहा जा सकता कि मुक्त अपने घरके, ससारी अपने घरके। अरे तो ऐसी स्वतन्त्रता न माननेपर तो भेद ही न बन सकेंगे। यह प्रश्न तो नही किया जा सकता। भेद होते हैं और वे सब स्वतन्त्र होते हैं। मतिज्ञान के ४ भेद हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। और, इन चारोके विषय स्वतन्त्र है। इन चारोके विषयके ज्ञान लिए जो साधन नवीन नवीन बनते हैं। इससे यह सिद्ध किया गया कि अनुमान ज्ञानकी तरह ईहा आदिक ज्ञानो मे अन्य ज्ञानोकी अपेक्षा नही रहती है वे सब न्यारे न्यारे ज्ञान हैं।

ईहाज्ञानकी स्वतन्त्रताका समर्थन—जैसे कोई पुरुष किसी कामको कर रहा है, मान लो चार दिनमे वह काम बनेगा। पहिले दिन काम कर चुका, अब उसके बादका काम दूसरे दिन किया जा रहा है। तो दूसरे दिनका जो काम है पुरुषार्थ है, श्रम है वह पहिले दिनके कामकी अपेक्षा नही रखता। अब वह एक नये व्यापारसे दूसरे दिनका काम हो रहा है, तो एक पदार्थके विषयमे सामान्यरूपसे कुछ जाना वह निपट चुका। अब उसके बाद एक विशेषरूपसे जाना जा रहा है। यह एक नया काम है और मजबून व्यापार है। तो अनुमान की तरह ईहा आदिक ज्ञानोमे अन्य ज्ञानोका व्यवधान नही हुआ करता, पर अनुमान आदिककी प्रतीति तो साधनोकी प्रतीतिके द्वारा ही उत्पन्न होती है। जब वह अपने विषयमे लगता है, उस समय भी जिस समय अग्निका ज्ञान किया जा रहा है तो धूमकारकाल रखकर धूमका सम्बन्ध जोडकर ज्ञान किया जा रहा है इसलिए अनुमान ज्ञानमे ऐसे ज्ञानकी अपेक्षा रहती है पर ईहाज्ञानमे अन्य ज्ञानोकी अपेक्षा नही रहती। यह बात अलग है कि अवग्रहसे हमने जाना था, अब इसके बाद हम ईहाज्ञानसे जान रहे हैं, पर वे अब पृथक् पृथक् हैं, विषय न्यारा न्यारा है। ईहाज्ञान अवग्रहकी अपेक्षा नही रख रहा है वह हुआ है चूंकि स्वतन्त्र सो, अब ईहाज्ञान अपने विषयको स्वतन्त्रतासे अपनी साधनासे जान रहा है, तो इस प्रकार यह निर्दोष तत्त्व हो गया कि प्रत्यक्षका लक्षण वैशद्य है। जिस ज्ञानमे स्पष्टता हो उसे प्रत्यक्ष कहते है।

दार्शनिक शैलीमे युक्तिकी प्रधानता—सिद्धान्तकी बात दार्शनिक दृष्टिसे सिद्ध की जा रही है और आप इतना यह निरखेंगे कि सिद्धात ग्रन्थोमे सिद्धान्तकी बात सुनना, मानना एक श्रद्धा और भक्तिपूर्वक होती है। श्रद्धासे जान लिया, भक्ति से जान लिया पर दार्शनिक दृष्टिमे सिद्धान्त बिगडे तो बिगड जाय, ठीक रहे तो रहे, उसकी कुछ भी परवाह न करके युक्तियोसे न्यायसे सिद्ध किया जाता है। एक शैली होती है। जैसे कोई वैज्ञानिक या कोई इतिहासज्ञ कोई ऊँचा लेखक लेख लिखे तो जो निष्पक्ष हुआ करता है वही ऊँचा लेखक कहलाता है। यह भी बात जाननेकी है। जो ऊँचे लेखक होते हैं उनमे इतनी गम्भीरता होती है कि वे खोज निबन्धके लिखते समय अपने कुल और धर्मका भी पक्ष नही रखते। तो किसी खोजके प्रसङ्गमे कोई

महानिबन्ध बना रहा है उस प्रसङ्गमे अनेक ग्रन्थोंसे युक्तियोंको खोजकर यदि खोज ऐसी आती है कि जिससे उसके कुलागत धर्मका खण्डन होता है तो वहा वह जरा भी नही हिचकिचाता और वह वहां उसे पुष्ट करता है, किसी दूसरे धर्मका, सिद्धान्तका मण्डन होता है तो उस बातको कहनेमे वह लाज नही रखता है। कुछ न्यायसे कुछ दार्शनिकताके कारण, कुछ उच्च विचारोंके कारण ऐसी पद्धति बन जाती है। तो दार्शनिक ग्रन्थोका इस प्रकारका आशय होता है । यहा प्रत्यक्षका लक्षण कहा है वैशद्य । जो स्पष्ट ज्ञान हो वह प्रत्यक्ष ज्ञान है और स्पष्टताका लक्षण किया गया है कि अन्य ज्ञानोंकी आड बिना उस ही ज्ञानसे जो स्पष्ट प्रतिभास लगे उसे कहते हैं स्पष्ट ज्ञान । यह स्पष्टताका लक्षण समस्त प्रत्यक्षोमे घटित होता है । इस कारण अव्याप्ति दोष भी सम्भव नही और जो ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हैं उन ज्ञानोंमे किसी भी ज्ञानमे यह लक्षण घटित नही होता, इस कारण अतिव्याप्ति नही है।

लक्षणके दोष लक्षणके तीन दोष होते हैं—अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भवता । कोई मनुष्य किसी का लक्षण बना रहा हो तो हम यह कह जाते कि यह बिल्कुल सच बोल रहा है, इसका लक्षण सही है। लक्षणमे यदि ये तीन दोष न आयें तो सही मान लें । यदि लक्षणमे इन तीन दोषोंमे एक भी दोष है तो वह सही नही है। जैसे किसीने लक्षण बनाया, गायका लक्षण क्या है भाई ? तो वह कहता है कि गायका लक्षण सीग है । जरा जल्दी सुननेमें यह अच्छासा लगता है कि ठीक ही तो कह रहा है, पर यह लक्षण सही नहीं है । गायका लक्षण क्या है ? गायकी पहिचान क्या है ? तो उसने बताया सीग तो गायका लक्षण सीग कहा तो क्या यह सही लक्षण है ? सही नही है, क्योकि सीग तो भैसके भी होते हैं, बैलके भी होते हैं। फिर तो बैल तथा भैंस आदिकके भी सीग देखकर यही कह देना चाहिए कि यह गाय है। पर ऐसा तो कोई नही कहता । तो यह सही लक्षण नही रहा । वह तो अतिव्याप्ति हो गया । किसीसे पूछा कि अच्छा बतावो पशुका लक्षण क्या है ? तो कोई बोला कि पशुका लक्षण सीग है। तो ऐसा सुननेमे तो कुछ भलासा लगता कि ठीक ही तो कह रहा है । पशुवोके सीग तो हुआ करते हैं, रोज रोज देखते भी हैं और किसी मूर्ख मनुष्यको कह भी देते हैं कि यह तो बिना सीगका जानवर है । तो प्रसिद्धि भी कुछ ऐसी ही है, पर यह उसका सही लक्षण नही है। क्योकि खरगोश, गधा, घोडा आदि बहुतसे पशु बिना सीगके भी हुआ करते हैं। तो इस लक्षणमे भी दोष है और अगर पूछा जाय कि बतावो मनुष्यका लक्षण क्या है ? और वह कह दे कि मनुष्यका लक्षण सीग है, तो यह तो बिल्कुल ही असम्भव है । मनुष्यके सीग न कभी हुए, न हुआ करते और न होंगे । तो लक्षण वह निर्दोष कहलाता है जिसमे अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव ये दोष न आये ।

आत्माका निर्दोष लक्षण—जरा आत्माकी बात सुनो । आत्मा निर्दोष

लक्षण चैतन्य है। किसी ने पूछा कि आत्माका लक्षण क्या है ? कोई कहे कि आत्मा का लक्षण अमूर्तत्व है, जो अमूर्त हो, जिसमे रूप, रस गध, स्पर्श न हो उसे आत्मा कहते हैं। ऐसा सुननेमे भला लगेगा कि सही तो बात है। आत्मामे रूप, रस, गध, स्पर्श कहा होते है ? लेकिन यह लक्षण सही नही है। अमूर्त तो आकाश भी है, धर्म द्रव्य है अधर्म द्रव्य है, काल द्रव्य है, ये भी जीव कहलाने लगेंगे, तो आत्माका लक्षण अमूर्त कहना अतिव्याप्ति दो से दूषित है। आत्माके अलावा अन्य अलक्ष्योमे भी यह लक्षण चला गया। किसीने कहा कि आत्माका लक्षण है रागद्वेषादिक। जिसमे राग-द्वेष हो, जो भला बुरा पहिचाने उसे आत्मा कहते हैं। कुछ जल्दीमे अच्छासा लगेगा, लेकिन यह लक्षण भी दूषित है। जो मुक्त जीव है, परमात्मा हैं, ऊँचे योगिराज है, उनमे रागद्वेष कहाँ है ? और है वे जीव। तो सभी जीवोमे रागादिक लक्षण नही हैं अत यह अव्याप्ति दोषसे दूषित हुआ। कोई कहदे कि आत्माका लक्षण है पृथ्वी, जल अग्नि, वायुका इकट्ठा होना तो यह असम्भव हो गया, क्योकि ऐसा होता ही नही है। तो यहाँ वैशद्य जो लक्षण कहा है, वह तीनो दोषोसे रहित है। स्पष्ट ज्ञान है, वह प्रत्यक्ष है और अस्पष्ट ज्ञान है वह परोक्ष है।

ज्ञानका परिचय—देखिये ! इस प्रसङ्गमे एक यह भी बात समझ लें कि ज्ञान ज्ञानको जानता है तो ज्ञानकी दृष्टिसे तो स्पष्ट ज्ञान स्पष्ट हुआ करता है पर बाह्य पदार्थोंके सम्बन्धमे किसी तरहसे ज्ञानकारी की गई उसकी अपेक्षा देखा जाय तो कोई ज्ञान स्पष्ट होता कोई अस्पष्ट होता। ज्ञानके स्वरूपके बारेमे अधिकाधिक समझ आ जाय तो ज्ञानका परिचय ही विशेष बढता है। वहाँ प्रयोजनीभूत ज्ञान उतना ही बताया है कि अपने बारेमे समझलो कि यह मैं आत्मा एक ज्ञानस्वरूप हू, सहज ज्ञान-रूप हू, सदा से जो रहा आया हो, अनन्त काल तक जो रहेगा उस ज्ञानस्वरूप मैं आत्मा हूँ, इतना ही बोध कर लिया कि कल्याणकी दिशा मिल जाती है। ठीक है, पर साथ ही जिसको इस बारेमे अधिक रूपसे ज्ञान होगा, पर्यायोका भी ज्ञान होगा तो वह ज्ञानकी प्रकर्षता इसके इस प्रयोजनमे बाधक नही, किन्तु विशेषरूपसे साधक ही होती है। हमें अपने ज्ञानकी परीक्षा करनी चाहिए। ज्ञानके स्वरूपकी परख करें, निरीक्षण करें, अनुभवन करें, यह तो एक काम पडा हुआ है।

मानवजीवनमे सारभूत कर्तव्यका निरीक्षण—भैया ! मनुष्य पर्याय पाकर बताईये कौनसा काम करना है जो सर्वोत्तम हो। श्रावक धर्म पाया, साधर्मी जनोंका मिलन पाया। ये सब कठिनसे कठिन समागम पाये तो हम इस मनुष्य भवको सफल बना सकें ऐसा एक कार्य करना है। धन वैभवका सचय कर करके, उसपर ही दृष्टि दे करके जरा यह निर्णय तो कर लो कि इससे कौनसा सारभूत लाभ प्राप्त हो जायगा ? अपनी इज्जत बना बनाकर जो मर चुके हैं उनपर दृष्टि देकर यह निर्णय कर लो कि यहाँकी इज्जत नामवरी ये मेरे लिए कोई सारभूत नही है। जिनके बहुत

सी सतानें हैं उनकी उलझनोका देखकर यह निर्णय कर लो कि सतानोका समागम होना भी कोई सारभूत बात नही है। स्नेह बढाना, परिचय बढाना, ये सारी बातें एक स्वप्नके समान असार हैं। मनुष्य भवकी सफलता तो एक आत्मानुभवमे ही हुई समझिये। आत्मानुभव बनता है तो हम आपकी जिन्दगी सफल है और एक आत्मानुभव नही बन सकता है तो जीवन तो सबका चल रहा है। पशु पक्षी भी जी रहे हैं, वे भी आहार, भय, मैथुन परिग्रह इन चार सज्ञाओमे पडे हैं, ये मनुष्य भी पडे हैं, परिवार पशुओका भी होता है, मनुष्योका भी होता है। ये मनुष्य, ये महिलाएँ सब बडे प्रिय लगते हैं मगर उन पशु पक्षियोसे पूछो, क्या उन्हें भी ये मनुष्य सुन्दर लगते हैं? अरे उन पशु पक्षियोकी दुनिया उन पशु पक्षियोंकी जातिमे है। वे अपने आपकी बिरादरीमे एक दूसरेको रूपवान, सम्पन्न, अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार निरखते हैं। यहाँ कुछ मनुष्योने अपने इन मनुष्योके बीचमे मनुष्योको अच्छा मान रखा है। और यह जानो कि इन मनुष्योकी सख्या तो कम है और पशुओकी सख्या अधिक है। तो बिरादरीकी संख्या पशुवो की अधिक है, वे अपनी दुनियामे मौज करते हैं और मनुष्य अपनी दुनियामे मौज करते है। तो इस दुनियाकी मौजकी दृष्टिमे तो सभी जीव एक समान हो गये। चाहे पशु हो, चाहे पक्षी हो, चाहे मनुष्य हो, सब इसी दर्जेमें हैं, लाभकी बात कुछ नही है।

मानवजीवनमे लाभकारक पुरुषार्थ - मनुष्यजन्ममे लाभकी बात तो यह है कि इस ससारमे रहने वाले ये आत्मा अपने आपके आत्माके स्वरूपको जान जायें और ऐसा अनुभव करलें कि इन्हें यह निर्णय हो जाय कि इस आत्मस्वरूपके निकट बसनेमें ही लाभ है, सार है कल्याण है। इसके अतिरिक्त अन्य कामोमें पड जानेसे आत्माका अलाभ है। यह निर्णय आ जाय और इसीमे रुचि जगे कि मैं अपने आत्मस्वरूपको जानू और उसके निकट ही रहा करूँ। यह परिस्थिति बने, अनुभूति बने, तो मनुष्यजन्म सफल है। एक ही निर्णय रखिये। मुझे जीवनमे एक ही काम करने को पडा है, आत्मानुभव करनेका, और तो सब ऐसे काम हैं कि हो न हो, कैसे ही हो, वे सब क्षम्य हो सकते हैं, पर आत्मानुभव न हो तो हमारी क्षमा नही हो सकती। आत्मानुभवसे ही हमारा उद्धार है, ऐसा जानकर हम ज्ञानके स्वरूपको जाननेमे अनुभव करनेमे विशेष पुरुषार्थ करें। वह सत्सङ्गतिसे बने, स्वाध्यायसे बने, उपदेशसे बने, सभी उपायोसे हम आत्मानुभव करनेका यत्न करें।

ज्ञानान्तरके व्यवधानसे रहित अल्प ज्ञानमे भी प्रत्यक्षता—जिस प्रतिभासमे, जिस ज्ञानके द्वारा वह प्रतिभास हो रहा है उस ज्ञानसे अन्य ज्ञानकी अपेक्षा नही पडती, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं, अथवा विशेषरूपसे प्रतिभास होनेका नाम प्रत्यक्ष है। इसपर कोई यह प्रश्न कर सकता है कि जब थोडा अन्धकारसा हो, जैसे कि प्रातः ब्राह्म मुहूर्तका समय होता है, कहीं घूमने जा रहे हैं, दूरसे ही एक वृक्ष दीखा

स्पष्ट नही किन्तु उसका थोडा आकार दीखा। इतना फैला हुआ है, इतना ऊँचा है, कुछ तना भी मालूम पडा, वह दीखा अस्पष्टरूपसे। पर जो भी उसके प्रति ज्ञान होता है क्या वह भी प्रत्यक्ष कहलाता है ? ऐसा प्रश्न किया गया। उसका उत्तर है कि वह भी प्रत्यक्ष है चाहे उसका विशेषरूप न ज्ञात हो, कितनी डालियाँ है ? कैसे पत्ते है ? कैसे फल लगे है ? किस तरहके फूल लगे है ? यो विशेषरूप नही ज्ञात हुआ फिर भी आकार मुद्राका जितना भी ज्ञान हुआ वह तो प्रत्यक्ष है ही, क्योकि इस ज्ञानमे अन्य ज्ञानकी आड नही है। सीधा इन नेत्रोसे देख लिया गया और जान लिया गया। इस जाननेमे स्पष्टता है इसमे कोई विवाद तो नही है, इस कारण ऐसा भी ज्ञान इन्द्रियसे अस्पष्ट नजर आये तो भी स्पष्ट ही कहलाता है। अपेक्षाकृत अस्पष्ट है, विशेष परिचय नही है, उससे अस्पष्ट कह लीजिये ! मगर जितना बोध हो उतना स्पष्ट ज्ञान है।

प्रत्यक्ष और अनुमान ज्ञानमे विशदताका उदाहरण अब उस वृक्षको निरखकर जिसे एक आकार देखकर सामान्यरूपसे यह वृक्ष है, ऐसा ज्ञान किया गया था, उस वृक्षके प्रति कुछ थोडी ही देरमे विशेष ज्ञान होने लगता है तो वह अनुमान बन गया। जैसे धुधला देखा वह पेड तो प्रतिभासमे आया कि यह वृक्ष है ऐसा भी अभी निश्चय नही किया गया किन्तु जो आकार दृष्टिमे आया उतने आकारका प्रत्यक्ष हुआ। कुछ इसमे थोडा साधन बनाकर अनुमान कर रहे है कि यह वृक्ष होना चाहिए अन्यथा ऐसा सस्थान न होता। वृक्ष होना चाहिए, यह जो ज्ञान हुआ है यह परोक्ष है, क्योकि इसके पहिले जाने हुए ज्ञानकी अपेक्षा की गई। जो धुँधलासा आकार मुद्रा देखा वह तो है प्रत्यक्ष, उसे देखकर यह अनुमान किया कि यह वृक्ष होना चाहिए अथवा यदि हाथी हो तो धुधलासी दीखा था वह तो हुआ प्रत्यक्ष और कुछ क्रियासी नजर आनेपर यह ज्ञान किया गया कि यह हाथी है यह हुआ अनुमान और परोक्ष ज्ञान, क्योकि दूसरे ज्ञानमे व्यवधान आ गया और साधन नजर आया जो पहिले जाना उस ज्ञानसे फिर अनुमान आ गया, इस कारण यह तो प्रत्यक्ष नही हुआ, पर पहिले जो जाना, चाहे धुधला ही जाना वह मुद्रामे स्पष्ट रहा और विवादरहित रहा, इसलिए वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। तो जैसे यहा बहुत दूर देखने एक सस्थान मुद्रा उसने जाना था तो आकारमे तो प्रत्यक्ष हुआ, उसे जानकर यह अनुमान बन रहा कि वृक्ष का ऐसा सस्थान होता है, यदि नीचे सो मोटा ऊपर पतला देखा तो जाना यह तो भुसका ढेर है, जो कुछ भी हो, एक एक दृष्टान्त अलग अलग लेना है। तो उनका जो ज्ञान हुआ कि ऐसे सस्थान वाला तो यह पदार्थ है यह उत्तर कालमे साधन द्वारा विशेष बोध हुआ यह अनुमान है, लेकिन इसी प्रसङ्गमे थोडा उजाला सा हुआ, आगे बढे तो यह चीज स्पष्ट नजर आयी जो पहिले धुधलासा एक आकार नजर आया था, अब ऐसा दृष्टिमे आने लगा कि यह तो वृक्ष है, तो ऐसा जो ज्ञान हुआ यह भी प्रत्यक्ष है और पास चले, और विशेष बोध हुआ, एक एक पत्तेका ज्ञान होने लगा वह भी

प्रत्यक्ष है, इस प्रत्यक्षने पूर्वज्ञानकी अपेक्षा नही की और अनुमान जब बनता है तो वह पूर्वज्ञानकी अपेक्षा रखता है। तो जो ज्ञान अन्य ज्ञानकी अपेक्षा न करे और प्रतिभास करले यह प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है।

अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञानमे भी ज्ञानान्तरका अव्यवधान—अवधिज्ञानमे भी जिस समय अवधि जोडी जाती है उस अवधि जोडनेके समयमे सीधा आत्मशक्तिसे ज्ञान होता है। यद्यपि अवधिज्ञान वाले विकल्प करके अवधिको जोडनेका यत्न करें जैसे किसीने प्रश्न किया कि अमुक जगह क्या स्थिति है? तो उसने विकल्प बनाया कि जानू और उसके बाद फिर अवधिज्ञान जब हुआ तो उसका उपयोग चला, उस उपयोगने विकल्पकी अपेक्षा न रखी, ऐसी ही ज्ञानान्तरनिरपेक्षता मन पर्ययज्ञानमे भी है। जैसे कि अनुमान ज्ञानमे साधनमे साध्यका ज्ञान होता है तो साध्यके ज्ञानसे साधनके ज्ञानकी अपेक्षा की। उसके बिना यह साध्यका ज्ञान नही हो सका। उस कालमे ही अनुमानमे साध्यज्ञानमे साधनज्ञानकी अपेक्षा है, जिस कालमे अनुमानसे जान रहे हैं लेकिन अवधि अथवा मन पर्यय ज्ञानमे उस ज्ञानके समय अन्य ज्ञानकी अपेक्षा वहा नही होती। तो जहा ज्ञानान्तरका व्यवधान नही है वह प्रत्यक्ष कहलाता है। यह वैशद्य लक्षण प्रमाणके लक्षणकी निर्दोषता साबित कर रहा है। तो जैसे इस प्रसङ्गमे पहिले धूधला देखा, फिर जरा और स्पष्ट दीखा कि यह वृक्ष है, यह आमका पेड है, यह फल वाला पेड है। इसी प्रकार जो अनेक स्पष्ट होने लगे तो जितने स्पष्ट ज्ञान हैं उतने ही ज्ञान हैं और उन ज्ञानोमे किसी भी ज्ञानने पूर्वज्ञानकी अपेक्षा नही की। हालाकि उस एक ही पदार्थके बारेमे क्रमश स्पष्टज्ञान विशेष विशेष होता जा रहा है, पर जिस ज्ञानने जितना भी जाना उस ज्ञानने उसी समय अपने ही साधनसे उतना स्पष्ट जाना है, क्योकि इन सब प्रसङ्गोमें जो स्पष्ट ज्ञानावरण है विशद ज्ञानावरण है उसका विभिन्न क्षयोपशम है और उस क्षयोपशमसे वे ज्ञान उत्पन्न हुए हैं।

साव्यवहारिक प्रत्यक्षोमे वैशद्यके परिचयका एक दिग्दर्शन—इस बातको कुछ इस ढङ्गसे भी समझ सकते कि जैसे मान लो एक पेडके बारेमे ५ बार ज्ञान हुआ, स्पष्टताकी मुख्यतासे पहिले धूधलासा दीखा फिर उसकी टहनी दीखी, फिर उसके पत्तोका स्पष्ट विस्तार दीखा। पत्ते भी अलग अलग नजर आने लगे। कल्पना करो कि पहिले जो दो तीन स्पष्ट ज्ञान हुए वे अगर न होते, जैसे दोपहरमे देख लेते हैं उसी चीजको तो इतना स्पष्ट ज्ञान एकदम भी तो हो गया ना, जैसे कि पेडमे ५वी बार स्पष्ट ज्ञान हुआ तो ५वें नम्बरका जो स्पष्ट ज्ञान है इस तरहका स्पष्ट ज्ञान बिना उन ४ ज्ञानोके हुए भी तो कभी हो सकते है ना! जब उजेला है विशेष तो एकदम स्पष्ट दिख गया, पर अनुमानमे एकदम यह नही हो सकता कि कभी तो धूमका ज्ञान करके अग्निका ज्ञान हुआ और किसी समय धूमका ज्ञान किए बिना ही

अग्निका सीधा ज्ञान हो जाय यह अनुमानमे नहीं हो सकता।

परोक्षज्ञानोके स्वरूपके संवेदनकी प्रत्यक्षरूपता— अब यहा शङ्काकार यह आशङ्का कर रहा है कि परोक्षज्ञानमे भी तो स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क अनुमान, इन ज्ञानोके स्वरूपका जो सम्वेदन होता है वह सम्वेदन तो प्रत्यक्ष है अर्थात् स्पष्ट है तो यह लक्षण अलक्ष्यमे भी जुड गया, परोक्षमे भी घट गया इस कारण अतिव्याप्ति दोष है। इसमे शङ्काकारका क्या अभिप्राय है- शङ्काकार स्मृति प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान इन जानोको प्रत्यक्ष नही साबित कर रहा। जैनशासन भी प्रत्यक्ष नहीं मानता, और यह शङ्काकार भी इन ज्ञानोको प्रत्यक्ष नही साबित कर रहा, किन्तु इन ज्ञानके स्वरुपका जो सवेदन रहता है, परिचय रहता है वह ज्ञान तो यह बर्तता है, जो निजपर बीतती है उस स्वरूप सम्वेदवकी बात कर रहे है कि यह स्वरूप सम्वेदन तो स्पष्ट समझमे आता है और इसमे ज्ञानान्तरका व्यवधान भी नही है तो इसे फिर प्रत्यक्ष मान लिया जाना चाहिए। तो ये परोक्षज्ञान भी लो प्रत्यक्ष बन गए। आचार्य देव उत्तर देते हैं कि जो स्वरूप सम्वेदन होता है वह तो प्रत्यक्ष ही है। स्मरण ज्ञान हो तो स्मरण ज्ञानमे जो बाह्य पदार्थविषयक ज्ञान हुआ वह स्मरण ज्ञान तो परोक्ष है, पर स्मरण ज्ञानका जो यहा अनुभव चल रहा है, स्मरणज्ञानके स्वरूपका जो सम्वेदन है अपने आपपर जो ज्ञानकी वृत्ति बीत रही है वह सम्वेदन प्रत्यक्ष है। स्मरण परोक्ष है, पर स्मरण स्वरूपका जो ज्ञान हो रहा, सवेदन हो रहा वह ज्ञान प्रत्यक्ष है।

सुखादिसंवेदनकी भांति स्मृत्यादिज्ञानस्वरूपसंवेदनमे ज्ञानान्तरोका अव्यवधान— भैया! हम आप लोगोको क्षायोपशमिक ज्ञानके स्वरूपका सम्वेदन मनके द्वारा सीधा होता है। इसमे ज्ञानान्तरका व्यवधान नही है इसलिए यह मानसिक प्रत्यक्ष कहलाता है। जैसे सुख उत्पन्न हुआ तो सुखके स्वरूपका जो हमे सम्वेदन हुआ वह सम्वेदन तो स्वाधीन है ना, उत्पत्तिमे भी स्वाधीन है। जैसी लोगोकी धारणा है और नैमित्तिक व्यवस्था भी है कि भोजन आदिक करनेसे सुख होता है तो उस सुखकी उत्पत्तिमे पराधीनता रहती है ना! भोगोका समागम, इन्द्रियकी प्रकर्षता ये सब पराधीनताएँ रही, पर उत्पत्तिमे सुख तो पराधीन रहा। मस्त होकर जो सुखके स्वरूपका अनुभव चलता है, भीतरका वह सम्वेदन पराधीन नही है वह परवस्तुसे उत्पन्न नही हुआ है। तो सुख होना दूसरी बात है और सुखके स्वरूपका सम्वेदन होना, अनुभव होना यह दूसरी बात हुई। इसी प्रकार स्मरण ज्ञान हुआ, प्रत्यभिज्ञान तर्क, अनुमान ज्ञान होना यह बात अन्य है और इस ज्ञानके स्वरूपका जो सम्वेदन हो रहा यह अनुमान है, इस ज्ञानके स्वरूपका सम्वेदन प्रत्यक्ष है और यह ज्ञान परोक्ष है।

बाह्य अर्थके ग्रहणमे प्रत्यक्ष और परोक्षरूपताकी खोज—ज्ञानोमे जो यह व्यवस्था बनी होती है कि यह ज्ञान प्रत्यक्ष है, यह ज्ञान परोक्ष है यह बाह्य अर्थो

के ग्रहणकी अपेक्षा भेद है, तो ज्ञानके सम्वेदनकी दृष्टिसे सबज्ञान एक समान प्रमाण है। केवलज्ञान भी सकल प्रत्यक्ष प्रमाण है, उसे प्रमाण भी क्या कहा जाय ? प्रमाण की वह चरम सीमा है। इस कारण यह भी कह सकते कि प्रमाण और अप्रमाणकी भेद व्यवस्था वहा है ही नही, वहा प्रमाण भी क्या कहा जाय ? जहाँ भेदव्यवस्था सम्भव है वहाँकी बात देखें जैसे बाहरमे सीप पडी हुई है, अब उसके सम्बन्धमे हम अटकलपच्चू जान रहे हैं संशयज्ञान चल रहा है, यह सीप है या चाँदी है। अगर सीप को हम चाँदी जान गए, विपर्यय ही ज्ञान हो गया कि यह चाँदी है तो यह चाँदी है इस प्रकारका जो यहाँ ज्ञान चल रहा है कि ज्ञानका जो सम्वेदन हो रहा है, यह जो परिणमन चल रहा है यह सत्य है कि असत्य है ? यह तो सत्य है, यह तो परिणमन ठीक है मगर बाह्य पदार्थपर जब कुछ निर्णय करते हैं तो वह चाँदी तो नही है तो विपर्ययज्ञान बाह्य पदार्थकी अपेक्षा कहलायेगा। यह जो परिणति बन रही है उसकी अपेक्षा सम्यक् और मिथ्याका निर्णय नही होता। बाह्य पदार्थोंकी दृष्टिसे ज्ञानमे सम्यक् और मिथ्याका निर्णय होता है। यहाँ तक यह बात सिद्ध की गई कि जो विशद ज्ञान हो उसे प्रत्यक्ष कहते है जिसके जाननेमे अन्य ज्ञानोंकी आड नही लेनी पडती उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

इन्द्रियार्थसन्निकर्षजताको प्रत्यक्षका लक्षण माननेमे दोषापत्ति— प्रत्यक्षका लक्षण वैशद्य सिद्ध होनेके प्रसङ्गमें नैयायिक कहते हैं कि प्रत्यक्षका लक्षण यह सही नही जचता प्रत्यक्षका लक्षण यह मानो कि इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। बात कुछ ठीक सी भी जच रही होगी कि सही तो है। जब हम हाथसे चीजको छूते है और ज्ञान हो जाता है कि यह ठंडा है तो यह प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया। इसमे किसीको सन्देह तो नही रहता। तो इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध होनेसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है, ऐसा नैयायिक लोग अपना मतव्य रख रहे हैं। क्या लक्षण बन गया उनका ? जो इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध होनेपर ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष कहलाता है। आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि जरा इस लक्षणको सर्वज्ञके ज्ञानमे तो घटा दीजिये ! सर्वज्ञका ज्ञान प्रत्यक्ष है कि नही ? हा है। तो सर्वज्ञका ज्ञान भी क्या इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे उत्पन्न होता है ? वहाँ इन्द्रियाँ हैं ही नही ! केवल आत्मा ही आत्मा है, ऐसा ही निर्वाण सब मानते हैं। कोई भी मत वाले लोग ऐसा नही मानते कि जो घरमे बस रहा है और वह भगवान कहलाये ! जो लोग ईश्वरका अवतार मानते हैं जैसे कच्छप वराह आदि हुए या अन्य जो जो अवतार लेते हैं तो मूलमे लौकिकतायुक्त निर्वाणका रूप वे भी नही मानते। ईश्वरने एक व्यवस्थाके लिए अवतार लिया है, यह बात उनकी अलग है और पृष्टव्य है कि ईश्वर हुआ अतीन्द्रिय आनन्द वाला। उसे अवतार लेनेकी क्या जरूरत है, उसे क्या कष्ट हुआ, उसको कौन सा फर्क पडता था ? इस तरह प्रश्न किए जायें, यह अलग बात है, पर निर्वाणका

स्वरूप जिन-जिनने भी माना है वह एक शून्यरूपसे माना है। कुछ नही रहा, केवल स्वरूप रहा, इस तरहका शब्द सामान्यरूपसे माना है। कुछ नही रहा, केवल स्वरूप रहा, इस तरहका शब्द सामान्यरूपसे सबकी धुनिमे आता है। सर्वज्ञका ज्ञान इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे उत्पन्न नही होता। फिर सन्निकर्ष लक्षण सर्वज्ञज्ञानमे न जानेसे असिद्ध है।

सर्वज्ञत्वके अभावकी असिद्धि—यदि यह कहो कि सर्वज्ञका ज्ञान कुछ है ही नही तो यह बात यो युक्त नही जचती कि जितने भी जीव हैं वे ज्ञानस्वरूप हैं और जब वे ज्ञानस्वरूप हैं तो उनके ज्ञानस्वरूपका विकास भी है। किसीमे अल्प विकास है, किसीमे पूर्ण विकास है, पर विकास सबके है। जिसके पूर्णविकास है उसका नाम सर्वज्ञ है। सर्वज्ञका ज्ञान अपने आपकी शक्तिसे प्रत्यक्ष है। इन्द्रिय और पदार्थोंका सम्बन्ध होनेसे उत्पन्न हो और तब प्रत्यक्ष हो ऐसी बात नही है। ज्ञानस्वरूपका तो सभीको प्रत्यक्ष है, ज्ञानका अनुभवन सबके चलता है, कोई उसे पहिचान पाता है कोई नही पहिचान पाता। सभी हैं और ज्ञानका परिणमन सबके चलता है। जिसने अपने आपको इस रूपमे अनुभव कर लिया मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञानात्मक हू, ज्ञानमात्र हूँ उसने सर्वकल्याण पा लिया।

ज्ञानस्वरूप, ज्ञानात्मक व ज्ञानमात्रके अनुभवके चमत्कार—यहाँ जो ये तीन बाते कही है मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, मैं ज्ञानात्मक हूँ, मैं ज्ञानमात्र हूँ इन तीनोमे अन्तर तो कुछ नही है फिर भी चिन्तवनकी पद्धतिमे कुछ भिन्न भिन्न चमत्कार हैं। मैं ज्ञानस्वरूप हू मेरा ज्ञानस्वरूप है। इसकी अपेक्षा मैं ज्ञानात्मक हू इसमे विशिष्ट अनुभूतिकी बात है। मैं ज्ञानात्मक हूँ, ज्ञानमय हूँ, ज्ञान ही मेरा आत्मा है, ज्ञान ही मेरा सर्वस्व है यो मैं ज्ञानात्मक हूँ, इसकी अपेक्षा 'मैं ज्ञानमात्र हूँ" इस चिन्तनमे विशिष्ट चमत्कार है। मैं ज्ञानमात्र हूँ यहाँ कोई द्वैधीकरण नही हुआ। केवल ज्ञानमात्र ज्ञानका स्वरूप है, वही अपनेको अनुभव किया गया है, तो जो अपने आपको ज्ञानस्वरूप अनुभव कर लेता है, उसके यह निर्णय भी इस अनुभवके कारण बसा हुआ है कि मैं ज्ञानको ही करता हूँ और ज्ञानको ही भोगता हूँ। अब निरखिये, मैं ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञानके सिवाय अन्य कुछ भी रूप मैं नही हूँ, तो जो कुछ भी मैं हूँ वह कुछ बतता तो रहता हूँ। कोई भी वस्तु बर्तने बिना रह नही सकती। पदार्थ हो और उसमे कुछ बर्तना न बने, अवस्थाका परिणमन न बने तो वह पदार्थ ही क्या है? जब मैं मात्र ज्ञान हूँ तो इस ज्ञानमे बर्तना भी निरन्तर चलती रहती है। तो ज्ञानकी जो बर्तना हैं, ज्ञानका जो परिणमन है वही मेरा ज्ञान है और इतना ही मैं करता हू, इसके आगे मैं कुछ भी नही किया करता हूँ।

विकल्पोके भी ज्ञानका ही कर्तव्य—जो जीव मोही है, इस ज्ञानके विशुद्ध स्वरूपसे अपरिचित हैं वे भी ज्ञानको ही कर रहे हैं, पर वे इस ज्ञान को विकल्परूपसे

कर रहे हैं वे विकल्पोंको कर रहे हैं, पदार्थोंको नही कर रहे है। ये मोही जीव कोई कितने उद्विग्न है कोई कितना फँसा हुआ है, कोई कितने कितने कार्योंमे जुटा है, कोई कितने ही कार्य सम्हाले है सर्वत्र यह मनुष्य केवल अपने विकल्प बना रहा है। विकल्पोंसे आगे इस आत्माकी कुछ करतूत नही है. पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध ऐसा है कि विकल्प किये, उन विकल्पोंके कारण आत्माके प्रदेश कपे, कम्पन हुआ और जिस तरहका विकल्प किया उसी तरहका प्रदेश कम्पन हुआ और जिस प्रकारका प्रदेशकपन हुआ उस प्रकारसे शरीरकी वायु भी कपी, जिसे वात कहते हैं और शरीरकी वायुके कम्पनमे उस प्रकारके शरीरके अङ्ग चले —मुझे यह लिखकर भेजना है ऐसा विकल्प होनेपर उस प्रकारका प्रदेशकम्पन हुआ, उस प्रकारसे वायु कपी, उस प्रकारसे अङ्ग चले अब देखिये ! किसी भी निबन्ध आदिकके लिखनेमें कितनी कलाके साथ अगुली चलती है, किसी अक्षरके लिखनेमे कितनी मरोड और लिखनेकी मोड चलती है। जा इतना अङ्गोंका कम्पन हुआ, अङ्ग चले, इस अङ्गका चलाने वाला आत्मा नही है। इन अङ्गोंको इस प्रकार चलानेमे कारण शरीरकी वायु हुई। और शरीरकी वायुका जो इस प्रकार कम्पन हुआ वह आत्माके प्रदेशोंके उस प्रकार कपनेसे हुआ। और आत्मप्रदेशोंका इस प्रकारका कम्पन इन विकल्पोंका निमित्त करके हुआ। तो मूलमे ये विकल्प निमित्त पडे जो विकल्प आत्मारूप हैं, आत्माकी परिणति हैं, इसलिये व्यवहारमे यह बात कही जाती है कि मैंने लिखा, आत्माने लिखा, पर सही बातको देखो तो उसके भीतर कितने व्यवधान पडे हुए हैं। आत्मा तो बहुत दूर अवस्थित है, तो यह मैं आत्मा सब दिशाओंमे केवल ज्ञानकी परिणतिको ही किया करता हूँ, किसी भी पदार्थको मैं करता नही हूँ। यह तो करनेकी बात हुई।

ज्ञानका भोक्तृत्व—अब जरा भोगनेकी बात देखिये ! मैं क्या भोगता हूँ, विकल्प भोगता हू। यह जीव कल्पनाएँ तो करता है कि मैं वैभव भोगता हूँ, भोजन भोगता हूँ, वस्त्र भोगता हूँ जिन जिन पदार्थोंका सम्बन्ध बनाकर यह सुख मानता है उन उन पदार्थोंको मैं भोगता हू इस प्रकारकी यह कल्पना बना रहा, पर इस आत्माको देखो कि यह भोग किसे रहा है ? केवल विकल्पोंको भोग रहा है। बाह्य पदार्थों का तो आत्मामे सम्बन्ध ही नहीं है। आत्मप्रदेशोंमे बाह्यपदार्थोंका तो कुछ प्रवेश ही नही है, कोई अधिकार भी नही है। वह अपने स्वरूप किलेके कारण अपने ही स्वरूप मे परिसमाप्त हो रहा है। उससे बाहर उसकी गति नही है। तो जिन पदार्थोंका मेरे मे प्रवेश नही मेरेमे गमन नही, सम्बन्ध नही उन पदार्थोंको मैं भोग क्या रहा हूँ ? भोग रहा हूँ तो अपने विकल्पोंको ही भोग रहा हूँ।

बाह्य पदार्थोंमे दु खकारिताका अभाव—और भी देखिये ! भैया ! जितना विकल्प है इतना ही हमारा ससार है इतना ही आत्माका बीज है। बाहरमे हमारे मकान न हुआ, हमारा यह टूट गया, हमारा वैभव घट गया, ये लोग मेरे अनु-

कूल नही चल रहे, ये मेरे प्रतिकूल बोलते, ये कोई दु खके कारण नही है, य तो बाहरी बाते है, उनकी बात उनमे हो रही है, उनसे मेरे आत्माका क्या सम्बन्ध है ? यहाँ जो विकल्प चल रहा है, हम अपनेमे बाह्यपदार्थोंके विकल्प बना रहे है ये विकल्प है हमारे दु खके कारण। बाह्यपदार्थोंमे कोई कैसे रह रहा है, कोई कैसे रह रहा है, किसीको क्या बीत रही है, बाह्य पदार्थ अचेतन पुद्गल, सोना, चाँदी आदि जहाँकि तहाँ पडे हैं, कोई सयोग है, कोई वियोग है ये सब बाते दु ख देनेमे कारण नही हैं, किन्तु उनके प्रति जो विकल्प मचा रखा है वह दु खका कारण है अर्थात् जिस पुरुषने अपने आपको ऐसा अनुभव किया है कि मैं ज्ञानमात्र हूँ बस समझो उसने अपनेमे सवस्व सार प्राप्त कर लिया, इतना अनुभव न होनेपर कुछ भी बात की जा रही हो, सब व्यर्थ है।

शान्तिके उपायभूत ज्ञानकी प्रभावनामे वस्तुत धर्मप्रभावना—अब आप समझ लीजिये कि शान्तिके लिए क्या करना पडता है ? ज्ञानका विकास, ज्ञान को समझ। यदि लोगोका उपकार करना है, लोगोका सुखी बनाना है तो क्या करें ? लग जाना चाहिए ज्ञानकी समझ बनानेमे। वह ज्ञानके स्वरूपको ग्रहण करले ऐसी बात करनी चाहिए। तो यही धर्मप्रभावना है। जिस धर्मके प्रभावसे जीव शान्त सुखी हो जाया करते है वह धर्म है क्या ? वह धर्म है यही ज्ञानानुभव। तो इस ज्ञान की बात तो करे नही, उसका लक्ष्य भी न रखे, बाहरी बाहरी कामोंको ही करते रहे और चाहे कि धर्मकी प्रभावना हो जाय तो यह कैसे हो सकेगा ? इस लोकमे जो बड़े साहसी लोग भी हैं जिनमे बडी बडी चतुराइया है, वे चाहे कि हमारी इन लौकिक चतुराइयोसे इस धर्मकी प्रभावना होजाय तो यह कैसे हो सकता है ? धर्मकी प्रभावनाका सम्बन्ध तो मात्र ज्ञानसे है। यदि ज्ञानमात्र तत्त्वकी बात खुदकी समझमे आये, तो खुदमे धर्मकी प्रभावना हुई और दूसरोकी समझमे आये तो दूसरोमे धर्मकी प्रभावना हुई। जिससे शान्ति मिले उसीका ही तो विस्तार करना है। शान्ति मिलती है ज्ञानमात्र अनुभवमे अपने आपको जब कभी भी इतना ही मात्र निरख लें शरीरकी भी सुधि भूलकर अब यह अनुभव कर ले कि यह मैं ज्ञानमात्र हूँ तो ज्ञानात्मक अपने आपके अनुभवमे, चूँकि कोई विकल्प नही रहे तो आत्मीय परमार्थ शुद्ध आनन्द प्रगट होता विवश होकर अर्थात् उस आनन्दको प्रकट होना ही पडता है। ऐसा कभी नही हो सकता कि हम मात्र ज्ञानस्वरूप अपनेको अनुभव रहे हों और वहाँ आनन्द न हो।

ज्ञानसंवेदनकी प्रत्यक्षरूपता—भैया ! अपने ज्ञानके स्वरूपकी सम्हाल करिये ! विशुद्ध उत्कृष्ट स्वाधीन शुद्ध पवित्र आनन्द वहा ही प्रगट होता है जहाँ यह ज्ञान अपने आपको ज्ञानमात्ररूप अनुभव करने लगता है। अब यहाँसे ही आप समझ लीजिए कि ऐसा ज्ञानरूप अपनेको अनुभव करना यह प्रत्यक्ष ज्ञान कहलायेगा या परोक्ष ? यह प्रत्यक्ष है ! अब इसके बाद जो परोक्ष ज्ञान भी हो रहा है, बाह्य

पदार्थोंके सम्बन्धमे जो ज्ञान चल रहे हो उन ज्ञानोंका भी जो यह सम्वेदन होता है वह सम्वेदन होता है वह सम्वेदन भी प्रत्यक्ष है। ज्ञान जो स्पष्ट हुआ वह प्रत्यक्ष है। इस लक्षणपर जो यह बात रखी गयी कि इन्द्रिय और पदार्थोंके सम्बन्धसे जो ज्ञान उत्पन्न हुआ वह प्रत्यक्ष है। उसपर आपत्ति दी जा रही है कि सर्वज्ञके ज्ञानमे यह स्वरूप घटित नही होता इस कारण प्रत्यक्षका लक्षण यह ठीक नही है। प्रत्यक्षका निर्दोष लक्षण यो है कि अन्य ज्ञानके व्यवधान बिना जो प्रतिभास होता है अथवा विशेषरूपसे जो प्रतिभास होता है उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते है।

इन्द्रियार्थसन्निकर्षजताकी सुखसंवेदनप्रत्यक्षमे असिद्धि—प्रत्यक्षका लक्षण है अन्य ज्ञानोके व्यवधान बिना प्रतिभास होना अथवा विशेषरूपसे प्रतिभास होना, अर्थात् स्पष्ट प्रतिभासको प्रत्यक्षका लक्षण कहा है इसपर नैयायिक सिद्धान्तने अपना मतव्य यह रखा है कि प्रत्यक्षका लक्षण यह ठीक है जो इन्द्रिय और अर्थके सम्बन्धमे उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष है इसका समाधान सर्वज्ञके ज्ञानमे इस लक्षण का घटित न होना बताया था। अब समाधानमे दूसरी बात यह कही जा रही है कि जो हम आपको सुख आदिकका सम्वेदन होता है, सुखका परिचय होता है वह सुख सम्वेदन प्रत्यक्ष है ना, लेकिन उसमे इन्द्रिय और अर्थका सम्बन्ध नही है। तो इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्ध बिना भी सुख आदिक सम्वेदन प्रत्यक्ष विदित होते है इस कारण आपका लक्षण अव्याप्त हो गया। जितने जितने प्रत्यक्ष है उन सबमे इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध नही मिलता है। इन्द्रिय और सुखका सम्बन्ध होनेसे सुख सम्वेदन होता है यह बात तो कोई भी नही कह सकता। अपने आप सुख आदिकका ग्रहण होता है तो तुम्हारा यह प्रत्यक्षका लक्षण जैसे सर्वज्ञके ज्ञानमे घटता नही, वैसे सुख आदिकके सम्वेदनमे भी घटित नही होता।

इन्द्रियार्थसन्निकर्षजताकी चाक्षुषज्ञानमे असिद्धि—अक्षार्थसन्निकर्षजता चाक्षुष ज्ञानमे भी घटित नही होती। आखसे जिस पदार्थको जानते है उसकी आंखसे कोई भिडन्त तो नही होती। जैसे हाथसे पदार्थका स्पर्श जाना तो पदार्थका और हाथका सम्पर्क हुआ। इसी प्रकार आंखका और इस पदार्थका सम्पर्क तो होता नही और पदार्थ ज्ञानमे आता है तो चाक्षुष ज्ञानमे आपका यह लक्षण घटित नही होता कि जो इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे उत्पन्न हो वह प्रत्यक्ष कहलाता है। इसपर अब नैयायिक सिद्धान्तसे यह सिद्ध किया जा रहा है कि आंख भी पदार्थसे भिडकर जानती है। उसके लिये यह अनुमान बनाता है कि चक्षु भी प्राप्त करके पदार्थको जानते हैं। जैसे कि स्पर्शन इन्द्रिय पदार्थसे भिडकर ही जानती है। इसी प्रकार आंखे भी पदार्थ से भिडकर जाना करती हैं, क्योकि वे बाह्य इन्द्रिय होनेसे। इस प्रकार नैयायिकसिद्धान्त ने चक्षुको भी प्राप्यकारी सिद्ध करनेका प्रयास किया। अन्य इन्द्रियकी भांतिके उदाहरणका स्पष्ट भाव यह है कि जैसे जब शब्द और कानका सम्बन्ध होता तो शब्द

जाने जाते, नाक और गधका सम्बन्ध जब होता तो गध जानी जाती। रसनाका और पदार्थका भोजनका जब सम्बन्ध होता तब रस जाना जाता है। हाथका और पदार्थका सम्बन्ध होता तब ठढ गरमी आदिक जाने जाते है। इसी प्रकार चक्षुसे भी तो जाना जाता है उसका चक्षुसे सम्बन्ध है तब जाना जाता है।

चक्षुकी प्राप्यकारी सिद्ध करनेमे दिये गये वाह्येन्द्रियत्व हेतुके स्वरूप की असिद्धि— वाह्येन्द्रियत्व हेतुके सम्बन्धमे आचार्यदेव पूछते है कि चक्षु प्राप्त अर्थसे भिडकर ज्ञान करते हैं इसमे हेतु दिया है बाह्य इन्द्रिय होनेसे। तो बाह्य इन्द्रियपने का अर्थ क्या है? क्या इतना ही अर्थ है कि ये इद्रिया बाह्य पदार्थोंके सम्मुख बनती हैं? या यह अर्थ है कि ये इद्रिया बाहर रहने वाले पदार्थोंके पास ठहरती है? दूर देशमे रहनेका नाम क्या बाह्य इन्द्रिय है। इन दो पक्षोमेसे पहिली बात माननेपर अर्थात् बाह्यपदार्थोंके अभिमुख होनेका नाम बाह्य इद्रिय है ऐसा माना जाय तो मन से अनेकान्त दोष होता है। अर्थात् मन भी बाह्य पदार्थोंके ग्रहण करनेके अभिमुख ही हुआ करता है। जैसे कि अब हम मनसे किसी बातको सोचते है तो ऐसा लगता है ना कि यह मन उस पदार्थके अभिमुख होता है। चाहे यह मन यहा ही रहकर अभि-मुख माने चाहे मनकी गति बनाकर पदार्थोंके अभिमुख हुआ माने, पर मन पदार्थके अभिमुख हुआ करता है, लेकिन मनको प्राप्यकारी तो नही मानते है। मनसे जो पदार्थ जाना जाता है मन उस पदार्थसे भिडता हो फिर ज्ञानमे आये पदार्थ, ऐसा तो नही माना गया? यदि यह कहो कि बाह्य इन्द्रियका यह अर्थ है कि दूर क्षेत्रमे याने बाह्य देशमे इन्द्रियोका अवस्थान है तो इसमे तो प्रत्यक्षसे बाधा है, चक्षु कही बाहरमें कहा ठहरे है?

गोलकरूप बाह्यचक्षुरिन्द्रियकी प्राप्यकारिताकी असिद्धि— चक्षु मायने क्या? जो यह गोल-गोल गटा या पिण्ड है उसका नाम चक्षु है क्या? या कोई किरण होती है उसका नाम चक्षु है? तो रश्मिरूप चक्षु कही दूर देशमे नही है ऐसा आपने भी माना है क्योकि आपने ही बताया है कि इस गोलकके अन्दर ही पडी हुई तैजस द्रव्यके आश्रय रश्मियां (किरणें) हैं ये किरणे बाहरमे नही है। यदि गोलक को चक्षु मानोगे तो वह कही बाहर पडा ही नही है, सब लोग जान रहे है। इससे यह बात सिद्ध नही की जा सकती कि आँखें बाह्य पदार्थोंसे भिडकर ही जानती है। अन्य इन्द्रिय तो भिडकर जानती हैं। कानके साथ शब्दकी भिडन्त न हो तो कान शब्दको नही जान सकते इसी प्रकार घ्राण, रसना, स्पर्श इन्द्रियके साथ भी विशेष भिडन्त न हो तो ये इन्द्रियाँ भी नही जान सकती, किन्तु चक्षु और मन ये दो ऐसे तत्त्व हैं या इन्द्रिय अनिन्द्रिय हैं कि ये दूसरे पदार्थके भिडे बिना ही स्पर्श किए बिना ही जानते है। तो यह अनुमान बनाना कि चक्षु प्राप्त अर्थका प्रकाशक है, बाह्य इन्द्रिय होनेसे स्पर्शन आदिक इन्द्रियकी तरह तो यह बाह्य इन्द्रियपना हेतु सिद्ध नहीं होता।

मनको प्राप्यकारी सिद्ध करनेसे वचानेकी अशक्यता चक्षुकी प्राप्यकारिताकी सिद्धिमे बाह्येन्द्रियत्व हेतुके देनेमे आपने जो चतुराई की है अर्थात् "इन्द्रिय होनेसे" इतना न कहकर 'बाह्य इन्द्रिय होनेसे" यह जो कहा है वह इसलिए तो कहा कि कही यह हेतु मनमे न चला जाय क्योकि मन प्राप्त अर्थका प्रकाशक नही है, अर्थात् मन पदार्थमे छूकर जानने वाला नही है, सो बाह्य शब्द दे दिया। लेकिन बाह्य शब्द देनेसे भी मनको आप अपने सिद्धान्तके अनुसार प्राप्यकारित्वसे अलग नही कर सकते। जिन ढङ्गमे आप मनके द्वारा ज्ञान करना मानते हो उसमे भी मन प्राप्त अर्थका प्रकाशक सिद्ध होता है। कैसा मन ? नैयायिक सिद्धान्तमे यह माना गया है कि मनका आत्माके साथ सयोग सम्बन्ध है और आत्माका सुख आदिकके साथ समवाय सम्बन्ध है। सयोग सम्बन्ध कहते हैं अत्यन्त भिन्न पदार्थोका जो सम्बन्ध होता है उसको, जो सयोग होनेपर भी न्यारा न्यारा रहे उसे सयोग सम्बन्ध कहते हैं। जैसे चौकीपर पुस्तकका सयोग है तो चौकीपर पुस्तकका सम्बन्ध होनेपर भी ये दोनो न्यारे न्यारे है। तो सयोग कहलाता है इस तरहका सम्बन्ध और समवाय कहलाता है कथचित् तादात्म्य जैसा सम्बन्ध। जैसे दूधमे चिकनाई है तो दूधमे चिकनाईका समवाय है, समवाय सम्बन्ध मिला हुआ होता है और सयोगमे चीज मिली हुई नही होती। तो नैयायिक सिद्धान्तसे जो सुखका ज्ञान होता है वह इस प्रकार होता है कि मनका तो आत्माके साथ सयोग सम्बन्ध है और आत्माके साथ सुखका समवाय सम्बन्ध है तो यो मनके सयुक्त समवाय सम्बन्धके रूपसे होने वाले सुखको जाना तो मनसे भी भिडकर ही तो जाना। जैसे स्पर्शन इन्द्रिय पदार्थसे भिडकर जाना करती है इसी प्रकार मन भी भिडकर जानने लगा। उसे हटानेके लिये बाह्य इन्द्रिय शब्द क्यो दिया है ?

व्याप्तिज्ञानमे भी मनकी प्राप्यकारिता सिद्ध होनेका प्रसङ्ग — मनकी प्राप्यकारिता सिद्ध कर आने वाले अपने सिद्धान्तको जरा और भी देखो ! नैयायिक सिद्धान्तके अनुसार जो व्याप्तिका ज्ञान होता है — जहाँ जहाँ धूम है वहाँ वहाँ अग्नि है तो सारे विश्वके धूम और अग्नि आ गये। जब सारे विश्वको जान लिया तब व्याप्ति भी बन गयी। सो नैयायिकोने सारे विश्वको जान डाला। कहते कि मनका तो आत्माके साथ सम्बन्ध है और आत्मा है सर्वव्यापक तो आत्मा भिड गया सारे विश्व से। अब सारे विश्वमे जहाँ जहा जो जो चीजे है उन सबके साथ इस आत्माका सम्बन्ध है और आत्माके साथ मनका सम्बन्ध है तो देखो इस मनने व्याप्तिज्ञानमे भी सारे पदार्थोंसे भिड भिडकर जाना सब पदार्थोका सम्बन्ध करके जाना तो मन भी प्राप्त अर्थका प्रकाशक सिद्ध होगा आपके सिद्धान्तसे जैसे कि चाक्षुष ज्ञानमे माना गया है। चाक्षुष ज्ञानमे मानते है कि आँख पदार्थोसे भिडकर जाना करती है। कैसे भिडना होता है सो भी सुनो ! नेत्रसे तो हुआ चौकीसे सम्बन्ध और चौकीमे समवाय सम्बन्धसे रहता है रूप। रूप चौकीका गुण नही मानते वे लोग। मानते तो हैं पर चौकीका ही कुछ अवयव है इस तरह नही, किन्तु गुण अलग चीज है, चौकी अलग

चीज है रूपका इस चौकीमें समवाय सम्बन्ध है और चौकीका नेत्रके साथ संयोग सम्बन्ध है तो यों संयुक्त समवाय सम्बन्धसे जैसे आँखें रूपको जानती हैं, इसी प्रकार संयुक्त समवाय सम्बन्धके ढङ्गसे मन व्याप्तिज्ञानको जानता है और सुख आदिकको जानता है। यों सन्निकर्षके प्रसङ्गमें मनकी प्राप्यकारिताके माननेकी अनिष्ट बात आ गयी।

सम्बन्धसम्बन्धको सम्बन्ध न माननेकी मान्यताका प्रस्ताव - यदि यह कहो कि यह तो सम्बन्ध ही कुछ नहीं कहलाता। सीधा सम्बन्ध हो उसका नाम सम्बन्ध है। अभी मनका आत्माके साथ संयोग है ठीक है, वह सम्बन्ध हो गया, और आत्माके साथ सुखका समवाय सम्बन्ध है यह भी सम्बन्ध हो गया, पर मनका भी सुखके साथ चूँकि संयोग सम्बन्ध जिसमें है उसमें समवाय सम्बन्ध है, यों सम्बन्ध मान लें तो वह कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे रिस्तेदारोंमें एक साला बहनोईका सम्बध होता है तो आप यह बताओ कि उसके सालेका साला उसका क्या कहलाया ? साला ही कहलाया! कोई कहे कि नहीं साहब साला कैसे कहलाया ? वह तो सालेका साला है। साला तो वही है जो बहनोईके ससुरालके घरका है। तो इसी ढङ्गसे नैयायिक लोग इस सम्बन्धके प्रकरणमें कह रहे हैं कि सीधा सम्बन्ध हो वह तो सबध है और सम्बन्धका सम्बन्ध हो उससे भी सम्बन्ध है, इसको हम सम्बन्ध ही नहीं मानते। जब मनको प्राप्त अर्थका प्रकाशक सिद्ध किया जा रहा था नैयायिकोंके खिलाफ कि देखो, मनका सम्बन्ध है आत्मासे और आत्माका सम्बन्ध है सारे पदार्थोंसे, इस तरह मन ने सारे पदार्थोंसे भिड़कर पदार्थोंको जान लिया। इसके निवारणके लिए यह कह रहे हैं कि मनका उन समस्त पदार्थोंसे जो सम्बन्ध बना हो उसे हम सम्बन्ध ही नहीं कहते वह तो संयुक्तसंयोग सम्बन्ध है।

सम्बन्धसम्बन्धको सम्बन्ध न माननेपर चक्षुके प्राप्यकारित्वकी असिद्धि - संयुक्त संयोग और संयुक्त समवायका सम्बन्ध न माननेकी बात रखनेपर उत्तरमें कहा जा रहा है कि सम्बन्धका सम्बन्ध जिसमें हो उसके साथ यदि सम्बन्ध नहीं मानते हो तो यों आँखोंमें रूपका ज्ञान भी नहीं बन सकता क्योंकि आँखका रूपके साथ सीधा सम्बन्ध नहीं है। नैयायिक सिद्धान्तमें आँखने रूपके साथ सीधा सम्बन्ध नहीं माना, किन्तु आँखका सम्बन्ध है चौकीके साथ और चौकीका सम्बन्ध है रूपके साथ। तो सम्बन्धका सम्बन्ध तो सम्बन्ध ही नहीं कहलाता है, तो आँखें भी रूपका ज्ञान नहीं कर सकतीं, क्योंकि चक्षुका भी रूपके साथ संयुक्त समवाय सम्बन्ध है न कि सम्बन्ध है।

चक्षुसन्निकर्षके विरोधमें मनकी अप्राप्यकारिताकी सिद्धि—नैयायिक सिद्धान्त चक्षुको प्राप्त अर्थका प्रकाशक सिद्ध करनेमें बाह्येन्द्रियत्व हेतु दे रहे थे तो अब विरोधमें मनको अप्राप्यकारी सिद्ध करनेके लिये द्रव्यत्व हेतु दे रहे हैं कि चूँकि मन

भी इन्द्रिय है, न बाह्य इन्द्रिय सही अन्तः इन्द्रिय तो है। तो इन्द्रिय होनेके कारण मन भी भिडकर पदार्थोंको जान गया। इसपर दोषनिवारणके लिये नैयायिक सिद्धान्तमे कह रहे हैं कि इन्द्रियपना यद्यपि समान है। ये स्पर्शन इन्द्रिय आदिक इन्द्रियाँ भी इन्द्रिय हैं और मन भी इन्द्रिय है। इन्द्रियपनेकी समानता होनेपर भी स्पर्शनादिक इन्द्रियाँ तो भिडे पदार्थको जानती हैं, किन्तु मन बिना भिडे पदार्थको जानता है। तो यहाँ भी क्यों नही मान लेते कि बाह्य इन्द्रियपनेकी समानता होनेपर भी अर्थात् जैसे स्पर्शन, रसना, घ्राण, श्रोत्र ये भी बाह्य इन्द्रिय हैं और चक्षु भी बाह्य इन्द्रिय है तो बाह्य इन्द्रिय यद्यपि ये पाँचों हैं तिसपर भी ४ इन्द्रियाँ तो प्राप्त अर्थका प्रकाशक हैं अर्थात् पदार्थसे भिडकर जानती हैं, किन्तु चक्षु इन्द्रिय पदार्थसे भिडकर नहीं जानती। आप कहेंगे कि हमने तो बाह्य इन्द्रियत्वको हेतु रूपसे प्रमाणित कर दिया है, तो कहते हैं कि यहाँ भी मनको प्राप्त अर्थका प्रकाशक सिद्ध करनेमे इन्द्रियत्व हेतुको पेश कर दिया गया है। तो यदि यह कहो मनके बारेमे कि यह मन पदार्थसे भिडकर जाना करता है इसमे तो प्रत्यक्षसे बाधा है, तो यह बात तो आँखमे भी है। आँख भी पदार्थसे भिडकर नही जानती।

प्रत्यक्षके लक्षणका मूल विवाद— यहाँ मूल प्रकरण तो प्रत्यक्षके लक्षणका था, उसमे प्रसङ्गवश यह बात चल रही है और यह बहुत लम्बे समय तक चलेगी कि आँखें पदार्थसे भिडकर नही जानती और नैयायिक यह सिद्ध करेंगे कि आँखे पदार्थको छूकर ही जानती हैं। इन दो बातोपर अभी बहुत विवाद चलेगा। किस बातपर विवाद छिड गया? मूल बात यह है कि प्रत्यक्षका लक्षण यह किया गया था कि जो विशद ज्ञान हो सो प्रत्यक्ष है, विशदका अर्थ बताया था कि जो अन्य ज्ञानोकी अपेक्षा किये बिना प्रकृत ज्ञानसे ही सीधा जान लिया जाय उसे विशद कहते हैं। इस लक्षणको मेटनेके लिये नैयायिकने यह लक्षण उपस्थित किया था कि इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष कहलाता है। तो प्रत्यक्षके ये दो लक्षण मुकाबलेमे आये। जैनदर्शनने तो रखा—'विशद प्रत्यक्ष'। जो विशद हो सो प्रत्यक्ष। जो स्पष्ट ज्ञान है वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। इसके मुकाबलेमे नैयायिक सिद्धान्तने यह बात रखी कि जो इन्द्रिय और पदार्थके भिडनेसे ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष है। मन पदार्थोंसे भिडकर नही जानता इसलिये स्मरण आदिक जो कुछ होते हैं उनमे प्रत्यक्षका लक्षण नही जाना। इस प्रकार मुकाबलेमे प्रत्यक्षके लक्षणमे सन्निकर्षको देनेके कारण सन्निकर्षका खण्डन किया जा रहा है कि इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे उत्पन्न ज्ञानको प्रत्यक्ष मानना युक्त नही है। ज्ञान तो अपनी स्पष्टताके कारण प्रत्यक्ष है।

गोलकरूप चक्षुके सन्निकर्षमे प्रत्यक्ष बाधा—भैया! और भी आगे चलिये! जिस चक्षुको तुमने पदार्थसे भिडने वाली माना उस चक्षुका अर्थ क्या है? क्या जो यह गोलक है इसका नाम चक्षु है या कोई किरण निकलती है उसका नाम

चक्षु है ? जरा बीचमे एक बात और सुन लीजिये कि पदार्थको जाननेके लिये चक्षु पदार्थमे भिडता नही है, यदि चक्षु पदार्थसे भिड जाये तब तो ज्ञान और बन्द हो जाता है। चक्षुपर कागज रख दें तो चक्षुसे ज्ञान करना खतम हो गया। भिडकर जाननेकी बात तो दूर जाने दो, पदार्थ यदि इस गोलक चक्षुसे भिड जाय तो नेत्रसे ज्ञान करना और खतम हो जाता है। ये चक्षु तो शरीरके प्रदेशोमे ही ठहर रहे है। अगर ये गोलक चक्षु पदार्थके देशमे जाकर पदार्थको जाने तो जिस समय गोलक चक्षु पदार्थमे गया है उस समय तो आँखें ऐसी लगनी चाहिएँ कि जिन्हे देखकर डर लग जाय। दो खोलन रह जायेंगे। जैसे जिसकी आखोसे गटा निकल गए ऐसी अंधेकी जो हालत है वह हालत उस समय उसकी हो जायगी। ऐसी ही पक्ष्म नयन गोलक रहित आख दिखनी चहिएँ, पर ऐसी किसी चाक्षुष ज्ञान करने वालेकी आँखे देखी हैं क्या ? आँखो- सब कुछ जान रहे, पर ये नेत्र ज्योके त्यो पूरेके पूरे सबके पास हैं ?

रश्मिरूप चक्षुकी असिद्धि—यदि यह कहो कि हम चक्षुका अर्थ किरण करते हैं, किरणरूप हैं चक्षु तो किरणोको तो कोई प्रत्यक्षसे देख ही नही रहा, किरणें प्रत्यक्षसे जानी नही जा रही है। जैसे ये पदार्थ है और किरणरहित मालूम होते ऐसे ही ये आँखें भी किरण हैं। उनमे पदार्थका स्वरूप जैसे हमे स्पष्ट समझमे आता इस तरह किरणोका स्वरूप तो प्रतिभासमे नही आ रहा। यदि किरणें भी प्रतिभासमे आयें तो फिर विवाद भी न रहना चाहिए कि चक्षु किरणका नाम है या गोलकका नाम है। जब प्रत्यक्षसे ही देखने लगे तो कोई विवाद न रहना चाहिए। जैसे हम नीले पदार्थको यह नील है ऐसा अनुभव करते हैं तो उसमे विवाद तो नही होता, हाँ नील ही है, इसी प्रकार रश्मिरूप चक्षुओको अगर हम प्रत्यक्षसे जान लें तो विवाद न होना चाहिए। चक्षु पदार्थसे भिडकर नही जानता।

१८ चक्षुप्रदेशसे बाहर चक्षुके व्यापारकी असंभवता—भैया ! देखो आँखें आँखो की जगह ठहरी हैं, पदार्थ पदार्थकी जगह ठहरा है, समयसारमे ज्ञान ज्ञेयका सम्बन्ध बतानेके लिए इस नेत्रका ही दृष्टान्त दिया है, जैसे यह दृष्टि दृश्य पदार्थसे अत्यन्त भिन्न है, न दृश्य पदार्थका कर्ता है न दृश्य पदार्थका भोक्ता है आंख यदि यह दृश्य पदार्थको करने लगे आँख तो बरसातके दिनोमे जब चूल्हेमे लकड़िया अच्छी तरह नही जलती तो उस अग्निको जलानेके लिए पङ्खाकी तलास क्यो करते ? तेज आँखें करके देखने लगो, आग जल उठेगी, पर ऐसा होता है क्या ? तो आँखे आगकी कर्ता नही है और न भोक्ता हैं, यदि आँखें आगकी भोक्ता बन जायें तब तो फिर आँखो को जल जाना चाहिए। तो जैसे दृश्य पदार्थोको देखकर भी पदार्थोसे न्यारे रहते ये नेत्र, इसी तरह यह ज्ञान विश्वके समस्त पदार्थोको जानकर भी पदार्थोका कर्ता और भोक्ता नही है, किन्तु ज्ञान उन पदार्थोका मात्र ज्ञाता है, तो जैसे ज्ञान अपनी जगह है, ज्ञेय अपनी जगह है ऐसे ही आँखें अपनी जगह है, पदार्थ अपनी जगह हैं, आँखें

पदार्थमें भिड़कर जाना करें ऐसी बात यहाँ रंच मात्र भी नहीं है।

प्रकाशित पदार्थोंसे भिन्न किरणोंकी असिद्धता – दूसरी बात इस प्रकरण में इस सन्दर्भमें यह भी समझ लीजिए कि बैट्री जलानेपर जो किरणें नजर आती हैं वे किरणें बैट्रीकी नहीं हैं बल्बकी नहीं है प्रकाशक तारकी नहीं है, किन्तु जैसे उस बैट्रीके उजेलेमें बाहरकी चीजका प्रकाश हो गया इसी तरह बीचमें पड़े हुए जो सूक्ष्म स्कंध हैं उनका भी प्रकाश हो जाता है तो प्रकाशित उन सूक्ष्म स्कंधोंकी वह लाइन है वह लाइन बैट्रीके किरणोंकी नहीं है। सूर्यकी भी जो दिखती हैं जो ये हजारों किरणें ये सूर्यकी किरण नहीं है किन्तु मध्यमें जो अनेक सूक्ष्म स्कंध फैले हैं वे प्रकाशित होते हैं और हमने अपनी आँखोंकी दृष्टिमें उससे उनकी लाइन बना दी है वस्तुसे भिन्न किरणें कोई चीज नहीं हुआ करती जो पदार्थ हैं उनका स्वरूप उनमें रहता है, आँखें पदार्थोंसे भिड़कर नहीं जानतीं। इसलिए सन्निकर्षजनाका प्रत्यक्षका लक्षण बनाना युक्त नहीं है।

चक्षु सन्निकर्षकी असिद्धि –प्रमाण किसे कहते हैं ? इसमें सिद्धान्त तो यह है कि जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये ऐसा ज्ञान प्रमाण है, किन्तु इसके प्रतिपक्षमें अनेक मतोंने अपनी बात रखी। इस प्रसङ्गमें सन्निकर्षको प्रमाण मानने व प्रत्यक्ष प्रमाण माननेकी बात चल रही है। सन्निकर्षवादीने प्रत्यक्ष प्रमाणका इन्द्रिय और पदार्थमें सन्निकर्ष उत्पन्न होना माना है। उसपर उनसे कहा जा रहा है कि किसीको यह समझमें ही नहीं आ रहा कि पदार्थकी जगहमें रहने वाली रश्मियोंका साथ अन्य पुरुषोंकी इन्द्रियोंका सन्निकर्ष है तब फिर किसीकी रश्मियोंका प्रत्यक्ष कैसे बने ? यदि अपनी रश्मियोंके साथ दूसरी इन्द्रियोंका सन्निकर्ष हुए बिना रश्मि प्रत्यक्ष हो जाय तो अनवस्था दोष आयगा। यह किसीको भी नजर नहीं आता कि ये दूरी रश्मियाँ पदार्थकी जगह पहुँचती हों और फिर भिड़कर जानती हों। और आँखकी जगह है पदार्थ पदार्थकी जगह है उनका सन्निकर्ष कहाँ नजर आता है ? यदि कहो कि अनुमानसे सिद्ध करेंगे तो इसी अनुमानसे या अन्यसे ? इसी अनुमानसे सिद्ध करोगे तो इतरेतराश्रय दोष है और अन्य अनुमानसे रश्मि सिद्ध करोगे तो इसमें अनवस्था दोष है।

क्योंकि उम गोलकको आँख तुम नही बता रहे । गोलासे जो किरण निकलती है तैजस द्रव्यकी उसे आँख कह रहे हो फिर गोलामे अञ्जनका सस्कार करना व्यर्थ है। यदि यह कहो कि गोलाके आश्रयमे वह किरण है और उस गोलकको पलकोंसे बद कर दिया तो वे किरण विषयके प्रति जा नही सकते। इससे वे किरणे पदार्थके पास पहुँच सके इसके लिए हम आँखो को खोलते है, तथा घृत आदिकसे पैरोका सस्कार करे, पैरोमे घी आदिक लगाये तो उससे जैसे आँखोमे वल आता है, निर्मलता होती है तो फिर उन किरणोका आश्रयभूत जो गोलक हैं उनमे सस्कार लगाया तो किरणोमे वल आयगा ही व्यर्थ कैसे हुआ ? इसपर उत्तर देते हैं कि तिसपर भी तो गोलक आदिकमे लगा हुआ जो दोष है गटा, काच कामल आदिक कुछ भी लगा हुआ है, उसका प्रकाशक फिर तो बन बैठेगा। जैसे कि दीपककी कलिकामे रहने वाली जो किरणें है वे कलिकामे लगी हुई किरणें क्या कलिकाको प्रकाशित नही करती ? करती है, इसी प्रकार गोलकमे जो भी कामल आदिक दोष बने उसे भी प्रकाशित कर देना चाहिए। यदि ये किरणें (आँख) पदार्थमे भिडकर जानती है तो भी यही दोष है।

व्यक्तिरूप चक्षुमे फुली आदिकके असम्बन्धकी प्रत्यक्षविरुद्धता—इस गटाके साथ कामल काँच आदि रोगके साथ चक्षुका सम्बन्ध नही हैं यह भी नही कह सकते, क्योंकि यह बतलावो कि किस चक्षुके साथमें काच कामल दोषका सम्बन्ध नही है, आँखोमें जो एक रोग होता है जैसे फूली है, मोतिया बिन्दु है, काच कामल है तो उनको ये आँख क्यों नही देख पाती ? इनसे क्या आँखका सम्बन्ध नही ? यदि यदि कहो सम्बन्ध नही है तो उस आँखका क्या स्वरूप मानते हो जिसमे काचादिका सम्बन्ध नही है, यदि उसे व्यक्तिरूप चक्षु समझा कि जो गटा है ना काला और सफेद, इसका नाम आँख है और इसका सम्बन्ध उस काच कामलसे नही है, तो यह बात प्रत्यक्षविरुद्ध है, दुनिया देख लेती है दूसरे की आँखमे कि इसकी आँखमे अमुक रोग है, तो इस रोगके साथ आँखका सम्बन्ध तो है।

शक्तिरूप आँखकी व्यक्तिरूप चक्षुसे भिन्नदेशताकी असिद्धि—यदि कहो कि शक्तिरूप जो आँख है उसका सम्बन्ध नही है काच कामलमे तो वह शक्तिरूप आँख क्या व्यक्तिरूप आँखसे अलग रहती है, या वही रहती है ? अलग रहती तो कह नहीं सकते क्योंकि शक्ति क्या किसी व्यक्तिसे अलग रहती है ? शक्ति निराधार नही रहती। कोई भी शक्ति किसी अन्य पदार्थके आधार न रहेगी। जिस पदार्थकी शक्ति है उस ही पदार्थमें रहती है। तो इस व्यक्तिरूप आँखकी शक्ति आँखकी जगह ही मानना होगा और जब आँखकी जगह ही मान लिया तो सम्बन्ध तो है ही। तब फिर आँखसे सम्बन्ध हुआ और काँच कामलको आँख जानती नही तब यह कैसे कहते कि आँख पदार्थमे भिडकर ही पदार्थको जानती है।

रश्मिरूप आँख माननेपर फुली आदिके सम्बन्ध व खुद जाने जानेका प्रसङ्ग—यदि कहो कि वह आँख जो आँखमे लगे हुए रोगसे भिडी नही है वह किरणरूप आँख है तो उसका भी तो उस रोगमे सम्बन्ध है। जैसे लालटेन ले लो। उसके अन्दर ज्योति जल रही है। अब उस ज्योतिकी किरणे जो बाहर निकलती हैं क्या वे काँचको बिना छुवे निकलती हैं ? ऐसी बात तो नही है, इसी तरह आँखकी किरणे आँखपर लगे हुए काँच कामल धुन्ध आदिक रोगको छोडकर क्या बाहर पहुँच जाएँगी ? उनसे भिडकर ही तो जाएँगी ! तो जब रश्मिरूप किरणे उन काँच कामल आदिक रोगोसे भिडकर जानती हैं तो उसे जानती क्यो नही ? और, यदि आँखें पदार्थको छूकर जानने लगे किसी पदार्थको, तो आँखमे अजन लगा लीजिए, फिर वह अजन कैसा लगा, फैला है अथवा ठीक लगा है ? यह देखनेके लिए दर्पण उठानेकी क्या जरूरत ? जब आँखे पदार्थसे भिडकर जानती है तो आँखपर ही तो अजन लगा है फिर ये आँखें उस अजनको सीधा प्रत्यक्ष क्यो नही जान लेती ? पर जानती तो नही ! इससे यह सिद्ध है कि आँखें पदार्थसे भिडकर नही जानती।

दृश्यानुपलब्धि होनेसे रश्मिरूप चक्षुकी असिद्धि—चक्षु सन्निकर्ष सिद्ध ही नही हो सकता है। जो ऐसा सुझाव दिया गया कि इस गोलकसे निकलकर पदार्थ भिडकर वे किरणें पदार्थको प्रकाशित करती हैं तो पदार्थके समीप आने वाले उन तैजसोका किरणोका जिसमे रूप और स्पर्श विशेष पाया ही जाता है वह लोगोको क्यो नही दिखता ? उनकी उपलब्धि होनी ही चाहिए। जैसे सूर्यकी किरणें सबको नजर आती हैं, ये किरणें हैं तो यो आँखोसे वे किरणें फूटती हैं और वे किरणे पदार्थको छू कर जानती हैं तो उन किरणोकी उपलब्धि क्यो नही होती। क्यो यहाँ वहाँ लोगोको मालूम होता कि ये इसकी किरणें है ? उनकी उपलब्धि हो जाना चाहिए, पर उपलब्धि तो नही है। इससे दृश्य की अनुपलब्धिसे यह सिद्ध होता है कि आँखमे किरणें नही हैं। किरणें तो दृष्ट चीज हैं लोग उन्हे देखते है, जब किरणे नजर नहीं आती हैं आँखोसे निकली हुई तो किरणोकी बात करना एक दुराग्रह है। शायद यह कहो कि वे किरणें अदृष्ट हैं, किसीको दीखती नही हैं क्योकि उनमे रूप और स्पर्श उद्भूत नहीं है तो यह बात कहना ठीक नही है क्योकि ऐसा कोई तैजस द्रव्य नही है जिसमे रूप और स्पर्श प्रकट न हो। कही देखा है कोई तैजस चीज हो, चमचमाती हो, गर्मी उत्पन्न करने वाली चीज और उसमे रूप भी नही और स्पर्श भी नही, ऐसा कोई तैजस द्रव्य नही होता। ये चक्षुकी किरणें अगर तैजस द्रव्य है तो वे लोगोको दिख जाना चाहिए।

उपहासास्पद तर्कोंसे चक्षु सन्निकर्षकी असिद्धि—शायद यह कहो कि जैसे पानीमे भासुर रूप लोगोंको प्रतीत नही होता और स्वर्णमे उष्ण स्पर्शका उद्भव नही है और है वह चीज एक तैजस द्रव्य तो यह कहना ठीक नही है क्योकि उन दोनो

की अनुभूति असिद्ध है । यद्यपि अतप्त जलमे भासुर रूप नही है और न सुवर्णमे उष्ण स्पर्श अव्यक्त है । तथापि जलमे व सुवर्णमे भासुररूप और उष्ण स्पर्शकी प्रतीति भी होती है जब जल व सुवर्ण तप्त हो । जल व सुवर्णमे उष्ण स्पर्शकी अनुभूति है- यह बात वहाँ भी असिद्ध है । जब तप्त सुवर्ण व जलमे भासुरत्व अथवा उष्ण स्पर्श जाना गया है ? तो प्रत्येक जलमे सुवर्णमे उष्णत्व शक्तिका अनुबोध किया जाता है, जो बात दिख जाती उसके अनुसार उसकी ही अदृश्य अवस्थामे उसकी कल्पना होती है अन्यथा तो हम यह भी सिद्ध करने लगेंगे कि रात्रिमे सूर्यकी किरणे तो है, पर रात्रि को दिखती नही है लोगोको इसका फिर क्या इलाज है ? जो चीज उपलब्ध सिद्ध कर लागे तो हम कहेंगे कि रात्रिमे सूर्यकी किरणे है पर वहाँ रूप और स्पर्श प्रकट नही होता इसलिए लोगोको दिखता नही । जैसे आँखकी किरणे । यो तो अटपट कुछ भी सिद्ध किया जा सकता है । उसकी सिद्धिमे हम ऐसा अनुमान बना देंगे कि इन बिल्लियोको जो कि रात्रिमे देखती है उन्हे प्रकाशपूर्वक दिखता है, सूर्यकी किरणें रात को भी है तभी तो बिल्लियोको दिखता है और सूर्यकी किरणे रात्रिमे होकर भी वे अदृश्य है । यो तो कुछ से कुछ अटपट सिद्ध किया जा सकता है । इससे सीधी बात है कि चक्षु चक्षुकी जगह है, पदार्थ पदार्थकी जगह है ऐसा निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि चक्षुके निमित्तसे यह आत्मा दूर देशमे ठहरे हुए पदार्थको भी जान लेता है, वहाँ सन्निकर्षकी वजहसे प्रमाण नही है किन्तु ज्ञान ही ऐसा स्पष्ट हो रहा है इस कारणसे वह प्रमाण है ।

चक्षकी रश्मिरूपताका अभाव— नैयायिक लोग चक्षु सन्निकर्ष मानते है याने आँखका और पदार्थका सम्बन्ध होना है तब ज्ञान होता है, यों मानते है । तो उनसे पूछा गया था कि जिस आँखका पदार्थसे सम्बन्ध होता है उस आखका स्वरूप क्या है ? तो उन्होंने बताया बहुत वाद विवादके बाद कि आँखसे जो किरण निकलती है वह किरण चक्षु है और वह किरण पदार्थमे भिडती है तो पदार्थका ज्ञान होता है । इसके सम्बन्धमे चर्चा चली आ रही है कि आँखसे किरण निकलते किसीके भी नही दिखाई दी । तो जो पदार्थ दिख सकता है, और न दिखे तो इसका अर्थ है कि वह चीज नही है । सूर्यकी किरणे दिखती हैं दीपककी किरणे दिखती है आँखसे भी किरण निकलती हो तो लोगोकी दिखनी चाहिए और न दिखनेपर भी जबरदस्ती मानोगे कि है चक्षुकी किरण, तो हम यो कह बैठेंगे कि रातमे सूर्यकी किरणें है, न दिखनेपर भी जब उनकी सत्ता मानते हो तो रातमे सूर्यकी किरणे भी मान लो, और ऐसा अनुमान भी बना बैठोगे कि बिलाव आदिकको आखोसे जो रूप दिखाई देता है वह बाहरी प्रकाश पूर्वक दिखाई देता है । बाहरी प्रकाश है तब बिल्लीको रातमें दिखाई देता है । जैसे हम लोगोको प्रकाश हो तो दिखाई देता है इसी प्रकार रातमे भी बिलावको प्रकाश है, सूर्यकी किरणे हैं तब दिखाई देता है । तो यो रातको दिन की भी किरणे माननी पडेगी । यदि यह कहो कि बिलावकी आँख खुद तेजस्वरूप हैं

और उस हीसे रूपदर्शन होता है, वहाँ बाहरी प्रकाश माननेकी जरूरत नहीं है। तो यो हम भी कह देंगे कि मनुष्योके भी आत्मामे तेज है फिर मनुष्योको भी बाह्य प्रकाश की जरूरत नही है, सो मनुष्य भी प्रकाश बिना देख लें। मनुष्य प्रकाश बिना नहीं देखते और बिल्ली प्रकाश बिना देख ले यह बात क्यो हो ? प्रकाश मनुष्यको भी चाहिए बिलावको भी चाहिए अगर बिलावको न चाहिए तो मनुष्यको भी न चाहिए। अगर आँखकी किरण मानते हो तो ये सब दोष आते हैं।

चक्षुमे तैजसत्वकी असिद्धि — अब शङ्काकार कहता है कि जो बात जिस तरह देखी जाती है उसकी उस प्रकार कल्पना की जाती है। हम लोगोंको तो चाक्षुष तेज भी चाहिए और सूर्यका भी, तब ज्ञान बनता है। तो हम लोगोंका ज्ञान उस ही प्रकार माना जायगा। और, बिलावको केवल चाक्षुष तेजसे ही दीखता है इसलिए उसका ज्ञान किरणोपूर्वक ही माना जायगा, आँखकी वजहसे ही देख लेते हैं वे, तो उत्तरमे कहते हैं कि तो क्या मनुष्योके नेत्रमे किरणोका दर्शन होता है ? नही होता है। यदि अनुमानसे कहो तो हम रातमे सूर्यकी किरणें हैं उसका भी अनुमान कर बैठेंगे। जैसे दिनमे सूर्यकी किरणें हैं क्योकि यदि किरणें न होती तो दिख नही सकता था। इसी प्रकार यह भी कह सकते हैं कि रातमे सूर्यकी किरणें है, न हो तो बिलाव आदिक देख नही सकते। तो यो रातमें सूर्यकी किरणें भी मान बैठें। रातमे नही हैं सूर्यकी किरणें क्योकि दिखता नही और इसी हेतुसे न आँखमे किरण है। कोई कहे कि रातमे सूर्यकी किरणें नही है क्योकि यदि होती तो मनुष्योको भी दिखना चाहिए था। यह बात युक्त नही है क्योकि अपनी अपनी जुदी जुदी शक्तियां हैं। दिनमे किरणें रहती हैं और उल्लूको नहीं दीखता। तो सबकी अपनी अपनी योग्यता है। उल्लूको दिखनेमे प्रतिबन्धक सूर्यका आलोक प्रकाश है। हम लोगोका दिखनेमे प्रतिबन्धक अन्धकार है। अधकार होगा तो पदार्थ न दिखेगा। जैसे रातमे सूर्यकी किरणें नही हैं क्योकि उनकी उपलब्धि नही है इसी प्रकार नेत्रोमें भी किरणें नही होतीं क्योकि उनकी उपलब्धि नही है।

किसी भी प्रकार चक्षुका अर्थसे सम्बन्धकी असिद्धि — शायद यह कहो कि जैसे बहुत दूर भीटपर प्रदीपका प्रकाश पहुचता है तो प्रदीपकी किरणें भीटपर तो नजर आती हैं पर बीचमे नजर नही आती तो इसी प्रकार नेत्रकी किरणें भी नजर नही आती। यह प्रश्न ठीक नही है क्योकि दीपककी किरणें बराबर बीचमें भी हैं और कोई पदार्थ आ जाय तो वह प्रकट हो जाता है। तो जैसे दीपककी किरणें बीचमें न दिखी सही, पर भीटमे तो दिखलाई दी। इसी प्रकार नेत्रके किरण बीचमे नही दीखते, मगर जो चीज देखी जा रही है उसपर तो किरण दिख जाना चाहिए। यो जो बात नही है वस्तुमे, उस बातको माननेपर बहुत कुछ अदल बदलकर बातें बनानी पडती हैं। नेत्रमे किरण नही है, ये नेत्र तो अपनी जगह ही बैठे हुए निमित्त बन जाते

हैं दूरमे रहने वाले पदार्थके ज्ञानमे। जो चीज है नही, दिखती नही उसको तुम अगर जबरदस्ती सिद्ध कर ले तो रात्रिमे सूर्यकी किरणे भी सिद्ध करनी पड़ेगी। इससे इन्द्रियका सन्निकर्ष होनेमे ही प्रत्यक्ष होता है, ऐसा कहना युक्त नही है। वह ज्ञानकी विशेषता है कि कोई ज्ञान पदार्थको एकदम स्पष्ट जान लेता है तो वह ज्ञान प्रत्यक्ष है प्रत्यक्ष ज्ञान वह है जो विशद हो, स्पष्ट हो, यह ज्ञानकी विशेषता है। इन्द्रियके कारण से बात बनती हो सो नही है। इन्द्रिय तो मात्र निमित्त कारण हैं। इस प्रकार यहाँ स्पष्ट ज्ञानको प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध किया जा रहा है।

स्वरश्मिसम्बद्धार्थ प्रकाशकत्व हेतुसे रश्मियोकी सिद्धिका अभाव—जिसका यह मन्तव्य है कि आँख अपनी किरणोसे जब पदार्थको छू लेती है तब पदार्थका ज्ञान होता है, वह अनुमान बनाता है कि चक्षु अपनी किरणोसे सबंधित अर्थको ही प्रकट करता है क्योंकि तैजस होनेमे प्रदीपकी तरह। जैसे कि दीपक अपनी किरणोसे पदार्थको छू ले तब तो पदार्थका प्रकाश करता है। इसी तरह ये नेत्र भी तैजस है इस कारण अपनी किरणोसे पदार्थको छू ले तब पदार्थका दिखना होता है। इसपर उनसे पूछा जा रहा है कि स्वरश्मिसम्बन्धार्थ प्रकाशकत्व जो इसका हेतु दिया है इस हेतुसे क्या तुम चक्षुकी किरणे सिद्ध करना चाहते हो या किसी प्रमाणसे सिद्ध हुई उन किरणोका पदार्थसे सम्बन्ध होना सिद्ध करना चाहते हो? यदि किरणे सिद्ध करना चाहते हो तो इसमे प्रत्यक्षसे बाधा है। मनुष्य और महिलावोके नेत्र जितने दीखते हैं वे प्रत्यक्षसे किरणरहित दीखते है, नेत्रोस निकलती हुई किरणे किसीके भी नही दीखती। यदि यह कहो कि वे किरणे सूक्ष्म है इस कारण प्रत्यक्षसे बाधा न आयगी। तब कहते हैं कि इस तरह तो कुछसे भी कुछ सिद्ध कर दिया जा सकता है। हम यह कहने लगें कि पृथ्वीकी भी किरणें निकलती है और अनुमान बना देंगे कि पृथ्वी आदिक ये सब पदार्थ किरण वाले हैं क्योकि सत्त्व है उनमे। जैसे प्रदीप। प्रदीपमे सत्त्व है ना अस्तित्व है ना, और उसमे किरणें निकलती हैं, ऐसे ही पृथ्वीमे भी सत्त्व है, अस्तित्व है उससे भी किरणें निकलती हैं ऐसा भी सिद्ध कर देंगे, क्योकि जैसे तैजसपना किरणोसे व्याप्त है प्रदीप तुमने देखा है इस तरह सत्त्व और सकिरणता भी प्रदीपमे व्याप्त है तो जैसे तुम मनुष्योकी आँखोने किरणे सिद्ध करते हो उस तरह हम पाषाण, जमीन, मिट्टी आदिक सबमे आँखकी किरणे सिद्ध कर देंगे। अनुमान ही तो है जैसा चाहे बनालें। यदि यह कहो कि पृथ्वी आदिकमे किरणपना सिद्ध करनेमे प्रत्यक्ष विरोध है, कहाँ किरणें दिखती है? तो कहते है कि ऐसा ही विरोध इन आँखकी किरणोमे आने लगता है। आँखकी किरणे कहाँ दीखती है? आँखकी किरणे किसी भी प्रकार सिद्ध नही होती।

रश्मि सिद्ध करनेके लिये नक्तचरोके दृष्टान्तकी अयुक्तता—अब शङ्काकार कह रहा है कि बिलाव आदिककी आँखोमे किरणे प्रत्यक्षमे सिद्ध होती है,

मय किरणोंका विरोध कैसे ? समाधान—प्रथम तो यह बात है कि बिल्लीकी आँखोंमे भी किरणें नहीं है, चमकती हुई मालूम होती हैं, और मान लो थोड़े समयको कि बिल्लीकी आँखोंमे किरण हैं तो बिल्लीकी आँखोंमे है तो रहने दो बिल्लीकी आँखोंमे किरणें होनेसे मनुष्यकी आँखोंमे किरणें हो जायें यह तो नियम नहीं है, पदार्थ हैं, जहाँ हैं सो हैं। यदि बिलावकी आँखोंमे किरणें प्रतीत होती हैं तो उससे मनुष्यकी आँखोंमे क्या आ गया ? जुदी जुदी दो बातें हैं और फिर भी तुम जबरदस्ती मानो कि बिल्लीकी आँखमें किरणें प्रतीत होती हैं इससे मनुष्यकी आँखोंमे भी किरणें सिद्ध हो जायेंगी। तो इस तरह तो हम यों भी कह देंगे कि चूँकि स्वर्णमे पीलापन है, इसलिये कपड़ा, घड़ा आदिकमें भी स्वर्णत्व आ जाय। जब बिल्लीकी आँखोंमें किरण होनेसे मनुष्यकी आँखोंमे किरणें हम जान लें तो स्वर्णमे पीतपना होनेसे स्वर्णत्व कपड़ा, घड़ा आदिक सबमे आ जाय, यह सिद्ध कर दिया जायगा। यदि कहो कि इसमे तो प्रत्यक्षसे बाधा है। अरे स्वर्णमे ही स्वर्णत्व है कपड़ा आदिकमे कैसे हो ? ऐसे ही तो यहाँ यदि बिलावकी आँखोंमे किरणें हैं तो रहो, मनुष्यकी आखोंमे तो वे किरणें न आ जायेंगी। और, प्रथम तो बात यह है कि न बिलावकी आखोंमें किरण हैं न मनुष्यकी आँखोंमे किरण है। दूसरा दोष यह है कि बिलाव आदिककी आँखोंमे अगर चमकपना देखा जाता है और उससे अगर मनुष्यकी आखोंमे भी तुम तैजसपना सिद्ध करोगे तो गाय आदिककी आँखोंमे कालापन देखा जाता है और मनुष्य आदिककी आखोंमे सफेदी नजर आती है तो गाय आदिककी आखोंमें पृथ्वी भी बन बैठी और मनुष्यकी आखें जलकी बन बैठी और बिलावकी आँखें आपकी मान लें। तैजस मायने अग्निका गुण। बिलावकी आखोंमे पीतपन होनेसे तुम किरणें मानते हो तो गायकी आखें काली हैं उसे भी पृथ्वी मान लो। मनुष्यकी आखें सफेद हैं तो तुम मान लो जल की आखें। और फिर जिसमे चमककी प्रभा नहीं है ऐसी आखोंमे तैजसपना सिद्ध कैसे करोगे ? यदि इसी अनुमानसे करें तो इतरेतरा दोष है। अन्य अनुमानसे करें तो अनवस्था दोष है अर्थात् जैसी आखें मनुष्यकी हैं तैसी सबकी हैं और आँखोंमे ऐसा गुण है कि उसके निमित्तसे यह जीव दूरवर्ती पदार्थोंको जान लेता है। इसमें किरणें नहीं हैं, इस कारण चक्षुसन्निकर्ष ठीक नहीं बैठता। प्रमाण तो ज्ञान ही है। जो विशद ज्ञान है सो प्रत्यक्ष प्रमाण है। आखका पदार्थसे सम्बन्ध बने फिर वह प्रत्यक्ष कहलाये यह बात सिद्ध नहीं है।

चक्षुके तैजसत्वकी असिद्धि—शंकाकार कह रहा है कि चक्षु तैजस है क्योंकि चक्षु रूप आदिकमेसे केवल रूपका ही ग्रहण करता है, प्रदीपकी तरह। जैसे प्रदीप पदार्थोंके केवल रूपका ही प्रकाशक है अतः वह तैजस है। सो इसी प्रकार ये आखें भी जब रूप, रस, गंध, स्पर्शमेसे सिर्फ रूपका ही प्रकाश करती हैं तो चक्षु तैजस है इस प्रकारके अनुमानसे चक्षुमे तैजसपनेकी सिद्धि हो जाती है। जब चक्षु तैजस हैं तो उसकी किरणें निकलती है और किरणें पदार्थमे आती हैं तब ज्ञान होता

है। इस प्रकार चक्षुसन्निकर्ष प्रत्यक्ष प्रमाण है यह बात सिद्ध हो जाती है। इस आशङ्काका समाधान करते है कि यह बात सङ्गत नही है क्योकि यहा भी जो आखकी गोलक है जिसमे न भासुररूप है न उष्ण स्पर्श है, उस गोलमे अगर तैजसत्वकी सिद्धि कर रहे हो तो उसमे तो प्रत्यक्षसे बाधा है और फिर इस अनुमानसे भी बाधा आती है। चक्षु तैजस नही है क्योकि आख अन्धकारको भी ग्रहण करती है। जैसे आखमे प्रकाशका ग्रहण होता है इसी प्रकार अन्धकारका भी ग्रहण होता है। देखकर ही तो लोग कहते है कि यहा तो अँधेरा है 'अँधेरेमे कोई चीज नही दिखती। कोई चीज तो नही दिखती पर अँधेरा तो दिख रहा है। तो आंख तैजस नही है क्योकि वह अधकारका ग्रहण करती है। जो तैजस होता है वह अधकारका प्रकाश नही करता। जैसे आलोक प्रदीप ये तैजस वे तो अन्धकारका ग्रहण नही करते, इस अनुमानसे भी बाधा आती है। इस कारण चक्षु तैजस है यह बात सिद्ध नही हो सकती।

आलोकापेक्षा होनेसे चक्षुका अतैजसत्व— सीधी सी एक यह भी बात समझ लेना चाहिए कि दीपककी तरह यदि आँखें तैजस बन जायें तो जैसे दीपकको आलोककी अपेक्षा नही रहती अर्थात् कोई दीपक किसी दीपककी अपेक्षा तो नही करता कि दूसरे दीपकका सयोग मिले तब यह दूसरे पदार्थका प्रकाश करे किन्तु आंखे आलोक की अपेक्षा रखती है इससे सिद्ध है कि चक्षु तैजस नही है, यदि यह कहो कि हम इस गोलकको चक्षु नही मानते किन्तु जो किरणे निकलती है हम तो सिर्फ किरणोका चक्षु मानते है, तो भाई उन किरणोको सिद्ध करने वाला तो कोई प्रमाण है भी नहीं, अनुमानसे तो सिद्ध हो नही सकता प्रत्यक्षसे किरणे प्रतीत होती नही है। तो न यह प्रत्यक्षसे सिद्ध होता कि आंखे किरणरूप हैं और न अनुमानसे सिद्ध होता कि चक्षु किरणरूप है। चक्षुको तैजस सिद्ध करनेके लिये जो यह हेतु दिया था कि चक्षु तैजस है क्योकि रूप रस आदिक मे वह केवलरूपको ही प्रकाशित करता है, तो यह जो हेतु है वह चन्द्र है, रत्न है, माणिक है इनके साथ अनेकान्तिक हो जाता है। चन्द्रमा रूप का तो प्रकाश करता है, पर तैजस नही इसी प्रकार रत्न है वह रूपका तो प्रकाश करता है किन्तु वह तैजस नही माना गया है। वह तो ठडा है। यदि कहो कि हम उनको भी पक्षमे ले लेंगे याने उन्हे तैजस कह डालेंगे सो ठीक नही इसमे तो प्रत्यक्षसे बाधा है और फिर यो तो भी अनुमान सदोष नही हो सकता। जो दोष देगा उसीको पक्षमे ले लिया करेंगे। इससे यह बात भी युक्त नही जची कि जो केवलरूपका प्रकाशक हो वह तैजस होता है।

अतैजसमे तैजसत्वसिद्धिका व्यर्थ दुराग्रह—ऐसा भी नही कह सकते कि जल यद्यपि तैजस नही है, पर उसके भीतर छिपा हुआ तो तेज द्रव्य है वह ही रूपका प्रकाशक होता है। रत्नमे जो तैजसद्रव्य पडा है वह रूपका प्रकाशक होता है, ऐसा कहनेपर तो सभी जगह हेतु निष्फल हो जायगा। क्योकि हम जिस चाहेमे कह बैठेंगे।

पृथ्वी है, पाषाण है उसमे भी तेज द्रव्य छिपा है जिससे किरणें निकलती हैं ऐसा भी कह बैठेगे। जो बात देखी गई उसकी तो सिद्धि हो सकती है जो बात प्रत्यक्षसे व अनुमानसे बाधित है उसकी सिद्धि नही है, और किसी पदार्थमे भीतर तैजसद्रव्य छिपा है यो कहनेकी कोशिश करेंगे तो इसमे दृष्टान्त न मिलेगा। हम कहेंगे कि प्रदीपमे प्रकाश नही है, किरणें नही हैं, यदि ऐसा कहो कि इसमे तो प्रत्यक्ष बाधा है, दीपक गरम है, किरणें निकलती हैं तो ऐसी प्रत्यक्ष बाधा उधर भी है, रत्न आदिकमे भी तैजस द्रव्य नही हैं इससे यह निर्णय रखें कि आँखें पदार्थसे भिडकर नही जानती है और न आँखोमे किरणें हैं, आखें स्वय अलग रहकर उसके द्वारा यह आत्मा पदार्थोंको जान लेता हैं।

चक्षुके तैजसत्वकी सिद्धिमे दिये गये रूपप्रकाशत्व हेतुका व्यभिचार – चक्षु सन्निकर्षको प्रमाण मानने वालोने यह अनुमान बनाया था कि चक्षु तैजस द्रव्य हैं क्योंकि रूप, रस, गध आदिकमेसे सिर्फ रूपको ही प्रकट करते हैं जैसे दीपक तैजस है क्योकि वह पदार्थोंको प्रकाशित करता है सो रूप, रस आदिकमेसे केवल उसके रूपको ही प्रकट करता है, जो केवल रूपका प्रकाश करे वह तैजस होता है जैसे सूर्य है, दीपक है बिजली है ये रूपको ही तो प्रकट करते हैं। रस गधको तो नही प्रकट कर सकते। इसी प्रकार ये चक्षु सिर्फ रूपको जान सकते हैं इसलिए चक्षु तैजस हैं, ऐसा जो हेतु बनाया था "रूपप्रकाशकपन" तो उस सम्बधमे स्याद्वादी कह रहे है कि रूपका प्रकाश करने का अर्थ क्या है ज्ञान उत्पन्न करना है। रूपको प्रकट करनेका अर्थ है ज्ञानको प्रकट करना, और ज्ञानाद्वैतवादियोने ऐसा माना है कि ये जो पदार्थ है घट पट आदिक, ये रूपका ज्ञान उत्पन्न किया करते हैं। तो देखो ज्ञानको तो उत्पन्न इन पदार्थोंने भी कर डाला। ज्ञानाद्वैतवादी मानता है ऐसा कि ये पदार्थ ज्ञानको उत्पन्न किया करते है। तो पदार्थोंने भी ज्ञानको उत्पन्न किया मगर पदार्थ तैजस तो नही है तो यह हेतु व्यभिचारी बन गया। जो जो रूपका प्रकाश करे वह तैजस है ऐसा कहा था उन्होने। तो रूपका प्रकाश करनेका अर्थ है रूपका ज्ञान उत्पन्न करना। तो रूपक ज्ञानको उत्पन्न ये पदार्थ भी करते हैं उनके सिद्धान्तमे। तो पदार्थोंने ज्ञान उत्पन्न किया रूपका, किन्तु घटपटादिक पदार्थोंमे किरण नही है इसलिये हेतु सदोष हुआ।

हेतुमे करणत्व आदिका जोड करनेपर भी व्यभिचार— यदि कहो कि हम उसमे इन्द्रिय होनेपर इतना अर्थ और लगायेंगे अर्थात् जो इन्द्रिय होकर रूपका ही प्रकाश करे वह तैजस होता है। तो ऐसा विशेषण लगानेपर तो प्रकाश और पदार्थ मे सन्निकर्षके साथ चक्षु और रूपके सयुक्त समवाय सम्बन्धके साथ व्यभिचार आता है तो उससे सदोष हो जायगा अर्थात् चक्षुका और रूपका तो है सयोगसम्बन्ध और रूप का है उस पदार्थमे समवाय सम्बन्ध। वे लोग पदार्थमें रूपका तो समवाय सम्बन्ध मानते हैं, समवाय सम्बन्धका अर्थ है जैसा कि तादात्म्य होता है तन्मात्र, रूपम बन्ध

और पदार्थका आंखके साथ हुआ सयोग सम्बन्ध। तो इस प्रकार सन्निकर्ष तो बन गया करण, परन्तु वह पदार्थ तैजस नही रहा इसलिए वहाँ दोष उत्पन्न होगा । यदि उसमे एक विशेषण और लगा दोगे कि द्रव्यत्वे सति अथ तु जो द्रव्य होनेपर, करण होनेपर रूपका प्रकाश करे सो तैजस है, तो फिर चन्द्रमाके साथ दोष हो गया। चन्द्रमा द्रव्य भी है और करण भी है, रूपका प्रकाश भी करता है परन्तु तैजस नही है। इससे जो बात जहाँ नही है उसे सिद्ध करनेमे विवेक नही है सीधा मान लो कि ये चक्षु इन्द्रिय अपनी ही जगह रहकर उसमे ऐसा ही निमित्तका सम्बन्ध है कि बाह्य पदार्थोके ज्ञान करानेके कारण बनता है। आंखे पदार्थसे भिडे फिर पदार्थका ज्ञान करें ऐसी बात नही है।

तैजस द्रव्यकी रूपप्रकाशकत्वका भासुररूप व अभासुररूपके विकल्पो मे खण्डन—और भी बतलावो कि जो तैजस द्रव्य रूपका प्रकाश करने वाला है वह भासुररूप है या अभासुररूप ? यदि कहो कि भासुर है तो उष्ण जलके साथ जो मिला जुला है तैजस द्रव्य वह भी पदार्थका प्रकाश करने वाला बन बैठेगा। क्योकि भासुररूप उस जलमे उष्णता आ गई और वह तैजस बन गया । अगर कहो कि उसमे रूपका उद्भव नही है रूप प्रकट नही हो रहा तो इसी तरह तो आंखकी किरणे भी प्रकट नही हैं। तो उसकी भी सिद्धि मत मानो ! किरणे पदार्थको प्रकाशित करती हैं यह बात इसलिए सिद्ध न होगी। जिसके रूप प्रकट नही हुए ऐसे जो तैजस द्रव्य हैं वे रूपके प्रकाशक हो ही नही सकते। कौनसा द्रव्य है कि जिसमे रूप प्रकट हो नही और बाह्यमे पदार्थोको प्रकाशित करदे ? दृष्टान्त भी ठीक नही बैठता। नेत्रो मे किरणे नही हैं और इससे यह भी सिद्ध होता कि चक्षु रूपका प्रकाशक नही हो सकता क्योकि उसमे रूप प्रकट ही नही हुआ। किरणोका स्वरूप आया ही नही है। जैसे जलमे जिस अग्निका सयोग है, वह अग्नि तैजसरूपको प्रकट नही करता क्योकि वहाँ रूपका उद्भव नही है। यदि यह कहो कि जो द्रव्य रूपको प्रकट करता है वह द्रव्य अभासुर रूप है तो अभासुर भी द्रव्य जब रूपका प्रकाश करने वाला हो गया तो गरम जलमे जो तैजस है अग्नित्व है वह भी अभासुर है, वह भी रूपका प्रकाश करने वाला हो जावे। यदि यह कहो कि नही, जब भासुरतामे उस प्रकार का रूप किरण प्रकट हो जाय तो उसका प्रकाश होता है तो फिर नेत्रमे किरणे कैसे प्रकट हो ? फिर नेत्र भी पदार्थका ज्ञान कराने वाला नही हो सकता। इससे कुछ भी विशेषण लगाकर रूपपने हेतुको तुम सही बनाना चाहते हो तो नही बन सकता है। चक्षु एक करण है और उसमे ऐसी योग्यता है कि वह रूपका ही प्रकाश करनेका कारण है।

इन्द्रियोमे ज्ञाननिमित्तत्वकी योग्यता—ज्ञाननिमित्तत्वकी ये विशेषतायें इन्द्रियोकी हैं। ये सब इन्द्रिया अपने-अपने विषयको ही जानती हैं, स्पर्शन इन्द्रिय स्पर्शको जानेगी, उष्ण, शीत, चिकना, रूखा आदिक जाननेमे स्पर्शन इन्द्रिय कारण है,

रूपके जानने में रसना इन्द्रिय कारण है गंधके जाननेमे घ्राण इन्द्रिय कारण है और शब्द जाननेमे श्रोत्रइन्द्रिय कारण है तैजस होनेके कारण चक्षुरूपको जाने यह बात नही है, इसी तरह घ्राण इन्द्रिय पार्थिव हो तब गधको जानती है यह बात नही है रसना इन्द्रियमे जल तत्त्वसे कुछ निर्माण हुआ हो इसलिए रसको जानती है यह बात नही है। स्पर्शनेन्द्रिय वायुतत्त्वसे बनी हो इस कारण स्पर्शको जानती है। यह बात नही है। ये सब इन्द्रिया हैं और कायके अङ्ग हैं। उनमे ऐसी योग्यता है कि वे पदार्थों मे रहे हुए रूप, रस, गध, स्पर्श शब्दो को जाननेके कारण होते हैं, द्रव्यत्व व करणत्व का सहारा लोगे तोसम्बन्ध आदिककी तरह जो द्रव्य अतैजस है किन्तु द्रव्य रूप भी है, कारणरूप भी है ऐसा यह गोलक ही रूपके ज्ञानको उत्पन्न करने वाला क्यो न हो जायगा ? इस प्रकार चक्षुमे तैजसपना सिद्ध नही होता इसी कारण आँख किरण वाली हैं यह भी सिद्ध नही होता। यहाँ चक्षुसन्निकर्षवादी इसलिए आँखमे किरणें सिद्ध करना चाहता है कि गोलक आख तो पदार्थ तक जाती नही शरीरमें ही रहती हैं और ये पदार्थ बहुत दूर पडे हुए हैं। यदि किरणें नही मानते तो यह सिद्ध हो बैठेगा कि पदार्थसे इन्द्रिया भिडे बिना भी जानी जाता है। ऐसा वे मानना नही चाहते। सारी इन्द्रिया पदार्थोंसे भिडकर ही ज्ञान किया करती हैं, तो अन्य इन्द्रियमे तो बात घटित कर सकते हैं कि देखो, स्पर्शन इन्द्रिय पदार्थको छूकर उसका स्पर्श जानती है, रसना इन्द्रिय, घ्राण और श्रोत्र इन्द्रिय भी पदार्थको छूकर जानती है पर रूप भी पदार्थको छूकर जानता है और वे किरणें पदार्थको छूती हैं ऐसा समर्थन किए बिना सिद्ध नही हो सकती है।

चक्षुरश्मि और अर्थसम्बन्ध दोनोकी असिद्धि—सबसे पहिले जो बात बतलायी थी सन्निकर्षवादीने कि चक्षु अपनी किरणोसे सम्बन्धित अर्थका ही प्रकाश किया करते हैं, तैजस होनेसे। तो इस हेतुमे क्या सिद्ध करना चाहते थे क्या आखो मे किरणें होती है यह सिद्ध करना चाहते थे या उन रश्मियोका ग्राह्य पदार्थोंसे सबध सिद्ध करना चाहते थे। तो रश्मियाँ तो सिद्ध नही कर सके। अब अन्य पदार्थके सम्बन्धकी बात सिद्ध नही कर सकते क्योकि अन्य किस प्रमाणसे पदार्थकी रश्मिया सिद्ध होती हैं ? प्रत्यक्षमे तो चक्षुमे रश्मिया प्रतीत नही होती, अनुमानसे भी उन किरणोकी सिद्धि नही होती। ये सब बातें बहुत बहुत बता दी गई हैं। तो जब चक्षुकी किरणें ही सिद्ध नही हुईं तब रश्मियाँ स्वरूपसे ही असिद्ध हैं, फिर उनके बारेमे और जो वर्णन आया करते हैं ज्ञानाद्वैतवादी उनमे महत्त्व आदिक धर्म हैं वे सब श्रद्धामात्र गम्य हैं उनसे सिद्धि नही हो सकती। और आँखकी जो गोल है वह अर्थके पास जाती नही तब फिर यह कैसे सिद्ध होगा कि चक्षु प्राप्त अर्थका प्रकाश करती है।

चक्षु संन्निकर्षकी सिद्धिमे अन्य इन्द्रियोका दृष्टान्त अयुक्त—भिडे हुए अर्थसे ज्ञान होता है, ऐसा यदि सिद्ध करनेके लिए यह कहो कि स्पर्शन आदिकमे यह

बात देखी जाती है कि वे पदार्थसे भिडकर ही ज्ञान किया करती हैं, तो चक्षुमे भी यही बात सिद्ध होगी। तो इस तरह जबरदस्ती करनेका फल यह होगा कि अनवस्था बन जायगी। हम कहेंगे कि हाथ आदिक प्राप्त हुए, वे दूसरे पदार्थका आकर्षण करते है। जैसे मनुष्य हाथमे डंटा उठाकर भागे तो हाथसे छुवा तब उसमे आकर्षण हुआ। तो जो अयसकात मणि है उसमे भी हम यह कह बैठेगे कि अयसकात मणि लोहको छूकर आकर्षण करेगी। बाहर लोह रखा रहे और वह मणि उसका आकर्षण कर सके, यह सिद्ध न होगा, क्योकि यहा हाथमे देखते है कि पदार्थको पकडकर ही आकर्षण होता है। इससे स्पर्शन इन्द्रियका दृष्टान्त देकर चक्षुको प्राप्त अर्थका प्रकाशक सिद्ध नही कर सकते। यदि ज्ञानमे प्रमाण बाधा दोगे लोहके सम्बन्धमे, तो यह बात तो इन नेत्रोमे भी है। यदि स्पर्श भिडकर जानती है तो जाने, किन्तु आँख भिडकर नही जानती। यों चक्षुका सन्निकर्ष सिद्ध नही होता।

योग्यताके कारण चक्षुके निमित्तसे रूपका ज्ञान— चक्षुसन्निकर्षवादी यह मानते हैं कि आँखका पदार्थमे सम्बन्ध होता है तब पदार्थका ज्ञान होता है। इसी समर्थनमे वे स्याद्वादीसे प्रश्न कर रहे हैं कि यदि चक्षुका पदार्थके साथ सम्बन्ध न होता तो फिर चक्षुमे ज्ञान कैसे प्रकट होता? तो उत्तर दिया जा रहा कि कौन कहता है कि आँखमे ज्ञान होता है या पदार्थमे ज्ञान होता है। ज्ञानका उदय तो आत्मामे माना गया है। चक्षु पदार्थसे भिडता नही है। आँखमेसे किरणें निकलती है न आँखका गोलक पदार्थसे भिडता है। आँख आँखकी जगह है पदार्थ अपनी जगह है। ऐसा ही सम्बन्ध है कि आँखके द्वारा यह आत्मा दूर रहने वाले पदार्थोको भी जान जाता है। ऐसा भी नही कह सकते हो कि यदि आँख भिडकर न जाने तो फिर एक साथ सभी पदार्थोंको आँख जान लेवे। यह दोष भी नही दे सकते क्योकि प्रत्येक पदार्थमे भावो मे उसकी शक्ति प्रतिनियत है। जो जहाँपर योग्य है वह ही उस कामको करता है और फिर कार्यकारणका अधिक भेद माननेपर हम यह प्रश्न कर बैठेंगे कि सब ही काम एक कार्यसे क्यो नही हो जाते, और आँखकी किरणें लोकके अन्त तक क्यो नही जा पाती? क्यो दो मीलको ही देखकर रह जाती। सैकडो मीलकी चीज क्यो नही देख पातीं? यदि कहो कि आँखोंकी योग्यता ही उतनी है तो सब जगह योग्यता मान लो। आत्मामे जाननेकी योग्यता है इसलिए आत्मा जान लेता है। इसमे इसकी जरूरत न पडेगी कि आँखे पदार्थसे भिडें तब जाने। पदार्थसे भिडकर तो आँखे जानती ही नही। आँखमे जो अंजन लगा है या आँखमें फूली आदिक निकली है उसे आँख क्या जानती है? आँख तो बिना छुवे अलग ही रहे पदार्थको जाना करती है।

चक्षुःसन्निकर्षमें चक्षु द्वारा रसादिके ज्ञानका प्रसङ्ग— अब इस बातपर भी विचार करिये। तुम मानते हो कि आँख रूपको जानती और किस तरह जानती है कि आँखका तो है पदार्थमे संयोग और पदार्थमे है रूपका समवाय। दो सम्बन्ध

हुए - संयोग सम्बन्ध और समवाय सम्बन्ध । दो पदार्थोंका जो कि न्यारे न्यारे हुए उनका तो संयोग सम्बन्ध होता है और एक ही पदार्थमें जो उसका गुण है उन गुणों का समवाय सम्बन्ध होता है । समवाय कहते हैं तादात्म्यकी तरह और संयोग निकट रहनेको । तो आंखका रूपके साथ संयुक्त समवाय है सीधा सम्बन्ध नही है । याने आंखने तो पदार्थसे सम्बन्ध किया और पदार्थसे है रूपका सम्बन्ध, इस तरह आंखसे रूप जाना । तो जब संयुक्त समवायसे आंख रूपको जानती है तो इस तरह आंखका रस और गंधके साथ भी संयुक्त समवाय सम्बन्ध है । आंखने तो पदार्थके साथ संयोग सम्बन्ध किया और पदार्थमें जैसे रूपका समवाय है ऐसे ही रसका भी गंधका भी स्पर्शका भी समवाय सम्बन्ध है । तो आंख रूपको ही क्यों जानती है रस आदिकको क्यों नहीं जान लेती ? जैसे आंखका रूपके साथ संयुक्त समवाय सम्बन्ध है इसी तरह आंखका रसके साथ भी संयुक्त समवाय सम्बन्ध है । आंखने जाना आमका । आम देखा और आममें है रूपका सम्बन्ध, आममें है रसका सम्बन्ध तो छूकर जानती है । आंख तो रूपको भी जाने, रसको भी जाने, गंधको भी जाने, और अगर जान लेवे तो एक आंख ही सबको जान जाय । रसनाकी भी क्या जरूरत है और नाक आदि की भी क्या जरूरत है ? सभीको जान बैठे । यदि यह कहो कि आंखमें रस और गंधको जाननेकी योग्यता नही है, योग्यताका अभाव होनेसे चक्षु उसमें रहनेवाले रसको नही जानते तो आचार्य कहते हैं कि फिर तो सभी जगह योग्यता मानो । यह बीचमें सम्बन्ध क्यों निपोड रखा है ?

चक्षुरश्मिका अर्थसम्बन्ध माननेपर काचादिकी ओरके पदार्थके ज्ञान में आपत्ति - यदि यह हठ भी किये जावोगे कि आंखसे सम्बन्धित पदार्थ ही आंखके द्वारा जाना जाता है तो यह बतलावो कि कोई स्फटिककी या कांचकी अल्मारी है रहने वाली चीजको ये आंख कैसे जान लेती हैं, क्योंकि आंखकी किरणें तो कांचसे रुक जाना चाहिए । क्योंकि तुमने आंख माना है किरणोंको । जैसे आंखकी किरणें भीटके आडे पड जानेपर भीटसे बाहरकी चीज नही देख पाती ऐसे ही कांचके अन्दर अल्मारीमें रखी हुई चीज भी न दिखना चाहिए, क्योंकि कांच आडे पड गया । यदि यह कहो कि आंखकी किरणोंकी उस कांचसे टक्कर लगी तो कांच भी नष्ट हो गया इस कारण उस बगलकी चीजको आंख जान लेती है यदि वह नष्ट हो गया तो तो कांचकी उपलब्धि न होना चाहिए क्योंकि किरणोंसे तो कांच स्फटिक नष्ट हो गया । स्फटिक कांच नष्ट हो गया तो उसपर कोई चीज रखी हो तो गिर जाना चाहिए । क्योंकि उसका आधारभूत जो स्फटिक है कांच है वह नष्ट हो गया । परमाणु दृश्य नही होते और न किसीके आधारसे होते, अन्यथा अवयवोंकी कल्पना करना अनर्थक हो जायगी । सो परमाणुओंके रहनेकी भी कल्पना नहीं बना सकते । किरणोंने कांच तोड दिया और तोडकर वे किरणें आगे चली गईं, बाहर चली गयी तब ही पदार्थ देखा जा सकता तो कांचपर रखी चीज गिर जाय अथवा कांच

न दिखे इसपर यह कहो कि काच नष्ट हो गया था पर दूसरे स्कन्ध तुरन्त पैदा हो जाते है, तो कहते हैं कि तुरन्त पैदा हो गया दूसरा स्कंध तो किरणमे अड जायगा फिर भी आगे नही दिख सकेगा, किन्तु दिखती है बराबर एक साथ दोनो चीजे। काच भी दिख रहा और बाहर रखी चीज भी दिख रही। इससे चक्षु पदार्थसे अडकर नही जानता। पदार्थका आँखके निमित्तसे ज्ञान हुआ करता है। चक्षुसन्निकर्ष प्रमाणभूत नही है।

चक्षुरश्मियोसे काच टूट जानेपर भी काचका भ्रम बतानेकी अयुक्तता

नैयायिक लोग यह मानते हैं कि जैसे हाथका और पदार्थका स्पर्श हो तो मालूम होता है कि यह ठढा है और यह गरम है, जिह्वाका पदार्थसे स्पर्श हो तो रस मालूम होता है, घ्राणका फूलसे स्पर्श हो तो गध मालूम होता है, स्रोत्रसे शब्दका सम्बन्ध बने तो शब्दका ज्ञान होता है, इसी तरह आँख भी पदार्थसे भिडती है तब पदार्थके रूपका ज्ञान होता है। तो भिडती कैसे है ? तो उनका कहना है कि यह आँखका जो गोला है यह तो पदार्थसे नही भिडता, पर आँखसे किरणें निकलती रहती है। वे किरणे पदार्थसे भिडती है तब पदार्थका ज्ञान होता है कि इसमे अमुक रूप है, इसपर यह आपत्ति दी गयी थी कि यदि ये किरणे पदार्थसे भिडकर ही जाने तो काँचकी अलमारीमे रखी हुई चीज या स्फटिककी दूसरी तरफ रखी हुई चीजको नही जान सकती, क्योकि किरणे स्फटिकसे टक्कर लगकर रुक जायेंगी। उसे तोड कर ये किरणे न जा सकेंगी। फिर उस पदार्थका निर्णय कैसे होगा ? शकाकारने यह कहा कि जब किरणें स्फटिकमे पहुचती है तो वह स्फटिक नष्ट हो जाता है। तो इसपर पूछा गया था कि वह काँच (स्फटिक) अगर नष्ट हो गया तो उसपर रखी हुई कोई चीज गिर जाना चाहिए। और, ऐसा दिखता भी तो नही है कि काँच टूट गया। तो शकाकार इसके उत्तरमे कह रहा है कि वह काँच तो नष्ट हो गया और दूसरा काँच (स्फटिक) उत्पन्न हो गया। फिर दूसरा काँच नष्ट हो गया और तीसरा काँच उत्पन्न हो गया, बस यही उत्पन्न होने और नष्ट होनेका क्रम चलता रहता है। इसी कारणसे लोगोको यह भ्रम हो गया है कि वहा काँच ज्योका त्यो है। शकाकार यह बात रख रहा है अब देखो यद्यपि इसकी प्रत्यक्ष गवाही नही देता है कि हाँ ऐसा होता है कि किरणें काँचको नष्ट करती हैं और नया काँच बनता है, फिर भी शकाकार अपनी युक्ति लगाकर यह बता रहा है कि लोगोको इसलिये काँचका भ्रम हो गया कि वह जल्दी जल्दी नया-नया बनता रहता है इसपर समाधान देते हैं कि जब काँच नष्ट हुआ और नया बना, फिर नष्ट हुआ नया बना ऐसी स्थितिमे यह तो भ्रम बना दिया कि काँच बराबर है, यह भ्रम हो गया, किन्तु यह भ्रम क्यो नही होता कि काँच बिलकुल नही है ऐसा भी तो ज्ञान होना चाहिए। तब वहा दोनो बाते है। इसमे यह दलील व्यर्थ है कि आखसे किरणें निकलती हैं और वे किरणें पदार्थको छूती है तब पदार्थका ज्ञान होता है। आखमे ऐसी योग्यता है कि आख अपनी ही

जगह है, पदार्थ बाहर है, पर आंखके निमित्तसे वह पदार्थ जान लिया जाता है।

चक्षुरश्मियोके सम्बन्धमे एक और विचार— अब और भी सोचिये। यदि आंखकी किरणें जाकर पदार्थका जानें तो जो मलिन जल है गंदा जल है उसके भीतर पडे हुए पदार्थोको ये आंख क्यो नही जान जाती ? क्योंकि जिन आंखकी किरणोमे इतनी क्षमता है कि स्फटिक और कांचको तोडकर भीतर चली जाती है वे किरणें क्या गंदे जलको पार करके उसके भीतरकी चीजोको जान नही सकती ? तो उसके उत्तरमे सन्निकर्षवादी यह कह रहे हैं कि जब आंखकी किरणें उस गंदे पानीके पास पहुँची तो पानीने किरणोंका नाश कर दिया इसलिए वे भीतर नही जा सकीं और उस गंदे जलके भीतरके पदार्थोको आंखें न जान सकी। यदि ऐसा मन्तव्य है तो फिर जो साफ जल है उस साफ जलके भीतर पडी हुई चीज भी न दिखना चाहिए क्योंकि जब वे किरणें उस जलके निकट पहुँची तो जलने उन किरणोको नष्ट कर दिया। पर, ऐसा तो देखा नही जाता। यदि यह कहो कि किरणोकी योग्यतापर बात है। किरणें कहीं जा सकती हैं ? कहीं नही जा सकती। तो यह सब उसकी योग्यतापर है तो फिर सब जगह योग्यता मान लो। किरणें आंखोमे नही होतो, पर आंखोमे ऐसी योग्यता है कि पदार्थोके जाननेमे कारण हो जाती हैं। इसमे जितने पहले दोष बताये गए हैं उन दोषोको यदि नहीं चाहता है दार्शनिक तो उसको प्रतीति सिद्धि बातकी अवहेलना न करनी चाहिए। अर्थात् सब लोग प्रत्यक्षसे यह ही समझ रहे है कि आंख हमारी पदार्थसे भिन्न है, उसमे न किरणें हैं, और न पदार्थसे भिडती है, अलग रहकर ही जानती है। ऐसा ही मानना चाहिए।

चक्षुके अप्राप्यकारित्वकी अनुमानसे सिद्धि— चक्षु प्राप्यकारी नही है, ज्ञानमे ऐसी योग्यता है कि वह चक्षु इन्द्रियका निमित्त पाकर एकदेश विशद ज्ञान कर ले। चक्षुका अप्राप्यकारित्व अनुमानसे भी सिद्ध होता है। चक्षु अप्राप्त अर्थका ही प्रकाश किया करते हैं याने चक्षुसे विना भिडे हुए ही पदार्थका प्रकाश कर लिया जाता है अर्थात् जान लिया जाता है क्योंकि अत्यन्त भिडे हुए पदार्थको ये नही जानती है। जो आंखसे भिडी हुई चीजको आंख न जान सके तो इससे तो यह सिद्ध हुआ कि आंख भिडकर किसीको नही जानती। यदि आंख बाहरी पदार्थसे भिडकर जाने तो आंखमे यदि काजल लगा दें तो उसे भी आंख जान जाय। उसे क्यो नही आंख जान लेती। जानती तो नही। इससे यह सिद्ध है कि जाननेके लिए आंख पदार्थसे भिडती नही है। पदार्थसे अलग ही रहकर आंख जाननेमें कारण बन जाती है। हमारा यह हेतु असिद्ध भी नही है क्योंकि दुनिया मान रही है कि आंखमे जो अत्यन्त निकट हैं धुन्ध आदिक रोग उनको आंख नही जान सकती। जो अत्यन्त निकट चीजको नही जान सकती, वह किसी भी जगह भिडी हुई चीजको भी नही जानती। बिना भिडे ही अपनी जगह रहकर आंख पदार्थको जाननेमें निमित्त होती है।

चक्षुके अप्राप्तार्थ प्रकाशकत्वका पुनः समर्थन —अभी यह सिद्ध किया था कि चक्षु विना भिडे हुए पदार्थोका ज्ञान कराती है क्योकि अत्यन्त भिडे पदार्थोंका नही कराती। आंखमे जो अत्यन्त भिडे हुए अञ्जन आदिक है उनका ज्ञान नही कराती, तो उससे सिद्ध है कि बाहरमे रहने वाले पदार्थसे भी भिडकर ज्ञान नही कराती। इसपर चक्षु सन्निकर्षवादी दोष देते हैं कि तुम्हारा हेतु साध्यसम है अर्थात् जो तुम्हे सिद्ध करना है उसीका तुमने हेतु बना दिया। जैसे कोई कहे कि शब्द अनित्य है, अनित्य होनेमे तो क्या यह कोई दमदार बात हुई? अनित्य ही सिद्ध करना है और अनित्यको ही हेतु दे रहे तो इसका अर्थ तो एक ही है। न भिडे हुए पदार्थका प्रकाश करना और अत्यन्त भिडे हुए पदार्थका प्रकाश न करना दोनोका तो एक ही अर्थ है। यह हेतु साध्यसम हो गया, क्योकि जैनोने प्रसज्य प्रतिषेध माना नही। याने भिडकर प्रकाश नही करती इसका अर्थ न ही न रहे ऐसा माना नही जैनोने। उसका अर्थ यह बना कि बिना भिडे अर्थका प्रकाश करता है। तो जो साध्यका अर्थ है वही हेतुका अर्थ हो गया। इसपर उत्तर देते हैं कि यह बात सही नही है। इसमे तो तुम्हारा ही अनिष्ट सिद्ध होता है। जैसे कान आदिकमे प्राप्यकारित्व है मायने शब्द जब कानोंमे भिडते है तब ज्ञान होता है और फिर वह अत्यन्त निकट अर्थका भी प्रकाशक है तो इसमे व्याप्यव्यापक भाव सिद्ध है तो जहाँ अत्यन्त प्राप्त अर्थका प्रकाशपना नही वहाँ यह सिद्ध कर दिया कि यह भिडकर नही जानता, आंख भिडकर नही जानती क्योकि यदि आख भिडकर पदार्थको जानती होती तो जो अत्यन्त भिडे हुए अजन आदिक है, उन्हे क्यो नही प्रकाश करती। इससे सीधा मान लो कि आख भिडकर नही जानती, दूर रहकर ही जाननेमे निमित्त होती है।

काच कामल अञ्जनादिमे चक्षुकी उपदानताका अभाव होनेसे हेतुकी निर्दोष साधकता – शायद यह कहा कि स्पर्शन इन्द्रिय तो भिडकर जानती है किन्तु स्पर्शन इन्द्रियमे चमडेमे जो भीतर चीज है उसे नही जानती। तो ऐसे ही हमारी आंख भी बाहरमे भिडकर जानती है और आंखमे जो चीज है खुद उसका नही जानती तो कहते हैं कि यह स्पष्ट युक्त नही है क्योकि स्पर्शन इन्द्रियमे जो भीतर चीज है वह तो स्पर्शन इन्द्रियका उपादान है, बाहरी चीज तो नही है। और आंखोमे जो कॉच हुआ, कामल राग हुआ, मोतिया हुआ, धुन्ध हुआ, काजल लगाया, ये ना आँखकी चीज नहीं हैं, ये तो ऊपरी चीज है इसलिए अन्य इन्द्रियका दृष्टान्त देकर यह सिद्ध नही कर सकते। जैसे कहते हैं ना कि रसना इन्द्रिय बाहरी चीजका तो स्वाद ले-लेती है पर खुदका स्वाद नही लेती, ऐसे ही ये आँख बाहरी चीजको तो जान लेती है किन्तु खुदकी चीजको नही जानती। तो यह दृष्टान्त नही दे सकते क्योकि जो रसनाकी निजी चीज है वह तो रसनाका उपादान है, पर जो आँखमे अञ्जन टेंट आदिक है वे आँखको उपादान तो नही है। अपने कारणसे भिन्न जो स्पर्श आदिक हैं वे स्पर्शन इन्द्रियके विषय हैं, खुदका प्रकाश न हो, पर खुदमे जो धुन्ध आदिक हैं वे तो आँखके

कारणसे अलग चीज हैं, उनका क्यों ज्ञान नहीं होता इससे यह बात स्पष्ट सही है कि आँख अप्राप्त भिड़े हुए बाह्य पदार्थको जान नहीं सकती। और फिर अनुमान लगा लो। आँख बाहर जा करके पदार्थसे सम्बन्ध नहीं करती। इन्द्रिय होनेसे। जैसे स्पर्शन आदिक इन्द्रिय। इस अनुमानसे अप्राप्यकारिता सिद्ध होती है। अगर यह कहो कि आँख तो पदार्थमें नहीं जाती मगर पदार्थ आँखमें आ जाता है तो इसमें भी प्रत्यक्ष विरोध है। न तो पदार्थके पास आँख को जाते हुए किसीने देखा है और, न आँखमें पदार्थको घुसते हुए ही किसीने देखा होगा। विषय विषयके स्थानपर है, चक्षु-चक्षुके स्थानपर है।

चक्षु और मनकी अप्राप्यकारिता होनेसे सन्निकर्षमें प्रत्यक्षताकी असिद्धि—चक्षु और मन ये दो भिड़कर नहीं जानते, अन्य इन्द्रिय तो भिड़कर जानती हैं, कानमें शब्द भिड़ें तो जाने, नाकमें गंधके परमाणु घुसें तो जाने, जिह्वापर चीजका सम्बन्ध हो तो जानें, स्पर्शन इन्द्रियसे पदार्थका सम्बन्ध हो तो जाने, किन्तु आँख दूरसे ही जानती है। मान लो हजारों योजनाकी बात दूरसे ही जानता है। अमेरिकामें मन चला गया तो क्या मन भिड़कर चला गया? मन मनकी जगह है। यहाँ रहकर ही मनने बाहरकी बात जान ली। इस तरहसे सन्निकर्षको प्रत्यक्ष नहीं सिद्ध कर सकते प्रत्यक्ष केवल दो ही हैं एक मुख्य प्रत्यक्ष और एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। जो बात व्यवहारमें लगती है उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं, और अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान केवलज्ञान, जो एक आत्मासे ही जानता है वह मुख्य प्रत्यक्ष है। और तीसरे ढङ्गका कोई प्रत्यक्ष नहीं है।

प्रत्यक्ष प्रमाणके भेद—न्यायशास्त्रमें प्रमाणका लक्षण बनाया है कि ऐसा ज्ञान प्रमाण कहलाता है जो ज्ञान अपनेको भी जाने और पदार्थको भी जाने अर्थात् ज्ञान खुदका भी निर्णय रखता है कि मैं ठीक हूँ और पदार्थका भी निर्णय रखता है। जैसे जिस ज्ञानसे जाना कि यह चौकी है तो उस ज्ञानने दोनों जगह निर्णय बनाया। चौकीका जो यह ज्ञान है सो यह ज्ञान सही है, जो ज्ञानमें चौकी आ रही है तो यह पदार्थ भी चौकी ही है। ऐसे ज्ञानको प्रमाण कहकर दूसरे परिच्छेदमें यह बता रहे हैं कि ज्ञान प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे दो तरहका होता है - कोई प्रमाण प्रत्यक्ष है कोई प्रमाण परोक्ष है। प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो स्पष्ट ज्ञात हो। उस प्रत्यक्षके भी दो भेद बताये जा रहे हैं—एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और दूसरा मुख्य प्रत्यक्ष। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तो हम आप लोगोंका व्यवहार वाला प्रत्यक्ष है। जैसे इन्द्रियसे देखकर कहते हैं कि हमने प्रत्यक्ष देखा स्पष्ट सुना, तो यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। और, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान ये मुख्य प्रत्यक्ष हैं। तो उन दो प्रकारके प्रत्यक्षोंमेंसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्षका स्वरूप बतला रहे हैं और किन कारणोंसे उत्पन्न होता है यह भी बता रहे हैं।

इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त देशतः साव्यवहारिकम् [२-५]

साव्यवहारिक प्रत्यक्षका स्वरूप – जो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न हो और एकदेश स्पष्ट हो उसे साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते है। जैसे स्पर्शनसे जानना कि अमुक स्पर्श है यह साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है, रसनासे चखकर जानना कि यह अमुक रस है वह साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। इसी प्रकार घ्राणसे, चक्षुसे, श्रोत्रसे जो जाना जाता है साक्षात् वह साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है, इसी प्रकार मनसे जो भी जाना गया वह भी प्रत्यक्ष है। इन सब प्रत्यक्षोमे एक देश स्पष्टता है। जैसे आखोसे देखा कि यह चौकी है तो उसमें सन्देह तो नही रहता। स्पष्टता है, लेकिन यह स्पष्टता एक देश है, सर्वदेश नही है। चौकोको जाना तो एक हिस्सा ही जाननेमें आया और उसमे ऊपरी चीज रूप मात्र आखोसे जाननेमे आया तो एक देश जो स्पष्ट हुआ वह साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है।

साव्यवहारिक प्रत्यक्षका लक्षण बताने वाले सूत्रका पदविन्यासपूर्वक अर्थ —इस सूत्रमे तीन पद हैं —'इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त, देशत, साव्यवहारिकम्।' तो इसमे पहले सूत्रोसे 'विशद प्रत्यक्ष' यह अनुवृत्ति करते हैं। तब सूत्र इस तरह पूरा हुआ इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त देशत' विशद [ज्ञान] साव्यवहारिक प्रत्यक्षम्। साव्यवहारिक शब्दका अर्थ है –सव्यवहार। सम् मायने समीचीन जिसमे कोई बाधा न आये, निर्दोष बाधारहित, व्यवहारका अर्थ है –प्रवृत्ति और निवृत्ति, अबाधित प्रवृत्ति और निवृत्ति, लगना और हटना इसका नाम है सव्यवहार। बाधारहित, कही लगना, कहीसे हटना। जैसे हमने सामने देखा कि यह साप है तो हट गए, तो इस ज्ञानके फलमे क्या हुआ ? हटना। सामने देखा भोजन है तो लग गए। तो इस ज्ञानका फल हुआ लगनेका। यह सव्यवहार जिसका प्रयोजन हो उस प्रत्यक्षका नाम है साव्यवहारिक।

साव्यवहारिक प्रत्यक्ष और अनुमानकी बोधपद्धतिका अन्तर यहा शङ्काकार यह कहता है कि निर्बाध रूपसे हटने और लगनेकी बात तो अनुमानसे भी हो जाती है तो उसे भी साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहना पड़ेगा। इस शङ्का पर उत्तर देते है कि नही, जो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे पैदा हो और एकदेश स्पष्ट हो उसको कहते हैं प्रत्यक्ष। चाहे अनुमान ज्ञानसे भी प्रवृत्ति और निवृत्तिका काम बना है वह तो ज्ञानकी बात है कि जिससे हटना चाहिए उससे हटा दे और जिसमे लगना चाहिए उसमे लगा दे। ये तो सब ज्ञानमात्रके काम हैं अथवा उपेक्षा करदे। उन ज्ञानोमेसे जो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे साक्षात् हुआ, वह है साव्यवहारिक प्रत्यक्ष अनुमानमे अन्तर है। जैसे किसी पर्वतमे धुवा देखकर अग्निका अनुमान किया कि इसमें अग्नि होनी चाहिए धुवा होनेसे। तो यह जो धुवा दीखा है वह तो है साव्यवहारिक प्रत्यक्ष क्योंकि आंखसे सीधा जान लिया गया, पर जाने हुये धुवांसे जो अग्निका ज्ञान किया

जा रहा इस कारण अनुमान ज्ञान प्रत्यक्ष नही हो सकता और साथ ही जैसे धुवा एक देश स्पष्ट हो रहा है इस प्रकार अग्नि ज्ञानमे स्पष्ट नही होरही है। अगर ज्ञानमे अग्नि स्पष्ट होती तो फिर ये कल्पनाये क्यो उठती है उस अनुमित अग्निपर काहेकी अग्नि है ? पत्तोकी है कि लकडीकी है कि कोयलेकी है या कोयलेके पत्थरकी है ? यह सदेह न होता। तो अनुमान ज्ञानमे स्पष्टता नही है, साव्यवहारिक प्रत्यक्षमे स्पष्टता है। इस प्रकार यह लक्षण निर्दोष हुआ कि जो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न हुआ वह ज्ञान प्रत्यक्ष है।

द्रव्येन्द्रियका लक्षण— अब इन्द्रियकी व्याख्या करते हैं। इन्द्रिया दो प्रकार की होती हैं द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। द्रव्येन्द्रिय तो पुद्गलात्मक है। जैसे गोलक है, आंखमे नाकमे भी जो गोल पिण्ड है, रसनामे भी है सबमे पुद्गलात्मक रचनाएँ हैं तो गोलक आदिक परिणाम विशेषरूपमे परिणत हुआ जो रूप रस गध स्पर्श वाला है पदार्थ वह द्रव्येन्द्रिय है। सभी द्रव्येन्द्रिय पुद्गलात्मक होती हैं। पुद्गल कहनेमे सब आ गया। पृथ्वी जल, अग्नि आदिक जो कुछ ऊपरी चीजे हैं वे सब पुद्गलमे आगयी क्योकि वे सब रूप रस गध स्पर्शात्मक है। कोई लोग ऐसा मानते हैं कि स्पर्शनेन्द्रिय तो वायुका गुण है, रसनेन्द्रिय जलका गुण है घ्राण इन्द्रिय पृथ्वीका है और आखें तैजससे बनी हैं और ये कान आकाशसे बने हैं। इस प्रकार पाचो इन्द्रियोको पाच तत्त्वोसे उत्पन्न माना है। सो वे पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार कोई पुद्गलसे भिन्न जातिकी चीज नही हैं, ये कोई अन्य द्रव्य नही हैं पुद्गलमे ही अन्तर्गत हैं। श्रोत्र द्रव्येन्द्रिय भी आकाशात्मक नही, पौद्गलिक हैं ये सब तो हुई द्रव्येन्द्रिय।

भावेन्द्रियका स्वरूप अब भावेन्द्रियका वर्णन सुनिये। भावेन्द्रिय दो प्रकारकी हैं लब्धिरूप और उपयोग रूप। लब्धि नाम है क्षयोपशमविशेषका। ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे जो रूप आदिक पदार्थोंके ग्रहणकी शक्ति उत्पन्न हुई है उसका नाम है लब्धि। पदार्थोंके जाननेकी योग्यताका नाम हैलब्धि और उस पदार्थमे लग जानेका नाम है उपयोग। यदि लब्धि न हो तो पदार्थ मौजूद भी है किंतु उसका ज्ञान नही हो सकता जैसे यहाँ कोई बालक अक्षर तक भी नही पढ सकता, तो और जो कुछ ग्रन्थ लिखे है उन्हें वह क्या जाने ? उसके लब्धिकी कमी है। उपयोगरूप आदिकको जाननेमे जो व्यापार होता है उसका नाम है उपयोग। यदि उपयोग पदार्थोंके ग्रहणमे न लगे, किसी अन्य विषयोमे लगा हुआ हो तो पास भी रखा हुआ कोई पदार्थ हो उसका भी ग्रहण नही होता। इससे सिद्ध है कि उपयोग लग रहा हो तो पदार्थोका ज्ञान होता है, तो भावेन्द्रियमे लब्धि और उपयोग दोनो आये।

द्रव्येन्द्रियकी विशेषताएँ और मनके भेद— द्रव्येन्द्रियमे निर्वृत्ति और उपकरण दो बातें होती है। निर्वृत्ति नाम है रचनाका और उपकरण नाम है उस रचनाकी रक्षाके लिए अन्य जो रचना बनी है उसका। जैसे आखमे निर्वृत्ति तो है

वह मसूरके दाने बराबर चक्षु इन्द्रियकी रचना और उपकरण है ऊपर जो पलक आदि है, जिनसे आंखकी रक्षा होती है वह। इसमे भी निवृत्तिके दो भेद है – अन्तरङ्ग निवृत्ति और बहिरङ्ग निवृत्ति। तो यह तो बहिरङ्ग निवृत्ति है जो अभी बताया है और अन्तरङ्ग निवृत्ति क्या है ? कि उस मसूरके दानेके आकारमे जो आत्मप्रदेश रचना फैल गई है वह। जो पलक आदिक बताये वे तो हैं बाह्य उपकरण। और, आंखोंमे मसूरके दानेके चारो ओर सिमटकर बना हुआ जो शुक्ल कृष्ण गटा है वह आभ्यतर उपकरण है। उपकरणोसे इन्द्रियसे इन्द्रियकी रक्षा होती है। तो ऐसी ये इन्द्रियाँ हैं, इसी प्रकार मनकी भी बात समझना। मन भी दो प्रकारका है द्रव्यमन और भावमन। जो हृदयमे ८ पाँखुडीके कमलाकार सूक्ष्म पिण्ड है, शरीर रचनाका अङ्ग है वह द्रव्यमन है और जो जाननकी शक्ति है और उपयोग लगाना है वह भावमन है।

इन्द्रियोकी पौद्गलात्मकताका मण्डन –इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न हुआ वह ज्ञान जो एकदेश स्पष्ट है वह साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहलाता है। इस कथनसे इसका भी निराकरण हो जाता कि जो लोग मानते है कि पृथ्वीसे तो नाक बनी, जलसे रसना इन्द्रिय बनी, अग्निसे चक्षु इन्द्रिय बनी और वायुसे स्पर्शन इन्द्रिय बनी। यह बात यो अयुक्त है कि पृथ्वी आदिक ये चारो चीजें कोई अलग-अलग द्रव्य नही हैं, सब पुद्गलात्मक है। अलग द्रव्य तो उसे कहते है जो एक दूसरी जातिके द्रव्यरूप कभी भी न हो सके। जैसे जीव कभी पुद्गलरूप नही हो सकता इसलिए जीव अलग द्रव्य है, पुद्गल अलग द्रव्य है। किन्तु पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार चीजें ऐसी नही हैं कि पृथ्वीके जो स्कध है, परमाणु है वे पृथ्वीरूप ही रहे, जलादि रूप न बने। जल आदिकके परमाणु पृथ्वी आदिक रूप न बने ऐसा नियम नही है, क्योकि चन्द्रकान्त मणिसे जलकी उत्पत्ति होती है। और, इसी प्रकार जवा जो खा लिये जाते हैं उनसे हवा भी बनती है, तो उसमे वायु बन गयी। बासोमे आग पैदा हो गई तो यह नियम नही रहा कि पृथ्वी, जल अग्नि, वायु ये एक किसी दूसरे रूप न बन सके इस कारण ये अलग तत्व नही है, सब पौद्गलात्मक हैं।

इन्द्रियोकी पौद्गलिकता ज्ञान दो प्रकारके बताये गए है एक प्रत्यक्ष ज्ञान और दूसरा परोक्ष ज्ञान। प्रत्यक्ष उसे कहते है जो स्पष्ट ज्ञान हो। प्रत्यक्ष भी दो तरहके है एक साव्यवहारिक प्रत्यक्ष और एक मुख्य प्रत्यक्ष। जो एकदेश स्पष्ट ज्ञान करे वह है साव्यवहारिक प्रत्यक्ष। यह इन्द्रिय और मनके कारणसे होता है। और, जो अपने विषयको पूर्णरूपसे स्पष्ट जाने वह मुख्य प्रत्यक्ष है। जिसे अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान कहा है। नो इन्द्रिय क्या चीज है इस विषयमे चर्चा चल रही है। इन्द्रियाँ सब पौद्गलिक है जिनमे रूप, रस गध, स्पर्श ये चारो गुण होते है, जहाँ इनमेसे कोई भी एक गुण हो वहाँ चारो ही होते है और उसे पुद्गल कहते है।

तो जितनी भी इन्द्रियाँ हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये सभी पौद्गलिक हैं, मन भी पौद्गलिक है।

घ्राणेन्द्रियकी पार्थिवताकी असिद्धि – कोई लोग ऐसा मानते हैं कि चार महाभूतोंसे यह शरीर बना है, पंच तत्त्वोंसे यह शरीर बना है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। कुछ लोग ऐसा मानते हैं। तो पृथ्वी तत्त्वसे तो नाक बनी, जल तत्त्वसे जीभ बनी, अग्नि तत्त्वसे आँख बनी, वायु तत्त्वसे ये सारी स्पर्शन इन्द्रिय बनी और आकाश तत्त्वसे कान बने। इसमें यह अनुमान बना रहे हैं कि घ्राण पार्थिव है, नाक पृथ्वी तत्त्वसे बनी है क्योंकि किसी भी पदार्थमें रूप, रस, गंध स्पर्श सब कुछ मौजूद होकर भी नाक गंधको प्रकट करती है। भौतिकवादमें गंध गुण माना है पृथ्वीमें, जलमें रस माना है, अग्निमें रूप माना है वायुमें स्पर्श माना है और ऐसा मानने का कारण यह है कि जो उन्हें विशेष प्रकट दीखा उस ही को मान लिया, किन्तु कोई पदार्थ ऐसा नहीं है कि जिसमें केवल रूप हो या रस हो या गंध हो या स्पर्श हो। कोई चीज अधिक व्यक्त है कोई नहीं व्यक्त है। तो अनुमान दे रहे हैं भौतिकवादी कि घ्राण पार्थिव है, क्योंकि घ्राण इन्द्रिय रूप आदिकमें केवल गंधको ही जानता है। समाधानमें आचार्यदेव कहते है कि सूर्यकी किरणें जब तेज होती हैं तो उन किरणोंमें उस धूपमें कोई तेल लगाये हुए मनुष्य खड़ा हो तो उस धूपके कारण उस प्रकारकी गंधकी प्रतीति होती है अथवा जमीनपर जल सींच दिया जाय तो उसमें भी गंध मालूम देती है। खेतकी सूखी डाली हो, फिर उसपर डाल दिया जाय पानी तो उसमें गंधकी अभिव्यक्ति होती है, तो फिर जब वह पानीका सींच भी गंधका अभिव्यंजक हो गया तो फिर पानीमें याने जल तत्त्वसे मान लो घ्राण। यह युक्ति ठीक नहीं है कि जो केवल गंधको जाने वह पार्थिव तत्त्व है।

पृथ्वी आदि चारों कायोंकी पुद्गल जाति – भैया! ये तो इन्द्रियकी विशेषतायें हैं कि यह आत्मा घ्राण इन्द्रियके द्वारा गंधको जानता है, स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा स्पर्शको जानता है आदि, ये भिन्न-भिन्न योग्यतायें है, उनमें यह निर्णय नहीं है कि नाक पृथ्वी से बनी, रसना जलसे बनी, आँख अग्निसे बनी, स्पर्शन वायुसे बनी ये सभीके सभी पौद्गलिक है, प्रथम तो ये चारों तत्त्व अलग-अलग नहीं है, पृथ्वी अलग हो, जल अलग हो, वायु अलग हो, अग्नि आदिक अलग हों उन समय तो हैं अलग, पर इनका उपादान है, वे सब पौद्गलिक हैं। ये अलग-अलग तब कहे जाये जब पृथ्वी तीन कालमें भी जल अग्नि आदिक न बन सके तो कहे कि हाँ यह पृथ्वी तत्त्व अलग है। आग तीन कालमें भी पृथ्वी आदिक न बन सके, जल कभी पृथ्वी, आग, हवा न बन सके, हवा इन तीनों रूप कभी न बन सके तो समझिये कि ये चारों चीजें न्यारी न्यारी है, लेकिन ये बन जाते हैं एक दूसरे रूप। जैसे जो होता है एक अनाज, जिसको खा लेनेपर पेटमें वायु पैदा होती है। तो देखो! हवा उस पार्थिव तत्त्वसे

बनी। चन्द्रकान्त मणिसे जल टपकने लगता है, और चन्द्रकान्त मणि है पार्थिव तो देखो पृथ्वीसे जल उत्पन्न हुआ। पृथ्वीसे हवा बन गयी। पृथ्वी तत्त्व ही माना उन लोगोने बाँस, वनस्पति नही माना। बाँसकी रगड़से आग पैदा हो गई तो पृथ्वीने आग रूपको धारण कर लिया। यो ये सभी एक दूसरे रूप परिणम जाते हैं। एक चीज दूसरी चीजमे मिल जानेपर भी अनेक रूप धारण कर लेती है। ठीक है, वे कुछ भी रूप धर ले पर वे सदा पुद्गल ही रहेगे। इस कारण ये सब एक पुद्गल जातिमे हैं। भिन्न-भिन्न ये चारो जातियां नही है।

रसनेन्द्रियादिककी पौद्गलिकता-- किसी मनुष्यने तेल लगाया शरीरमे तो शरीर तो पृथ्वी तत्व है क्योकि स्पर्शन इन्द्रिय है। अथवा शङ्काकारके सिद्धान्तसे जब धूप पड़ती है तो शरीरमे गध प्रकट हो जाती है। तो सूर्यकी किरणे है अग्नि तत्व और वहां गध प्रकट हो गया तो यह अलग अलग नियम नही है कि यह पृथ्वी तत्व है, यह जलतत्व है। ये सब पौद्गलिक हैं। भौतिकवादियोने एक अनुमान बनाया है कि रसना इन्द्रिय जल तत्वसे बनी है क्योंकि रसना इन्द्रिय रूप आदिकमेसे केवल रसको जानती है यह भी बात ठीक नही है क्योकि जैसे नमक है तो नमक जल तत्व नही माना गया, वह पार्थिव है। नमकके पहाड होते हैं, तो पृथ्वी तत्व होकर भी नमकसे रस निकलता है या नमकका रस भी बन जाता है एकदम। तो रसका अभिव्यञ्जक नमक भी हो गया लेकिन उसको तुमने जलतत्वसे निर्णीत नही माना। एक हेतु देते हैं वे कि चक्षु तैजस है, अग्नि तत्वसे बने हुए है क्योकि रूप आदिकका चक्षुसे ही ग्रहण करते हैं। तो यह भी हेतु सदोष है। जैसे हीरा माणिक्य आदि चमकदार चीजें हैं जिनसे कमरेमे भी प्रकाश हो सके तो माणिक्य तो तैजस नही है, वह तो पृथ्वीकी चीज है और रूपका प्रकाश करती है। एक अनुमान वे कहते है कि स्पर्शन इन्द्रिय वायुसे बनी क्योकि रूप आदिकमेसे स्पर्शन इन्द्रिय केवल स्पर्शको प्रकट करती है, यह भी हेतु सदोष है क्योकि जैसे कपूर है, उससे भी शीत स्पर्शकी व्यञ्जकता बन जाती है। पानीमे कपूर डाल दिया तो वह शीत उत्पन्न कर देता है मगर कपूर जलतत्व नही है इसलिए यह हेतु सदोष है। अत यह मानना चाहिए कि ये सब चीजे पौद्गलिक हैं, उनसे यह शरीर बना है, शरीरके अङ्ग बने है।

इन्द्रिय द्वारा ज्ञाताका ज्ञान—इन इन्द्रियोके निमित्तसे आत्मा जानता है। द्रव्येन्द्रिय अब भी अचेतन है पर यह आत्मा इन्द्रियका निमित्त पाकर प्रत्यक्ष ज्ञान कर रहा है। जैसे किसी कमरेमें ५–६ खिडकी है तो कमरेमे रहने वाला व्यक्ति उन खिडकियोके माध्यमसे पदार्थोको जानता है तो खिडकिया नही जान रही। जान तो रहा है वह पुरुष जो कि कमरेके अन्दर है। इसी प्रकारसे यह शरीर एक कमरा है, इसकी ये इन्द्रियाँ खिडकियोकी तरह है, सो ये खिडकियाँ नही जानती जानने वाला आत्मा है। वह इन इन्द्रिय खिडकियोके माध्यमसे जान रहा है। ये इन्द्रियाँ स्वय नही

जानती। कभी उपयोग बदला हुआ हो और आँख खुली हो तो सामने गई हुई चीज का भी ज्ञान नही होता। उपयोग दूसरी ओर है। यदि इन्द्रियां जानती होती तो ये सदा सतर्क रहती और सामने आई हुई चीजको जान लेतीं। तो ये इन्द्रियां अजीव तत्व हैं। इनके निमित्तसे आत्मा ज्ञान उत्पन्न करता है। इसी प्रकार कर्णको जो बताते हैं कि ये आकाश तत्वमे बने हैं, तो आकाश अमूर्तिक चीज है आकाश तत्वसे यदि कुछ चीज बन भी सके तो अमूर्त ही बनेगी, मूर्त नही बन सकती। कर्ण मूर्तिक है आकाशका यहा न कोई गुण है न आकाशकी कोई परिणति है। जैसे ये सब इन्द्रियां पौद्गलिक हैं वैसे ही कर्ण इन्द्रिय भी पौद्गलिक है। हम आपका दो इन्द्रिय आदि जीवका यह जो शरीर बना है, इसे त्रस काय कहते हैं और जो एकेन्द्रिय जीव है उनके शरीरको पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय कहते हैं। तो यह हम आप लोगोंका शरीर पौद्गलिक है। उसमे जो इन्द्रियोकी रचना है वह भी पौद्गलिक है, उनका निमित्त पाकर जो एकदेश स्पष्ट ज्ञान होता है उस ज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

ज्ञानकी स्वपरव्यवसायिकताका प्रसङ्ग— इसमे ज्ञानके स्वरूपकी चर्चा है पूरे ग्रन्थमे। ज्ञानका स्वरूप है - जो खुदका और परपदार्थोंको प्रकट करे उसे ज्ञान कहते है। जब जब भी ज्ञान होता है तो इनमे दानों निर्णय एक साथ होते हैं। मेरा ज्ञान ठीक है और यह पदार्थ यही है। उसके जाननेमे फिर कोई सन्देह नही रहता। यदि ऐसा सन्देह है कि हमारा यह ज्ञान सही है या नही तो वह ज्ञान नही। ज्ञानमें तो यह कला है कि वह अपने और ज्ञेय पदार्थोंका निर्णय रखता है। वे ज्ञान किस किस ढङ्गमे रहा करते है, उनका क्या भेद है ? क्या प्रकार है ? उनका यह वर्णन चल रहा है। साव्यवहारिक प्रत्यक्षका यह प्रकरण चल रहा है। साव्यवहारिक प्रत्यक्ष वास्तवमे तो परोक्ष है। जो पराधीन ज्ञान हो, जो परकी अपेक्षा करके उत्पन्न हो वह ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। इन्द्रियकी अपेक्षासे प्रकाश आदिककी अपेक्षासे हमने ज्ञान पाया तो हमारे ये सब ज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं। लेकिन व्यवहारमे ये प्रत्यक्ष माने जाते हैं। जो हमने कानोंमे सुना उसे हम दृढतासे कहते हैं कि हमने कानोसे खुद सुना हमने प्रत्यक्ष किया। और, आखोंसे देखी बातमे तो और भी दृढता लाते है कि हमने स्वय अपनी आखोंसे देखा। लेकिन सुनी हुई बात भी गलत हो सकती है और कदाचित् देखी हुई बात भी गलत हो सकती है, हां वहां जो प्रथम ऐन्द्रिय प्रतिभास है वह तो यथार्थ है।

अनुभूतिकी प्रामाणिकता—एक राजा था, उसकी सेज एक नौकर सजाता था, बहुत दिनोके बादमे एक दिन नौकरने सोचा कि इस सेजपर दो मिनट लेटकर तो देखे—कितना आराम मिलता है। सो वह लेट गया चादर ओढकर। दो मिनटमे ही उसे निद्रा आ गई, सो गया। बादमे रानी आयी। उसने समझा कि राजा सो रहे हैं

सो वह भी उसी सेजपर सो गई । बादमे राजा आया तो उस दृश्यको देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, पर विवेकसे काम लिया । सोचा कि मालूम तो करे कि मामला क्या है । तो नौकरको पहिले जगाया, नौकर जगते ही घबडा गया, और बताया कि मैंने दो मिनट इस सेजपर लेटकर देखना चाहा था कि इसपर कितना आराम मिलता है । सो लेटते ही नीद आ गयी । रानीको जगाया तो उसने भी बताया कि मैंने तो यही समझा था कि राजाजी सो रहे है सो मैं भी आकर सो गई । तो आँखो देखी हुई बात भी झूठ निकली, अनुभवमे उतरी हुई बात सच निकली । दो स्त्री थी एक पुरुषके । तो इन दोनोमेसे एकके पुत्र न था । दोनो ही उस एक पुत्रपर लड गई कि यह मेरा पुत्र है । इसका न्याय राजाके पास गया तो एक स्त्री कहे कि यह हमारा लडका है और दूसरी स्त्री कहे कि यह हमारा लडका है । तो राजाने कहा अच्छा इसका न्याय कल होगा । दूसरे दिन जब न्यायका समय आया तो राजाने सिपाहियों को बुलाकर कहा कि देखो ! यह लडका इन दोनो स्त्रियोका है क्योकि पतिकी सम्पत्ति पर इन दोनो स्त्रियोका बराबर अधिकार है । सो इस लडकेके खण्ड बराबर-बराबर कर दो एक खण्ड इस स्त्रीको दे दो और एक खण्ड इस दूसरी स्त्रीको दे दो । सो जिस स्त्रीका वह लडका न था वह बडी ही खुश हुई । जब सिपाहीने उस लडकेके खण्ड करनेके लिए तलवार उठायी तो जिस स्त्रीका वह लडका था वह स्त्री कहने लगी, महाराज ! इस लडकेको न काटो, यह लडका हमारा नही है, इसे ही दे दो । राजा ने सारी बात समझली कि वास्तवमे यह लडका इसी स्त्रीका है जो काटनेके लिए मना कर रही है । तो इन इन्द्रियोके निमित्तसे जो ज्ञान होता है वह यद्यपि एक देश स्पष्ट है मगर उसमे भी हम स्पष्टताकी कोई पूरी गारन्टी नही रखते कि यह बात ऐसी ही है, एक देश है, जो जितने अशोमे है । यह साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है जो इन्द्रियोके द्वारा सीधा जान लेता है ।

ज्ञानको अर्थालोकजन्य माननेपर शङ्काकारका झुकाव—साव्यवहारिक प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है इस सिद्धान्तपर एक शङ्काकार कहता है कि ज्ञान इन्द्रिय और मनके निमित्तसे होता सो तो ठीक है, पर आत्मा पदार्थ, प्रकाश सन्निकर्ष आदिकके कारणसे भी तो ज्ञान होता है । आत्मा न हो प्रकाश न हो, पदार्थ न हो, सन्निकर्ष न हो तो ज्ञान नही होता । इस कारण इनको भी ज्ञानका कारण बताना चाहिए । जैसे प्रत्यक्षज्ञान होनेमे या अन्य ज्ञान होनेमे इन्द्रिय और मन कारण है इसी प्रकार आत्मा पदार्थ और प्रकाश सन्निकर्ष आदिक भी कारण पडते हैं ? इसके उत्तरमे कहते है कि यह बात युक्त नही है क्योकि आत्मा साव्यवहारिक प्रत्यक्षमे कारण रूप तब माना जाय, जब कि अन्य ज्ञानोमे आत्मा न रहे । यहाँ आत्मा कारण हो तो वह तो अन्य ज्ञानमे भी है, जैसे प्रत्यक्षज्ञानमे आत्मा कारण बतला रहे हो, तो वह परोक्षज्ञानमे भी आत्मा कारण है तो कारण तो वह बताया जाता कि जो अन्यका कारण न हो और इसका हो आत्मा तो सामान्य

चीज है इस कारणसे उसे साव्यवहारिक प्रत्यक्षके कारणोमे नहीं गिना। जो एक देश स्पष्ट ज्ञान होता है उस ज्ञानका कारण इन्द्रिय है और मन है। हम इन्द्रियका व्यापार करते है, छूते हैं, चखते है, रसनासे स्वाद लेते हैं, घ्राणसे गध लेते हैं, चक्षुसे देखते हैं, कानोसे सुनते हैं, मनसे सोचते है तो स्पष्ट ज्ञान जो हुआ है उसका कारण ये इन्द्रिय और मन हैं। आत्मा भी खास कारण तो नही है पर यहाँ ये मान रहे, और प्रत्यक्ष ज्ञानको छोडकर अन्य ज्ञानोमे आत्मा न रहे तब तो कारण कहना चाहिए। सो वह परोक्षज्ञानमे भी रहता है, इसी प्रकार सन्निकर्ष अर्थात् इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध हो तब ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, इसका अभी खण्डन किया ही गया है। अब रहे शेष पदार्थ और प्रकाश। तो पदार्थ और प्रकाश यद्यपि शङ्काकारको कुछ असाधारण कारण तो जचते है परन्तु ये ज्ञानके कारणरूपसे सिद्ध नहीं होते। किस प्रकार ? तो उसे आचार्यदेव सूत्रमे कहकर स्पष्ट करते हैं।

नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत् ॥ २–५ ॥

पदार्थ और प्रकाशमे ज्ञानहेतुत्वका निराकरण—पदार्थ और प्रकाश ज्ञानके कारण नही है क्योकि ये ज्ञेय है। जैसे अधकार। अधकार ज्ञेय है। जाननेमें आता है, तो अधकारका ज्ञानका कारण तो नही माना। इसी प्रकार प्रकाश भी ज्ञेय है अत ज्ञानका कारण नही है। इसी प्रकार ये सब पदार्थ भी ज्ञेय हैं, जाननेमे आते है, ज्ञानके विषय हैं, अत ज्ञानके कारण नही है। जैसे आख खोलकर देखा कि यह भीट है, तो इस ज्ञानके होनेका कारण आंखका कह सकते पर भीटको नही कह सकते, क्योकि भीट तो ज्ञेय है, ज्ञानका कारण नही है। दृष्टान्तमे बताया है जैसे अधकार। तो अधकार ज्ञेय है, लोग जान लेते हैं देखकर कि यहाँ अधेरा है। अधकार ज्ञानका बाधक होनेसे ज्ञानका कारण नही, प्रतिच्छेद्य है, जाननेमे आता है। तो इसी प्रकार ये पदार्थ और आलोक भी चूँकि जाननेमे आते है अत ये कारण नही हैं।

ज्ञानकी अर्थालोककार्यताके निराकरणमे अन्धकारके दृष्टान्तकी सुयुक्तता—अब शङ्काकार कहता है कि अधकार कोई चीज ही नही है। ज्ञान उत्पन्न न हो बस इसीका नाम लोगोंने अधकार रख दिया। ज्ञान उत्पन्न न हो इसके अलावा और कुछ अधकार नामक वस्तु ही नही है, फिर दृष्टान्त किसलिए देते हो ? अभी सिद्धान्तमे दृष्टान्तरूपसे बात रखी थी कि अधकार ज्ञेय तो है पर यह ज्ञानका कारण नही है, इसी प्रकार यह प्रकाश भी ज्ञेय तो है पर ज्ञानके कारण नही है। इसपर शङ्काकार कहता है कि दृष्टान्त किसका देते हो ? अधकारका कारण पदार्थ हो तब ना ! अधकार तो इसीका नाम है कि कुछ ज्ञान न हो, सो कह दिया कि अधकार है। आचार्यदेव इस आशङ्काका समाधान करते हैं कि अधकार भी प्रकाशकी तरह वास्तविक कोई पदार्थ है यह बात आगे भी बतावेंगे, और प्रकरणमे इतना ही समझना कि प्रकाश क्या चीज है ? जिस वस्तुपर प्रकाश है उस वस्तुका प्रकाशरूप

परिणमन है। इसी प्रकार अधकार क्या है कि जिस वस्तुपर अधकार है उस वस्तुका अधकाररूप परिणमन है और ये पुद्गलके परिणमन कहलाते है । कभी पदार्थ प्रकाशरूप है, कभी पदार्थ अधकाररूप है। यदि ऐसी ही जबरदस्ती करो कि प्रकाश तो कुछ चीज है अधेरा कोई चीज नही, प्रकाश न हो उसीका नाम अधेरा है, तो कोई यह कहे कि अधेरा तो चीज है प्रकाश कुछ नही । अधेरा न रहा उसीका नाम प्रकाश है। इससे सीधी और स्पष्ट बात मान लेनेमे आनाकानी नही करनी चाहिए। जैसे प्रकाश वास्तविक पर्याय है इसी प्रकार अधकार भी वस्तुगत पर्याय है।

ज्ञेयता और ज्ञानकरणताका पार्थक्य—अब शङ्काकार कहता है कि ये पदार्थ और प्रकाश ज्ञेय है तो रहे आवो ज्ञेय, पर कोई चीज ज्ञेय भी रह जाय और ज्ञानका कारण भी रह जाय तो इसमे विरोध क्या आता है ? तुम ज्ञेय होनेके कारण कहते हो कि वह ज्ञानका कारण नही है। हम कहते कि ज्ञेय भी है और ज्ञानका कारण भी है, इसमे क्या विरोध है ? समाधानमे कहते है कि यदि पदार्थ और प्रकाश को ज्ञानका कारण मानोगे कि इसमे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है तो जो ज्ञानके कारण हैं चक्षु आदिक इन्द्रियाँ तो वे इन्द्रिया जैसे ज्ञेय तो नही बनती, इसी प्रकार यदि पदार्थ और प्रकाश ज्ञानके कारण मान लिए जायें तो फिर ये ज्ञेय नही हो सकते । आँखके द्वारा हम जानते है पर आँखको भी हम जानते हैं क्या ? आँख करण है पर आँख ज्ञेय नही बन रही। जिस समय हम दर्पणको देखकर आँखका ज्ञान करते है उस समय हम आँखको नही जान रहे, किन्तु दर्पणमे जो आँखका प्रतिबिम्ब है बाहरका पदार्थ, उसको जान रहे है। आँखको कोई जानता ही नही। जितने देखने वाले लोग हैं वे अपनी अपनी आँखको जानते नही हैं क्योकि वह ज्ञानका कारण बना हुआ है। तो जो ज्ञानका कारण हो वह ज्ञेय नही बनता । पदार्थ, प्रकाश यदि ज्ञानका कारण बन जाय तो फिर यह ज्ञेय नही हो सकता ।

ज्ञानकी अर्थकार्यताकी प्रत्यक्षसे असिद्धि - शङ्काकार यहाँ यह सिद्ध करना चाहता है कि ज्ञान पदार्थका कार्य है। ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थसे होती है। जिस पदार्थको हम जाने वह ज्ञान उस पदार्थसे उत्पन्न हुआ है । और, सिद्धान्त यह कह रहा है कि ज्ञानकी उत्पत्ति तो वस्तुत आत्मामे होती है, पर निमित्त कारणकी अपेक्षा इन्द्रियसे होगी, मनसे होगी। पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति नही होती, किन्तु ज्ञानमे पदार्थ विषय होता है। यदि ज्ञान पदार्थका कार्य है तो यह ज्ञान पदार्थका कार्य है, यह किस प्रमाणसे जाना ? प्रत्यक्षसे जाना या अन्य प्रमाणसे जाना ? प्रत्यक्षसे जाना, यदि यह कहोगे तो उसी प्रत्यक्षसे जाना गया या दूसरे प्रत्यक्षसे जाना ? जो प्रत्यक्ष ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न हुआ है उस ही प्रत्यक्ष से 'यह ज्ञान पदार्थका कार्य है' ऐसा जान लिया जाय तो यह बात विरुद्ध है, क्योकि सबको अनुभव है कि वहाँपर केवल पदार्थ का ही अनुभव होता है। हमने आँखसे भीट जाना तो हमने भीट है यह निर्णय किया,

यह ज्ञान नही हो पाता कि भीटसे हमारा ज्ञान पैदा हुआ, ऐसा कोई कहता भी नही। यदि वह ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न होता ऐसा अनुभव होता तो इसमे विवादकी बात भी न थी। जो बात प्रत्यक्ष सिद्ध है उसमे कोई विवाद नही करना। जो ज्ञान जिस पदार्थसे उत्पन्न हुआ, जिस पदार्थका कार्य है ऐसी बात हमने दूसरे प्रत्यक्षसे जाना, यह भी बात ठीक नही है, दूसरे प्रत्यक्षसे भी हम केवल पदार्थ मात्रका ही अनुभव करते हैं, और इस तरहसे तो अनवस्था दोष हो जायगा। तो यह बात किसी प्रमाण से नही जानी गयी कि यह ज्ञान पदार्थका कार्य है।

ज्ञानमे अर्थकार्यत्वकी प्रमाणान्तरसे असिद्धि— यदि यह कहो कि प्रत्यक्ष से तो सिद्ध नही होता कि यह ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न हुआ है, पर अन्य प्रमाणसे सिद्ध होता है। तो वह प्रमाण जिससे तुम यह सिद्ध करोगे कि ज्ञानका कारण पदार्थ है, ज्ञान पदार्थका कार्य है, तो वह प्रमाण क्या ज्ञानमे बना है या पदार्थमे बना है या ज्ञान और पदार्थ दोनोमे आया ? यदि कहो कि ज्ञानमे ही बना या अर्थमे ही बना, तो केवल ज्ञानमे ही बना ऐसे प्रमाणसे भी यह सिद्ध नही हो सकता कि यह ज्ञान पदार्थ का कार्य है। और, केवल अर्थके ही ज्ञान बने तो उससे भी यह सिद्ध नहीं होता। ज्ञान पदार्थका कार्य है दोनोके बारेमे ज्ञान हो तो कह सकते हैं। जैसे कोई सिर्फ अग्निको जान रहा हो तो यह नही कह सकते कि अग्निका काम धूम है या केवल धूम ज्ञात हो रहा हो तो न कहेंगे। विचारमे दोनो पदार्थ आये हो तो कह सकते है कि धुवा अग्निका कार्य है। कारण और कार्य दोनो ज्ञानोमे हो तब ही तो कह सकते है कि यह अमुकका कार्य है। तो दोनोके विषयोका ज्ञान हो तब कारण कार्यकी बात सोची जा सकती है। पदार्थका और ज्ञानका ग्रहण करने वाला कोई एक प्रमाण हुये बिना यदि ज्ञानको पदार्थका कार्य कहते हो तो ऐसा किसीके ज्ञान होता नही रहा यहाँ। तुम्हारा यह ज्ञान अमुक पदार्थका कार्य है ऐसा कौन ज्ञान करता है। पदार्थको जानते ही सीधे ही यह पदार्थ है इतना मात्र अनुभव होता है। और, दूसरे शङ्काकार ने भी यह नही माना कि ज्ञानमे लगा हुआ ज्ञान अर्थमे लगे या अर्थमे लगा हुआ ज्ञान ज्ञानमे लगे। और, अगर मानलें तो यह विलक्षण जातिका नया ज्ञान फिर बन गया। फिर प्रमाणोंकी सख्या जो कहा है उसका उल्लघन हो जायगा। इससे यह नही सिद्ध किया जा सकता कि ज्ञान पदार्थका कार्य है।

अन्वयव्यतिरेकके माध्यमसे ज्ञानमे अर्थालोककार्यत्वकी आशङ्का— शङ्काकार अब यहाँ एक अनुमान रख रहा है कि ज्ञान पदार्थ और प्रकाशका कार्य है क्योंकि ज्ञानका पदार्थ और प्रकाशके साथ अन्वय व्यतिरेक है अर्थात् पदार्थ और प्रकाशके होनेपर ही ज्ञान होता है व पदार्थ प्रकाश न हो तो ज्ञान नही होता। तो जिसके साथ अन्वय व्यतिरेक रहता है वह उसका कार्य है। जैसे अग्निके होनेपर ही धुवाँ होता है, अग्निके न होनेपर धुवाँ नही होता। इससे धुवा अग्निका कार्य है।

इसी तरह यह ज्ञान भी पदार्थ और प्रकाशके होनेपर होता है और पदार्थ प्रकाश न हो तो नही होता है। इससे ज्ञानपदार्थका कार्य है, पक्षकार अपनी ऐसी शङ्का रख रहा है, उसके उत्तरमे आचार्यदेव कहते है :—

तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केशोण्डुकज्ञानवन्नक्तचरज्ञानवच्च ॥२-७॥

अर्थ व प्रकाशका ज्ञानके साथ अन्वव्ययतिरेकके अभावका वर्णन-- इस सूत्रमे कहते हैं कि पदार्थ और प्रकाशका ज्ञानके साथ अन्वय व्यतिरेक नही है, पूर्ण नियम नही है कि पदार्थ और प्रकाश हो तब ही ज्ञान बने। कितने ही ज्ञान पदार्थ नही है, सामने प्रकाश भी नही है, पर बराबर चल रहा है। दृष्टान्तमे कह रहे हैं कि जैसे- कभी ऐसा भ्रम हो जाता है कि आकाश मे कुछ केश लटक रहे है अथवा कुछ छोटे छोटे मच्छरसे उड रहे हैं, अथवा रात्रिमे चलने वाले जानवर बिल्ली आदि का ज्ञान, प्रकाश नही है फिर भी ज्ञान हो रहा है, तो यह प्रत्यक्ष ज्ञान पदार्थ और प्रकाशके बिना भी हो जाता है, परन्तु इन्द्रिय और मनके बिना ज्ञान नही होता। इससे ज्ञानका कारण इन्द्रिय और मनका कहना ठीक है, किन्तु पदार्थ और प्रकाशको ज्ञानका कारण कहना ठीक नही है। पदार्थ और प्रकाश इन दोनोसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है, ऐसा एक सिद्धान्त अपना मतव्य रखता है। समाधानमे कहा जा रहा है कि अर्थ और प्रकाश दोनोका अन्यवव्यतिरेक सम्बन्ध नही। पहिले यह हेतु दिया था चूंकि पदार्थ और प्रकाश दोनो ज्ञेय हैं, जाननेमे आते हैं इस कारण ज्ञानके कारण नही हो सकते। अब दूसरा हेतु और दे रहे है कि यह तो बात सही है ही, पर इन दोनोके साथ ज्ञानका अन्वयव्यतिरेक भी नही है इस कारण भी पदार्थ और प्रकाशक ज्ञानके कारण नही हैं। जैसे केशोण्डुक। पदार्थ नही है तब भी केशोण्डुक ज्ञान हो जाता है।

केशोण्डुक का अर्थ—केशोण्डुकके अर्थ अनेक किए जा सकते है—कही आकाशमे महिलावोके केशोके विरल प्रसारकी भाति कुछ दिख सकता है, उसमे मच्छरका भी ज्ञान हो सकता है। वहा कुछ भी नही पर आकाशमे केशोका गुच्छा सा दिखने लगता है अथवा मच्छरोका भुण्ड जैसा दिखने लगता है। अथवा कभी भीटके सामने या आकाशमे ही कुछ दो चार अगुलके लम्बे कुछ आकारमे नजरसे आने लगते है बिन्दुसमूह और उनको आख हिलाकर देखे तो वह पीछे भी हो जाता है और आखोको दूसरी बगल करे तो वहा आ जाता है। तो यहा पदार्थ तो कुछ है नही, उस प्रकारका कोई जतुका छाया चित्रसा नजर आता है, यह बात तब सम्भव होती है जब कुछ नेत्रको पलकका रोम उस प्रकारसे सामने छायारूप चलने लगती है और कीटकी सकलमे दिख जाता है पदार्थ नही है और ज्ञान हो रहा है, तो पदार्थ के होनेपर ही ज्ञान हो पदार्थके न होनेपर ज्ञान न हो, यदि ऐसा अन्वयव्यतिरेक सबध होता तब तो ज्ञानका कारण पदार्थको बताया जा सकता है किन्तु ऐसा सबध

है ही नही। जिसको कामला रोग हो जाता है उसे भी इस प्रकारकी छाया सी नजर आने लगती है।

केशोण्डुक ज्ञानमे व्यापारके स्वामित्वके सम्बन्धमे चार विकल्प — जहा पदार्थ तो है नहीं और ज्ञान हो जाता कि यह केशोण्डुक है तो बतलावो कि जो व्यापार है वह किसका है? किसकी करतूतसे वह ज्ञान हुआ है? क्या केशोण्डुक का व्यापार है जहा कि इस तरहका ज्ञान हो रहा या नेत्रकी पलकोंके रोमोका व्यापार है जो बाहरमे कुछ ऐसा ज्ञान हो रहा कि कोई लम्बासा मच्छर या कोई छोटा सा सापका बच्चा इस प्रकारकी छाया दिखने लगती है। ऐसे भ्रान्त कुछ ज्ञानकी उत्पत्ति बारेमे प्रश्न किया जा रहा है। जब कभी नेत्रमे कामल रोग हो अथवा पलक भी इस तरहकी कुछ टेढी मेढी हो जाय तो ऐसी कुछ छाया नजर आती है तो क्या वह नेत्रके रोमोका व्यापार है? अथवा नेत्रकी पलकोका व्यापार है या कामल आदिक रोगोका? किसकी करतूतसे वह केशोण्डुक ज्ञान बना है?

केश, नयनपक्ष्म व नयनरोमोके व्यापारकी केशोण्डुक ज्ञानमे असिद्धि केशोका व्यापार तो कह नही सकते। वह चीज तो है नही है। वहा तो भ्रम हो रहा है। अगर केशोण्डुक हो तो भ्रम नही कहलाया, फिर तो सत्यज्ञान है। अगर कहो नेत्रकी पलकका व्यापार है तो नेत्रके पलकसे ज्ञान उत्पन्न हुआ तो पलकोमे ही ज्ञान आना चाहिए। बाहर क्यो भ्रम होता है कि यह केशोण्डुक है? आकाशमे अवलम्ब रहे और सामने मौजूद है। इस प्रकारसे केशोण्डुकका जो आकार होता है उसका प्रतिभास न हुआ फिर। अगर नेत्रकी पलकका काम है यह ज्ञान कराना तो पलकोमे ही ज्ञान हो, दूर देशमे क्यो ज्ञान होता है? माना तो है पलकोमे व्यापार और ज्ञान होवे आकाश मे ऐसा नही हो सकना चाहिए। यदि कहो कि वह जो कुछ दिखता है वे नेत्रके केश ही दिखते है, है नही वहा पर नेत्रके पलकोके केश ही आकाशमे है उस प्रकार नजर आते है। तो कहते है कि जिसके नयनकेश न हो कोई ऐसा कामल रोग हो जिसके पलक गिर जाते हो फिर उसे उस प्रकारका प्रतिभास न होना चाहिए। तो तात्पर्य यह है कि पदार्थके न होनेपर भी ज्ञान हो रहा है, इससे यह सिद्ध है कि ज्ञान उस पदार्थका कारण नही है। ज्ञानके कारण तो इन्द्रिय आदिक है सो कोई इस भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय, अर्थात् भीतर चाहिये योग्यता, ज्ञानावरणका क्षयोपशम और बाहरमे हो निर्दोष इन्द्रियाँ तो ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। ज्ञानकी उत्पत्तिमे पदार्थ कारण नही है किन्तु ज्ञानमे पदार्थ केवल विषय है और पदार्थ ज्ञेय होता है।

केशोण्डुकज्ञानमे भ्रमके माध्यमसे अर्थकार्यताकी सिद्धिपर प्रश्नोत्तर— शायद यह कहो कि भ्रम होनेके कारण नेत्रके केश ही आकाशमे ज्ञान उत्पन्न कर देते हैं तो कहते हैं कि इस तरह हमारा मतव्य भी मान लिया जाना चाहिए कि फिर चक्षु और मन ये रूपका ज्ञान उत्पन्न कर देते हैं, जब अन्य विषयमे उत्पन्न हुआ ज्ञान,

अन्य पदार्थमे उत्पन्न हुआ ज्ञान अन्य पदार्थका, विषयका ज्ञान करने लग गया, अन्य विषयका ग्राहक बन गया तो ज्ञान करने लग गया, अन्य विषयका ग्राहक बन गया तो ज्ञानसे भिन्न जो इन्द्रिय हैं उनके कारणसे भी ज्ञान उत्पन्न हो जाय, इसमे क्या विरोध ? इसमे जो सीधी स्पष्ट बात है वही मानना चाहिए। ज्ञान होता है इन्द्रियसे और, आबाल गोपाल सभी मनुष्य ऐसा व्यवहार करते हैं कहते हैं कि इन्द्रियसे ज्ञान हुआ, पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न हुआ, ऐसा तो किसी को कहते हुए भी नही सुना है।

ज्ञानकी अर्थकार्यताका व्यभिचार—अब चौथा पक्ष लोगे कि कामल आदिक रोग उस ज्ञानके कारण होते हैं उन रोगोसे इसे हुआ वह ज्ञान। असत् भी है केश आदिक तो भी उनको जान लेते हैं। तो फिर इससे यह सिद्ध हुआ ना, कि निर्मल नेत्रसे और निर्मल मनके कारणसे उत्पन्न हुआ ज्ञान सत्को विषय करता है और सदोष इन्द्रियसे उत्पन्न हुआ ज्ञान एक भ्रान्तिको विषय करता है तो आखिर इन्द्रिय और मनकी ही बात आयी। अगर कामल आदिक रोग होनेसे बाहरमे पदार्थ नही है और पदार्थका ज्ञान हुआ है तो इसका अर्थ यह है कि इन्द्रियमे दोष आया इसलिए भ्रान्त ज्ञान हुआ और इन्द्रियमे दोष न रहे तो यथार्थ ज्ञान हुआ तो ज्ञानका कारण अब इन्द्रिया रही या पदार्थ ? इन्द्रिया रही। फिर कैसे यह कह सकते कि ज्ञान जो है वह पदार्थका कार्य है, एक तो केशोण्डुक ज्ञानके साथ हेतु व्यभिचारी है कि केशोण्डुक-पदार्थ है नही और ज्ञान हो रहा है तो ज्ञान अर्थका कार्य नही हो सकता।

ज्ञानकी अर्थकार्यताका सशयज्ञानके साथ व्यभिचार—अब दूसरी बात यह सोचिये कि सशयज्ञानमे भी सशयका कल्पित पदार्थ नही है और ज्ञान हो रहा है, सशयज्ञानमे अनेक कोटि वाले ज्ञान होते हैं यह सीप है या चाँदी है इस प्रकारका जो ज्ञान हो रहा है, ऐसा ज्ञान होनेके लिए वहाँ दोनो पदार्थ मौजूद होने चाहिएँ यदि पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न होता है यह माना जाय। हो दोनो पदार्थ तो फिर उसे सशय क्यो कहते, भ्रान्त क्यो कहते ? सही ज्ञान कहलाना चाहिए। और, सशयज्ञान तो तभी होता है जब वहाँ पदार्थ तो अनेक नही है, पदार्थ तो कोई एक है और कोटिया अनेक बन रही हैं यह सीप है या चाँदी है या काँच है अनेक कोटिया बन सकती है। एक जगह स्थाणु और पुरुष ये दोनो कैसे सिद्ध हो सकते हैं पदार्थ तो कोई एक पडा है और ज्ञान यहाँ सशय चल रहा है तो जब दो पदार्थ वहाँ नही है तो सशयज्ञानकी उत्पत्ति कैसे हो गई ? इससे सिद्ध है कि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न नही होता। वह तो अपनी योग्यतासे अपनी ही विधिसे उत्पन्न हुआ करता है।

ज्ञानकी अपने योग्य अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग करणसे उत्पत्ति—प्रकरणमे केवल इतनी बात निरखना है कि ज्ञान वस्तुत तो आत्मासे ही उत्पन्न होता है, किन्तु यह उपादान तो प्रतिसमय है। कोई भी ज्ञान किया जा रहा हो, सब स्थितियोमे आत्मा है। तो कोई निमित्तकी बात घटित होगी कि जिसके कारणसे अमुक पदार्थका

ज्ञान हुआ। तो साव्यवहारिक प्रत्यक्षमे एकदेश विशद ज्ञान होता है, वह ज्ञान इन्द्रिय और अनिन्द्रियके निमित्तसे होता है। इसमे ज्ञेय पदार्थ कारण नही है। पदार्थको कारण मानने वाले उसमे बहुत सी युक्तिया भी देंगे कि पदार्थ यदि कारण नही है तो इस समय यही ज्ञान क्यो हुआ, अन्य ज्ञान क्यो न हुए ? यही ज्ञान हुआ, घटका ही ज्ञान हुआ, इसका मतलब है कि घटसे ज्ञान उत्पन्न होता है उस ज्ञानमें घट जाना गया। तो ऐसी युक्तिया तो वे देंगे किन्तु ऐसा न किसीको प्रत्यक्षसे अनुभव है न कोई व्यवहार ऐसा करता है और न अनुमानसे सिद्ध होता है। ज्ञान तो अपने आत्माकी योग्यतासे उत्पन्न होता और निमित्त कारणकी अपेक्षा यह साव्यवहारिक प्रत्यक्ष द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय द्रव्यमन भावमन इनके निमित्तसे होता है। इन्द्रिय हो निर्दोष और उपयोग उस समय लग रहा हो उस पदार्थमे तो उस पदार्थका ज्ञान हो जाता है। दोनोका योग चाहिए— द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। भावेन्द्रिय तो है उपयोग भी कर रहे' क्षयोपशम भी है, पर द्रव्येन्द्रिय फूटी है आख फूटी है तो वह ज्ञान नही हो रहा। द्रव्य इन्द्रिय निर्दोष है, आँख सही है और उपयोग नही दिया जा रहा है तो भी पदार्थका ज्ञान नही हो रहा। तो यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रिय और मन के कारणसे होता है, पदार्थ और प्रकाशके कारणसे नही होता। जिस ज्ञानको प्रमाण सिद्ध किया जा रहा है इस समूचे ग्रन्थमे वह ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है, क्या स्वरूप रखता है इन सब बातोकी दर्शनशास्त्रमे युक्ति और हेतु देकर सिद्ध किया जा रहा है।

पूर्वपक्षकार द्वारा सशयज्ञानके अर्थजत्वकी सिद्धि— जो लोग ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थसे मानते हैं उनको यह दोष दिया गया था कि सशय ज्ञान तो किसी पदार्थसे उत्पन्न नही होता और है ज्ञान, तो यह बात तो न रही कि ज्ञान सभी पदार्थों से उत्पन्न होता है। तो इसपर शङ्काकार कहता है कि सशयज्ञान भी पदार्थसे उत्पन्न होता है। कैसे ? सशयज्ञान होता है इस स्थितिमे कि जब सामान्यका तो प्रत्यक्ष हो और विशेषका प्रत्यक्ष न हो और दोनो पदार्थोंके विशेषका स्मरण हो। जैसे यह सशय ज्ञान हो कि यह सीप है या चाँदी ? तो सीप और चाँदी इन दोनोमे रहनेवाला जो सामान्य गुण है सफेद होना, उसका तो प्रत्यक्ष और सीपमे जो विशेष खास बात है और चाँदीमे जो विशेष गुण है उन दोनोका प्रत्यक्ष है नहीं। यदि उन दोनोका प्रत्यक्ष होता तो सशय ही क्यो होता ? और दोनोके विशेषका स्मरण हुआ तब यह ज्ञान बना कि सीप है या चादी ? और इसी तरह विपरीत ज्ञानमे क्या होता है कि विद्यमान जो विशेष है जो पदार्थ सामने है, जो विशेष मौजूद है उससे विपरीत विषय का स्मरण है तब होता है विपर्यय ज्ञान। तो इस तरह सशय ज्ञान और विपर्ययज्ञान इन दोनोकी उत्पत्ति पदार्थसे हो गई।

सशयज्ञानके कारणके विषयमे सामान्य, विशेष व उभयके तीन विकल्पोमेसे प्रथम विकल्पका निराकरण—सशयज्ञानकी अर्थजन्यताकी समस्या

के समाधानमें पूछ रहे हैं कि यह बतलावो कि संशयज्ञानमें तुम सामान्यको प्रत्यक्ष बनाते हो। सीप और चाँदी इन दोनोंमें जो बात पायी जाती है वह है सामान्य गुण, वह क्या है ? केवल सफेदी। तो सामान्य हेतु पड़ा संशयज्ञानमें या विशेष हेतु पड़ा या दोनों ? सामान्यको तो कह नहीं सकते, क्योंकि सामान्यमें संशय आदिक होते ही नहीं। जब भी संशय बनता है तो विशेषके बारेमें ही बनता है। सीप और चाँदी इन दोनोंमें पाई जाने वाली जो सामान्यतया सफेदी है क्या उसके बारेमें संशय है ? अथवा जो विशेष है सीप या चाँदी उसमें रखे है ? सामान्यमें संशय आदिक होते ही नहीं क्योंकि सामान्यका तो प्रत्यक्ष है और वह पक्का प्रमाणभूत है। जो सफेदी सामने आयी उसमें क्या झूठापन है ? जिस सामान्यका प्रत्यक्ष है उसमें संशय या विरोध नहीं होता। विशेष विषयका संशयज्ञान हुआ करता है सो विशेषको विषय करके उत्पन्न होने वाला संशयज्ञान क्या सामान्यसे उत्पन्न होता है ? उस ज्ञानको सामान्य नहीं उत्पन्न कर सकता, क्योंकि अन्यको विषय करने वाला ज्ञान किसी अन्य पदार्थसे उत्पन्न नहीं हुआ करता। विशेषको विषय करने वाला संशयज्ञान सामान्यसे उत्पन्न नहीं हो सकता। अगर अन्यको विषय करने वाला अन्यसे उत्पन्न हो जाता है, ऐसा मान लिया जायेगा तो हम कहेंगे कि रूपका ज्ञान रससे उत्पन्न हो जाय। और फिर जैसे सामान्यसे उत्पन्न हुआ वह संशयज्ञान। असत्‌में विशेषका विषय कर बैठे। सीप और चाँदीमें जो एक सफेदी प्रतीत हुई उसमें शङ्काकारके मतमें संशयज्ञान बना और उसने विषय किया विशेषको कि सीप है या चाँदी। तो सामान्यसे उत्पन्न हुआ यह ज्ञान यदि असत् विशेषका ज्ञान कराने वाला हो गया तो इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न हुआ सत् सामान्य आदिकका भी ज्ञान करा दे तो यह भी अर्थ ज्ञानका कारण नहीं है फिर तो संशयज्ञानमें सामान्य ज्ञानका कारण है, सामान्यसे ज्ञानकी उत्पत्ति हुई है इतना भी कल्पनाका परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। व्यर्थ है यह परिश्रम करना। इतना भी क्यों सोचते हो कि संशयज्ञान सामान्यसे उत्पन्न हुआ संशयज्ञान विशेषका वेदक है तो सीधा मान लो कि वह संशयज्ञान इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होता है। सामान्यसे भी उत्पन्न होनेकी कल्पना करना व्यर्थ है। तो सामान्य तो संशयज्ञानका कारण है नहीं।

विशेष या उभयको संशयज्ञानका हेतु माननेके विकल्पोंका निराकरण - क्या विशेष है संशयज्ञान का कारण ? विशेष भी संशयज्ञान का कारण नहीं बन सकता, क्योंकि सामने पड़ी तो है सीप और संशय हो गया कि सीप है या चाँदी ? तो उसमें कौन सा विशेष पड़ा है ? अगर सीपसे वह ज्ञान उत्पन्न हुआ है तो सीपको ही जाना। संशय क्या रहा ? विशेषसे उत्पन्न ज्ञानके कारणमें दोनों विशेष पड़े हुए हैं उनसे संशयज्ञान बना, ऐसा कहो तो वह भी सही ज्ञान रहे, संशय फंसे बने। यदि कहो कि दोनों तो नहीं पड़े, सीप पड़ी है, तो सीप पड़ी है, उससे उत्पन्न हुआ ज्ञान 'यह क्या चाँदी है, चाँदी है' इस प्रकारकी कोटि फंसे बना सकता है ? क्योंकि चाँदी

विशेप है नही और अ.यसे उत्पन्न ज्ञान अन्यको विषय क ने लगे तो इस ज्ञानमे भी पदार्थ कारण है ज्ञानके बननेमे, ऐसी कल्पना करना भी व्यर्थ है, ऐसा सशयज्ञान न सामा यसे उत्पन्न हुआ और न विशेषसे और न दोनोसे। प्रथम तो वे दोनों वहा हैं नही, उत्पन्न कैसे हो ? पडी तो है एक ही चीज। और यदि दोनोको हेतु मान लें तो एक एक पक्षमे जो दोष दिया । वही यहाँ लग गया। तो यह निश्चित् है कि सशय ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न नही हुआ। वहाँ तो अपनी योग्यतासे ज्ञानने दो कोटि वाला बोध उत्पन्न किया। तो ऐसे ही सारे ज्ञान अपने कारणसे होते हैं पदार्थसे नही होते।

ज्ञानकी अर्थजतापर दिये गये हेतुके सशयज्ञानके साथ व्यभिचारपर प्रश्नोत्तर – अब शङ्काकार कहता है कि वह सशयज्ञान सही नही है, भ्रान्त है। तो भ्रान्त ज्ञान उस कारणसे उत्पन्न हुआ है, उसमे पदार्थ कारण है। यह बात पूरी सिद्ध नही हो सकी, व्यभिचार आ गया तो इस ज्ञानमे व्यभिचार आनेसे कही सारे ज्ञानोमे व्यभिचार न आयगा। अगर ज्ञान पदार्थोके कार्य है ऐसा अनुमान बनाया और यह बात उस सशय ज्ञानमे नही घटित होती तो न हो, हमारे बाकी सब ज्ञानोमे तो घटित होती है। सशयज्ञान तो भ्रान्त है। यह भी कहना ठीक नही, क्योकि चाहे भ्रान्त ज्ञान हो चाहे अभ्रान्त हो, ज्ञानकी पद्धति ही यह है कि अपनेको जाने और परको जाने। मिथ्याज्ञान भी स्वपरग्राहक है और सम्यग्ज्ञान भी स्वपरग्राहक है। फर्क इतना रह जाता है कि कोई ज्ञान सत् परपदार्थोको ग्रहण करता है और कोई ज्ञान ज्ञान असत्को ग्रहण करता है। जिसमे सम्वाद है निर्णय है वह सत्को ग्रहण कर रहा और जिसमे विसम्वाद हो वह असत्को ग्रहण कर रहा। इतना तो है अन्तर, पर ज्ञान सारे स्वपर ग्राहक होते हैं। मिथ्याज्ञान भी स्वपर ग्राहक है। जो ज्ञान है वह अपने को भी समझ रहा है और पर को भी। तो कोई सत्को विषय करता कोई असत्को विषय करता, इतने मात्रके भेदसे वह भेद न पड जायगा जिससे तुम यह कह सको कि सशयज्ञान पदार्थसे नही उत्पन्न होता तो न सही, वह भ्रान्त है पर ये सारे ज्ञान तो उत्पन्न होते हैं। एक जगह व्यभिचार होनेसे अन्य जगह व्यभिचार नही कर सकते, यह बात ठीक नही हो सकती। अन्यथा कोई भी अनुमान न बन सकेगा। जैसे किसी हेतुने कोई व्यभिचार पहुचाया तो यह कह दिया जायगा कि वह अन्य चीज है वह अन्य चीज है। अगर किसी चीजमे दोप आ गया तो उससे प्रकृतमे दोप नही हो सकता। इससे यह ज्ञान मानना चाहिए कि ज्ञान पदार्थोसे उत्पन्न नही होते ज्ञानका कारण पदार्थ नही है, किन्तु इन्द्रिय कारण है, और वे इन्द्रिय दो प्रकारकी हैं – द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय तो जितने साव्यवहारिक प्रत्यक्ष हैं वे इन्द्रिय और मनके निमित्त से होते हैं, पदार्थके कारणसे नही होता। यह सब साव्यवहारिक प्रत्यक्षके स्वरूपको सम्यक् सिद्ध करनेके लिए कहा जा रहा है। जो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न हो और एक देश विशद हो वह ज्ञान साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहलाता है।

ज्ञानके अर्थजत्वकी असभवता— शङ्काकार कहता है कि ज्ञेय तो कारण

ही होता है अर्थात् पदार्थने ज्ञान उत्पन्न होता है इस कारणसे पदार्थ ज्ञेय है। न्याय अर्थको ज्ञानका कारण मानते है। जैसे प्रकरणमे यह बताया था कि ज्ञानकी उत्पत्ति का कारण है इन्द्रिय और मन। उसपर यह कह रहे हैं शङ्काकार कि इन्द्रिय मन है कारण तो रहा आये, पर अर्थ जरूर कारण है। जिस पदार्थका ज्ञान हो रहा है वह ज्ञान उस पदार्थसे उत्पन्न हुआ है। कारण ही ज्ञेय हो सकता है। जो कारण नहीं है वह ज्ञेय नही है, ऐसा यदि मानते हो तो आचार्यदेव समाधान करते है कि तब ता योगियोके ज्ञानसे पहिले होने वाले पदार्थका ही उस ज्ञानसे जानना बनेगा। और, योगियोके ज्ञानके समान सभीमे ज्ञान लगा लो। ज्ञानके पहिले जो बात हुई है उसका ही ज्ञान हो सकेगा, क्योकि पहिले समय हुआ पदार्थ ही ज्ञानका कारण बन सकता है चाहे वह एक ही समय पहिले है, जब पदार्थ उत्पन्न हो ले तब वह ज्ञानका कारण बनेगा। पदार्थ उत्पन्न हो रहा है जिस समय उस समय तो पदार्थ उत्पन्न होनेपे ही अपना सर्वस्व जोर लगा रहा है। ज्ञानका कारण बने ? उत्पन्न हो ले तब वह पदार्थ है और उत्पन्न हुआ पहिले समयमे दूसरे समयमे वह ज्ञानका कारण बन सकता है। तो ईश्वरको जो ज्ञान हो रहा है तो वह भी उससे, पहिले होने वाले पदार्थका ज्ञान होना चाहिए। ज्ञानके समय होने वाले पदार्थकी कारणता नही हो सकती।

ज्ञानको अर्थजत्व माननेपर सर्वज्ञत्वका अभाव - जो पदार्थ उत्पन्न न हो वह भी कारण नही हो सकता। तो पदार्थ है ही नही। ईश्वर भविष्यमे होने वाले पदार्थोका ज्ञान कर ही नही सकता और एक समयकी सिर्फ जानेगा। भूतकालको। वर्तमानको भी न जानेगा क्योकि वह पदार्थ पहिले उत्पन्न तो हो ले तब ज्ञानका कारण बने। जब वह पदार्थ अपना स्वरूप बना ले तभी तो कोई किसीका कारण बन जाय, पदार्थ है ही नही उत्पन्न अर्थात् भविष्यमे जो पदार्थ होगा वह उत्पन्न है ही नही, और फिर भी योगियोके ज्ञानसे उसका ज्ञान हो जाय तो अन्य ज्ञानके द्वारा जो उसका कारण नही है उससे भी पदार्थका ज्ञान होने लगे क्योकि योगियोके ज्ञानमें तो तुमने यह मान लिया कि न भी उस समय पदार्थ है तो भी उसका ज्ञान हो जाता। जब ईश्वर ज्ञानमें तुम्हारा हेतु व्यभिचारी बन गया तो सभी ज्ञानोमे यह बात मान लो। अर्थज्ञानका कारण नही बन रहा है, फिर भी पदार्थका ज्ञान होता रहे।

असत् अर्थको जाननेकी अशक्यतासे सर्वज्ञत्वकी असिद्धिका प्रसङ्ग - यदि यह कहो कि जो पदार्थ उत्पन्न नही हुआ, भविष्यकालमे उत्पन्न होगा या जो वर्तमानमे पदार्थ उत्पन्न हो रहा है, इसको नही जानता, ईश्वरका ज्ञान तो इसके मायने है कि वह सर्वज्ञ नही रहा। यदि कहो कि अन्य अर्थको अन्य ज्ञानके द्वारा जानेगा तो वह सर्वज्ञ नही रह सका। वह अन्य समयके ज्ञानसे जानेगा तो एक ही समयमे सबको नही जान सकता। जब भविष्यकाल आयगा और वह पदार्थ उत्पन्न हो जायगा तब उस समय ईश्वर उसे जानेगा, इस तरह तो सर्वज्ञता नही बनती।

एक ही समयमे सबको जाने तो सर्वज्ञता कहलाये । दूसरी बात यह है शङ्काकारके सिद्धान्तमे कि पदार्थ तो है क्षणिक, क्षण क्षणमे नये-नये पदार्थ बनते हैं, तो पदार्थ जो ज्ञानके समयमे नही है उसका कैसे ग्रहण हो जायगा ? जो पदार्थ पहिले हो चुका वह अब तो नही है, जो पदार्थ आगे होगे वे अब तो नही हैं फिर उनका ग्रहण कैसे होगा ?

तदाकारताके ग्रहणसे अर्थज्ञताकी असिद्धि—यदि यह कहो कि तदाकार हो जाता है ज्ञान, इससे ग्रहण हो गया । नही भी पदार्थ है इस समय, पर जो पदार्थ उत्पन्न होगे या जो पदार्थ बहुत अतीतमे हो चुके उनका आकार आया है ज्ञानमे इससे ज्ञान बनता है । तो प्रथम तो यह बात है कि पदार्थोंका आकार ज्ञानमे नही आता । जैन शासनमे जो ज्ञानको साकार माना है उसका अर्थ यह नही है कि जैसे दर्पणमे पदार्थका आकार आ जाता है इस तरह ज्ञानमे पदार्थका आकार आता हो । चौकी को जाना तो जितनी चौडी यह चौकी है, जितने नापकी है वह आकार व हुलिया ज्ञानमे आकाररूपसे आ गई है ऐसी बात नही है किन्तु यह आकार ज्ञात हो गया है । इसीके मायने साकार ज्ञान है । दर्पणमे पदार्थ जैसे आकारमे आ जाता है इस तरह ज्ञानमे पदार्थका आकार नही आता । और, मान लो कि तदाकारताकी वजहसे वह सर्वज्ञता न आयगी, वह भी है पदार्थ अभी, जो भविष्यमे होगे वे इस समय नही हैं, तिसपर भी तदाकारताकी वजहसे वे सर्वज्ञ बन गए । यदि तदाकारता मान भी ली जाय तो भगवानने आकार ग्रहण किया, पदार्थ को नही ग्रहण किया । अगर तदाकारता भी मान ली जाय तो तदाकारताका ज्ञानी बना वह, पदार्थका ज्ञानी नहीं बना, फिर भी वह सर्वज्ञ नही रहा ।

तदाकारताकी सदृशतासे भी सर्वज्ञव्यवस्थाका अभाव यदि यह कहो कि जो आकार ज्ञानमे आया है वह उस पदार्थकी तरहका आकार है, तो यहाँके आकारको जान लेनेसे वह पदार्थ भी जान लिया गया । तो कहते हैं कि यह बात तो युक्त नही है । जैसे देवदत्तकी हुलिया वाला याने देवदत्तकी ही तरहका कोई यज्ञदत्त नामका पुरुष जान लिया तो इसका अर्थ यही हुआ कि उसने देवदत्तको जान लिया । पदार्थका आकार ज्ञानमे आया और उस पदार्थका आया है जो अभी उत्पन्न नही हुआ, भविष्यमे होगा, यदि मान भी लिया जाय ऐसा तो यह आकारका ज्ञानी बना, पदार्थ का ज्ञानी नहीं बना । यदि कहो कि हम तो सादृश्यसे सर्वज्ञ मानते हैं तो इस प्रकारसे सबको ही सादृश्यसे सर्वज्ञ मान लिया जायगा, क्योकि एक सत्का वेदन कर लिया, तो उसके मायने यह हो पडेगा कि चूँकि सब पदार्थोंमे सत्त्व है इसलिए सब ज्ञानमे आ गए । जब एक आकारके जान लेनेसे सब पदार्थोंका जान लेना मान लेते हो सदृशताकी वजहसे कि जैसा आकार है वैसा ही पदार्थ है तो सदृशताकी वजहसे एक के जान लेनेपर यदि सबको जान लेना मान लोगे तो अस्तित्वके नातेसे यह पदार्थ

सत् है इतने मात्रमे हमने जाना तो इसका अर्थ है कि सब सत्ज्ञानमे आ जाने चाहिएँ क्योकि इस सत् की तरह सारे सत् हैं। फिर तो सब प्राणी सर्वज्ञ हो जायेगे, क्योकि प्रत्येक प्राणी किसी न किसी सत्को जान रहा है। और एक सतको जान लेनेसे एक तरहके हैं सब सत् तो एक तरहसे जान लेनेमे सारे सत्के जान लेनेकी बात आ पडेगी, फिर तो सारे प्राणी सर्वज्ञ हो गए, फिर यह कहना कि हमारा देवता सर्वज्ञ है, सर्व-प्राणी नही है यह बात कैसे घटित होगी ?

सत्त्वके नातेसे सबके सबका ज्ञान न माननेपर सदृशताके भी ज्ञान-करणत्वका अभाव – यदि यह कहो कि और लोगोने अगर सत्वके नातेसे समस्त पदार्थोंको जान लिया तो जान ले इसमे हमे आपत्ति नही है, पर उसमे जो अन्यान्य धर्म हैं – यह नीला है, यह पीला है, इनका तो सब हमारा ज्ञान नही कर सकता। तो उत्तरमे कह रहे हैं कि अगर एक सत्वके नातेसे सबका ग्रहण नही मानते तो फिर यह अर्थ हुआ कि सदृशता ग्रहणका कारण नही है। एक पदार्थ सत् है और सारे पदार्थ सत् है तो सत्की सदृशतासे एक सत्के जान लेनेपर जब समस्त सत्का ज्ञान न होसका तो इसका अर्थ यह हुआ कि सदृशता ग्रहणका कारण नही है किन्तु स्वय पदार्थ ज्ञान का कारण है। तो इस प्रकार तुम्हारा देवता सुगत यह भी सर्वज्ञ नही हो सका, क्योकि तदाकारके जान लेनेसे कही पदार्थका ज्ञान नही बन बैठा। इस प्रकार यह बात युक्त नही बैठती कि जितने भी ज्ञान होने हैं वे पदार्थसे उत्पन्न होते है, यह बात ठीक नही बैठ सकती। पदार्थ पदार्थ है और वे ज्ञानके विषयभूत हैं। ज्ञानकी उत्पत्ति ज्ञानके अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग कारणसे होती है। अन्तरङ्ग कारण है योग्यता व बहिरङ्ग कारण है इन्द्रिय, मन आदि पर जो पदार्थ दिख रहे हैं वे विषय मात्र है, वे उत्पत्तिके कारण नही है।

कारण ही परिच्छेद्य है ऐसा माननेपर पदार्थकी उत्पद्यमानताका भी अनिर्णय—अन्य भी बात देखिये। जो लोग ऐसा कहते हैं कि कारण ही परिच्छेद्य होता है याने ज्ञेय होता है। पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है इस कारण पदार्थ ज्ञेय है तो यह बतलावो कि पदार्थकी उत्पद्यमानता यह बात किस ज्ञानसे जानी जा सकती है। आगे उत्पन्न हो रहे पदार्थके सम्बन्धमे होने वाले ज्ञानसे जाना जायगा ? या उत्पन्न हो रहे पदार्थसे पहिले हुए ज्ञानके द्वारा जाना जायगा ? या पदार्थ जो उत्पन्न हो रहा है उसके उत्तर कालमे होने वाले ज्ञानसे जाना जायगा ? पहिली बात तो युक्त यो नही है कि जिस समय पदार्थ उत्पन्न हो रहा है उस समय वह पदार्थ ज्ञानका कारण नही बन सकता। पहिले वह उत्पन्न तो हो ले तब ज्ञानका कारण बने। दूसरी बात यो नही बनती कि उत्पन्न हो रहे पदार्थसे पहिले समयमे हुए ज्ञानके द्वारा ज्ञानमे यह कैसे कारण बन जायगा, क्योकि पदार्थ उत्पन्न ही न था, उसका ज्ञान हुआ था। जो असत् है वह कारण नही बन सकता। क्योकि जिस समय वह ज्ञान

हो रहा है पूर्वकालभावी उस समयमें पदार्थ उत्पन्न नहीं हो रहा, किन्तु उत्पन्न होवेगा तो वह पूर्व ज्ञानका कारण कैसे बन सकता है ? तीसरी बात यों युक्त नहीं है कि जो पदार्थ उत्पन्न हो रहा है उसके उत्तरकालमें होने वाले ज्ञानमें यह जाना कैसे जायगा, क्योंकि जब उत्तरकाल भावी ज्ञान बनेगा उस समय यह पदार्थ नष्ट हो जायगा। उस समय यह पदार्थ उत्पद्यमान न कहलायेगा, किन्तु उत्पन्न हो चुका कहलायेगा। और नष्ट भी हो चुकेगा तो तुम यह भी निर्णय नहीं कर सकते कि यह पदार्थ उत्पन्न हो रहा है। जो ऐसा माना जाय कि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न हुआ करता है तो इस प्रकार यह हठ छोड़ देना चाहिए कि ज्ञानकी उत्पत्ति उस पदार्थसे होती है जिस पदार्थका ज्ञान जानता है।

पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति माननेपर ईश्वरके सर्वज्ञताके अभावका प्रसङ्ग—ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न होता है ऐसा मानने वालोंमें कोई कोई नित्य ईश्वरवादी भी हैं। उनसे कहा जा रहा है कि नित्य ईश्वर ज्ञान माननेपर तो यह मानना पड़ेगा कि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न नहीं हुआ और फिर भी ज्ञानके द्वारा पदार्थ प्रतिष्ठित हुए, जान गए, क्योंकि ज्ञान नित्य है और पदार्थ अनित्य है, सादि है। तो जो ज्ञान पहिलेसे है और बहुत पदार्थोंके बारेमें जान रहा है तो पदार्थ नहीं है और फिर वे भी वे ज्ञेय हो रहे हैं। तो बिना कारण उत्पन्न हुए ज्ञान जैसे ईश्वरका है तो ऐसी ही ज्ञान जाति सबकी है। सबके ही ज्ञान अर्थसे उत्पन्न हुए न माने जाना चाहिए। इसपर शङ्काकार कहता है कि यदि पदार्थसे ज्ञानको उत्पन्न हुआ न मानोगे तो हम आपका भी ज्ञान समस्त अर्थोंको जानने वाला बन पड़ेगा। अभी तो हम यह व्यवस्था कर लेते हैं कि जो जिस पदार्थसे उत्पन्न हुआ है वह ज्ञान उस पदार्थको जानता है। और अब पदार्थोंसे उत्पन्न हुआ मानते नहीं तो ज्ञान सारे पदार्थोंको एक साथ जान जाय ? इसपर समाधान करते हैं कि ऐसा नहीं है। हम आपका यह ज्ञान चक्षु आदिका कार्य है क्योंकि यह ज्ञान अनित्य है, नित्य नहीं है। नित्य ज्ञान हो तो यह दोष आ सकता है कि पदार्थसे तो उत्पन्न हुआ नहीं और ज्ञान है नित्य, तो वह समस्त पदार्थोंका जाननहार बन जाय। पर चक्षु आदिक कारणोंसे हम आपके ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। इस कारण यह ज्ञान अनित्य है और प्रतिनियत शक्ति वाला है सो जितनी ज्ञानकी शक्ति है उतनेमें वह प्रतिनियत अर्थको ग्रहण करेगा। जैसे आँखोंमें देखनेकी शक्ति है, पर इसके मायने यह नहीं है कि हजारों कोशकी भी चीज देख ले। उसमें जितनी शक्ति नियत है उतना ही तो ज्ञान करेगा।

प्रतिनियत शक्तिसे प्रतिनियत कार्यकी व्यवस्था—जो एक ईश्वरकी शक्ति है वह अन्यकी याने हम आपकी भी हो जाय ऐसा तो नियम नहीं है जिससे आप यह दोष दें कि ज्ञानको अर्थजन्य न माननेपर हम आपके भी सर्वज्ञता हो पड़ेगी अन्यथा जैसे महेश्वर एक साथ सबका करने वाला है ऐसे ही समस्त प्राणी भी सारे

विश्वके करने वाले बन जायें। शक्तिका प्रतिनियम तो मानना ही पड़ेगा। अन्यथा बताओ जैसे ईश्वर इन सब पदार्थोंमें उपकृत नहीं होता ईश्वरके किये जाने वाले पदार्थमें उसका क्या उपका है? (बल्कि देखा जाय तो ईश्वरने एक झंझट ही लिया)। फिर भी याने कार्यसमूहोंसे उपक्रियमाण न होकर भी ईश्वर अविशेषतामें समस्त कार्योंको करता है तो यों ही कुम्हार आदिक भी घट आदिकसे कुछ उपक्रियमाण नहीं देखे जाते जिससे ऐसा कह सको कि कुम्हार आदि लोग जिन पदार्थोंमें उपकृत होते उन पदार्थोंको करता है। यदि वहां यह कहो कि कुम्हार आदिकी शक्तिका प्रतिनियम है। जिस पुरुषमें जितनी शक्ति है वह पुरुष उस शक्तिके अनुकूल करने वाला होता है तो ऐसा ही सब जगह लगाया जायगा। ज्ञानमें भी यही बात लगा लो कि जिस ज्ञानमें जहां जितनी शक्तिका विकास होता है उसके अनुकूल वह पदार्थोंको जानेगा।

सामने अभाव होने पर भी पदार्थके ज्ञानकी व्यवस्था अब शङ्काकार कह रहा है कि यदि पदार्थके अभावमें भी ज्ञानकी उत्पत्ति हो जाय याने पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न न हो तो यह बतलावो कि जहां पदार्थ मौजूद नहीं है उस प्रदेशमें ज्ञान नहीं बन जाता? पदार्थ है, भीट है तभी हमने भीटका ज्ञान किया। न हो तो भी कर डाले? यदि पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न होता नहीं और जानते हैं पदार्थको तो पदार्थ हो तो भी जानें और न पदाथ हो तो भी जानें? उत्तरमें कहते है कि ज्ञान होता तो है, न भी हो पदाथ सामने तब भी जब मनका उपयोग होता है तो उसका ज्ञान होता ही है, पर यहाँ इस रूपसे कि यह भीट है। इस तरहमें ज्ञान नहीं होता कि सामने यहाँ भीट है। पदार्थ सामने न होकर भी अन्य रूपमें ज्ञानमें आ सकता है। न हो कुछ चीज फिर भी कल्पनामें स्मरणमें उसे उपयोगमें लेकर जाना जा सकता है।

एक ही ज्ञानमें बहुविध जाननेकी योग्यता यदि यह कहो कि उसी समय और भी ज्ञान हुए हैं किसी पदार्थको जाननेके समयमें केवल एक ही अथवा ज्ञान नहीं हुआ है वहाँ और ज्ञान हुए हैं तो हां पर अन्येक विषयके भेदसे क्या ज्ञान में भी भेद पड़ जाता है? जैसे एक साथ १० चीजोंका ज्ञान हुआ तो क्या वे १० ज्ञान है? वह तो एक ही ज्ञान है जिस ज्ञानमें १० विषय किए गए है। बहुविधि ज्ञान होता है, वह एक ही ज्ञान है और बहुत प्रकारकी बहुत चीजोंका ज्ञान वह ज्ञान कर लेता है। तो उस समयके ज्ञानमें जितने ज्ञान बने है उतने ज्ञान माने जायें, प्रकाश मे भेद कर दिये जायें तो यदि एक बिजली जली और कमरेमें ५० चीजें प्रकाशित हो गई तो क्या इसका यह अर्थ हो गया कि बिजली ५० है? फिर तो उस बिजलीमें भेद पड़ जायेंगे। यदि यह कहो कि हाँ भेद है पर प्रत्यभिज्ञानमें एकता जानी जाती है, यह वही बिजली है जो अभी दो मिनट पहले जल रही थी, अब जल रही है ऐसा प्रत्यभिज्ञान होनेसे प्रदीपमें अगर एकता मानते हो तो प्रत्यभिज्ञानके ज्ञानमें इन समस्त

पूर्वोत्तरवर्ती ज्ञानोंमे भी एकता आ जायगी। ठीक यह है कि ज्ञान अपने उपादानमे अपनी उत्पत्तिके कारणभूत इन्द्रिय मनसे उत्पन्न होता है, पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न नही हुए।

ज्ञानकी आत्मामे उत्पत्ति और योग्यतानुसार ज्ञानके कार्यकी व्यवस्था—शङ्काकार कहता है कि यदि पदार्थके अभावमें भी ज्ञान होने लगे तो जो अतीत वस्तु है या जो भविष्यकी वस्तु हैं या जो बहुत दूर रखी हुई चीज है उन सब के सब पुरुषोंको ज्ञान हो जाना चाहिए क्योकि पदार्थके अभावमें ज्ञान होने लगा। सामने नही है पदार्थ फिर भी ज्ञान होता है। पदार्थमे ज्ञानकी उत्पत्ति न मानें तो सारे पदार्थोंका चाहे वह भूत भविष्यमे हो, चाहे अत्यन्त दूर स्थित हो, सबका ज्ञान होना चाहिए। इसपर समाधान करते हुए विकल्पोमे पूछा जा रहा है कि उन पदार्थोंमे ज्ञान हो जाय इसका तुम क्या अर्थ लगाते हो? पदार्थमे ज्ञान उत्पन्न हो जाय यह उसका अर्थ है या उन पदार्थोंका ग्राहक बन जाय ज्ञान, यह उसका अर्थ है। यदि यह कहोगे कि पदार्थमे ज्ञान उत्पन्न हो जाय तो यह बात युक्त नही है। जो सामने पदार्थ है, न उन पदार्थोंमे ज्ञान उत्पन्न होता है और न भूत भविष्यके पदार्थोंमे ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान तो आत्मामे ही होता है। आत्मामे ही ज्ञानकी उत्पत्ति मानी गई है। यदि कहो कि ज्ञान अतीत अगत पदार्थका ग्राहक हो जायगा तो कहते हैं कि यह भी युक्त नही है क्योंकि अयोग्य होनेसे। जो ज्ञान सबको जाननेमे अयोग्य है वह सबको नही जान सकता है। यदि यह दोष दे रहे हो कि पदार्थमे ज्ञान उत्पन्न हुआ नहीं मानते हो तो ज्ञान सब पदार्थोंका ग्रहण करने वाला हो जाय यह बात तो हम पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न होता है इस मतव्यमे भी दोष दे सकते हैं, पदार्थोंसे ज्ञान उत्पन्न होता है तो पदार्थ तो सारे मौजूद हैं, सब ही से ज्ञान क्यो न उत्पन्न हो जाय? किसी खास पदार्थसे ही ज्ञान क्यो बन रहा है? योग्यता तुम्हे माननी पडेगी कारणमे भी। तो जब तुम योग्यताको मानते हो तो सभी जगह मान लो, फिर अर्थसे ज्ञान उत्पन्न होता है ऐसी कल्पना करनेका क्यो परिश्रम करते? इससे यह सिद्ध है कि ज्ञान पदार्थका कार्य नही है।

ज्ञानकी उत्पत्तिमे पदार्थकी कारणताका निराकरण—साव्यवहारिक प्रत्यक्षका स्वरूप बताया गया था कि जो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है और एकदेश विशद होता है उसे साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। इस लक्षणमे आपत्ति शङ्काकारने यह दी थी कि ज्ञान इन्द्रिय और मनसे नही उत्पन्न होता किन्तु पदार्थसे, आत्मासे, प्रकाशसे, सन्निकर्षसे उत्पन्न हुआ करता है। तो आत्मा और सन्निकर्षसे उत्पत्ति मानना योग्य नही है इस बातको पहिले बता दिया। आत्माकी कारणताकी यह बात है कि यद्यपि ज्ञान आत्मासे उत्पन्न होता है किन्तु आत्मा तो सदाकाल है और प्रतिनियत ज्ञान यह किसी टाइम टाइममे होता है तो आत्मा तो उपादान कारण

है इस प्रकार कारण है ज्ञानकी व्यवस्था बनाने वाला नहीं है कि आत्माने ज्ञान हुआ तो वह घट जान गया। आत्मा सामान्यरूप है, वह प्रकृत कारणकी कोटिमें नहीं आता वह तो साधारणरूप है। और सन्निकर्षका बहुत निराकरण कर ही चुके हैं। अब पदार्थ और प्रकाश इन दोनोंके कारणपनेकी बात रह गई। सो अभी तक यह बात सिद्ध की कि ज्ञान पदार्थका कार्य नहीं है। जड़ पदार्थ या अन्य चैतन्य पदार्थोंसे भी ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। ज्ञानावरणका क्षयोपशम होता है द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रियाँ कारण होनेपर ज्ञान उत्पन्न होता है। यह सांव्यवहारिक ज्ञानकी उत्पत्तिके साधनोंकी बात बताई गई है। सो इस प्रकार यहाँ तक ज्ञान पदार्थोंका कार्य नहीं है, यह बात सिद्ध की है। अब आगे ज्ञान प्रकाशका भी कार्य नहीं है, यह सिद्ध करेंगे।

प्रकाशमें ज्ञानकी उत्पादकताका निराकरण—एक सिद्धान्त यह कहता है कि ज्ञान प्रकाशका कार्य है, प्रकाश न हो तो ज्ञान नहीं हो पाता। सूर्यका प्रकाश, दीपकका प्रकाश, ये प्रकाश ज्ञानके कारण हैं अब तक यह बात बता दी गई थी कि ज्ञानका कारण इन्द्रिय और पदार्थोंका सम्बन्ध नहीं है। ज्ञानका कारण पदार्थ नहीं और ज्ञानका कारण आत्मा भी नहीं, क्योंकि आत्मा तो सामान्य व्यापक है और नित्य है इसलिए उस आत्माको कारण मानकर ज्ञानकी व्यवस्था नहीं बनाई जा सकती अन्यथा समस्त ज्ञान एक साथ होनेका प्रसङ्ग होगा। तब ज्ञानका कारण कौन है, इन्द्रिय और मन ये कारण हैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमें। इसी प्रसङ्गमें एक सिद्धान्त यह बात रख रहा था कि प्रकाश भी कारण है। उस शङ्काके समाधानमें यह वर्णन चल रहा है। ज्ञान प्रकाशका कार्य नहीं है, क्योंकि जो लोग ऐसा कहते हैं उन्हें भी व्यभिचार दिखता है कि प्रकाशके अभावमें भी मनुष्योंको और पदार्थोंका ज्ञान हो जाता, अथवा जो रात्रिमें विचरने वाले बिल्ली आदिक जानवर हैं उनको प्रकाशके बिना भी ज्ञान हो जाता है, तब यह बात कहना ठीक नहीं कि ज्ञानका कारण प्रकाश है।

होना भी तो ज्ञान है। क्योंकि अंधकारका ज्ञान तो हुआ ना। यदि हम अन्धकारकी प्रतीति बिना यह जान जायें कि अंधेरा है तो फिर और जगह भी ज्ञानकी कल्पना करना व्यर्थ है। तब अन्धकारका ज्ञान हुए बिना हम यह बता सकते हैं समझ सकते हैं कि अन्धेरा है तो ऐसे सारे ज्ञान कुछ भी ज्ञान हुए बिना हमें समझ जाना चाहिए कि प्रकाश यह है। बतलाते हो कि अन्धकार है और कहते हो कि ज्ञान नहीं है तो यह तो अपने वचनोंमें ही विरोधकी बात होगी। अतः जैसे पदार्थमें ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती इसी तरह प्रकाश से भी ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। ज्ञानके जो अन्तरङ्ग बहिरङ्ग कारण है उनसे उत्पत्ति होती है।

प्रकाशवत् अन्धकारका अस्तित्व अब शङ्काकार यह कह रहा है कि अन्धकार नामका दुनियामें कोई पदार्थ ही नहीं है, कोई विषय ही नहीं है जो कि ज्ञान के द्वारा जाना जाय। अन्धकारका व्यवहार जो लोग किया करते हैं उसका इतना ही मात्र अर्थ है कि ज्ञानकी अनुत्पत्ति, ज्ञान न हो इसीका नाम लोगोंने अन्धकार रख दिया। जैसे रात्रिमें अंधेरेमें लोग कहने लगते हैं कि यहाँ तो हमें कुछ भी नहीं दिखता। तो कुछ न जाननेका नाम ही अन्धेरा है, ऐसा शङ्काकार अपना पक्ष रख रहा है। समाधानमें कहते हैं कि यदि तुम्हारी ऐसी युक्ति है तो हम यह कहेंगे कि प्रकाश दुनिया में कोई चीज नहीं है, क्योंकि निर्मल ज्ञानके सिवाय और कोई प्रकाश समझमें ही नहीं आता। तो प्रकाश भी कोई चीज नहीं है, हम यह सिद्ध करेंगे। फिर प्रकाश है वहाँ ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं लोग ? उस व्यवहारका अर्थ इतना मात्र है कि निर्मल ज्ञान पैदा हो गया। इसके आगे प्रकाश कोई चीज ही नहीं है, यह बात अन्धकारका निषेध करने वालेके प्रति कही जा रही है दोषापत्ति दी जा रही है।

ज्ञानमें स्वयोग्यतासे निर्मलता तथा प्रकाश एवं अन्धकारकी पुद्गल पर्यायरूपता अब शङ्काकार कहता है कि प्रकाश न हो तो ज्ञानमें निर्मलता ही कहाँ से आयगी ? इस लिए प्रकाश कोई चीज है। उसपर यह उत्तर है कि बिल्ली आदिक को रूपका निर्मल ज्ञान कैसे हो जाता है ? रूपके सम्बन्धमें निर्मल ज्ञान कैसे प्रकट हो जाता है। प्रकाश तो नहीं है अन्धेरा है, पर उस अन्धेरेमें बिल्ली तो एकदम सही देख लेती है, और फिर हम आप लोग अन्धेरेमें रस आदिकका ज्ञान बिल्कुल स्पष्ट कर लेते हैं। जैसे अन्धेरेमें कोई आम चखे तो उस रसका ज्ञान उसे उसी भाँतिसे होगा जैसे कि उजेलेमें तो अन्धेरेमें भी अनेक ज्ञान निर्मल हुआ करते हैं, तो यह कहा कि प्रकाश न हो तो ज्ञानमें निर्मलता कैसे आयगी ? यह ठीक नहीं है। यदि कुछ कठिन पड रहा हो तुम्हें प्रकाश न माननेमें तो यह ही बात अन्धकारकी है। अन्धकार भी ज्ञानमें आता है ये दोनों पुद्गल द्रव्यकी द्रव्य पर्यायें हैं, प्रकाश भी पुद्गल द्रव्यकी द्रव्य पर्याय है और अन्धकार भी पुद्गल द्रव्यकी द्रव्य पर्याय है। तो अन्धकारका ज्ञान भी होता है और प्रकाशका भी ज्ञान होता है। ये दोनों ज्ञानके विषय हैं पर ज्ञानके कारण

नही है। प्रकाशसे ज्ञानकी उत्पत्ति नही होती।

स्वावरणक्षयोपशमज योग्यताके सिवाय अन्य प्रकारसे निर्मलताकी असिद्धि—और भी देखिये ! जो तुम्हारा कहना है कि आलोकको विषय करने वाले ज्ञानमे आलोक (प्रकाश) से निर्मलता आती है तो क्या उसी प्रकाश से आती है या अन्य प्रकाशसे। प्रकाश न हो तो ज्ञानमे निर्मलता नही होती ऐसा कहने वालेसे पूछा जा रहा है कि ज्ञानमे जो निर्मलता आती है वह उसी प्रकाशसे आती है जिस प्रकाशसे जाना जा रहा है या निर्मलताका ज्ञान किसी अन्य प्रकाशसे होता है या अन्य किसी पदार्थसे होता है ? यदि कहो कि उसी प्रकाशसे होता है तो इसमे यह बात आई कि अपने ज्ञेयसे ही ज्ञानमे निर्मलता आ गई तब घटादिकके रूपसे भी रूपज्ञानमे निर्मलता आजावे आलोककी कल्पना करना व्यर्थ है अथवा इतरेतराश्रय दोष हो गया। प्रकाश से ज्ञान सिद्ध हो तो ज्ञानसे प्रकाशकी सिद्धि हो और ज्ञानसे प्रकाशकी सिद्धि हो तो प्रकाशसे ज्ञानकी सिद्धि हो और, ज्ञानसे प्रकाशकी सिद्धि हो तो प्रकाशसे ज्ञानकी सिद्धि और प्रकाशसे निर्मलता सिद्ध हो तो परस्पर इसमे दोष है। यदि कहो कि अन्य प्रकाश से ज्ञानमे वैशद्य हुआ तो अनवस्था हुई फिर उस प्रकाशके ज्ञानकी निर्मलता समझनेके लिए अन्य प्रकाश मानो। यदि कहो कि अन्य पदार्थसे उस ज्ञानकी निर्मलताका बोध हो जाता है तो ठीक है, अन्यसे वैशद्य हो गया तो प्रकाशसे तो नही रहा। तब ज्ञान का कारण प्रकाश तो नही बना।

ज्ञानकी अपने ही अन्तर्बाह्य कारणोसे उत्पत्ति बात तो यह है कि न तो बात यह है कि ज्ञानकी न तो उत्पत्ति पदार्थसे है और प्रकाशसे है और न अधकार से है। ये तीनोके तीनो ज्ञानके विषय हैं। ज्ञानकी उत्पत्तिके कारण तो अन्तरङ्गमे क्षयोपशम और बहिरङ्गमे द्रव्येन्द्रिय हैं। तो शङ्काकारके विकल्पमे जब अन्य पदार्थमे ज्ञानमे निर्मलता जगी तो आलोकके अभावमे जब ज्ञानकी निर्मलता बन गई तो आलोकको कारण मानना व्यर्थ है। प्रत्यक्षता होनेमे, विशदता होनेमे तो ज्ञान स्वय कारण है। ज्ञानमे स्वय ऐसी योग्यता है कि वही ज्ञान जान भी ले और उसी ज्ञानमे निर्मलताका भी परिचय हो जाय। जैसे जिस प्रकाशसे हम जानते है उसी प्रकाशसे हमारे ज्ञानमे निर्मलता भी बनती है ऐसा शङ्काकारने मान डाला। तो ज्ञानकी निर्मलतामे ज्ञानकी योग्यता ही स्वय कारण है, प्रकाश कारण नही है। कई बातोका ज्ञान प्रकाश होनेपर भी सही नही होता, तो प्रकाश न ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण है और न निर्मलताका। ज्ञान ही स्वय अपने अन्तरङ्ग बहिरङ्ग कारणोसे बनता है और अपनी निर्मलताका परिचय करता है।

ज्ञानकी उत्पत्ति व विशदतामे प्रकाशकी कारणताका निराकरण - प्रकाशसे ज्ञान उत्पन्न होता है और प्रकाशसे ही ज्ञानमे निर्मलता उत्पन्न होती है, ऐसा कहने वालोसे एक विकल्प यह भी किया गया था कि उस ही प्रकाशसे ज्ञानमे निर्म-

लता जगती है जिस प्रकाशमे ज्ञानकी उत्पत्ति हुई है। तो इस सम्बन्धमे ऐसा मानने पर कि उस ही प्रकाशसे ज्ञान बना और उस ही प्रकाशसे ज्ञानमे निर्मलता जगी तो इसका अर्थ यह हुआ कि उस ज्ञानका जो विषय है उस विषयमे ही ज्ञानमे निर्मलता आ गयी। तो ज्ञानके जितने जितने विषय होवें उन सबसे ज्ञानमे निर्मलता आनी चाहिए। घटके रूप आदिक भी जब जाने जा रहे हों तो उन घट आदिकसे भी घट आदिकके ज्ञानमे निर्मलता आनी चाहिए। यदि यह कहो कि घट आदिक पदार्थ तो अभासुररूप हैं, स्वच्छरूप नही, चमकरूप नही, अप्रकाशरूप हैं इस कारण घट आदिकके रूपसे ज्ञानमे निर्मलता नही जगती, किन्तु प्रकाशसे ज्ञानमे वैशद्य प्रकट होता है तो यह कहना भी ठीक नही। यदि प्रकाशसे ज्ञानमे निर्मलता, स्पष्टता बने तो बहुत कठिन अंधकार वाली रातमे बिल्ली आदिक जीवोको फिर विशदता न होना चाहिए, किन्तु उनके ज्ञानमे विशदता है। जो देखा, वह इस प्रकार उन्हे स्पष्ट रहता है जैसे हम आप लोगोको दिनमे स्पष्ट रहता है। सो विशदताका कारण प्रकाश नही है। उसका कारण तो अपने ज्ञानका आवरण करने वाले कर्मोंका विनाश है अर्थात् ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम है।

ज्ञानकी उत्पत्ति और विशदतामे स्वावरणक्षयोपशमकी कारणतापर कुछ प्रश्नोत्तर— ज्ञानकी विशदताका भी कारण ज्ञानलब्धि है, ऐसी सुन कर शङ्काकार कह रहा है कि यदि ऐसी ही बात है कि ज्ञानमे निर्मलताका कारण ज्ञानावरण कर्मका हटना है तो फिर अन्धेरेमे दिया आदिक ग्रहण करना व्यर्थ हो जायगा। टार्च ले जानेकी फिर जरूरत क्या रहेगी, क्योंकि ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे ज्ञानमे निर्मलता जगती है फिर प्रकाशकी क्यो जरूरत है, प्रदीप आदिकके बिना भी ज्ञान उत्पन्न हो जाय और विशद हो जाय। तो उत्तरमे कहते हैं कि दीप आदिकका लेना अनर्थक नही है क्योंकि जिस प्रकार इन्द्रिय और मनसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है तो उस प्रसङ्गमे इन्द्रियके सहयोगमे, इन्द्रियके निर्दोष करनेमे इन्द्रियका सामर्थ्य बढानेमे जैसे अजन आदिक लगाये जाते हैं और उन अजनोका लगाना व्यर्थ नही है, इसी प्रकारसे ज्ञानके द्वारा जो पदार्थ जाने गए तो उस समय पर्दा हटाना, अधकार दूर करना, इस आवरणके दूर करनेके द्वारसे उस पदार्थमे ग्राह्यताकी विशेषता जगती है। ज्ञान तो जाननेका ही काम करता है, पर जिस पदार्थको जाना जायगा यदि उस पदार्थपर अन्धकार या वस्तु आदिकका आवरण पडा है तो आवरणके हटनेसे पदार्थमे ग्राह्यता की विशेषता बन जाती है, इस कारणसे प्रदीप आदिकको लेकर चलना अनर्थक नही है।

बाह्य आवरणका अपनयन ग्राह्यकी ग्राह्यताविशेषकी उत्पत्तिका हेतु— पदार्थोंकी ग्राह्यताके लिए आवरणका अपनयन (हटाना) सहकारी कारण है। इतने मात्रसे कही प्रदीप आदिक ज्ञानके कारण न बन बैठेंगे, क्योंकि इस प्रकार यदि

कारण बनने लगेंगे तो कोई चीज पर्देके पीछे रखी है तो पर्दा अलग हटानेमें जो पदार्थका ज्ञान होता है, तो उस ज्ञानमें पर्दा हटाने वालेका हाथ भी कारण मान लो। तो यह प्रकाश आदिक आवरणका हटाना, अंधकारका दूर करना ये ज्ञान की उत्पत्ति कारण नहीं हैं, किन्तु जो पदार्थ अंधकारसे दबा है वस्त्र आदिकसे ढका है तो अंधकारके दूर कर देनेसे उस पदार्थमें ग्राह्यता विशेषकी उत्पत्ति होती है, ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई। तो यहाँ इस प्रसङ्गमें यह बात कही जा रही कि जैसे शङ्काकारने कहा था कि ज्ञान उत्पन्न न होना इसके अतिरिक्त और अंधकार कुछ नहीं है। ज्ञान उत्पन्न न हो बस यही अंधकार कहलाता है। तो जैसे ज्ञानकी न उत्पत्ति होनेके सिवाय अंधकार कोई वस्तु नहीं है तो वैसे ही निर्मल ज्ञान उत्पन्न होनेके सिवाय प्रकाश भी कुछ चीज नहीं है, फिर प्रकाशको ही ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण कैसे मानोगे ?

तीव्र मंद प्रकाशकी भांति तीव्र मंद अंधकारकी प्रतीतिसे दोनोंका अस्तित्व — अब यहाँ पर शङ्काकार फिर कह रहा है कि जब लोग इस प्रकार कहते हुए जानते हुए पाये जाते हैं कि इस क्षेत्रमें प्रकाश बहुत है और यहाँ प्रकाश मंद है, जैसे सूर्य उगनेके पौन घंटा पहिले प्रकाश मंद रहता है लोग उस समय कहते हैं कि प्रकाश मंद है और जब दो चार घंटे व्यतीत हो जाते हैं तो कहते हैं कि अब तो बड़ा प्रकाश है, इस प्रकारसे प्रकाशको तीव्र और मंद कहते हैं। देखो यह मंद प्रकाश है, देखो यह तीव्र प्रकाश है, तो इस ज्ञानसे यह सिद्ध होता है कि इस लोक व्यवहारके अतिरिक्त प्रकाश नामकी कोई चीज है अब प्रकाशके बारेमें हम यह जानते हैं कि यह कम प्रकाश है यह अधिक प्रकाश है तो प्रकाश कुछ चीज है ना ? तो उत्तरमें कहते हैं कि अंधकारके बारेमें भी यह चीज जानी जाती है कि यहाँ अधिक अन्धकार है यहाँ कम। तो फिर वहाँ भी अंधकार वास्तविक सिद्ध हो जायगा। यदि कहो कि ज्ञान तो अप्रमाण है, अंधकारकी सत्ता करने वाला ज्ञान भी अप्रमाण हो जायगा। वहाँ कौन सा विश्वास लाया जा सकता है ?

प्रकाश होनेपर भी क्वचित् अंधकारकी प्रतीतिका किसीके अंधकारमें प्रकाश प्रतीतिके साथ समानता — शङ्काकार अब यह कह रहा है कि जब हम बाहरसे घरमें घुसते हैं तो घरमें यद्यपि प्रकाश है पर अंधकारकी प्रतीति होती है। यह तो एक मिथ्या अंधकार मालूम हुआ। तो अंधकार कोई वास्तविक चीज नहीं रही क्योंकि प्रकाश और अंधकार एक जगह तो ठहर नहीं सकते तो वह अंधकार तो मिथ्या रहा। इसके समाधानमें कहा जा रहा है कि तब तो फिर रातको चलने वाले बिलाव आदिक जानवरोंके भी दिन आदिकमें जब वे घुसते हैं तो वहाँ दीपक आदिकका कुछ प्रकाश नहीं है फिर भी प्रकाश प्रतीत होता है तो प्रकाश भी वास्तविक चीज न रहा। यह बात युक्त नहीं है कि अगर सब जगह अंधकारका अभाव होनेसे अंधकार की प्रतीति है तो यहाँ भी सब जगह अंधकारका अभाव मान लीजिए। यदि ऐसी प्रत्यव-

न्था बना दी जाय तो पदार्थका अभाव होनेपर भी कही कही पदार्थकी प्रतीति होती है तो यह मान लो कि पदार्थका सर्वत्र अभाव है। फिर तो सकल शून्यता हो गई अब तो ज्ञान भी गड्ढे मे गया।

पदार्थ और प्रकाश आदिसे ज्ञानकी अजन्यताकी सिद्धि—जैसे आलोक को तुम पदार्थ मानते हो, वास्तविक मानते हो, इसी प्रकार अधकार भी वास्तविक चीज है क्योंकि प्रकाशके अभाव होनेपर भी अधकारमे ज्ञानकी उत्पत्ति देखी जाती है, इस कारण प्रकाश ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण नही है, तो न तो ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण प्रकाश रहा, न पदार्थ रहा न इन्द्रिय और पदार्थोंका सन्निकर्ष रहा। ये कोई बाह्य तत्त्व ज्ञानकी उत्पत्तिके कारण नही है। तब जो साव्यवहारिक प्रत्यक्षके लक्षण मे कहा गया था कि इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न हुआ ज्ञान एकदेश निर्मल साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है यह लक्षण ठीक युक्तिसिद्ध है। यह ज्ञान अपने आवरक ज्ञानावरणके क्षयोपशम होनेपर प्राप्त हुई लब्धिसे, ज्ञेय पदार्थोंकी ओर उपयोग देनेसे, शारीरिक इन्द्रिय अनिन्द्रियके निमित्तसे उत्पन्न होता है। उस समय अधकारका आव रण हटानेमे कारणभूत प्रकाश या वस्त्ररूप आवरण अपनयन आदि जो आवश्यक हुए हैं उनसे ज्ञानकी परिणति नहीं बनती किन्तु उन पदार्थोंमें जो ग्राह्यता होनी थी उनमे ग्राह्यत्वविशेषकी प्रादुर्भूति होती है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि पदार्थ और आलोक भी ज्ञानकी उत्पत्तिके कारण नही हैं।

पदार्थ और प्रकाश ज्ञानको उत्पन्न न माननेपर उनके प्रकाशकी असम्भवताका प्रश्न—पदार्थ और प्रकाश ये ज्ञानके कारण नही होते, ऐसा सुनकर शङ्काकार पूछ रहा है कि फिर तो आलोक और अर्थका कोई प्रकाशक भी नही हो सकता। जब पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न नही होता तो ज्ञान पदार्थको जान न सकेगा। जब प्रकाशसे ज्ञान उत्पन्न नही होता तो ज्ञान प्रकाशको जान न सकेगा, क्योंकि अर्थजन्य न रहा ज्ञान तो अर्थको कैसे जानेगा ? प्रकाशजन्य भी न रहा तो प्रकाशको भी कैसे जानेगा ? इसके उत्तरमे आचार्यदेव सूत्रमे कहते हैं —

अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकम् ॥ २–८ ॥

पदार्थ और प्रकाशसे ज्ञानकी उत्पत्ति न होनेपर भी ज्ञानकी अर्थालोक प्रकाशकता—यद्यपि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न नहीं होता और प्रकाशसे भी उत्पन्न नही होता फिर भी उन दोनोका प्रकाश करने वाला है। यह नियम नही है कि ज्ञान जिससे पैदा हो उसको ही प्रकाश करे। जैसे ज्ञान पैदा हुआ इन्द्रियसे, चक्षु इन्द्रियसे भी ज्ञान उत्पन्न हुआ, पर यह ज्ञान चक्षु इन्द्रियको नही जानता। तो ऐसा नियम भी नही बन सकता कि जिससे उत्पत्ति हुई हो उसे ही जाने। ज्ञानकी उत्पत्ति होनेमें और भी अनेक कारण है, जिन कारणोका यह ज्ञानकर भी नही जानता, तो यह बात

न रही कि अर्थमें ज्ञान उत्पन्न होता तो अर्थको जानता। प्रकाशसे ज्ञान उत्पन्न होता तो प्रकाशको जानता। नही भी उत्पन्न है पदार्थसे ज्ञान तो भी पदार्थको जानता है। जैसे भीटको जाने इसमें शङ्काकार तो यह कह रहा कि भीटसे ज्ञान पैदा हुआ है तब ज्ञानने भीटको जाना। सिद्धान्त यह कहता है कि भीटमे न ज्ञान रखा है और न कोई कारणपनेकी बात है। भीट तो एक विषय हुआ। ज्ञानमे ज्ञेय हुआ। भीटसे ज्ञान उत्पन्न नही होता और फिर भी भीटको जान लेता है। इस सम्बन्धमे एक ऐसा दृष्टान्त दे रहे है कि जो दोनो वादियोको सम्मत हो। दृष्टान्त जो भी दिया जाता है कहने वाला तो मानता ही है मगर जिसको कहा जाय वह भी मान जाय, ऐसा दृष्टान्त दिया जाता है, तो वादी और प्रतिवादी दोनोके मानने लायक दृष्टान्त कह रहे है।

प्रदीपवत् ॥ २–६ ॥

अतज्जन्य होनेपर भी तत्प्रकाशकता होनेमे प्रदीपका दृष्टान्त—जैसे दीपक इन चौकी भीट आदिकसे उत्पन्न तो नही होता फिर भी उनका प्रकाश करता है तो यह बात न रही कि यदि उत्पन्न न होता उसमें तो प्रकाश करता। जिस प्रकार दीपक पदार्थसे उत्पन्न नही होते, फिर भी पदार्थोंके प्रकाशक हुआ करते है इसी प्रकार यह ज्ञान भी इन पदार्थोंसे उत्पन्न नही होता और फिर भी पदार्थोंका यह ज्ञान करता है सबकी समझमे आ रहा है, कि जो घट पट आदिक चौकी टेबुल आदिक प्रकाश्य हो रहे हैं वे प्रकाश्य पदार्थ अपने प्रकाशक दीपक पदार्थको उत्पन्न नही करता, न यह कोई जबरदस्ती करते। इस अधेरेमे रहने वाले पदार्थोंने क्या बिजली पर कुछ जबरदस्ती की कि तू जल तू चमक? अरे वह तो अपने कारणसे जलेगी और उसके जलने पर ये पदार्थ प्रकाशित हो जायंगे। तो प्रकाश्य प्रकाशकका सम्बन्ध तो देखा गया मगर यह बात नही देखी गई कि प्रकाश्य पदार्थसे प्रकाशक प्रदीपकी उत्पत्ति हुई हो। प्रकाश्य कहते हैं जो चीज प्रकाशमे आया और प्रकाशक कहते है उसे जो चीजका प्रकाश करता है।

प्रकाश्य प्रकाशक सम्बन्धसे प्रकाशक जनक माननेपर प्रकाशकको प्रकाश्य जनक माननेका प्रसङ्ग शङ्काकार यह कह रहा कि प्रकाश्य पदार्थ न होनेपर प्रकाशकमे प्रकाशपनेका सम्बन्ध नही जुड सकता। जैसे बिजली जलाया और कहते है ना कि यह बिजली इन चौकी टेबुल आदिककी प्रकाशक है, तो उस बिजली मे प्रकाशक नाम किसने धरया? इन टेबुल चौकी आदिकने, जो कि प्रकाशमे आये है। ये पदार्थ न होते तो प्रकाशमे प्रकाशकपनेकी बात नही आ सकती थी, इस कारण मे प्रकाश्य पदार्थ प्रकाशका जनक है ही अर्थात् पदार्थ दीपकको उत्पन्न करता है। हालांकि लोगोको ऐसा दिखता है कि ये पदार्थ दीपकको कहा पैदा करते, बटन दबाया, बिजली जली। तो इन टेबुल कुर्सीने बिजलीको उत्पन्न नही किया, पर उस बिजलीमे टेबुल कुर्सीके प्रकाशनसे प्रकाशकपना आया वह उनके कार्यमे आया। टेबुल

भी पदार्थ-होते है वे ठडे होते है, जैसे जल । तो उसके साथ माथा-पच्ची करना व्यर्थ सीधा चिमटासे आग उठाकर उसका हाथ पकडकर वह आगकी चिनगारी उसकी गरदीमे धर दो । वह तो कहने लगेगा अरे रे रे, जल गए । उस चिनगारीका तब तक धरे रहो जब तक वह यह न कहदे कि आग गरम होती है (हँसी) । तो जो प्रतीतिसिद्ध बात है उसमे कुयुक्तियाँ लगाये तो वह तो उसका अपलाप करना है । सारी दुनिया जानती है कि भीटका जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह भीटसे नही होता, वह ज्ञान तो आत्मामे है, यह अपने आपसे हुआ है और उस ज्ञानमे भीट ज्ञेय बन गया है । तो पदार्थ और प्रकाशसे उत्पत्ति न होकर भी ज्ञान पदार्थ और प्रकाशका प्रकाशक होता है जैसे दीपक ।

ज्ञानको अर्थसे अजन्य माननेपर प्रतिनियत ज्ञानकी व्यवस्थामे शङ्का—एक सिद्धान्त ऐसा है जो ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थोंसे मानता है । जैसे भीटका ज्ञान किया तो वह ज्ञान भीटसे उत्पन्न हुआ और ऐसा माननेमे वे यह दलील देते है कि ज्ञान भीटको ही जान रहा है, अन्य पदार्थको नही जान रहा है । इसका कारण यह है कि वह ज्ञान भीटसे उत्पन्न होता है तभी वह उस भीटको, जानता है । तो ऐसा सिद्धातवादी यहा शङ्का कर रहा है कि यदि पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति नही मानते तो फिर ज्ञान समस्त पदार्थोंको जानने लगेगा । अभी तो यह व्यवस्था थी कि जो ज्ञान जिस पदार्थसे उत्पन्न हुआ है वह ज्ञान उस पदार्थको जानता है । यह व्यवस्था न माननेपर फिर एक ही ज्ञान समस्त पदार्थोंको जानने लगेगा ऐसी शका करने वालेके प्रति आचार्य उत्तर देते हैं—

स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया
हि प्रतिनिययमर्थं व्यवस्थापयति (२—१०)

स्वावरणक्षयोपशमरूप योग्यतासे प्रतिनियत अर्थज्ञानकी व्यवस्था—जो अर्थका प्रकाशक है वह अपने आपमे आवरण रहित होता है जैसे प्रदीप आदिक । प्रदीप यदि पदार्थका प्रकाश करता है तो वह प्रतिबध रहित हो तो प्रकाश करता है । ज्ञानप्रकाशका प्रतिबध क्या है ? कर्म । प्रतिनियत ज्ञानका प्रतिबध है अपने अपने आवरण । जिस पदार्थका जो ज्ञान होता है उस ज्ञानका आवरण वही कहलाता है । जैसे मतिज्ञानका आवरण कर्म मतिज्ञानावरण है ऐसे ही घटज्ञानका आवरण घटज्ञानावरण है । तो अपने आवरणके क्षयोपशमसे हुई जो योग्यता, उससे प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था बनती है । उससे अन्योन्याश्रय दोष भी नही दे सकते कि जब आवरणका क्षयोपशम सिद्ध हो तो उस पदार्थका जानना सिद्ध हो तो आवरणका क्षयोपशम सिद्ध हो । ऐसा अन्योन्याश्रय नही दे सकते क्योंकि योग्यता प्रतिनियत अर्थकी उपलब्धि होनेसे प्रसिद्ध ही है । ज्ञानकी जो शक्ति है वही ज्ञानकी जो शक्ति है वही ज्ञानकी प्रतिनियत व्यवस्थाका कारण होती है । अर्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति

हुई इसलिये पदार्थको ज्ञान जाने यह ठीक नही है और इसका पहिले ही निषेध कर दिया है । बहुत विस्तारपूर्वक यह सिद्ध किया गया कि ज्ञान न तो पदार्थसे उत्पन्न होता न प्रकाशसे ।

दीपकवत् प्रकाश्यसे अजन्य होकर ज्ञानप्रकाशकी वृत्ति दीपक प्रकाश करता है भीट वगैरहको तो क्या यह बात है कि भीटमे प्रकाश उत्पन्न हुआ ? प्रकाश अपने कारणसे उत्पन्न हुआ है । अब उसका ऐसा निमित्त है कि भीट आदिक पदार्थ प्रकाशमे आ जाता है, नही तो कोई यों कहने लगेगा कि दीपक भीट आदिकसे उत्पन्न होता है क्योंकि दीपकने भीटका प्रकाश किया । दीपकने और सारे पदार्थोंका क्यो प्रकाश नही किया ? यही कारण है कि वह भीटसे उत्पन्न हुआ । यो वहा भी अडगा लगा सकते । जैसे दीपक प्रकाशमय पदार्थोंसे नही उत्पन्न होता फिर भी प्रकाश करता है इसी प्रकार यह ज्ञान प्रकाशमय ज्ञेय पदार्थोंसे नहीं उत्पन्न होता है । अपने ही कारण कलापोंसे और फिर पदार्थोंको वह जानता है । तब हम सकाकारसे पूछेगे कि क्यो जी, दिया, भींट आदिक पदार्थोंसे उत्पन्न होते नही तो वह पर्दाके भीतर पडे हुये भीटके उस तरफ पडे हुए पदार्थोंको क्यो नही प्रकाशित करता, जैसे कि बिना पर्दाके पदार्थोंको प्रकाशित करता है । दीपक सामनेकी चीजको क्यों प्रकाशित करता है, भीटके उस तरफकी चीजको क्यो नही प्रकाशित करता ? तो यह कहेंगे आप कि आवरण पडा है । तो यही बात ज्ञानपर है । ज्ञानपर आवरण पडा है इसलिये सब पदार्थोंको नहीं जानता । तो आवरण पडा है इसलिये सब पदार्थोंको नही जानता । तो आवरण पडे हुए पदार्थको दीपक क्यो नही प्रकाशित करता । तो इसके उत्तरमे कहेगे कि दीपकमे ऐसी ही योग्यता है, तो यही बात ज्ञान मे भी लगाओ— ज्ञानमे इस ही प्रकारकी योग्यता है कि वह अपने आवरणके क्षयोपशमके अनुसार पदार्थोंको प्रकाशित करे । इससे यह व्यवस्था अपने ही कारणसे बनती है कि ज्ञान इतनेको जानता है औरको नही जान पा रहा । और, जब कभी ज्ञानके सारे आवरण समाप्त हो जायेंगे तो सबको जानने लगेगा । पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न होता है और फिर पदार्थ जानता है ऐसा माननेपर और भी दोष है जिसे आचार्य बताते हैं ।

कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचार ॥ २—११ ॥

कारणकी परिच्छेद्यताका अनियम—कारणको यदि परिच्छेद्य मानोगे, ज्ञेय मानोगे तो इन्द्रिय आदिकके साथ भी व्यभिचार होगा । ज्ञानके जो जो कारण है वे कारण ही जब ज्ञेय बन गए जैसे कि ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थोंसे मानी है और पदार्थों को ही वह ज्ञान जानता है तो जिससे ज्ञान उत्पन्न हो उस हीको ज्ञान जानने लगे तो चक्षु आदिक इन्द्रियसे भी ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान चक्षु आदि इन्द्रियको क्यो नहीं जानता ? ज्ञानका कारण इन्द्रिय भी है ज्ञानका कारण अदृष्ट भी है, ये ज्ञानके

कारण हैं तो ज्ञानके द्वारा ये क्यो नही जाने जाते ? शायद यह कहो कि हम यह नही कहते कि जो जो कारण होता है वह ज्ञेय होता ही है, किन्तु यह कहते कि कारण ही परिच्छेद्य होता है, दूसरी चीज ज्ञेय नही हो सकती। यदि ऐसा कहोगे तो यह भी ठीक नही, क्योकि योगियोका जो ज्ञान है, प्रभुका जो ज्ञान है, अथवा व्याप्तिका जो ज्ञान है, तर्क प्रमाणमे जो ज्ञप्ति बनाई जाती है उस ज्ञप्तिके ज्ञानमे भी समस्त पदार्थ ग्रहणमे आते है और योगियोके ज्ञानमे भी समस्त पदार्थ ज्ञय होते है। तो वह जो ज्ञान है वह कैसे उत्पन्न हुआ, बतलाओ ? तो कारणसे तो नही हुए तब फिर उनकी सर्वज्ञताका अभाव हो जायगा क्योकि जो पदार्थ समय समयमे नष्ट होते हैं और समय समयमे नये नये होते हैं तो जब ज्ञान हुआ तब पदार्थ नही है और जब पदार्थ है तब ज्ञान नही है, तो पदार्थ जाननेमें कैसे आयगा ? पदार्थ तो ज्ञानके कारण ही नही बन सकने। यदि प्रभुके ज्ञानका भी कारण पदार्थ माना जाय तो जब पदार्थ उत्पन्न हुए उस समय तो पदार्थोंने अपने स्वरूपकी रचनामे ही अपना जीवन लगा लिया। ज्ञान होगा दूसरे समयमे। जब पदार्थ उत्पन्न हो चुके तब तो ज्ञान होगा। जब पदार्थ उत्पन्न हो चुकता तो वह तुरन्त नष्ट हो जाता, यह क्षणिकवादका सिद्धान्त है। तब फिर योगिज्ञान और व्याप्तिज्ञान ये भी कुछ कम नही रहे। इससे यह बात सिद्ध नही हो सकती कि ज्ञान जितने होते हैं वे पदार्थसे उत्पन्न होते है। ज्ञान ज्ञानका स्वभाव है अपने स्वभावसे ही उत्पन्न होते। ज्ञानमे ऐसा स्वरूप पडा हुआ है कि वह समस्त पदार्थोंको जाने। किन्तु आवरण होनेके कारण ज्ञान रुका रहता है। सबको जान नही सकता। आवरण दूर हो तो सबका ज्ञान हो जायगा, तो ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थोंसे नही होती है।

प्रमाणविवरणमे स्वरूप उत्पत्ति आदिका विचार—यह सब प्रमाणका स्वरूप सही करनेके लिये कहा जा रहा है। प्रमाण उस ज्ञानको कहते हैं जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये। ज्ञानकी चर्चा चल रही है कि वह ज्ञान कैसे उत्पन्न होता ? तो क्षणिकवादी यह कह रहे हैं कि ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थोंसे होती है। पर पदार्थोंसे ज्ञान उत्पन्न होने लगे तो ज्ञानका कोई निजी तत्व नही रहा। जिसकी पदार्थसे उत्पत्ति हुई वह तो पदार्थकी चीज होगी। फिर ज्ञान कहाँ रहा ? ज्ञान स्वय है जो अपने ही स्वरूपसे अपने आपका प्रकाशक है। किसी पदार्थ आदिकसे ज्ञान उत्पन्न नही हुआ है। और, भी दोष है। जब आकाशमे कोई केशोका भ्रम हो जाता है या अपनी ही आखोके पलकके रोम कुछ ऐसे नजर आते हैं कि उसमे भ्रम हो जाता है, तो वह ज्ञान तो उसका भ्रम ज्ञान है उसके उत्पन्न करने वाला तो कोई है ही नही तो वह ज्ञान होगा। पदार्थोंसे तो उत्पन्न नही हुआ तब फिर कुछ ज्ञान ही न कर सकेगा। और, फिर देखिये ! इन्द्रिय कारणताकी समानता होनेपर भी इन्द्रियका ग्रहण क्यो नही होता ? कारण ही परिच्छेद्य नही, पर कारण जैसे अर्थ है इसी तरह इन्द्रिय भी हैं ज्ञानके कारण, उनका बोध क्यो नही होता ? यदि कहो कि प्रयोजना

है इन्द्रिय आदिकको जाननेकी तो यो यता ही कारण मान लो, योग्यतासे ही ज्ञानकी व्यवस्था बनती है, अन्य कल्पनाएँ करना व्यर्थ है।

कारणकी परिच्छेद्यताकी असिद्धि होनेसे ज्ञानकी अर्थजन्यताका निराकरण यदि यह कहो कि इन्द्रियाँ उस ज्ञानको अपना आकार नहीं समर्पण कर सकती इसलिए ज्ञान इन्द्रियको नहीं जानता। उनका सिद्धान्त है कि पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न होता है और वह पदार्थ ज्ञानको अपना आकार सौंप देता है तब ज्ञान पदार्थको जानता है। तो उन्होने कहा है कि इन्द्रिया अपना आकार ही नहीं पाती इसलिए इन्द्रियोको ज्ञान नही जान पाता। अपने आकारके अर्पण करनेकी बात तो होती नही कोई भी पदार्थ ज्ञानका आकार नही सौंपा करता, और फिर इसमे भी प्रश्न किया जा सकता कि जब कारणपना दोनोमे समान है फिर भी कारण है ज्ञान, और इन्द्रिय भी कारण है ज्ञानका, तो पदार्थ तो ज्ञानको अपना आकार सौंप दे और इन्द्रियाँ ज्ञानको अपना आकार न सौंपें, इसमे कौनसा नियम है? इसमे भी अगर योग्यता कहोगे तो सब जगह योग्यता मान लो। ज्ञानमे जैसी योग्यता है वह ज्ञान उस योग्यताके अनुसार पदार्थोंको जानता है और फिर जितने भी ज्ञान हैं वे सब ज्ञान समस्त अर्थोंका पदार्थोंका कार्य क्यो नही हो जाते? यदि कहो कि पदार्थोंकी ऐसी ही जुदी-जुदी शक्तियाँ हैं वे समस्त पदार्थ ज्ञानमे नही आ पाते, तो यही बात ज्ञेय ज्ञायकमे भी लगा लो। ज्ञेय ज्ञायककी ऐसी ही शक्तियाँ हैं कि यथापद किसी पदार्थमें कोई ज्ञान आता है कोई नही। इस प्रकार यह बात निराकृत हुई कि ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थसे होती है। ज्ञान अपने कारणसे होता है और पदार्थ उसमे ज्ञेय हो जाता है।

साव्यवहारिक प्रत्यक्षके वर्णनकी पूर्वसङ्गति- प्रथम परिच्छेदमे प्रमाण का स्वरूप कहा गया था, अब इस परिच्छेदमे प्रमाणके भेद बताये जा रहे हैं। प्रमाण के मूलमे दो भेद है (१) प्रत्यक्ष, (२) परोक्ष। कुछ सिद्धान्त भेदोकी इस मौलिकताको न मानकर प्रत्यक्ष अनुमान उपमान आदि अनेक प्रकारोमे २-३ आदि अनेक प्रकारमे भेद करते है, किन्तु वे प्रकार परोक्षमे अन्तर्भूत हो जाते हैं और जो वस्तुत प्रत्यक्ष है मुख्य प्रत्यक्ष है उसका दर्शन भी वहाँ नही हो पाता है। प्रत्यक्षका लक्षण किया गया है कि जो विशद ज्ञान हो वह प्रत्यक्ष है। इस लक्षणसे दार्शनिक क्षेत्रमे साव्यवहारिक प्रत्यक्षकी प्रत्यक्षता सिद्ध होती है जिसमे कि अन्य दार्शनिकोसे वादका एक मध्य व अन्त है। साव्यवहारिक प्रत्यक्ष वास्तवमे प्रत्यक्ष न बन जाय इस बचाव के लिए मे एकदेश विशद कहकर सिद्धान्तका विरोध मिटाया है। यह साव्यवहारिक प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है। इस सम्बन्धमे कुछ सिद्धान्तवादियोने कहा कि ज्ञान पदार्थ और प्रकाशसे उत्पन्न होता है उसका यहा निराकरण किया है। हम लोगोके ज्ञान अपने आवरण कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते हैं और इसी योग्यतासे यह व्यवस्था भी बनती है कि अमुक ज्ञान अमुक पदार्थको जाननेवाला

है। इस प्रकार प्रत्यक्षके भेदोमे सांव्यवहारिक प्रत्यक्षका वर्णन हुआ। अब मुख्य प्रत्यक्षके सम्बन्धमे वर्णन चलेगा।

●

परीक्षामुखसूत्र-प्रवचन

[दशम भाग]

[प्रवक्ता — अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द" जी महाराज]

●

प्रमाणके भेदोमे मुख्य प्रत्यक्षके वर्णनका उपक्रम— समस्त पदार्थोमे ज्ञानतत्त्व ही सारभूत है, ज्ञानके द्वारा ही समस्त व्यवस्था है और सभी लोकमे तो ज्ञानकी ही महिमा चलती है। ज्ञान ही प्रमाण होता है, अमुक बात सही है अथवा नही, यह निर्णय ज्ञानसे ही किया जाता है। तो ज्ञान होनेपर कि समस्त व्यवस्था, सत्य पथपर चलना, कुपथसे हटना आदि अपना सारा भविष्य निर्भर है, वह ज्ञान किस प्रकारका स्वरूप रखता है इस सम्बन्धमे वर्णन चल रहा है। जो अपना और पर पदार्थोंका निश्चय करे उस ज्ञानको प्रमाण कहते है। ज्ञानमे यह खासियत है कि वह अपने स्वरूपका भी निश्चय रखता है और पदार्थका भी निश्चय रखता है। ज्ञान दो प्रकारका कहा गया है—एक प्रत्यक्ष, दूसरा परोक्ष। प्रत्यक्षका यद्यपि सिद्धान्तमे यह लक्षण है कि जो इन्द्रिय मनकी सहायताके विना केवल आत्मशक्तिसे उत्पन्न हो उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। इस सिद्धान्तका भी विरोध न करके दार्शनिक शैलीसे प्रत्यक्षका लक्षण कहा गया है - जो स्पष्ट ज्ञान हो उसे प्रत्यक्ष कहते हैं और इस लक्षणके अनुसार दो प्रकारके प्रत्यक्ष हुए एक तो एकदेश स्पष्ट ज्ञान होना—उसे कहते है साव्यवहारिक प्रत्यक्ष। और दूसरा सर्वप्रकारसे विशद हो, स्पष्ट ज्ञान हो उसे कहते हैं मुख्य प्रत्यक्ष। साव्यवहारिक प्रत्यक्षके विषयमे वर्णन हो चुका था, अब मुख्य प्रत्यक्ष के सम्बन्धमे उसका स्वरूप और उसकी उत्पत्तिका कारण बताते हुए सूत्र कहते है।

सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम् ॥ २–१० ॥

मुख्य प्रत्यक्षका निर्देशन— मुख्य प्रत्यक्ष वह होता है जो सर्व प्रकारसे स्पष्ट हो। मुख्य प्रत्यक्षमे अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये तीन ज्ञान आये। तीनो ज्ञान अपने विषयमे स्पष्ट हैं। जितनी स्पष्टता हम आप लोगोको इन्द्रियोसे

जानने पर विदित होती है, आँखोसे देखा तो कितना साफ मालूम होता है कि यह भीट है यह अमुक रङ्ग है जो कुछ भी नजर आता है वह कितना साफ प्रतीत होता है, तो इससे भी साफ स्पष्ट अवगम अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञानमें होता है। यह मुख्य प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय है, किसी इन्द्रियसे उत्पन्न नही होता। जो इन्द्रियसे उत्पन्न नही होता है उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। इस मुख्य प्रत्यक्षमे समस्त आवरणोका विश्लेषण हो गया है। जितने आवरणोका दूर हुआ ज्ञान है वह उतने आवरणोका वियोग होनेपर प्रकट होता है। चाहे क्षयरूपसे ज्ञानावरणका वियोग होता हो या क्षयोपशम रूपसे। अवधिज्ञानमे मन पर्ययज्ञानमे ज्ञानावरणका क्षयोपशम है, सो क्षयोपशमरूप वियोग है और केवल ज्ञानमे समस्त ज्ञानावरणोका क्षय है। यह विश्लेष कैसे होता है, यह हटाव किस विधिसे होता है? वह किसी सामग्री विशेषसे होता है। वह सामग्री विशेष क्या है?

ज्ञानवरणविश्लेषका कारण—अन्तरङ्गमे कारण है तो रत्नत्रय, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र जिसके प्रतापसे इन आवरणोका वियोग होता है और बहिरङ्ग कारण योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ये सब उसके बहिरङ्ग कारण हैं। उस सामग्री विशेषमे जब आवरणका विघटन होता है, तब अवधिज्ञान मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये तीन प्रकट होते है। अपने आपके इस ज्ञानस्वभावका विचार करें। ज्ञानमे जाननेका स्वभाव पडा है। इस जाननेके स्वभावमे कोई सीमा नही पडी है कि इतनी दूरी तककी ही बात जाने। ज्ञानमे सामने गैर सामनेका कोई प्रतिबध नही है। किन्तु सत् हो। हो दुनियामे कुछ, ज्ञानमे आयगा। तो ज्ञानका स्वभाव है जो भी सत् हो। चाहे वह किसी भी पर्याय परिणत हो, पहिले था जिस पर्यायमे, आगे होगा, वे समस्त उस ज्ञानमे प्रतिबिम्बित हो जाते हैं तब प्रश्न यह होना स्वाभाविक है कि ज्ञानमे स्वभाव पडा है जाननेका और जाननेमे कोई सीमा अथवा प्रतिबध नही होता, तब फिर हम लोगोका ज्ञान आज कितना सीमित है, कितना नियत्रित है। जो सामनेकी चीज हो उसको जाने पीछेकी चीज न जान सकें। देखो किसी इन्द्रियका निमित्त पाकर जाना। हम अपने आप अपनी शक्तिसे केवल इन्द्रियकी अपेक्षा न रखकर नहीं जान सकते। हम अमुक इन्द्रियसे अमुक विषय ही जान सकेंगे। यह नही है कि आँखसे रसका ज्ञान करलें। रसनासे देखनेका काम करले व नासिकासे सुननेका काम कर सकें। ऐसी बात तो नही है। तो कितना नियन्त्रण है, कितनी सीमा है। यह सब कैसे हो गया? उसके उत्तरमे आ ही गया होगा सबके मनमे कि है कोई आवरण जिसके निमित्तसे यह ज्ञान इतना नियन्त्रित हो गया है। वह आवरण क्या है इसके सम्बन्धमे इसी स्थलमे विचार चलेगा।

मुख्य प्रत्यक्षकी निरावरणताका हेतु—इस समय यह बात बताई जा रही है कि जो अतीन्द्रिय ज्ञान है, स्पष्ट ज्ञान है वह आवरण रहित है, इसीको मुख्य

मुख्य प्रत्यक्षका विषय—यह मुख्य प्रत्यक्ष तीन प्रकारका है अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान व केवलज्ञान । अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान अपने विषयका स्पष्ट ज्ञान करते है, इसलिये ये आवरणरहित हैं । अवधिज्ञान जानता है रूपी पदार्थों को । हम पहिले भवमे क्या थे अमुक जगह क्या हुआ, इन रूपी पदार्थोंका ज्ञान अवधिज्ञान कर लेता है । दूसरेके मनमे रहते हुए विचारोका ज्ञान मन पर्यय करते हैं और लोकमे जितने भी पदार्थ हैं, जिस पर्याय परिणत थे, जिस पर्याय परिणत होगे, उन समस्तका ज्ञान केवलज्ञानमे होता है । एक रागद्वेष न होनेके कारण केवलज्ञानके ज्ञानमें एक विशिष्ट अन्तर आ जाता है । केवलज्ञान किस प्रकारसे पदार्थोंको जानता है ? चूंकि हम आप लोगोके किसी न किसी प्रकारका रागका सद्भाव है, तो ज्ञानके साथ झट विकल्प उठ पडते हैं, शब्दरचना हो बैठती है, अन्तर्जल्प जल उठता है, किंतु केवलज्ञान विकल्पोसे अतीत है, अन्तर्जल्पसे रहित है । एक विशुद्ध रूपसे ज्ञाता है । तो उसका वह ज्ञान कैसा है ? हम लोग अपने ज्ञानसे तुलना करके किसी प्रकार जानना चाहें तो वह अशक्य है । तो यह मुख्य प्रत्यक्ष अपने कारणसे प्रकट होता है, उसके कारण अन्तरङ्गमें रत्नत्रय और बहिरङ्गमे योग्य द्रव्य क्षेत्र आदिक हैं ।

मुख्य प्रत्यक्षकी अतीन्द्रियताकी सिद्धि- यह मुख्य प्रत्यक्ष निरावरण है, अतीन्द्रिय है । इन्द्रियसे जो बोध होता है वह यद्यपि एकदेश स्पष्ट लगता है, किन्तु वह वस्तुत स्पष्ट नही है । ये केवलज्ञान, अवधिज्ञान मन पर्ययज्ञान इन्द्रियसे रहित हैं, अतीन्द्रिय है । ये कैसे जानें ? उसको अनुमानसे सिद्ध कर लीजिए कि यह ज्ञान अतीन्द्रिय है, क्योकि इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नही रखता है । यह ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नही रखता क्योकि समस्त कलङ्कोसे दूर है । जहाँ कुछ कलङ्क हो, जहाँ कुछ कमजोरी हो, जहाँ कोई आवरण हो वहाँ ही तो इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा होगी । जैसे एक मकान बना है, कमरेमें कई खिडकियाँ हैं, उसके भीतर रहने वाला पुरुष अगर यह देखना चाहे कि देखें तो सही कि बाहर क्या हो रहा है नगरमें क्या हो रहा है ? तो उसे उन खिडकियोकी अपेक्षा रखनी होगी और क्यो जी ! यदि ये खिडकियाँ ही न हो, दीवाल ही न हो, सारे आवरण दूर हो तो क्या उसे उन खिडकियोकी अपेक्षा करनी होती है ? फिर अपेक्षा करनेकी कोई जरूरत नही है, इसी प्रकार जब हम आपमें इतने कर्मोंके आवरण लगे हैं तब ऐसी स्थितिमे तो यह एक कलङ्क लगा हुआ है । कलङ्क है राग द्वेष । यह भी एक शिक्षा लीजिए कि रागद्वेपके कलङ्क अपनेमे न रहे तो प्रथम तो इतना जाननेकी उत्सुकता भी न होगी कि हम अमुकको जानें, अमुकको मानें ऐसी स्थितिमे यह आत्मा शान्त होगा और यह ज्ञान अपने आत्माके विशुद्ध स्वरूपको जानेगा जिसमे किसीकी अपेक्षा नही है ।

इन्द्रियज ज्ञान व इन्द्रियज सुखमे परापेक्षता—अब बाहरी चीज जानना है तो प्रकाश चाहिए, आँखें कमजोर हैं तो चश्मा चाहिए, अथवा उस चीजके सबधमे

हम पहिलेसे कोई अभ्यास नही किए हुए हैं तो कोई निर्देशक चाहिए जो बताये कि यह अमुक अमुक है। बाहरी पदार्थोंके जाननेमे हमे कितनी अपेक्षा करनी पड़ती है, किन्तु जब कलङ्क दूर हुआ, मोह रागद्वेष ये दूर हुए तो अपने आपमे जो अन्त स्वरूपका अवगम होता है, उस अवगममे किसी अपेक्षाकी जरूरत नही होती। बाहर मे सुख शान्तिकी प्राप्तिके लिए तो अनेक प्रकारकी अपेक्षायें रखनी पडती है और वह सुख भी कोई वास्तविक सुख नही है। सुख शान्ति तो वास्तवमे अपने विशुद्ध ज्ञानकी वर्तनामे है। केवलज्ञान ज्ञानरूप बतता रहे इसमे शान्ति है। इस शान्तिके पानेके लिए जब हम अपने आपमे उद्यम करने चलें तो क्या इसमे किसीकी अपेक्षा करनी पडेगी ? अरे जहाँ ही अपनी शुद्ध दृष्टि बनी, अपने आपमे निरखा, स्वाधीनतासे सुगम ही अपने आपका स्पष्ट बोध हो जाता है।

इन्द्रियज्ञान और स्वसवेदन—यद्यपि पर्यायका हम आपमे अतीन्द्रिय ज्ञान नही है लेकिन स्वसम्वेदनकी पद्धतिसे इस इन्द्रिय मनकी अपेक्षासे परे स्वरूपका अनुभव अब भी कर सकते हैं, जिसे हम स्वानुभव कहते हैं, शुद्ध स्वरूपका अनुभव। शुद्ध स्वरूपका अनुभव क्या इन्द्रियसे उत्पन्न होगा ? यह बात तो बहुत ही जल्दी विदित हो जाती है। और सब लोग बतला सकते हैं कि आत्माके उस विशुद्ध स्वरूपका अनुभव इन्द्रिय द्वारा नही होता। क्योंकि स्पर्शनइन्द्रिय छूनेका ज्ञान करती है। आत्मा छुवा नही जाता रसना इन्द्रिय स्वादका ग्रहण करती है। आत्मामे खट्टा मीठा आदिक कोई रस नही है। घ्राणसे कोई चीज जानी जायगी तो गन्ध जानी जायगी पर आत्मामे न सुगध है न दुर्गन्ध चक्षु इन्द्रियसे काला पीला आदिक रूप ही पहिचाना जायगा, किन्तु आत्मामे कोई रग नही है। कानोसे शब्द ही सुने जायेगे, किन्तु आत्मा मे कोई शब्द भरे है क्या ? तो इन्द्रियके द्वारा विशुद्ध आत्मतत्त्वका अनुभव नही होता। अब रही एक मनकी बात तो यह मन इन कामोमे बहुत सहयोगी है, लेकिन जिस समय अनुभूतिका समय होता है उस समयमे इन्द्रिय और मनका जो एक निजी बल है उसका प्रयोग वहाँ नही रहता है। तो ऐसी स्वसम्वेदन स्थितिमें हम उस अतीन्द्रिय ज्ञानकी जातिका कुछ परिचय पा सकते हैं।

विवेकियोके इन्द्रियज्ञानमे आकर्ष्यताका अभाव—भैया ! इन्द्रिय ज्ञान मे हम अपना आकर्षण न बनायें। इससे हमे कोई सिद्धि न मिलेगी। इन्द्रियज्ञानमे ५ प्रकारके विषय जाने जाते है उन विषयोका परिज्ञान करके हम अपने आत्मामे कौन सा अतिशय पैदा कर लेंगे ? कुछ सिनेमा आदिक देख लिया अथवा रागरागनीके शब्द कानोसे सुन लिये या कुछ भी इन्द्रियजन्य सुख प्राप्त कर लिया तो उससे इस जीवका क्या पूरा पडता है ? इन विषयभोगोसे इन्द्रिय विषयोमे जान जानकर कितना समय बिताया, पर आज भी देखो तो खाली हाथ हैं। यद्यपि अल्प क्षणको धनका तो कुछ सग्रह भी हो जाता है पर इन भोग विषयोमे पडनेसे कौनसी चीजका सग्रह

हो जाता है सो तो बतायो ? बल्कि उनमे तो जीवकी बरबादी ही होती है। इन भोगोमे पकड़कर तो यह जीव दुःखी ही होता रहता है। तो ये इन्द्रियजन्य सुख कोई आकर्षणकी चीज नहीं हैं तब क्या करना ? जो हो सो हो, पर इतना सा ख्याल रखना कि हम यह प्रयत्न करें कि इन इन्द्रिय विषयोंका चित्तमे प्रवेश न करें। इन पदार्थोंको हितरूप न मानें। ये पदार्थ मेरे चित्तमे मत ठहरें। मेरी चित्त भूमि साफ स्पष्ट निर्भर रहे। हमपर इन असार असूत पदार्थोंका भार मत आये। ऐसी अपने आपमे एक उत्सुकता होनी चाहिए।

मोहवश असमत्र बातमे सुकरताकी कल्पना—कितने आश्चर्यकी बात है कि जो बात अत्यन्त कठिन है वह तो सुगम मानली गई है और जो बात अत्यन्त सुगम है वह बहुत कठिन प्रतीत हो रही है। पैसा कमाना कितना कठिन है। वे पर द्रव्य है, उदयानुकूल आ रहे हैं एवं उनका योग बन गया है, पर अपनी वर्तमान करतूतसे जो कि एक एक भावरूप है जो अमूर्त परिणमनरूप ही है उस भावसे हम क्या संग्रह कर सकते हैं? दुनियामे एक नामवरी पैदा करना। लोगोंमे अपना स्थापन करना आदिक कितना कठिन है। लोग किसीके आधीन हैं क्या? जो लोग यश गाते हैं वे अपने आपको कोई तृष्णा जगी है, अथवा किसी बातसे आभार माना है या कुछ भी वेदना जगी है उसके प्रतिकार वे स्थापन किया करते हैं, पर उनमे स्थापन करवाना कितना कठिन है। परिवार बनाना, लोगोकी व्यवस्था बनाना सब लोग आज्ञाकारी रहें मेरे अनुकूल चलें। ये सारी बातें बडी कठिन हैं, वे तो लोगों का बडी सुगम लग रही है। विकल्प उठे, जूते पहिने, लो काम करने आ गए, सारे काम बड़े सुगम लग रहे हैं। हो रहा है वह उदयवश लेकिन यह प्रवृत्ति अज्ञानीकी उन बच्चोंकी भांति है जो बच्चे ५० मन बोझमे लदी हुई गाडी जिसे यद्यपि बैल खीच रहे हैं, पर वे बच्चे पीछेसे गाडीको ढकेलकर यह अनुभव करते हैं कि मैंने गाडी ढकेली। अरे कहीं बैल खडे हो जायें तो फिर उस गाडीका ढकेलना उन बच्चों के वशकी बात है क्या? यों ही इस संसारकी चलती हुई गाडीमे अपने विकल्पोंका हाथ लगाकर ये मिथ्यादृष्टि बच्चे यह अहंकार करते हैं कि मैं ही सारी गाडी चला रहा हूं। गाडी गाडी चलते चलते आ जाय कुयग, पापका उदय आ जाय फिर देखो क्या हालत होती है फिर करलें कुछ। अनेक घटनाये तो दृष्टान्तमे मिलती हैं तो इन बाहरी चीजोंको इस जीव लोकने कितना सुगम मान रखा है, और जो आत्मज्ञान सुगम चीज है वह कठिन लग रहा है।

अन्तस्तत्त्वके अवगमकी सुगमताका कारण—आत्मा ज्ञानमय है। कोई प्रदेश ऐसा नही है जहाँ ज्ञानमयता न हो। अथवा कुछ प्रदेशोमे ज्ञान ज्यादा है और कुछ प्रदेशोमे ज्ञान कम है ऐसा भी नही है। वह एक अखण्ड पदार्थ है। जो एक परिणमन है वह पूरा पूरेमे परिणमन है। ज्ञानमय मैं हूँ, ज्ञान ही ज्ञान जिसका स्वरूप

है और उस ज्ञानस्वरूपमेमे ही ज्ञानका उपयोग प्रकट होता है। वह ज्ञानका उपयोग ज्ञानस्वरूपको न जान सके यह तो एक अघटित सी बात हो गई। कितनी सुगम बात है। कितनी दूर जाना है इस ज्ञानको। ज्ञानस्वरूपकी बात समझनेके लिए कितनी दूर जाना है? जैसे बाहरमे बाहरकी बात जाननेके लिए कितनी दूर जाना पडता है? कुछ तो दूर जाना ही पडता है। कुछ तो अपेक्षा करनी पडती है, किन्तु इस ज्ञानको ज्ञानके स्वरूपको जाननेके लिए कितनी दूर जाना है? अरे दूर कहा जाना है, कही जाना नही है। स्वय ही तो स्वय है। स्वयमे एक परख बनाना है। तो यह ज्ञानकी बात सुगम है और इस तत्त्वके निर्णयके लिए जितना वर्णन है, प्रतिपादन है, वह सब भी कठिन नही है, सुगम है। लेकिन जिस प्रकार व्यापारमे व्यवहारमे बडे हिसाबके लगानेमे बडी समस्याके हल करनेमे जैसी बुद्धिका उपयोग करते है उस प्रकारकी लगनसे यदि तत्त्वज्ञानके सम्बन्धमे बुद्धिका प्रयोग करें, रुचि बनायें तो यह चीज बाहरी चीजोंके ज्ञानसे भी अधिक सुगमतया प्राप्त की जा सकती है।

मोहमे अन्तस्तत्त्वके अवगमकी सुगमता न होनेका कारण—सुगम स्वाधीन क्यो नही हो रहा, उसका एक ही कारण है—विषयोसे व्याकुल चित्त है। इन्द्रिय और मनके विषयमे चित्त ऐसा जमा हुआ है कि उसको सुन भी रहे है और चित्त किसी जगह खिच रहा है, जिनका नही खिचता वे उसको पकड लेते है और जिनका मन बाहर है तो वे उसको नही पकड सकते हैं। तो रुचि उत्पन्न करिये अपने स्वरूपको परखनेकी। इस ओर लगन लगायं क्योकि बाहरमे उलझकर भी हाथ कुछ न लगेगा। हाथ लगनेकी बात तो दूर रहो, खोकर ही जाना होगा। इससे बाह्यमे अपनी रुचि हटाकर इस ओर रुचि बनाये कि ज्ञानकी बात जाने, ज्ञान क्या चीज है और उस ज्ञानको किस किस प्रकारसे सिद्ध किया जा रहा है। उसमे लगते हुए बुद्धिका प्रयोग करे, धैर्य रखे। कोई बात दो चार दिन समझमे नही आती है तो कुछ दिन तक सुननेसे समझमें आयगा। धैर्य रखकर इस ज्ञानमे रुचि करें तो एक परम प्रकाशका लाभ मिलेगा जिससे हम बहुत शुद्ध तरीकेसे तृप्त हो जायेंगे।

निष्कलङ्क निरावरण अतीन्द्रिय विशद ज्ञानकी सिद्धि—जो पुरुष समस्त कलङ्कोंसे रहित होता है उनका ही ज्ञान अशेष विशद हुआ करता है तथा जो स्पष्ट ज्ञान होता है वह इन्द्रिय एव मनकी अपेक्षा नही रखता। जो अतीन्द्रियस्वभावी ज्ञान होगा वह ही विशद हुआ करता है और इन्द्रिय मनकी अपेक्षा नही रखता। हम लोगोंका प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा रखकर होता है। हम इन इन्द्रियकी सहायता लें तो यह ज्ञान होता है। इससे सिद्ध है कि न तो हमारा ज्ञान कलङ्कोंसे रहित है और न अतीन्द्रिय है। जब अपने आपके ज्ञानस्वरूपपर दृष्टि देकर तर्के कि स्वभाव कैसा है? अपने आप सहज, दूसरेके सम्बन्ध बिना ज्ञानकी परिणति क्या बन सकती है? उसका अदाजा करके वर्तमान परिणतिको निरखें तो विदित होगा कि हममे

वहुवसे रागद्वेषके कलङ्क बसे हुए हैं। जिस पुरुषमे रागद्वेषका कलङ्क नही होता है उसका ज्ञान अपने आप ही पूर्ण विकसित हो जाता है। तो जो ज्ञान अतीन्द्रिय है और अपने विषयमे सर्व प्रकारसे स्पष्ट है वह ज्ञान प्रत्यक्ष हुआ करता है। इन सब ज्ञानोमे देख लो— जो ज्ञान पूरे रूपमे स्पष्ट न होगा, जो ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा रखता होगा वह मुख्य ज्ञान नही कहला सकता।

रागादिक कलङ्कके कारण ज्ञानके विशद विकासका अभाव—इन ज्ञानके भेदोमेसे जो मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान है उसका लक्षण कहा जा रहा है कि अपनी सामग्री विशेषके कारण अर्थात् सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक्‌चारित्रकी विशेषता के कारण जब ज्ञानावरण कर्मका वियोग हो जाता है तब इन्द्रिय मनकी अपेक्षा न रखकर स्वय ही उत्पन्न होने वाला ज्ञान हुआ करता है, वह ही मुख्य प्रत्यक्ष कहलाता है हम आप सबके जो वर्तमानके ज्ञान हैं ये पराधीन हैं, अस्पष्ट ज्ञान हैं। इस पराधीनता का, इस अस्पष्टताका कारण यह है कि हम परमे रागद्वेषका लगाव बहुत रखते हैं जिससे उपयोग अपने स्वरूपमे विचलित रहता है। अरे वहा हम ज्ञानकी स्वच्छता नहीं पा सकते हैं। हम प्रभुकी उपासनामे क्यो लगते हैं ? यही ध्यान देकर कि प्रभु का ध्यान धीर है, गम्भीर है निर्मल है, परिपूर्ण है, इस ही ज्ञानके साथ सहज विशुद्ध आनन्द रहा करता है और ज्ञान कलङ्कसे रागद्वेषसे मुक्त है उस ज्ञानके साथ इस आनन्दकी झाँकी नही हो सकती है। अतएव हे प्रभो ! आप आदर्श हो, योगी जनो द्वारा उपासना किए जाने योग्य हो !

ज्ञानके आवरणके सद्भावके विषयमे शङ्का—अब यहांपर शङ्काकार कहता है कि जो मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान बता रहे हो कि आवरणके नष्ट होनेसे हुआ करता है तो पहिले आवरण ही तो सिद्ध कर लो। इस जीवपर आवरण है कुछ पहिले इस की सिद्धि करो। तब यह कहो कि ज्ञानका आवरण करने वाले कर्मका जब क्षय होता है तब केवलज्ञान प्रकट होता है। आवरण तो सिद्ध है हो नही। देखिये ! शङ्काकार यहा यह सिद्ध कर रहा है कि आत्मापर कोई आवरण नही है। जब आवरण नही है तो आवरणका क्षय क्षयोपशम भी क्या रहा ? जब क्षय क्षयोपशम नहीं रहा तो आत्मामे मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान क्या रहा ? आवरण क्या चीज है ? क्या शरीर का नाम आवरण है या रागादिक या कोई देशकाल ऐसा हो जो आवरणसा मालूम होता हो ? किसका नाम आवरण है ? यहा तीन विकल्प किए। शरीरको आवरक कह नहीं सकते और रागादिकको भी नहीं कह सकते क्योकि शरीर व रागादिक होने पर भी पदार्थोंका ज्ञान होता रहता है। जैन शासनमे माने गये सकल परमात्मा यद्यपि उनके रागादिक नही माने गए तब भी शरीर तो है। शरीर ज्ञानका आवरक नही है। और यहा भी अनेक योगीश्वरोको और ज्ञानियोको सभी जीवोको देखते हैं तो रागादिक हैं तब भी ज्ञान चल रहा है, इससे शरीर और रागादिक तो आवरण

हो नही सकते ।

शङ्काकारके प्रति आवरणसिद्धिका अन्य अभिप्राय द्वारा विफल प्रयास—इस शङ्काकारके प्रति कोई दूसरी शङ्का रख रहा है कि यह आवरण न सही किन्तु दूरदेश होना, अतीत काल होना, सूक्ष्म स्वभाव होना ये ही आवरण हैं। जैसे मेरू पर्वतपर आवरण लगा है हम आपको उसका ज्ञान नहीं हो रहा। तो किस चीजका आवरण है ? दूर देश है। दूर देशमे चीज रहना यह आवरण है। और, राम रावण आदिक हुए, उनका हमे ज्ञान नही हो रहा तो उसपर कोई चीजका आवरण है ? उसपर दूर कालका आवरण है। परमाणु आदिकका भी हमे ज्ञान नही हो रहा उसपर क्या आवरण है ? सूक्ष्म स्वभाव है उनका, तो उनपर सूक्ष्म स्वभावका आवरण है। भूमिका मूल आधार व जल आदिक नजर नही आ रहे हैं, काहेका आवरण है ? उस भूमिका आवरण है। आवरण तो प्रसिद्ध हैं, उनका क्यो खण्डन कर रहे हो ? इसपर शङ्काकार उत्तर दे रहा है कि यह तुम्हारी बात असार है। आवरण तो वह कहलाता है जिसको दूर किया जा सके। मेरू पर्वत इतनी दूर है तो मेरू पर्वतका आवरण कोई हटाकर तो बतावे।

कल एक बालिकाने एक प्रश्न किया था जब हमने कहा कि १ फर्लांग तक भी मन्दिर है तो रोज मदिर जाया करो, हा तो उसने कर लिया, पर उसने एक प्रश्न किया कि महाराज ! अगर मन्दिर दूर हो तब क्या करें ? तो हमे कह आया कि उसका आसान तरीका यह है कि मदिर उठाकर घर लाया जाय, इससे आसान तरीका और नही हो सकता है। [हंसी] तो मेरू पर्वत दूर देशमे है यह आवरण बताया गया तो वह आवरण नहीं है। आवरण वह कहलाता है जिसको हटाया जा सके। राम रावण आदिकको हुए बहुत समय व्यतीत हो गया तो बहुत समयका व्यतीत हो जाना यह आवरण नही माना जा सकता क्योकि उसे फिर थोडा कम कर दें, आजका बना लें। ऐसा यह आवरण हटाया तो नही जा सकता अतएव आवरण नहीं है। जो अतिशय ऋद्धि वाले भी योगी हों वे भी देशकाल आदिकका अभाव करनेमे समर्थ नही हैं। इससे सिद्ध है कि ज्ञानपर कोई आवरण नहीं है। वह तो ज्ञान का स्वभाव है कि कम जाने अधिक जाने, पर कोई उसपर आवरण जला हो, फिर उसका क्षय किया जाय, फिर केवल ज्ञान उत्पन्न हो ऐसी चीज नही समझमे आती। आवरण नामकी कोई चीज नही है यो शङ्काकारने ज्ञानके आवरणका निषेध किया।

आवरणकी असिद्धिकी शङ्काका समाधान—आवरण नहीं है, इस शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि भाई हम इन तीन चीजोका आवरण नही मानते जो तीन विकल्प उठाकर हमारे आवरणका निषेध किया। शरीर, रागादिक, देशकाल आदिक ये तीन ज्ञानके आवरण नही हैं। तो फिर क्या आवरण है ज्ञानका ? इन सबमे विविक्त कर्म नामका आवरण है। इस जीवपर कर्मोंका सम्पर्क है, बन्धन है, वह

आवरण है। जिस आवरणके निमित्तसे यह आत्मा ज्ञान नहीं कर पाता। वह आवरण हो तो ज्ञान स्पष्ट निराला असीम जान सकता है। वे कर्म हैं इसमें प्रमाण क्या? तो कर्मकी सिद्धिमें एक अनुमान बताया जा रहा है। जो लाकमे हीन हीन काम हैं-गर्भस्थान, शरीर भोग विषय आदिकके, उनमे इस स्वच्छ ज्ञान स्वभाव वाले आत्मा को जो अधिक रति हो रही है वह आत्मासे अतिरिक्त किसी अन्य कारणपूर्वक है क्योंकि विशिष्ट रति होनेसे आत्मा तो स्वपरको जान लेवे ऐसा एक समान स्वभाव वाला है ऐसा इसमे ज्ञानस्वभाव है कि जिस स्वभावके कारण यह समस्त लोकालोक को, समस्त स्वपर प्रमेयको एक साथ स्पष्ट जान सकता है। ऐसा ज्ञानस्वभावी होकर भी इस आत्माको जो जन्ममे, विषयमे, शरीरमे रुचि हो रही है तो यह रुचि आत्माके सिवाय अन्य कोई लगा हुआ है साथमे तब हो रही है। केवल आत्मा होता तो खुद ही स्वय अपनेमें कोई विरुद्ध कार्योंको उत्पन्न न करेगा।

आवरण अर्थात् अन्य सम्पर्ककी सिद्धिमे उदाहरण—जैसे किसी पुरुषमे किसी कमनीय कुल-कामिनीकी अधिक रति है तो कह सकेंगे उसे कि यह खोटे कार्यों मे अधिक अभिरुचि रखती है सो किसी तन्त्र औषधि मोह कर्म आदि जनित है। इस ससारी प्राणीमे ऐसा मोहका उदय है जो बडा विचित्र नजर आता है। यह मोह निन्दनीय है। ऐसा मोह आत्मामे जब कोई अन्य चीज साथ लगी हुई है तब हो रहा है केवल आत्मतत्त्व ही होता तो इतना मोहका उदय न होता। जैसे कोई शराबका उपयोग करले और उन्मत्त हो जाय तो अपने ही घरमे रहते हुए जैसे बेहोशी होजाती है तो अपने ही घरमे रहते हुए उस पुरुषको बेहोशी हुई, क्योंकि उसने शराबका उपयोग किया, किसी विरुद्ध दूसरी चीजका सम्बन्ध किया। तो इसी प्रकार यहाँ भी जो नाना मोह होते हैं, खोटे रागद्वेष चलते हैं ये कर्म पूवक हैं। ये कर्म हैं आवरण। नाम उसका चाहे कुछ भी रख लो, पर यह तो मानना ही पडेगा कि आत्माके साथ कोई दूसरी चीज लगी हुई है जिससे यह आत्मा विषम विचित्र नाना परिणतियोमे चल रहा है। पापकी गतियाँ और स्थितिया बहुत बहुत विषम हुआ करती हैं। कितने ही लोग पशु-पक्षियोकी रात-दिन हिंसा ही किया करते हैं, उनको इसमे ही शौक है और इस हीसे वे अपनी आजीविका और रक्षा मानते हैं। किसी किसीके झूठ बोलनेकी ऐसी आदत पडी है कि उन्हे बिना झूठ बोले चैन ही नही पडता है। इसी प्रकार चोरी व कुशील आदिक खोटे कामोमे बहुतसे लोग लगा करते हैं उनका उसमे अपमान हो जाय तो भी अपमान नहीं गिनते। इस प्रकारके खोटे कामोमे जो यह आत्मा लग रहा है तो क्या अपने स्वभावसे लग रहा है? नहीं। इस आत्माके साथ किसी दूसरी चीजका सम्बन्ध है, बन्धन है, जिससे यह आत्मा इन खोटे कार्योंमें लग रहा है, यह विपरीत चीज क्या है? वह है कर्म।

कर्म नामका मर्म—देखो भैया! इस आवरणका नाम कर्म ही क्यो रखा

गया। वैसे बहुतसे नाम लोकमे प्रसिद्ध हैं कोई तकदीर कहते कोई भाग्य कहते, पर जैन शासनमे इस आवरणका नाम कर्म रखा गया है। इस कर्म शब्दमे एक मर्म विदित होता है--कर्मका अर्थ है क्रियते इति कर्म' जो किया जाय उसे कर्म कहते हैं। अब आत्माके द्वारा किया क्या जाता है? आत्माका कर्म क्या है? जो आत्माके द्वारा किया जाय उसको कर्म कहते है। आत्माके द्वारा आत्माका भाव किया जा सकता है। मोह रागद्वेष विषय कषाय ये सारे भाव अशुद्ध दशामे किए जा सकते हैं। तो कर्म नाम तो इनका है। जो रागद्वेष आदिक परिणतिया बनती हैं वे ही आत्माके द्वारा की गई हैं। उनका नाम कर्म है। ऐसे कर्मका निमित्त पाकर जिस अन्य विपरीत वस्तुका बन्धन होता है उसका भी नाम कर्म रखा गया है। तो इन पौद्गलिक कर्मो का आत्माके साथ निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है यह कर्म शब्दसे ही सूचित है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि आत्माके साथ कर्मका बन्धन है। और उस कर्मके आवरण का क्षय होनेपर शिथिल होनेपर यह प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है।

कर्मके आवरणत्वकी सिद्धि-- अब इतनी बात सुनकर शंकाकार यह कह रहा है कि आपके इस कथनसे तो यह बात सिद्ध हुई कि कर्म कुछ है पर यह तो सिद्ध नही हो सका कि इस कर्मका ज्ञानपर आवरण भी हुआ करता है। तो कर्मने आवरणकी सिद्धिका प्रमाण बतलावो तो समाधान देते है कि देखो जो ज्ञान अपने विषय मे न लग रहा हो तो उसे आवरण कहा जायगा। जैसे जिसके कामला रोग हो गया है उसको अपने नेत्रसे एक चन्द्रमाका ज्ञान नही होता। नेत्रका काम है— एक चन्द्र है तो उसको ही जान ले, मगर कामला रोग वालेको तो अनेक चन्द्र दिखते हैं। तो जिस नेत्रका काम था कि जैसा है तैसा जाने। और न जान सके तो समझना चाहिए कि उस नेत्र पर कोई आवरण है। वह है कामला रोगका आवरण ऐसे ही ज्ञानका विषय है समस्त लोकालोकको जानना। जब यह ज्ञान समस्त लोकालोकको नही जान पा रहा तो सिद्ध है कि हमपर कोई आवरण है। और, वह आवरण है कर्मका।

व्यवहारी जीवमे तीन पदार्थोंका मेल-- स समय जो हम आप लोग हैं, और भी ससारी जीव हैं जो कुछ भी दिखता है, जिसे देखकर हम जीव कहते हैं, यह पिण्ड तीन चीजोका समूह है जीव, कर्म और शरीर। इनमे जीव तो अमूर्त है। है, ज्ञानानन्द स्वभावी है। इसके साथ कर्म लगा है जो सूक्ष्म है। कर्म इतना सूक्ष्म कि जीव जब भव छोडकर अन्य भवमे जाता है तो शरीर तो यही रह जाता है, पर अपने कर्मोको साथ लेकर चलता है परलोकमे। जन्म चाहे जहां हो, चाहे कितने ही पहाड, भीट नगर आदिक रास्तेमे कुछ भी पडते हो पर जीव उन सबमेसे पार होता हुआ चला जाता है। उसके साथ ये कर्म भी पार होकर चले जाते है। किसी से भिड़ते नही हैं, इनका प्रतिघात नही होता। कर्म इतने सूक्ष्म हैं। तो जीव है और

इसके साथ कर्म लगा है और यह शरीर तो सामने दिखता ही है। जीव अमूर्त है वह नहीं दिखता, कर्म सूक्ष्म हैं वे नहीं दिखते। शरीर देखनेमें आता है। लेकिन यह शरीर ऐसा बन कैसे गया। कोई वैज्ञानिक भला ऐसे शरीरको बनाकर तो दिखाये जैसे कि हम आप पशु पक्षी आदिक हैं, जानते हैं, हरकत करते हैं, जैसी हम बात करते हैं उस तरहकी क्रिया करने वाला कोई शरीरको बना तो दे। शरीर बनानेकी बात तो दूर रहो, शरीरधारीके जैसे ये मलमूत्र आदिक निकलते हैं इस प्रकारकी ही चीज बनाकर दिखा दें नहीं बना सकते। तो यह शरीर इस तरह कैसे बन गया? इसमें जीव और कर्मका सम्बन्ध है और उस निमित्तसे यह शरीर इस प्रकारके रूपको अंगीकार कर गया। तो इसके साथ ये तीन बातें लगी हुई हैं—जीव कर्म, और शरीर।

अकेले जीवमें व्यावहारिकताका अभाव—कोई मजाकिया पुरुष किसीसे कहे कि भाई आपका हमारे यहां कल निमंत्रण है और देखिये हमारी स्थिति खराब है, आप अकेले ही आना ज्यादा लोगोंके लिए हमारे पास गुंजाइस नहीं है और आप स्वयं आ जाना, ११ बजे का समय है, आप अपने आप बरोक टोक आ जाना। वह मित्र दूसरे दिन पहुंच गया अपनी मित्रता निभाने। तो वह कहता है—वाह जी वाह, हमने तो कहा था कि आप अकेले आना। '' अरे अकेला ही तो आया हूं। ''' अरे कहां अकेले आये हो? इतना बडा शरीर साथमें लादकर लाये हो, इतने कर्म लादकर लाये हो, हमने तो आपको अकेला ही बुलाया था। अरे तो वह अकेला कैसे आये, यदि अकेला होता तो इसके निमंत्रण देनेकी जरूरत ही न थी। वह तो प्रभु था, अनन्त आनन्दमय था।

कर्मकी अतिसूक्ष्मता व शरीरसे अनन्त गुणे परमाणुवोंकी स्कन्धता—यह जो वर्तमान पिण्ड स्थित है यह जीव कर्म और शरीर इन तीनका समूह है। इसमें जीव तो एक है और शरीर परमाणु अनन्त हैं। और उनसे भी अनन्त गुने परमाणु हैं कर्मके। देखिये—शरीर तो स्थूल है। वजनदार है, बडा जोर लग रहा है—इसे उठाये, फेंके धरे। इतना बडा पिण्ड होकर भी इस शरीरके परमाणुवोंसे कर्मके परमाणु अनन्त गुने हैं। समझ लीजिये—आपके साथ जिन कर्मोंका बन्धन लगा हुआ है उन कर्मोंमें कितने परमाणु हैं, वे शरीरसे भी अनन्तगुने परमाणु हैं, लेकिन हैं वे इतने सूक्ष्म कि एक भव छोडनेके बाद जिस भवमें भी यह जीव जाये वहां यह अनन्तानन्त कर्म परमाणुवोंका पिण्ड भी वज्रादिकको कुछ भी ठोकर न पहुँचाकर, आघात न पहुंचाकर वहांसे भी निकल जाता है। तो इतने कर्मोंका इस जीवपर बंधन है और वे कर्म आवरण हैं। आवरण तो यों सिद्ध होता है कि जब हम अपने ज्ञानमें कुशल नहीं हो पाते, हम सबको नहीं जान पाते तो सिद्ध होता है कि कुछ आवरण हम पर लगा हुआ है।

ज्ञानकी अशेषविषयताके सद्भावमें शङ्का—इतनी बात सुनकर शङ्काकार कहता है कि चलो कर्म मानले, पर पहिले यह तो बतावो कि क्या ज्ञानमे इतनी सामर्थ्य है कि वह समस्त पदार्थोंको जान सकता है। ज्ञानमे जब समस्त पदार्थोंके जाननेकी कला ही नही है तो इतना कष्ट क्यों करते हो कि इनसे साथ कर्म लगा, आवरण लगा। उसका विनाश होगा तो स्पष्ट मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होगा। इतनी बढ बढकर बाते सिद्ध करनेका श्रम क्यो करते हो। पहिले यह सिद्ध करें कि ज्ञान समस्त पदार्थोंका विषय किया करता है, सर्वका जाननहार है ज्ञान। इस अशेषज्ञता का हेतु कैसे सिद्ध करोगे ? यदि यह कहोगे कि आवरणके विघटनेपर समस्त पदार्थों को ज्ञान जानता है, इससे ज्ञानकी सर्वज्ञता सिद्ध होती है तो शंकाकार कह रहा है कि इसमे अन्योन्याश्रय दोष है। पहिले जब यह सिद्ध कर लिया जाय कि ज्ञान सबका जाननहार है तब तो यह सिद्ध होगा कि आवरण दूर होनेपर वह सबको जानता है। और जब पहिले यह सिद्ध हो ले कि आवरण दूर होनेपर ज्ञानका पूर्ण प्रकाश होता है तब यह सिद्ध होगा कि ज्ञान समस्त विषयोंको जानता है। इससे तो यह बात सिद्ध नही होती कि ज्ञान समस्त लोकालोकका जाननहार है। ऐसी शका होने पर आचार्यदेव उत्तर देते कि ज्ञान किस प्रकार समस्त पदार्थोंको जानता है।

ज्ञानकी अशेषविषयताके सम्बन्धमे शङ्काका समाधान—शङ्काकार ने जो यह शङ्का रखी है कि ज्ञान समस्त पदार्थोंका जानने वाला कैसे है, ज्ञान समस्त पदार्थोंको नही जान सकता ? उसके समाधानमे आचार्यदेव कहते हैं कि जिस शङ्काकारने यह शका रखी है वह ज्ञानकी अशेषविषयता न माने पर अनुमान प्रमाणको भी सिद्ध नही करता। अनुमान प्रमाण बनानेके लिये व्याप्तिका ज्ञान करना पडता है। जैसे इस पर्वतमे अग्नि है धुवा होनेसे। यह तो हुआ अनुमान। अनुमान सिद्ध तब हो सके जब यह ज्ञान सही बन जायगा कि जहा जहा धुवा होता है वहा वहा अग्नि होती है। इस प्रकारकी व्याप्तिका ज्ञान पहिले उसका बनेगा तब वह अनुमान बना सकेगा। तो जो अनुमान प्रमाणको चाहता है ऐसे शङ्काकारने भी समस्त आवरणोंकी विकलता से पहिले समस्त प्राणिमात्रका अशेष विषयक व्याप्तिज्ञान मानना ही पडा। अनुमान से तो इस पर्वतमे अग्नि है, धुवा होनेसे यो एक जगह उसकी दृष्टि बनाली। व्याप्ति ज्ञानमे तो जहा जहा धुवा है वहा वहा अग्नि है। इस तरह सब जगतमे धुवा और अग्निका उसे ज्ञान करना पडा। लेकिन यह व्याप्तिका ज्ञान अस्पष्ट ज्ञान है। वहा अस्पष्ट ज्ञान इस पर्वतमे स्पष्ट बन जाता है। जाकर देखा—तो यह अग्नि है, यह धुवा है। तो इससे यह सिद्ध है कि जो जिस अपने विषयमे अस्पष्ट ज्ञान है वह नियम मे आवरणसहित है। जैसे जब कभी कुछ छाया हो या बडी तेज हवासे धूल उडी हो तो उस तेज धूलसे दूरके वृक्ष अस्पष्ट दिखते हैं और कुहरामे भी दूरके वृक्ष अस्पष्ट दिखते हैं—तो क्या है वहा आवरण है कुहराका या धूलका। जब वह आवरण दूर हो जाता है तो वृक्षोका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। अनुमान ज्ञान और व्याप्तिज्ञानमे

भी यही बात है।

ज्ञानकी अशेष विषमताकी सिद्धिमे एक सैद्धान्तिक उदाहरण – व्य प्तिज्ञान तो अस्पष्ट है उसने जैसे यह बोध किया कि जितने भी सत् हैं वे सब अनेकान्तात्मक हैं तो व्याप्तिमे और अनुमानसे जो जाना गया वह अशेषविषयक अस्पष्ट ज्ञान है, पर हुआ तो है ज्ञान। हम आप सबको अंदाजा तो है कि जगतमे जितने पदार्थ होते हैं वे सब अनेकान्तात्मक होते हैं। तो हमारा यह अस्पष्ट ज्ञान है, हम सारे पदार्थोंको स्पष्ट नहीं जान रहे, सबकी उनकी अनेकान्तात्मकताको प्रभुकी तरह हम स्पष्ट नही जान सकते लेकिन अस्पष्ट ही सही जो ज्ञान अपने विषयमे अस्पष्ट है वह किसी जगह स्पष्ट भी होता है। तो प्रभुमे वह स्पष्ट है। अथवा मिथ्या दृष्टि जीवोमे इन समस्त अनेकान्तात्मकोके प्रति विपरीत ज्ञान लगा हुआ है। पदार्थ हैं अनन्तधर्मात्मक और एकान्तवादी मानते हैं कि पदार्थ अमुक धर्म क्त ही है तो वह ज्ञान सावरण है क्योंकि मिथ्याज्ञान होनेसे। जैसे कोई पुरुष धतूरा आदिक रसोका पान करले तो मिट्टीका भी टुकडा हो तो उसे सोनेके टुकडेकी तरह मालूम होता है। उसमे उसे सर्वत्र पीला नजर आता है, तो उसका वह ज्ञान आवरण सहित है। इससे यह बात सिद्ध है कि आवरण पौद्गलिक कर्म हैं।

मुख्य प्रत्यक्षसे सम्बन्धित चार बातोपर प्रकाश –इस प्रकरणके मूलमें चार बातें सिद्ध की जा रही हैं। मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, वह सम्पूर्ण रूपसे स्पष्ट होता है। मुख्य प्रत्यक्षमे तीन ज्ञान आते है अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवल ज्ञान। फिर भी मुख्यतासे यहाँ केवलज्ञानपर दृष्टि देना है। मुख्य प्रत्यक्षज्ञान सम्पूर्ण रूपसे स्पष्ट होता है और वह अतीन्द्रिय होता है। इन्द्रिय मनकी अपेक्षा न रखकर अपने विषयमे प्रवृत्त होता है। तीसरी बात है– वह निरावरण होता है। उस ज्ञान का जो आवरण था, वह समस्त आवरण हट चुका। चौथी बात यह बतायी गई है कि आवरणका हटना सामग्री विशेषके द्वारा होता है। वह सामग्री विशेष है अन्तरङ्ग मे तो सम्यग्ज्ञान आदिक भाव और बहिरङ्गमें योग्य द्रव्य क्षेत्र आदिक। इस प्रकार इस प्रकरणमें चार बातोको युक्तियोसे सिद्ध किया जा रहा है। आगममे लिखा है सो मान लें इसकी कोई प्रतिष्ठा नही है न्यायविषयमे, क्योंकि आगमवादी अपने लिए मान लें दूसरोको तो मना नही सकते। तो इन चार बातोकी सिद्धि करते हुएमे इस प्रकरणमे यह सिद्ध किया गया है कि ज्ञानका आवरण करने वाला कर्म है और वह पौद्गलिक है।

अविद्याके ही आवरणत्वका एक प्रश्न कर्मोंकी पौद्गलिकता सिद्ध करने की बातका जब कोई उत्तर न मिला, इसका निराकरण नहीं किया जा सकता तो शङ्काकार यह कहता है कि पौद्गलिक कर्म आवरण नही है, आवरण तो आत्मापर अवश्य है किन्तु अविद्याका आवरण है। पौद्गलिक कर्मोंका आवरण नही है आत्मा

पर,-क्योंकि पौदगलिक कर्म है मूर्तिक, और मूर्तिक पदार्थोंसे अमूर्त ज्ञान आदिकका आवरण सम्भव है नही। यदि मूर्तिकके द्वारा अमूर्तिकका आवरण होने लगे तो ज्ञानके आवरण करने वाले शरीर आदिक है इसको मान लीजिए। फिर पौद्गलिक कर्मोंके सोचनेकी जरूरत क्या है? जो सोचा जा रहा है वह दिखता नही है फिर भी उसके सिद्ध करनेका प्रयास किया जाता है। अरे शरीर तो स्पष्ट दिखता है और मूर्तिक से तुम अमूर्त पदार्थका आवरण करने वाला मानते। तो शरीरको ही आवरण मान लो अगर मूर्तको ही आवरण माना है तो। अन्यथा हमारी अर्थापत्तिसे तो मूर्तिक पदार्थ अमूर्तिक ज्ञान आदिकका आवरण नही कर सकते हैं इसलिए पौदगलिक कर्मों का आत्मापर आवरण नहीं है, किन्तु अविद्या ही एक आवरण है। इस प्रकार ब्रह्मा द्वैपवादीने अथवा ज्ञानाद्वैतवादीने यह शङ्का उपस्थित की। ऐसी शङ्का होना उनका स्वाभाविक है क्योंकि जब एक ब्रह्म ही तत्त्व है, अन्य कुछ है ही नही तो ब्रह्मसे विपरीत मान ही कैसे लिया जायगा ? अविद्या एक भ्रमरूप मान ली जायगी और आवरण समझा जायगा। यही आपत्ति ज्ञानाद्वैतवादीको हो ती है। तो इन दोनो सिद्धान्तोंने यह शङ्का रखी कि ज्ञानपर आवरण केवल अविद्या ही है, पौद्गलिक कर्म नही है।

अविद्या ही ज्ञानका आवरण है इस शङ्काका समाधान—आत्मापर अविद्या ही आवरण है इस शंकाका उत्तर आचार्यदेव देते है। यह कथन युक्त नही होता। मूर्तिकसे अमूर्तिकके आवरणके हम बिलकुल साफ तौरसे अनेक दृष्टान्त प्राप्त करते है जैसे मदिरा पीने वाले लोग पीते तो है मदिरा जो कि मूर्तिक है लेकिन उस मूर्तिक पदार्थका सम्बन्ध होनेसे उनका ज्ञान बेहोश हो जाता है तो मूर्तिक मदिराके द्वारा अमूर्तिक ज्ञानका आवरण हुआ ना। और अमूर्तिक ज्ञानका आवरण मूर्तिकको ही मानना पडेगा। यदि अमूर्तिक ज्ञानका आवरण अमूर्तिक चीजको मान लोगे तो आकाश भी आत्माके ज्ञानके लिए आवरण बन जाय। अतः अमूर्तका अमूर्तपर आवरण हो नहीं सकता। कोई अमूर्तसे विपरीत ही चीज हो तिसका आवरण है। यदि यह कहो कि आत्मा अमूर्त है, रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहित है और आकाश भी अमूर्त है। उसमे भी रूप— आदिक नही हैं, तो चू कि वह आत्मासे अविरुद्ध है, विपरीत नही है इस जातिकी अपेक्षासे याने ज्ञान भी अमूर्तिक है और आकाश भी अमूर्तिक है तो अविरुद्ध होनेके कारण, एक जातिक होनेके कारण आकाशसे ज्ञानका आवरण नहीं बनता ? तो कहते है कि यही बात तो हमें इष्ट है। अमूर्तिक आत्मा है तो उस का आवरण उसके विरुद्ध कोई मूर्तिक पदार्थ ही बनेगा।

अमूर्तिकका मूर्तिकसे ही आवरणकी किसी पद्धतिसे सभवता— अब शङ्काकार यहाँ यह कहता है कि देखो ! प्रवाहरूपसे यह ज्ञानादिक जो चल रहा वे उसका जो निरोध है वह अविद्याके उदयसे ही तो है। ज्ञान प्रवाहरूपसे चला जा सकता था और जितना भी चल रहा है उसका अज्ञानके उदयसे निरोध है। अज्ञान है

अविद्या है तो ज्ञानका विकास नहीं हो पाता। इस कारण अविद्या ही ज्ञानका आवरण है पौद्गलिक कर्म नहीं हैं। तो कहते हैं कि इस तरह यह भी कहा जा सकता है कि प्रवाहरूपसे चल सकने वाले ज्ञानमे पौद्गलिक कर्मोंका उदय होनेसे निरोध हुआ है इसलिए ज्ञानका विरोधक आवरण करने वाला कर्म ही हो सकता है। अविद्या ही आवरण है, ऐसा कहने वाले शङ्काकारके प्रति आचार्यदेव यह सिद्ध कर रहे हैं कि नहीं पौद्गलिक कर्म ही वास्तवमे इसके आवरक हैं। यद्यपि निश्चय दृष्टिमे आत्माका ही कोई परिणाम आत्माके किसी परिणामका विरोधक है और साधक है अज्ञानका उदय हुआ, भ्रम आया तो ज्ञान न रहा तो निश्चय दृष्टिमे तो ज्ञानका आवरण अविद्या है लेकिन ज्ञानका कारण यह अविद्या हो कैसे गयी ? और, ऐसा आवरण इस जीवमें निरन्तर क्यों न बना रहेगा, अथवा ऐसा ही यह आवरण होना आत्माका स्वरूप क्यो न हो बैठेगा ? इस प्रश्नका समाधान तब तक नहीं हो सकता है जब तक अमूर्तिक आत्मासे विरुद्ध मूर्तिक किसी कर्मका आवरण न माना जाय। इसीको सिद्ध करते हैं कि आत्मामें जो विपरीत ज्ञान होता है वह ज्ञान पुद्गल विशेषके सम्बन्धके कारण होता है क्योंकि आत्माके स्वरूपके विपरीत यह विकास है। जैसे मदिरा आदिकके पान करनेमे जिसके बेहोशी हुई है तो उसकी यह बेहोशी किसी अन्य पदार्थके कारण से हुई है, इसी प्रकार आत्मामे जो रागद्वेषादिक होते हैं, जो ज्ञानका निरोध होता है विपरीत ज्ञान होता है वे सब पौद्गलिक कर्मके निबंधक हैं, उसके निमित्त हैं, इस प्रकार ज्ञानपर आवरण छाया है पौद्गलिक कर्मोंका यह बात सिद्ध होती है।

अज्ञानपरम्परामे भी पौद्गलिक कर्मकी आवरणताकी सिद्धि—यहाँ शङ्काकार एक युक्ति तलास कर कह रहा है कि मिथ्याज्ञानोकी परम्परा जब चल रही है तो अन्य जो मिथ्याज्ञान उत्पन्न हुए हैं वे तो मिथ्या ज्ञानपूर्वक हैं ना, उन मिथ्या ज्ञानोका कारण तो मिथ्याज्ञान हुआ ना, तो यह बात गलत रही कि मिथ्याज्ञान, पौद्गलिक कर्मोंके कारण होता है। उत्तरमें कहते हैं कि जैसे कोई आदमी शराब पीता है और मानो उसका नशा आधा घंटा तक रहता है उसने फिर १५–२० मिनट बाद शराब पी लिया फिर और नशा बढ गया, फिर और शराब १५ २० मिनट बादमें पी लिया फिर और नशा बढ गया तो उन नशोकी परम्परा जो बढी तो क्या उसमें यह कहा जायगा कि अब यह नशा पहिलेके नशाके कारण हुआ है ? यद्यपि आध २ घंटे तक ही नशा चल सकता था लेकिन २ घंटे तक चलता रहा पर उत्तरोत्तर जितने नशा बन रहे हैं वे पूर्व नशाके कारण नहीं बन रहे हैं, किन्तु बीच बीच जो मदिरा पी रहा है उस मदिराके कारण वे नशा बन रहे हैं। इसी प्रकार कहीं मिथ्याज्ञान लगातार चलता रहता है तो उसके लगातार मिथ्याज्ञानके कारण भूत कर्मोंका उदय भी चल रहा है। ऐसा नहीं है कि उसका मिथ्याज्ञान पूर्व मिथ्याज्ञानके कारण हो रहा है। वहाँ कर्मोदयके कारण नहीं है। जितनी भी आत्माकी विपरीत दशायें हैं वे सब पौद्गलिक कर्मोंके उदयके कारण हैं।

स्वभावविरुद्ध कार्योकी विरुद्ध कारणसे ही सभवता— हम आप सब किसी सकुचित दायरमें अपनी जानकारी करें आनन्द भोगे, प्रीति करे आदिक जो हमारे परिणमन चलते है वे सव परिणमन स्वभाव नही हैं, पर थोडा मा ही जाने यह उसका स्वभाव नही है। हम किसी एक जीवपर राग करे यह हमारा स्वभाव नही है, या अनेकपर करें, स्वभावके विरुद्ध जितने भी कार्य हो रहे है जितना भी हमारा यह विषैला वातावरण चल रहा है निश्चय दृष्टिसे तो हमारी परम्परा पूर्वके भावोके कारण चल रही है, लेकिन विना किसी अन्य पदार्थके सम्बन्ध हुए यह परम्परा ही नही बन सकती, तो मानना होगा कि जीवके साथ ज्ञानावरण कर्म लगा है, उस ज्ञानावरण कर्मका जब क्षय होता है तो आत्मा मे वह अशेष पदार्थोको जानने वाला मुख्य प्रत्यक्ष प्रकट होता है। तो इस प्रकार ये चारो बाते यथार्थ हैं कि यदि रत्नत्रय आदिक भावोके कारण आवरणका वियोग होता है और जब यह ज्ञान निरावरण होता है और यह ज्ञान इन्द्रिय मनकी अपेक्षासे उत्पन्न नही होता है, स्वय ही अपने आत्मासे प्रकट होता है और तीन लोक तीन कालवर्ती जितने भी सत् हैं उन समस्त सतोका जाननहार होता है।

ग्रन्थके ज्ञान प्रमाणके स्वरूपका आधार— इस ग्रन्थमे प्रमाणकी सिद्धि की गई है, सारा व्याख्यान प्रथम सूत्रपर आधारित है। ज्ञानका लक्षण बताया है कि जो खुदका और परपदार्थोका निश्चय कराये उस ज्ञानका नाम प्रमाण है। यहाँ खुद का नाम आत्मा नही है किन्तु ज्ञान स्वय अपने उस ज्ञानको जानता है कि यह सही है और उस ज्ञानमे जो बाहरी पदार्थ जाने गए हैं उन्हें भी समझता है कि यह पदार्थ यही है। जो भी मनुष्य किसी पदार्थका सही निर्णय मानता है— जैसे कि यह चौकी ही है, यह बिल्कुल ठीक ज्ञान हो रहा है ऐसी जो चौकीके ज्ञानकी ठीकताई कबूल करे उसने अपने अन्तरङ्गमे यह भी कबूल कर लिया है कि चौकीका जो यह ज्ञान हो रहा है यह ज्ञान बिल्कुल सही है। ज्ञानके स्वरूपका सहीपन जाने विना पदार्थ भी सही है यह नही समझा जा सकता। इस कारण ज्ञानमे यह कला है, उसका यह स्वरूप है कि वह अपनेको और पदार्थोको जाने। इस लक्षणपर बहुत सी शङ्काएँ उठीं, उनके उत्तर हुए अब यहाँ उस ज्ञानके भेद चल रहे हैं।

ज्ञानके भेद—ज्ञान दो प्रकारका होता है प्रत्यक्ष और परोक्ष। दार्शनिक दृष्टिसे भेद किए जा रहे हैं। प्रत्यक्षके दो भेद हैं— एक साव्यवहारिक प्रत्यक्ष और दूसरा मुख्य प्रत्यक्ष। हम इन्द्रियके द्वारा जो कुछ जानते है सही, तुरन्त, वे सब साव्यवहारिक प्रत्यक्ष हैं। जिसे सिद्धान्तमे उत्पत्ति आदिककी अपेक्षा देखकर परोक्ष कहा गया है और जो वस्तुत तो परोक्ष है पर एकदेश निर्मल है वह ज्ञान कारणसे प्रत्यक्ष माना गया है। दूसरा है मुख्य प्रत्यक्षमे अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान आये। तो उस मुख्य प्रत्यक्षकी यहा चर्चा की जा रही है, वे कैसे उत्पन्न होते है, उन

का कैसा स्वरूप है। इस प्रकरणमे यह भी जानियेगा कि आत्मामे ये ५ ज्ञान हुए—मतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन.पर्ययज्ञान और केवलज्ञान। जिसमे मतिज्ञानका भेद मति जो एकदेश विशद हो रहा है जिसे मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता आदिक इनमेसे केवल मतिका हिस्सा कहते हैं वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। यद्यपि मतिज्ञान ये सब कहलाते हैं मति, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और स्वार्थानुमान, लेकिन इनमे जो मति है अर्थात् इन्द्रियके द्वारा जो साक्षात् तुरन्त जाना गया है वह एकदेश विशद है इस कारण उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

विकासोका भूतार्थ पद्धतिसे अवगम करनेका प्रभाव—आत्मामे ये ५ ज्ञान पर्यायें जिस ज्ञानकी हो रही हैं, जिस ज्ञान स्वभावसे उत्पन्न होती हैं उस ज्ञान स्वभावपर दृष्टि दे तो वह ज्ञानस्वभाव एकरूप है, जो मेरा स्वरूप है वही है और जो इस ज्ञानस्वभावकी ये परिणतियाँ ५ रूपोमें हुई हैं। हम किसी भी पदार्थको पर्यायको निरखनेकी यदि ऐसी पद्धति बना लेते हैं कि देखो ! यह पर्याय है ना, यह पर्याय इस आधारसे प्रकट हुई है, इसे कहते हैं भूतार्थपद्धति। अभूतार्थपद्धतिमे निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धका निर्णय है और भूतार्थपद्धतिमे उस ही द्रव्यसे उसकी वह पर्याय उत्पन्न हुई है, तो ये पाचों ज्ञान जिस ज्ञानस्वभावसे उत्पन्न हुए हैं वहा हम यह निरखें कि लो यह ज्ञानपर्याय इस ज्ञानस्वभावसे प्रकट हुई है, तो यह पद्धति हमारी एक भूतार्थकी पद्धति होगी और इसमे विकल्प शान्त होंगे और एक आधारभूत ध्रुव तत्त्व हमारी दृष्टिमे रहेगा। इसका प्रभाव मोक्षमार्गके अनुकूल बनता है, इसी कारण कुतत्त्वको और सुतत्त्वको आस्रवबंध भावोको सम्वर निर्जरा मोक्ष भावोको एक भूतार्थपद्धतिसे निरखनेके लिए उपदेश किया गया है। निर्णय तो होगा समस्त नयोंसे, अभूतार्थसे किस तरह है, भूतार्थसे किस तरह है, परस्परका क्या सम्बन्ध है, ये सब निर्णय चलेंगे लेकिन साधनाके प्रसङ्गमे हमे उन सब पर्यायोको इस पद्धतिसे निरखना होगा कि लो यह परिणति है और यह परिणति इस उपादानसे हुई है। इस ध्रुव पदार्थसे हुई है, यह उसका आधार है और इसमे ही उस समयका यह उस प्रकारका विकास है। इस तरह हम विकासको उपादान कारणसे उद्भूत हुआ निरखेंगे तो हमारी दृष्टि बहुत विकल्पोंसे दूर होगी और वहाँ हम ध्रुव स्वभावका परिचय पा करके एक विशुद्ध आनन्दका अनुभव कर सकेंगे।

कर्मको आत्माका गुण माननेवालेकी शङ्का— अब तक यह सिद्ध किया गया है कि ज्ञानमें समस्त त्रिकाल त्रिलोकवर्ती पदार्थोंके जाननेकी सामर्थ्य है, किन्तु उस पर पौद्गलिक कर्मोंका आवरण है जिसके कारण यह ज्ञान समस्त विश्वका ज्ञान नहीं कर पाता। फिर भी जिन भव्य जीवोंके सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका बल प्रकट हुआ है वह अपने इस रत्नत्रय धर्मके प्रसादसे आवरणोंका क्षय कर देता है तो यह ज्ञान निरावरण समस्त विश्वका जाननहार हो जाता है। इसपर एक शङ्काकार यह कह रहा है

कि कर्म तो आत्माका गुण है उसे पौद्गलिक कैसे कहते हो? सुख दुःख इच्छा रागद्वेष प्रयत्न धर्म अधर्म संस्कार इनको आत्माका गुण माना है और ये आत्मा के गुण नष्ट हो जाते हैं तब मोक्ष होता है। इस सिद्धान्तके अनुसार धर्म और अधर्म ये कर्म कहलाते हैं। तो ये कर्म आत्माके गुण हैं न कि पौद्गलिक। शङ्काकार ऐसी शङ्का कर रहा है।

कर्मको आत्मगुण माननेपर कर्ममे आत्माकी परतन्त्रताकी अकारणताका प्रसग—समाधान देते हैं कि कर्म आत्माकी परतन्त्रतामे कारण नहीं बन सकता क्योंकि आत्माका ही गुण यदि आत्माकी परतन्त्रताका कारण बन जाय तो फिर सभी समय परतन्त्रता रहनी चाहिए। कभी उसकी मुक्ति हो ही नही सकती। जो गुण जिस पदार्थका है वह गुण उस पदार्थकी परतन्त्रताका कारण नही बनता। जैसे पृथ्वीमे रूप गुण है तो क्या रूप गुण पृथ्वीकी परतन्त्रताका कारण है? सभी पदार्थों मे निरख लो —जिस पदार्थका जो गुण है वह गुण उस पदार्थकी परतन्त्रताका कारण नही बन सकता है। यदि कर्म आत्माका गुण मान लोगे, चाहे वह धर्म अधर्म ही है, पर आत्माका गुण है तो आत्माकी परतन्त्रता नही बन सकती है। इससे कर्म पौद्गलिक ही हैं, आत्माके गुणरूप नही हैं। जो इस सिद्धान्तने माना है कि धर्म और अधर्म नामका गुण है और धर्म अधर्मको छोडकर कुछ कर्म होता नहीं है। सो आत्मा का गुण है इस नातेसे फिर यह कर्म आत्माकी परतन्त्रताका कारण नही हो सकता। पर, ऐसा है तो नहीं कि आत्मा परतन्त्र न हो।

आत्माके पारतन्त्र्यकी सिद्धि आत्मा परतन्त्र है, इसकी प्रमाणसे सिद्धि है। क्या प्रमाण है कि आत्मा परतन्त्र है? तो इसका अनुमान ज्ञान सुनो। यह आत्मा परतन्त्र है क्योंकि यह हीन स्थानका परिग्रह रखता है। हीन स्थान क्या हुए? जन्म, जरा, मरण, रोग शोक आदिक। कोई उच्च बातें तो ये नही है, रागद्वेष विकार मोह ये सारे हीनस्थान हैं। इन हीन स्थानोंका परिग्रह चूंकि इसको लग रहा है इससे सिद्ध है कि यह आत्मा परतन्त्र है। जैसे कि जो पुरुष मद्यपायी गदी नालियोंमे गिर पडता है, अशुचि घरोमे गिरता है—चारुदत्त सेठको वेश्याने मोहित करके मदिरा पिलाकर बेहोश करके सडासमे पटक दिया था। इसी प्रकार जो मद्यपायी लोग हैं उनकी ऐसी हीन दशा होती है कि पडे रहते हैं, उनके ऊपर अथवा मुखमें कुत्ते भी मूत जाते है मगर उन्हें पता नही है, तो ऐसे हीन स्थानोंका परिग्रहण जब उस मद्यपायीके लग रहा है तो उससे स्पष्ट साबित है ना यह, कि यह परतन्त्र है मदिराके नशेसे। इसी तरह जब यह जीव लोक, ये ससारके प्राणी हीन स्थानोंमे हमे नजर आ रहे हैं, कैसे कैसे घृणित शरीरोमे ये बधे हुए हैं। वर्तमानके ही मनुष्यभव को ले लीजिए। यह मनुष्य शरीर कितना घिनावना है, जुखाम हो, अन्य विकार हो, कैसे कैसे घृणित रोग हो जाते हैं। और, अधिक न जावो तो जब पसीना निकल

बैठता है और शरीरमे चपचप होने लगता है तो वही नहीं सुहाता—न खुदको न दूसरोको तो ऐसे ही हीनस्थानका परिग्रह लग गया है जीवको तो उससे यह सिद्ध है कि आत्मा परतन्त्र है।

शरीरके हीनस्थानताकी सिद्धि—यह शरीर हीनस्थान है क्योकि शरीर आत्माके दुःखका कारण है। जैसे कारागार, जेलखाना वह हीनस्थान है या उच्चस्थान है ? हीनस्थान है, ऐसे ही यह शरीर हीनस्थान है सारे दुःख इस शरीरके कारण लगते हैं। क्षुधा तृषा आदिक रोग ये तो शरीरके कारण स्पष्ट हैं, पर नाम वरीके रोग भी शरीरके कारण हैं इस जीवने अपने प्राप्त शरीरके ढाँचेको माना कि यह मैं हू, तो अब इसकी अभिलाषा हुई कि मेरा नाम होना चाहिए। मेरेके मायने यहा उस सहज चैतन्य स्वरूपका नही यहा मेरेके मायने है यह शरीर। उस चैतन्य स्वरूपकी किसे खबर है ? अगर उसकी खबर हो तो नामवरीकी चाह भी नही रह सकती, क्योकि वह तो निर्विकल्प एक ज्ञानप्रकाश मात्र तत्त्व है। नामवरी होना चाहिए। किसकी ? जो शरीर मिला है ढाचा सकल सूरत मिली है, बस इसकी नाम वरी होना चाहिए। अब नामवरीकी आशामे कितने क्लेश सहने पड रहे हैं। कैसे ? गदे कलकित मलिन पुरुषोको भी प्रसन्न करनेका मनमे विकल्प करना पड रहा है कितना कठिन परिश्रम करना पडता है। आत्माके शुद्ध दर्शनसे भी हाथ धो देना पडता है। तो नामवरी फैलानेका रोग भी इस शरीरके कारण है। बडे छोटे कष्टो का नाम तो लो, कुछ भी नाम लो—परिवारमे नही बनती अथवा पुत्रादिकका क्लेश है, सुपूत कुपूतकी वेदना है तो यह क्यो हुआ अमुक रिस्तेदारने धोखा दिया है, अमुक का व्यवहार ठीक नही है, जितने भी दुःख हो रहे हों, मानसिक दुःख भी हो रहे हों, तो उन सबका कारण यह शरीर है। तो शरीर समस्त दुःखोका कारण है इस कारण शरीर हीनस्थान है।

पौद्गलिक कर्मकी निमित्त कारणरूपता—हीनस्थान परिग्रह वाले ये ससारी जीव हैं यह बात प्रसिद्ध ही है। अतएव आत्मा परतन्त्र हैं। इस परतन्त्रता का कारण कर्म हैं। कर्म पौद्गलिक हैं और उनकी परतन्त्रता है इस ससार अवस्थामें इसकी सिद्धिमे यह बात बताई गई है कि कर्म यदि आत्माकी जातिके होते, आत्माके गुण होते तो उनसे आत्मामें परतन्त्रता न आती। इससे सिद्ध है कि कर्म आत्माके गुण नहीं, आत्माके धर्म नही, किन्तु आत्माकी जातिसे विरुद्ध पौद्गलिक तत्त्व आत्मा की परतन्त्रताके कारण हैं। जब कभी निश्चय दृष्टिसे निरखा जाय तो यह ज्ञात होता है कि आत्माकी परतन्त्रताका कारण विषय और कषायके परिणाम हैं, किन्तु ये विषय कषायके परिणाम अहेतुक हैं या स्वय आये हैं ? कैसे आये हैं ? इसके समाधानमें पौद्गलिक कर्म मानना ही पडेगा। यद्यपि द्रव्य कर्मका द्रव्य क्षेत्र काल भाव कुछ भी आत्मामें नहीं पहुचता तथापि द्रव्यकर्मके उदयका निमित्त पाकर भावकर्म

हुए हैं। सो विषय कषाय भाव तो परतन्त्रतारूप है परतन्त्रता जीवकी भावकर्म है तो आखिर परतन्त्रताका कारण परवस्तु द्रव्यकर्म ठहरा। यो पौद्गलिक कर्मकी सिद्धि हो रही है। यह जीव परतन्त्र है यह सिद्ध करता है कि परतन्त्रताका कारणभूत कर्म है। परतन्त्रता स्पष्ट है कि यह जीव हीन-हीनस्थानोंमे रम रहा है, शरीर जन्म मरण ये सारे हीन ही तो हैं, विकल्प भी सब हीनस्थान है यह उन परिग्रहोमे लग रहा है इससे सिद्ध है कि जीव परतन्त्र है और उसका कारण पौद्गलिक कर्म है, जिस कर्मके क्षय होनेपर मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान प्रकट होता है यहा एक और शङ्का लेकर शङ्काकार कहता है कि यह कहना तो बिल्कुल सही नही जच रहा कि जीवको हीनस्थानका परिग्रह लग रहा है। देवगतिके जीव जिनका शरीर वैक्रियक है, सुभग है, निर्दोष है, रोगादिक नही है, ऐसे उत्तम शरीरमे देव रहत है तो वह हीनस्थान कैसे रहा ? उत्तर यह है कि वह शरीर भी हीनस्थान है क्योकि उसका भी मरण जब होता है तो मरण समयमे जो वेदना होती है उस वेदनाका कारण क्या है ? उस दुःखका हेतु है यह शरीर। तो जिस कारण यह परतन्त्र है जीव उस कारणसे सिद्ध होता है कि इसके साथ कोई विरुद्ध चीज लगी है और वह चीज है पौद्गलिक कर्म।

कषायोकी पारतन्त्र्यस्वरूपता व उसका निमित्तकारण - शङ्का—ये कर्म पौद्गलिक ही हैं यह कैसे जाने ? रहे आये कर्म आत्मासे भिन्न, पर ये पौद्गलिक ही हैं। इसकी सिद्धि किस प्रकार होगी ?

उत्तर— देखिये, कर्म पौद्गलिक ही हैं अन्यथा ये परतन्त्रताके कारण न बन सकते थे। जैसे हथकडी आदिक ये पौद्गलिक है और ये जीवकी परतन्त्रताके कारण हैं। शायद यह कहो कि क्रोध, मान, माया, लोभ, ये कषाये ये परतन्त्रताके कारण है पर मूर्त तो नही, पौद्गलिक तो नही। तो पौद्गलिक न होनेपर भी परतन्त्रताके कारण बन गए है ये विषय कषाय। तो यह बात कैसे सिद्ध होगी कि परतन्त्रताका कारण तो पौद्गलिक कर्म है। आचार्यदेव उत्तर देते हैं— और सुनिये कितना स्पष्ट भाव है उनका कि - क्रोधादिक परतन्त्रताके कारण नही हैं। किन्तु स्वय परतन्त्रता है। भावकर्म ये आत्माकी परतन्त्रताके कारण नही हैं कारणभूत नही है किन्तु क्रोधादिक स्वय परतन्त्रताएँ हैं और अब उन परतन्त्रतावोका कारण निहारो, वह है पौद्गलिक कर्म। क्रोधादिक परिणाम तो जीवकी परतन्त्रता है, परतन्त्रताका निमित्त देखिये पौद्गलिक कर्म।

अपनी चर्चा सुननेमें प्रमाद न करनेका अनुरोध—देखो भैया ! यह सब वर्णन चल रहा है अपने आपके जीवकी स्थितियोका। कठिन वर्णन नही है लेकिन कठिन मानकर पहिलेसे ही उपयोगको ढीला करदे और जहाँ संस्कार बसा है घरमे या अन्य जगह, वहाँ ही मनको फेंक दे लगादे, तब यह तत्त्व ग्रहणमे न आ सके तो उसकी औषधि तो आप ही कर सकेंगे। जिस ज्ञानमे इतनी सामर्थ्य है कि बडी सी

बड़ी समस्याओंको हल करले वह ज्ञान क्या अपने आत्माके विषयकी बातको इसकी समस्याको हल नहीं कर सकता। देखो आत्माका क्या तो स्वभाव है क्या बन बैठा है ? ये समस्यायें हल न की जा सकेंगी क्या ? जीवकी बात चल रही है। यह है ज्ञानस्वभावी। ज्ञानमें कोई सीमा नहीं होती। यह आत्मा कितना जाने, कहाँ तक जाने ? सीमा नहीं है। ऐसा अपार ज्ञानस्वभाव है यह प्रकट नहीं है तो इसका क्या कारण है ? यह बात कही जा रही है। यहाँ शङ्काकारकी यह बात निराकृत कर दी गई है कि कम तो आत्माका गुण है, धर्म आत्माका गुण नहीं है।

अदृष्टको प्रकृतिपरिणाम माननेकी आशङ्का—इतनी सिद्धिके पश्चात् अब एक सिद्धान्त कहता है कि बहुत ठीक कहा आपने कि कर्म (अदृष्ट) आत्माका गुण नहीं है क्योंकि वह तो प्रकृतिका परिणाम है, प्रधानका परिणमन है, पुण्य पाप जितने भी भाव हैं ये प्रकृतिके विकार हैं। शङ्काकारका आशय समझ लीजिए, इस सिद्धान्तके अनुसार यह निरखा गया है कि जीव तो स्वच्छ अबद्ध, चैतन्यस्वभाव मात्र है, अपरिणामी, अविकारी है। अब जितनी बलायें हैं बलायें क्या क्या ज्ञान लग बैठा। यह उस सिद्धान्तमें बला है क्योंकि उसका मतव्य है कि आत्मामें ज्ञान न लगा होता तो कोई कष्ट ही न था। हम जब कुछ जानते हैं,-आज भाई बीमार हो गया अमुक गिर गया, अमुक मर गया तो ज्ञानमें आया तब दुःख हुआ। ज्ञान न होता तो दुःखकी कोई बात ही न थी। तो ज्ञान भी ऐब है और रागद्वेष पुण्यपाप, अहङ्कार विषय भोग ये भी ऐब हैं, ये सारे ऐब प्रकृतिमें उत्पन्न होते हैं जीवसे नहीं होते। आत्मा तो सदा शाश्वत निर्विकल्प चित्स्वरूपमात्र एक है। इस सिद्धान्तमें चैतन्यमें और ज्ञानमें फर्क है। आत्माका स्वरूप चैतन्य है, ज्ञान नहीं। ज्ञानतत्त्व, जिसका दूसरा नाम है महत्तत्त्व, वह प्रकृतिसे उत्पन्न होता है। इस पुण्यपापकी तो फिर बात ही क्या कहना है ? ये पुण्य पाप भाव आत्माके गुण नहीं हैं क्योंकि प्रकृतिके परिणाम हैं ?

विकारको प्रधानपरिणाम माननेमें आपत्ति—अदृष्ट (कर्म) को प्रकृतिधर्म माननेकी शङ्काका आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि यह कहना तुम्हारा मनोरथमात्र है। अपने घर बैठे हुए अपनी कल्पनाओंमें कुछ भी सोचते जावो यह सारा विकार प्रधानका है। आत्माका इसमें कुछ भी लगाव नहीं है। यह बात यों सम्भव नहीं कि यदि यह पुण्यपाप प्रकृतिका ही परिणमन है तो परतत्र कौन बना ? प्रकृति बनी। जब प्रकृतिके ही ये धर्म हैं पुण्य पाप, तो वह आत्माकी परतन्त्रताका निमित्त होता ही नहीं है। और तुमने आत्माको परतन्त्र वैसे भी नहीं माना। तो फिर प्रकृतिके इन परिणमनोंमें पुण्यपापमें कर्मपनेकी संज्ञा नहीं दे सकते। यदि यह कहो कि न रहो कर्म आत्माकी परतन्त्रताके कारण ये पुण्य पाप ये प्रधानके परिणाम आत्माकी परतन्त्रताके कारण न रहो, किन्तु वे प्रधानकी प्रकृतिके परतन्त्रताके तो कारण हैं। इसलिए

उन्हें कर्म कहना ठीक है। अच्छा, उन्हें इस प्रकार कर्म नाम देते हो तो प्रधानका ही बंध कहलाया और प्रधानका ही मोक्ष कहलाया। प्रधान प्रकृति दोनो एक ही अचेतन की संज्ञायें है, जिसे हम कर्म कहते है समझलो करीब करीब उसके स्रोतको वे प्रकृति कहते है। तो फिर प्रकृतिका ही बंध हुआ, प्रकृतिका ही मोक्ष हुआ। फिर आत्माकी कल्पना भी करनेकी क्या जरूरत है। बंधका फल भोगे तो क्या आत्मा भोगेगा फिर ? प्रकृतिने तो किया और आत्मा फल भोगे ? अदृष्टको प्रकृतिका धर्म माननेपर फिर न आत्माका बंध है न आत्माका मोक्ष है ? फिर आत्माकी कल्पना करना ही क्या ठीक है ?

आत्मामे प्रकृतिपरिणामके भोक्तृत्वकी आशङ्का—अदृष्टको प्रकृतिधर्म मानने वाले कहते हैं कि नही, आत्मामे बंध और मोक्षका फल होता है, करने वाली तो प्रकृति है और भोगने वाला आत्मा है। देखो—इस सांख्य सिद्धान्तकी बात कहा तक उसके अभिप्रायसे सही बैठती है, इसको समझनेके लिए जरा सांख्यके मित्र बन कर सुनें, विरोधी बनकर नही। सांख्य जैसा कुछ आशय बनाकर और ऐसा अर्थ निकालकर कि जिसमे सांख्यको कुछ समर्थन सा मिल जाय कि जिसमे सांख्यको कुछ प्रोत्साहन सा मिल जाय कि हा वे उद्दण्डतासे नही कह रहे हैं, किन्तु अपनी बुद्धि लगाकर कह रहे है, इस दृष्टिसे थोडा सुने। जैसे जिन शासनमे बताया गया है कि कर्मका उदय होनेपर विभाव बनता है और उससे कर्म बन्ध होता है तो कर्मका उदय होने पर रागद्वेष सुख दु.ख परिणाम होते हैं ना, पर यह तो बताओ कि जिस कर्मोदयसे रागद्वेष हुए तो वे कर्मकृत कहलाये तो क्या इस तरह राग द्वेष सुख दु खको कर्म भी भोग सकते हैं ? और झट कल्पनामे सज्जन पुरुष भी यह कह बैठते है कि भले ही कर्मके द्वारा ये सुख दुःख उत्पन्न हुए पर कर्ममे चेतना नही है इसलिए कर्म उनके फल को नही भोग सकता। कर्मके फलको तो यह आत्मा भोगेगा। इस तरहकी दृष्टि रख कर सांख्य सिद्धान्तने यह माना है कि सुख दु.ख अहङ्कार ज्ञान ये सब प्रकृतिमे उत्पन्न होते हैं किन्तु इसका फल चूंकि प्रकृति अचेतन है सो आत्माको ही भोगना पड़ता है, ऐसी शङ्का रखी है।

आत्मामे प्रधान परिणामका भोक्तृत्व माननेपर कृतनाश व अकृताभ्यागमका दोष—कर्मको प्रकृति करती है व कर्मफलको आत्मा भोगता है इस शङ्का का उत्तर देते है कि वस्तुत तो जो करता है सो ही भोगता है। यह ज्ञान रागद्वेष अहङ्कार ये सब प्रकृतिने किया तो इसका फल प्रकृतिको ही भोगना चाहिए। युक्तिमे और प्रमाणमे तो यह आता है। यदि वह जैन शासनकी यह नजीर दे कि देखो कर्मने तो रागद्वेष किया और फल भोगा आत्माने तो यह नजीर यो ठीक न बैठेगी कि वास्तवमे आत्माने रागद्वेष किया अत. आत्मा ही रागद्वेषका फल भोगता है। जिन शासनमे आत्मा अपरिणामी नही है, किन्तु शङ्काकारने आत्माको अपरिणामी माना

है निमित्तनैमित्तिक भावके प्रसगमे किया इस कारण सदा ही आत्मा रागद्वेष करता रहे यह भी आपत्ति नही आती। तो प्रधानने अचेतनने, प्रकृतिने यदि पुण्य पाप किया है तो उनका फल भी प्रधानको ही भोगना चाहिए। अन्यथा काम तो करे प्रकृति और फल भोगे आत्मा तो इसका अर्थ यह हुआ कि प्रधानने किया और उसका प्रयोजन उसे मिला नही फल मिला नही तो किया न किया बराबर हो गया। कृतकर्म नाश हो गया और आत्मा बेचारेने कुछ किया नही वह तो अपरिणामी शुद्ध चैतन्यस्वरूप है सो बिना किए उसे फल भोगना पडा। ऐसी यदि लोक व्यवहारमे बात करनी पडे तो कितनी अव्यवस्था बन जायगी। फिर ता "अधेर नगरी बेवूफ राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा" वाली बात सिद्ध हो जायगी।

अन्यके विकारको अन्यके द्वारा भोगना माननेकी अव्यवस्थाका एक दृष्टान्त एक सन्यासी अपने शिष्य सहित किसी नगरामे पहुँचा। शिष्यको कुछ भोजन सामग्री (आटा कोयला, मिठाई आदि) लेने भेजा। शिष्यने कोयला वालेस पूछा—कोयला क्या भाव ? टके सेर। आटा क्या भाव ? — टके सेर रसगुल्ला क्या भाव ? टके सेर। सो उसने टके सेरमे खूब रसगुल्ले खरीदे और गुरुके पास जाकर कहा— महाराज खूब रसगुल्ले छककर खावो और कृपा करके आप यहा ६ माह तक रुक जावो। तो सन्यासी कहता है—अरे वह अधेर नगरी है यहा रुकना ठीक नही पर शिष्यने जब पैर पकड लिया तो रुकना ही पडा। तो ६ माह तक रसगुल्ले खा खाकर वह शिष्य खूब मोटा हो गया। अब एक ऐसी घटना घटी कि एक बाबू साहब उसी नगरीमे किसी सडकसे एक साइडसे जा रहे थे तो रास्तेमे किसी मकानके समीपसे जाते हुये उस मकानसे दूसरी साइडमे एक खूंट गिर गया। तो बाबूजीने उस मकान वाले पर मुकदमा दायर कर दिया कि इस व्यक्ति ने इतना कच्चा मकान क्यो बनवाया कि इसकी खूट गिर गयी। मैं दूसरी साइडसे जा रहा होता तो इस मकानकी खूट हमारे ऊपर गिरकर चोट पहुँचाती कि नही ? तो राजाने उस मकान वालेको बुलवाकर पूछा कि तुमने ऐसा कच्चा मकान क्यो बनवाया कि उसकी दीवालकी साइडमें होते तो वह खूट बाबूजीपर गिरकर इन्हे चोट पहुँचाता कि नहीं ? तो वह मकान वाला बोला महाराज ! हमने तो रुपये पूरे दिये थे, कसूर तो उस कारीगरका है जिसने मकान बनाया था। उस कारीगरको राजाने बुलवाया। कारीगरसे राजाने कहा कि तूने ऐसी दीवाल क्यो बनायी जिसमे यह खूट बाबूजीके ऊपर गिर जाता तो क्या होगा ? तो कारीगर बोला— इसमे हमारा कोई कसूर नही, गारा वालेने गारा पतला कर दिया था। अगर गारा पतला न होता तो यह खूट क्यो गिरती ? राजाने उस गारा वालेको बुलाकर पूछा— तूने गारा इतना पतला क्यो कर दिया था जिससे यह खूंट गिर गया। अगर यह खूट बाबूजी पर गिर गया होता तो क्या होता ? तो उस गारा वालेने कहा महाराज इसमे हमारा क्या कसूर। मसकवालेने मसक बडी बनादी जिससे पानी ज्यादा गिर गया।

अगर बडी मसक न होती तो गारा गीला न होता। मसक वालेको राजाने बुलवाया और कहा कि तूने इतनी बड़े भैंसा की खालकी मसक क्यो बनाई कि मसक बडी हो गई अरे मसक बडी हो जानेसे गारेमे पानी ज्यादा हो गया, और गारा गीला हो जानेसे इस दीवालका खूट गिर गया। अगर यह खूट इन बाबू जीपर गिर गया होता तो इन्हे चोट पहुँचाता कि नही ? तो वह मसक वाला कहता है—महाराज इसमे मेरा क्या कसूर। कसूर तो उस भैंसा बेचने वालेका है जिसने बडा भैंसा बेच दिया। अगर बडा भैंसा न बेचा होता तो बडी मसक न बनती, न अधिक पानी गिर जाता न और कुछ होता। अब राजाने उस भैंसा बेचने वालेको बुलाया उससे कहा कि तूने बडा भैंसा क्यो बेचा जिससे यह बडी मसक बनी और ये सारे झंझट हुए ? तो उस बेचारेके पास कोई जवाब ही न था। तो राजाने कहा बस सारा कसूर इसका है, इसको फासीपर चढा दो। वह बेचारा दुबला पतला था। जब फासी देने वाले लोग उसे फासी देने लगे तो फाँसी देने वाला फन्दा बडा था सो राजाके पास जा कर चाण्डाल बोले महाराज फन्दा बडा पडता है, इसका गला इतना पतला है कि वह फंदे से कसनेमे नही आता। तो राजा बोला- अरे यदि इसका गला पतला है तो किसी मोटे गले वालेको पकड लावो और जल्दी फासी दे दो, नही तो फासीका महूरत निकला जा रहा है। तो वे फासी देने वाले चले मोटे गले वालेकी खोजमे। तो वही शिष्य साहब मोटे गले वाले दिख गए। उसे पकड लाये। कहा चलो तुमको फांसी दी जायगी। वह सन्यासी भी साथमे आया सन्यासीने मौका पाकर शिष्यसे थोडा समझा दिया कि देखो हम तुम दोनो परस्परमे फांसीपर चढनेके लिए झगडने लगेगे। तुम कहना कि हम फासीपर पहिले चढेगे और हम कहेंगे कि पहिले हम फासीपर चढेंगे। सो जब वह शिष्य फासीपर चढाया गया तो वह सन्यासी कहता है कि तुम न चढो अभी फाँसीपर, पहिले हम चढेगे, वह शिष्य कहे- नही— पहिले हम चढेगे। दोनो फासीके तख्तपर चढनेके लिए झगडने लगे। तो राजा कहता है—अजी मामला क्या है। तुम लोग क्यो फांसीके तख्तपर चढनेके लिए झगड रहे हो ? तो वह सन्यासी कहता है— तुम चुप रहो राजन् ? तुम्हे क्या पता है इस समयका मुहूर्त ऐसा है कि जो फांसी पर चढ जायगा वह सीधे वैकुण्ठ जायगा। तो राजा कहता है- अच्छा न इसे फासी पर चढाओ न इसे, फासीपर तो हम चढेंगे। तो प्रधान करे और आत्मा भोगे फल तो यह तो एक अव्यवस्थाकी बात हो गई। करे कोई फल कोई भोगे। इससे ये पुण्य पाप प्रधानके गुण नही हैं प्रधानके परिणाम नहीं हैं किन्तु ये पौद्गलिक कर्म हैं और उसके उदयकालमे आत्माके क्रोधादिक भावोकी परतन्त्रता होती है।

प्रकृतिको कर्ता व आत्माको भोक्ता माननेपर आपत्ति --सांख्य सिद्धान्त मे माना गया है कि अदृष्ट अथवा कर्म प्रकृतिका परिणाम है, इसपर यह आपत्ति दी गई थी कि यदि कर्म प्रकृतिका विकार है तो फल भी प्रकृतिको ही भोगना चाहिए। जिसके विकार हैं उसको ही फल भोगना चाहिए। आत्मा क्यो फल भोगता है, उसके

उत्तरमे शङ्काकार कह रहा है कि आत्मा चेतन है इस कारण प्रकृतिके विकाररूप कर्मोंको आत्मा भोगता है। प्रकृति अचेतन है इस कारणसे प्रकृति फल नही भोग सकती। करनेमें परिणमनेमे प्रकृति तो स्वतन्त्र है, पर फल भोगना उस प्रकृतिका काम नही, क्योंकि वह प्रकृति अचेतन है और आत्मा चेतन है। सो प्रकृतिके परिणाम को जो चेतन है वह फल भोगेगा। इसपर समाधान करते हैं कि यदि ऐसा मन्तव्य बन जाय कि प्रकृति तो विकार करे और फल भोगे आत्मा, तो जो मुक्त आत्मा हो गए हैं, कर्मोंसे जो छूट गए है उन मुक्त आत्माओंको भी फल भोग लेना चाहिए, क्योंकि करने वाली प्रकृति है और फल भोगने वाला आत्मा है। वह चाहे ससारी आत्मा हो और चाहे मुक्त आत्मा हो प्रकृतिके लिये तो ये सब भिन्न है। जैसे मुक्त आत्माओसे प्रधान भिन्न हैं, प्रकृति निराली है इसी प्रकार आत्मा भी निराला है। तो प्रकृतिके कार्यका फल हम क्यो भोगें, मुक्त आत्मा भोगें ?

कर्मबन्धका ही नामान्तर प्रकृतिससर्ग—शायद यह कहो कि मुक्त आत्मावोमे प्रकृतिका ससर्ग नही अतएव मुक्त आत्मा फलको न भोगेंगे। तो यही उत्तर आया उसका कि मुक्त आत्मावोमे तो प्रधानका सम्बन्ध नहीं, अत फल नही भोगते और ससारी आत्मावोंमे प्रधानका सम्बन्ध है इसीसे वे फल भोगते हैं, तो फिर यही तो सिद्ध हुआ कि आत्माके बन्धन हैं, चाहे पौद्गलिक कर्म मान लो और चाहे प्रकृति नाम रख लो। जिस आत्माके साथ पौद्गलिक कर्मका बन्धन है, प्रधानका ससर्ग है वह तो फल भोगता है और जिस आत्माके साथ प्रकृतिका ससर्ग नही, कर्म का बन्धन नही वह फल नही भोगता। सो प्रकृतिका सम्बन्ध बधके फलको भोगनेमे कारण है, तो यही सिद्ध हुआ कि वह प्रकृति बन्धरूप है। बन्धनका नाम ससर्ग रख लो और कर्मका, प्रकृतिका नाम प्रधान रख लो। केवल शब्दभेद रहा, बात तो वही रही। यहाँ तक यह सिद्ध किया कि इस जीवपर पौद्गलिक कर्मोंका बन्धन है और जब वह पौद्गलिक कर्मोंका बन्धन नष्ट होता है तब उस आत्माके सर्वज्ञता प्रकट होती है।

अनादि परम्परावद्ध कर्मोंकी भी विश्लेषता—अब यहाँ शङ्काकार कह रहा है कि मानलो पौद्गलिक कर्म हैं, किन्तु ये कर्म तो कार्यकारणके प्रवाहमे बराबर चले आ रहे हैं अर्थात् अनादि कालसे कर्मका बन्धन चला आ रहा है। कर्मके उदयमे जीव रागद्वेष करता है। रागद्वेषका निमित्त पाकर जीवमे कर्म बँधते हैं, इस प्रकार कर्मबंधकी परम्परा अनादिसे चली आयी है। तो उसका नाश कैसे हो ? उसके नाश का कारणभूत कोई सामग्री विशेष नही है। जब कर्मका नाश न हो सकेगा तो यह कहना भी कैसे सही होगा कि जब आवरण पूरे तौरसे नष्ट हो जाता है तो ज्ञानमें सर्वज्ञता आ जाती है। आवरण नही नष्ट ही नही होते पूरे तौरसे। ऐसी शङ्कापर आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि सामग्री है तो सही। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्

चारित्ररूप जा आत्माका परिणाम है उसके कारण कर्मोका क्षय हो जाता है। जो सचित कर्म है, शुभ अशुभ भावोसे जिन कर्मोका बन्धन किया है वे, कर्म निर्जरासे जो कि चारित्र विशेष है उसके प्रतापसे नष्ट हो जाते है कर्म झड जाते हैं।

कर्म विश्लेपका कारण सवरपूर्वक निर्जरा—कर्मोके झडनेका नाम निर्जरा है। निर्जरा दो प्रकारकी होती है—एक सोपक्रम अर्थात् उपक्रम सहित और एक निरुपक्रम। जो औपक्रमिका निर्जरा है वह तो तपसे होती है। आत्माका आत्मा मे ध्यान होना अन्य समस्त विभावोका परित्याग होना, और भी बाह्य तप होना इन कार्योसे निर्जरा होती है और अनुपक्रम निर्जरा सभी जीवोके हो रही है। जो कर्म बन्ध हैं उनका जब अन्त समय आता है तो वे कर्म अपने फल देकर झड जाते हैं। कुछ कर्म तो ऐसे ही झड जाते हैं और कुछ तप द्वारा कर्म विपाककालसे पहिले झड जाते हैं। जब ये कर्म दूर हो जाते हैं तो यह आत्मा निरावरण हो जाता है जब निरावरण हुआ तो ज्ञानके द्वारा समस्त लोकालोकका जाननहार बन जाता है। यह चीज है अपने आपके विषयकी कैसा मैं हूँ, इसपर कितना कलक है वह कलक कैसे दूर हो ये सब बाते इस प्रकरणमे कही जा रही हैं, कलक है कषाय और विषयोका। उस कलकका कारण है कर्मोका उदय। इन कलकोको, इन निमित्तोको हम दूर कर सकते है तो एक अपने भावोके द्वारा, अपने ध्यानके द्वारा, बाहरमे कही दृष्टि गडाकर कि मुझे इन अष्टकर्मोका नाश करना है ऐसी दृष्टि बनाकर ये कर्म दूर नही किए जा सकते किन्तु अपने भावोकी सम्हाल हो तो ये कर्म दूर होते हैं।

अनुमान प्रमाणसे नि.शेषरूपसे कर्म निर्जराकी सिद्धि यहाँ शङ्काकार फिर कह रहा है कि हम कैसे समझें कि पहिले बधे हुए कर्मोकी निर्जरा पूरे रूपसे हो सकती है। उत्तर देते हैं—अनुमानसे इसकी सिद्धि है। अनुमान पुष्ट प्रमाण कहलाता है, लेकिन उस अनुमान शब्दके बारेमे लोग ऐसा समझते हैं कि अन्दाजा, शायद, परन्तु अनुमानका अर्थ अदाजा व शायद नही, किन्तु प्रत्यक्षकी तरह पुष्ट प्रमाण है। केवल प्रत्यक्ष व अनुमानमे अन्तर इतना होता है कि अनुमानमें अस्पष्ट ज्ञान रहता है और प्रत्यक्ष स्पष्ट ज्ञान रहता है। तो यहा अनुमानसे यह सिद्ध कर रहे हैं कि कैसे आत्माके कर्म सर्वथा दूर हो जाते हैं, उसके अनुरूप प्रयोग बना रहे हैं—आत्माके कर्म समस्त रूपमें झड जाते हैं, क्योकि विपाकके समय उनका अन्त हो जाता है। जो झडा नही करते हैं उनका विपाक नही होता अन्त नही होता जैसे काल आदिक यह शङ्काकार कालको भी फल भोगनेका कारण मानता है। तो काल तो कही झडता नही। कालका कभी अन्त नही आता लेकिन इन कर्मोका अन्त आ जाता है। इनकी अवधि होती है स्थिति समाप्त होनेपर ये फल देकर झड जाते है। साधारण तपश्चरणके द्वारा इन्हे समयसे पहिले ही झड़ा दिया जाता है। इससे सिद्ध है कि किसी आत्मामे कर्म बिल्कुल नहीं रहते हैं। कर्मोंमे देखा जाता है कि इनका फल होता है और फल दे

चुकनेपर खतम । जैसे धान फल दे चुकनेपर खतम और चावल निकाल लिया और उनका फल भोग लिया, तो उनकी जड़ खतम इसी प्रकार ये कर्म बध गए हैं इनका जब विपाक समय आता है तो इनका अन्त हो जाता है । कर्म यदि विपाकके समय झड़ें नही, इनका नाश न हो तो इसका अर्थ होगा कि कर्म नित्य हो गए सदाके लिए रह गए, सदाके लिए रह गए, तो फिर सदाकाल आत्मा इन फलोको भोगता रहेगा। फिर मोक्ष कोई चीज न कहलायगी । फिर मुक्त आत्मावोकी सिद्धि भी क्या कर सकेंगे । इससे यह सिद्ध है कि आत्माके साथ अनादि परम्परासे कर्म लगे आये हैं। उनका जब क्षय कर दिया जाता है तब आत्मा निरावरण हो जाता है और अपनी समृद्धिको भोगता है ।

सवरभावसे मुक्तिपथ गमन—सासारिक जो भी भोग विषयके साधन, आरामके साधन भोगे जा रहे हैं ये वास्तवमें आराम नही आनन्द नही, क्योंकि इन का क्या भरोसा । और, जितने काल ये आराम रूपसे माने जा रहे है उतने काल भी आत्मा सन्तोषसे नही रह रहा । इन सासारिक दुख दुखोके भोगनेमें आत्माको शान्ति नही मिलती । शान्तिका कारण तो अपने आपका जो निर्विकल्प चैतन्य प्रकाश है उस मे उपयोग रमायें यही शान्तिका कारण है । बाह्यमे दृष्टि करके हर्ष विषाद मानना यह महा अपराध है, और, इस अपराधके कारण जीवको शान्ति नहीं मिल सकती। इन सब विडम्बनावोका निमित्त कारण है पौद्गलिक कर्म, उनके दूर होनेमे ही आत्महित है आत्मामे जो कर्मोंका सचय है उनके दूर होनेमे मुख्य आलम्बन है सम्वर। जैसे नावमे पानी भर जाय और किसी छिद्रसे पानी आता रहे तो वह नाव डूब जायगी । इसलिए जो कुशल नाविक हैं वे सर्वप्रथम पानी आने वाले छिद्रको बद कर देते हैं, नये पानीका आना रुक जानेसे पहिले वाले पानीको उलीचकर सुगमताने उसे बाहर निकाल देते हैं ऐसे ही यही पद्धति है मुक्तिकी, नवीन कर्म न आ सकें,पहिले उन का आना रुक जाय ऐसा सम्वर किया जाता है, फिर जो सचित कर्म हैं वे तपश्चरण आदिकके द्वारा झड़ते हैं तो मुक्ति होती है । तो आश्रवका निरोध होना मुक्तिपथमे प्रथम आवश्यक है ।

आस्रवमे मिथ्यात्वभाव—आश्रव हैं मिथ्यात्व अविरति कषाय और योग । जिन स्रोतोसे जिन परिणामोसे कर्मोंका आना रहे उनका नाम आश्रव है । भिन्न पदार्थमें यह मैं हूँ, यह मेरा है इस प्रकारकी कल्पना करना मिथ्या है । इन रूप, रस, गध, स्पर्श विषयोसे मुझे सुख होता है ऐसी कल्पना करना मिथ्या है । मैं स्वय आनद स्वरूप हू । समस्त पदार्थोंसे विविक्त हूँ, मैं जब भी भोगता हू तो अपने ही भाव भोगता हूँ । सुख दुख भी भोगता हूँ तो अपने ही आनन्दका विकार बना—बनाकर भोगता हूँ, और जब सुख दुखसे परे एक अनुपम विश्राम भोगता हू तो मैं उस सही आनन्दको भोगता हू । मैं बाहर कही नही हूँ । मेरा बाहरसे कोई वास्ता नही ।

किसी भी अन्य पदार्थसे मेरेमे कुछ परिणति नही है। कोई पुरुष गाली दे रहा है, जिसका नाम लेकर जिसे देखकर गाली दे रहा है वह क्रोधमे आ जाता है। तो अज्ञानी जन तो कहेंगे अथवा वह खुद कहेगा कि देखो इसने क्रोध पैदा कर दिया, लेकिन क्या उस व्यक्तिने उसके क्रोध उत्पन्न कर दिया ? अरे वह स्वय अपनी कषायकी वेदना न सह सकनेसे जिससे उसने शान्ति मिलना देखा वह काम किया और सुनने वालेने कल्पनाये बनाकर अपनेमे विभावोंको प्रेरणा दे देकर अपनेमे क्रोध उत्पन्न किया है। ऐसी स्थितिमे इस क्रोधी पुरुषने अपने ही परिणामसे क्रोध किया, गाली देने वालेकी परिणति लेकर क्रोध नही किया है। ऐसे ही समस्त निमित्तोंकी यही बात है। किसी भी निमित्तका द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव कुछ भी उस विभाव परिणाम वालेमे नही पहुँचता है। इस प्रकार समस्त पदार्थ एक दूसरेसे अत्यन्त भिन्न है किन्तु मोही जीव उन भिन्न पदार्थोंको यही तो मैं हूँ इस प्रकार अगीकार करते हैं। यही है मिथ्यात्व।

- आस्रवोमे अविरति आदि भाव—अविरति भाव—यह चतुर्थ गुणस्थान तक रहता है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन ५ पापोसे विरक्ति नही हुई, प्रतिज्ञा नही की, कुछ नियमरूप परिणति नही हुई उसका नाम है अविरत भाव। इस भावसे कर्मोंका आश्रव होता है। प्रमादभाव—विशेष कषायके होनेका नाम प्रमाद है। इस प्रकारका प्रमाद कि जिसके कारण मोक्षमार्गमे चलनेका उत्साह प्रगतिशील नही बनता है। कषायभाव, कषायका नाम क्रोध, मान, माया, लोभ हैं, इनसे भी कर्मोंका आस्रव होता है। और, आत्माके प्रदेश जो हलन-चलन करते है उस योगसे भी आश्रव होता है। इस प्रकार इन ५ प्रकारके आश्रव भावोके होनेपर कर्म आया करते है।

सवर तत्त्वमे गुप्ति —कर्मोंका आस्रव रोकना इसका नाम सम्वर है। ऐसा सम्वर गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा, परीषहजय आदिकमे प्रकट होता है। अपने मनको वश करना इससे कर्म रुकते हैं। और, इतना तो सभी अनुभव करेंगे कि मनको वश करलेंगे तो झगडा रुक जायगा। बहुत सी घटनाओमे ऐसी स्थिति आती है कि यदि अपने मनको काबू न कर सके तो झगडा बढ जाता है और मनको वश कर लिया तो झगड़ा मिट जाता है। कर्म भी तो झगडे हैं। मनको वश करनेसे कर्मोंका आस्रव रुकता है, वचनोको वश करनेसे कर्मोंका आश्रव रुकता है। बहुत अधिक बकवाद करनेकी आदत झगडेकी जड बन जाती है। सुने सबकी बाते खूब, पर बोले कम। कविकी कल्पना है कि इसीलिए तो दो कान एक जीभ है। इसका यह अर्थ है कि सुननेका काम बोलनेसे दूना करे। जो अपनी प्रकृति ऐसी बना लेते है कि बोलना सोचकर, कम बोलना, उनको जीवनमें बहुतसे सुविधाजनक साधन मिलते है। झगडा तो रुक ही जाता है। तो वचन गुप्तिसे कर्मोंका आस्रव रुकता है। कायगुप्तिमे शरीर

को वश करना, निश्चल, हिलना डुलना नहीं इसका नाम है कायगुप्ति। जो लोग शरीरको बहुत चञ्चल रखते हैं, क्षण-क्षणमे बैठना, उठना, बदलना यत्र तत्र आँखें हिलाना डुलाना बहुत-बहुत हाथ पैर मटकाना आदिक चपलतायें रहती हैं तो आप लोग समझते होंगे कि उनका महत्त्व कितना है, उसमे गम्भीरता कितनी है और सदाशय कितना है। तो कायगुप्तिसे भी कर्मोंका आस्रव रुकता है।

सवर तत्त्वमे ईर्यासमिति --समिति - देख भालकर कार्य करना, ताकि किसी जीवकी हिंसा न हो जाय। समितिमे यद्यपि प्रवृत्तिकी बात कही गई है। देख कर चलना पर प्रवृत्तिमे भी उस कालमे निवृत्तिका भाव है। कारणवश प्रवृत्ति करना पड रहा है, पर चित्तमे निवृत्तिका ही झुकाव है अतएव यह सम्वर भावमे कहा गया है। ईर्यासमितिमे चार बातें बताई गई हैं---प्रकाशमे चलना, जब सूर्यका अच्छा प्रकाश हो जाय तब चलना, एक बात। दूसरी बात अच्छे कामके लिए जाना। तीसरी बात --अच्छा भाव रखकर चलना। और चौथी बात --देखकर चलना, चार हाथ आगे जमीन शोधकर चलना। इन चारोमेसे यदिएक बात भी कम हो जाय तो ईर्यासमिति नहीं रहती अर्थात् जिससे सम्वर बने वह परिणाम नहीं रहता। कल्पना करो कि कोई साधु किसी खोटे कार्यके लिए जा रहा है---समझो किसी पाप कार्यके लिए जा रहा है और जमीन शोधकर चार हाथ आगे निरखकर जा रहा है तो उसके कर्मोंका सम्वर होगा क्या ? जा तो रहा है अच्छे कामके लिये, पर रास्तेमे कुछ झमटे मानकर साथके मित्रोंपर गुस्सा करके बडे क्रोधसे चल उठना है तो ऐसी स्थितिमे क्या उसके कर्मका सम्वर होगा ? और, जहाँ सूर्यका प्रकाश नहीं वहा तो हिंसा परिहारकी बात ही नहीं हो सकती और अच्छे भावोसे चले ! भाव तो अच्छे फिर होंगे ही क्या ? यदि देखभालकर नहीं चल रहे है तो वहा भाव अच्छे ही क्या हो सकते, पर स्थूलरूपसे मान लो कि अच्छे कामके लिए जाय, अच्छे भावसे जाय, दिनमें जाय, अगर ऊँचा सिर उठाकर यहा वहा देखकर चले तो वहा कर्मका सम्वर नहीं है।

सवर तत्त्वमे भाषादि समितिया - भाषा समिति - हित, मित प्रिय वचन बोलना जो वचन दूसरोको हितकारी हो परिमित हो और प्रिय लगें ऐसे वचन बोलने को भाषा समिति कहते हैं। कितना सुन्दर विवेचन है इस लक्षणमे। कोई पुरुष हितकारी वचन बोल रहा है, सीमित बोल रहा है मगर कीलसी चुभाकर बोलें तो उसे समिति न मानेंगे। कोई पुरुष प्रिय तो वचन बोलता है मगर हितकारी नहीं है, विषयोंमें लगने वाला झगडेको उकसाने वाले वचन बोलता हो तो वे प्रिय तो लगेंगे ही पर वे हितकारी नही हैं। कोई पुरुष अधिक बोले तो उसका आत्मा स्वय प्रमादधान होगा। तो हितमित प्रिय वचन बोलना भाषा समिति है। तो इस प्रकारकी आन्तरिक निवृत्तिको लिये हुए परिणामके कारण कर्मोंका आस्रव रुकता है। इसी

प्रकार निर्दोष विधिसे चर्या करना सो एषणा समिति है। निर्दोष विधिसे आहार करना इसमें भी निवृत्तिका भाव है। आदान निक्षेपण समिति—कोई चीज धरे उठायें किसी जीवको बाधा न हो, ये सब समितिया यद्यपि साधु सतके प्रकरणमे बताई गई हैं किन्तु गृहस्थोको भी अपनी शक्तिके अनुसार इनका पालन करना चाहिए। विवेकी पुरुषोको ये सारी चीजे करना योग्य है। ५ वी समिति है प्रतिष्ठापना समिति—मल मूत्र, कफ नाक, थूक आदिकका क्षेपण करे, बल्कि पसीना भी बहुत आ रहा हो तो उसे भी कही डाले तो देखकर डाले ताकि किसी जतुको बाधा न पहुचे, सो प्रतिष्ठापना समिति है। ऐसी समितिके परिणाममें कर्मका आश्रव रुकता है।

मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञानकी निरावरणताकी सिद्धिका प्रकरण—यह सब प्रकरण इस न्याय ग्रन्थमे इसकी सिद्धिके लिये चल रहा है कि पहिले कर्मोका आश्रव रुके और कर्मोका झडना चालू रहे तो कर्मोका निःशेषरूपसे अभाव हो जायगा। तब यह ज्ञान निरावरण हो जायगा। निरावरण होनेसे यह सकल प्रत्यक्ष हो जायगा,समस्त लोकालोकका जाननहार हो जायगा। उसे कहते है मुख्य प्रत्यक्ष। ऐसा ज्ञानका विकास होना हम आप सबका स्वभाव है। जो सर्वज्ञ है वैसी ही शक्तिके हम आप है, जातिमे रच भी अन्तर नही है। यदि उस विधिमे हम आप भी चले तो हम आपका भी विकास होगा, दु ख सकट दूर होगे। किन्तु, इसके लिए इतनी तो व्यवहारिकता होनी चाहिए कि बाह्य पदार्थोमे हमारी आशक्ति न जगे और हम अपने आपके कल्याण की बुद्धि रखे। तो जिस मार्गसे चलकर प्रभुने अनन्त आनन्द पाया उसी मार्गसे चलकर हम आप भी सदाके लिए समस्त सकटोसे छुटकारा पा लेगे।

ज्ञानकी निरावरणताके उपायभूत सवर तत्त्वका प्रतिपादन-मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञानके स्वरूपके प्रकरणमे यह कहा जा रहा है कि यह ज्ञान निरावरण होता है, ज्ञानपर आवरण है ज्ञानावरण पौद्गलिक कर्मका। ये पौद्गलिक कर्म जब झड जाते है तो ज्ञानका पूर्ण विकास हो जाता है। इससे सम्बन्धित यह शङ्का चल रही थी कि कैसे मानें कि कही कर्म बिल्कुल झड जाते हैं? उसकी सिद्धिमे यह स्थल चल रहा है कि प्रथम तो कर्मोका सम्बर होता है, उसके साथ कर्मोका झडना शुरु होना है तो उससे कर्म सदाके लिए नष्ट हो जाते हैं। हो सकता है क्या इसमे सम्बर? उसकी बात चल रही है। जो चीज आती है उसका रोकना भी सम्भव है। सर्वत्र घटा लो यह बात। समाजमे घरमे, जो वस्तु आती है उसका आना भी रुक सकता है। जीवमे कर्म आते है तो जिन भावोसे कर्म आते हैं उन भावोसे न करें तो कर्मोका आना रुक जायगा। आश्रव तत्त्वके बारेमे तो पहिले वर्णन कर ही लिया गया था और अब सम्बर तत्त्वके बारेमे कह रहे हैं कि गुप्तिमे समितिसे कर्मोका सम्बर होता है। अब सम्बरके उपायोमे धर्मकी बात चल रही है धर्म कहते हैं आत्माके स्वभावको। और, आत्माके स्वभावको दृष्टिमे लेना, उसका आश्रय करना

यही हैं धर्मका पालन । धर्म व्यवहार पद्धतिमे समझानेके लिये १० प्रकारके बताये गए हैं— उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य ।

उत्तम क्षमासे आस्रवनिरोध— उत्तम क्षमा— सम्यक्त्वसहित जो क्षमा होती है उसे उत्तम क्षमा कहते हैं । जहाँ पदार्थके स्वरूपका यथार्थ निर्णय है, समस्त जीव अपने अपने स्वरूपमे हैं, उनका कुछ भी गुण पर्याय किसी दूसर जीवमें नहीं पहुंचता है । सभी अपने अपने भावोंके अनुसार कर्मफल भोगते हैं, बंध होता है अथवा मुक्ति होती है । किसी जीवके करनेसे किसी जीवमे कोई परिणति नहीं बनती है । यथार्थ निर्णय जिसने किया है ऐसा ज्ञानी पुरुष किसीके द्वारा गाली दिये जानेपर, मार-पीट होनेपर भी उसके अकल्याणकी भावना नहीं करता है । गृहस्थ पदमे यद्यपि किसी आततायीसे मुकाबला भी किया जाना है जिसका नाम है प्रत्याक्रमण । ज्ञानी जीव अपनी ओरसे आक्रमण नही करता, लेकिन कोई आक्रमण करे तो उसका प्रत्याक्रमण करना होता है । उस कठिन परिस्थितिमे भी प्रवृत्ति तो हो रही है उसके ताडने-मारनेकी, पर भीतरमे भाव यह बसा है कि इसका अकल्याण न हो, इसका भाव यदि बदल जाय तो यह व्यवहारमे भी प्रत्याक्रमणके योग्य नहीं है, ऐसा पवित्र आशय ज्ञानी जीवके अन्तरङ्गमे पडा है । चाहे यह आशय व्यक्तरूपमे कुछ काम न भी कर रहा हो तो भी आशय अवश्य ही पडा है । जैसे रामचन्द्र जीका रावणसे युद्ध हुआ तो उस युद्धमे कसर तो कुछ रखी नहीं जा सकती । युद्ध तो युद्ध ही है, युद्धमें पूर्ण तैयारी थी, बल लगाया था सब कुछ किया था, फिर भी अन्तरङ्गमे रावणका अकल्याण मत हो, ऐसा उनके आशय पडा हुआ था । इस बातको व्यक्तरूपमे वे नहीं कह सके, क्योंकि युद्धमें यदि इस तरहसे काम करते तो युद्ध ही क्या कर सकते ? तिसपर भी अभिप्रायमे यह बात थी कि रावणका विनाश मत हो । इसका प्रमाण यह है कि बहुत कुछ विजय प्राप्त कर लेनेके बाद जब ऐसी स्थिति आ गई कि अब तो चंद समयमे ही रावणका विनाश होने वाला है तो रावणको समझाया कि अब भी कुछ नहीं बिगडा । सीताको लौटा दो और अपना राज्य करो । तो किसी जीवके द्वारा कुछ सताये जानेपर भी अन्तरङ्गसे उसका अकल्याण न चाहे इसका नाम उत्तम क्षमा है । क्षमामे यह जीव अपने आपकी रक्षा करता है, अपने आपकी क्षमा करता है । इस क्षमा धर्मके प्रसादसे कर्मोंका सम्वर होता है और संचित कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

उत्तम मार्दवसे आश्रव निरोध— मार्दव धर्ममें मान न करना बताया है । देखिये, नम्रताकी बात ! अभिमानपूर्वक भी नम्रता की जाती है और निरभिमानतामे भी नम्रता की जाती है । कोई पुरुष इसमे अपनी पोजीशन समझता है इसमे मेरा बडप्पन रहेगा । मैं बडा हू, यदि इसमे इस तरहके शब्दोंमे बोला जाय, नम्रता भर

हुए तो इससे मेरी सबमे इज्जत होगी। मैं इन सबमे महान हूँ, इन अभिमानमे भी नम्रता बर्ती जा सकती है। और इसका अनुभव सभी कर सकते हैं क्योंकि इस रोगके रोगी सभी हैं। किसीको कम है किसीको अधिक हैं। एक तो नम्रता अभिमानमूलक होती है और एक सहज होती है। जिसने समस्त पदार्थोंसे भिन्न मात्र ज्ञानस्वरूप अपने अंतस्तत्त्वका निर्णय किया है और जाना है कि यह ही मैं आत्मा शरण हूँ, ऐसा आशय करना, यह ही मेरे लिए लाभकारी है।

उत्तम आर्जवसे आस्रवनिरोध— उत्तम आर्जव धर्म—सरलताका नाम है। जो मनमे है वही वचनमे है वही किया जाता है। जहा छल कपट नही, ऐसे सरल परिणामका नाम आर्जव है। छल कपट तो वह करेगा जिसने बाहरमे अपना हित माना है। वैभव जुड़ जाय तो मैं महान बन गया। अरे! वैभव तो पौद्गलिक जड चीज है, उसका संचय होनेमें महत्ता कैसे बनती है? पुण्यका उदय है, वैभव आता है आये, पर उस वैभवसे मैं बड़ा हूँ ऐसी कल्पना करना तो मिथ्यात्व है। तो जिसने अपने हितका प्रकाश पाया है उसे इतनी फुरसत कहाँ? इतना विचार करनेमें समय गँवानेकी बात हो कैसे सकती है। किसी घटनाके बारेमें कुछसे कुछ विचार और प्लान यें बनाना मैं यह बोलूँगा, मैं इस प्रकार इस स्वार्थकी सिद्धि करूँगा, इन कल्पनाओंसे विरक्त पुरुष तत्त्वज्ञानी पुरुष नहीं फँसता है। वह तो इन झंझटोंसे दूर ही रहकर सरल वृत्ति रहता है। थोड़े दिनोका जीवन है आयु समाप्त होनी है, क्या मे क्या बनेगा। कपटसे तो भव भ्रमण ही लम्बा होता है। पशु पक्षी कीडा मकोडोंमे जन्म लेना पडता है। ज्ञानी पुरुष मायाचारसे दूर रहता है और आर्जव धर्मका पालन करता है। इस आर्जव धर्मके प्रसादसे कर्मोंका आना रुकता है और सचित कर्म झड जाते हैं।

उत्तम शौचसे आस्रव निरोध- शौच धर्म— पवित्रता धर्म है। आत्मामे गदगी है तृष्णाकी, लोभकी। लोभी पुरुष तृष्णावान पुरुष लोगोकी दृष्टिमें भला नही विदित होता है। भले ही घर वालोंको लोभ करने वाला पुरुष भला जँचे, मगर घर वाले खुद लोभी हैं, तृष्णा करते हैं इसलिए उन्हें वह भला जचता है। तृष्णा करने वालोंके द्वारा लोभ करने वाले लोगोंके भला जचनेसे कहीं यह निर्णय तो न बन जायगा कि वह भला जचनेका पात्र है। एक आम जनताकी राय देखो उसके बारेमें तो तृष्णालु कृपण पुरुष लोकमे भी प्रससनीय नहीं है। और, वह तृष्णालु पुरुष अपने लिए तो महान अन्याय कर रहा है। अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया लोभ इनका काम क्या है? आत्माके स्वरूपका अनुभव भी न करने दे ऐसी विपरीत वृत्ति बनानेमें निमित्त है ऐसा क्रोध होना जिस तरह पत्थरमें गहरी लकीर खीच दी जाती है इस तरह जो क्रोध कषायकी लकीर खीच दी जाती है—वह कषाय वर्षोंमे मिटेगी, अनेक वर्ष लगेंगे। इस प्रकार अनन्तानुबन्धी क्रोध बहुत समय तक अपना संस्कार

रखता है। काष्ठका क्रोध कितने भवो तक सस्कार करता रहा। यह अनन्तानुबंधी क्रोध है। अनन्तानुबन्धी मानमे इतना कडापन होता है जैसे कि पत्थर कडा होता है, पत्थर झुक नही सकता, काठ तो थोडा झुक भी जायगा, पर पत्थर नहीं हिलता। पत्थर झुकेगा तो टूट जायगा। तो पत्थर जैसा कडा दिल होना यह अनन्तानुबंधी मानकी बात है अनन्तानुबधी माया भी ऐसी ही टेढी है,जैसे बांसकी जड टेढी होती हैं। इस प्रकारका टेढा चित्त बज्र हृदय परख न सके कोई कि मनमे क्या है। अनन्तानुबधी माया यह ससार भ्रमणको बढाने वाली कषाय है। अनन्तानुबधी लोभ। तृष्णाका ऐसा लोभ चढना कि चाहे प्राण चले जायें पर तृष्णा नहीं मिट सकती। जैसे—गाडीके पहियेका ओंगन, पहिया और धुरामे जो तैलका कालापन रहता है वह लग जाय तो कपडा चाहे फट जाय पर वह ओंगन दूर नही होता। जब इस प्रकारकी कषायें हैं तो वहा आश्रव ही आश्रव है। ये कषायें दूर हो और छोटे भी क्रोध, मान माया, लोभ दूर हो तो अतीव मद कषायमे अथवा कषाय न रहनेमे यह धर्म प्रकट होता है।

उत्तम सत्यसे आश्रव निरोध—सत्य धर्म—जब चारो कषायें दूर हो गयी तब सत्यता प्रकट हुई है। जब तक कषाय है तब तक वह पुरुष सत्य नही कहला सकता है। अब उसका जितना व्यवहार होगा वह मोक्ष मार्गके अनुरूप अपने लिए भी और परके लिये भी होगा। ऐसे—उत्तम सत्यकी प्रगतिसे कर्मोका सम्वर होता है और पूर्वमे बधे हुए कर्मोकी निर्जरा होती है। कोई पुरुष एक सत्यताका ही नियम ले ले तो उसके सारे अवगुण छूट जायेंगे। एक राजाने सत्यका नियम लिया। उसने बाजार बनवाया और यह घोषणा कर दी कि जिसका कोई माल न बिके वह सब माल हम खरीद लेंगे। बाजारकी उन्हें प्रगति करानी थी। एक दिन एक पुरुष मूर्ति लाया। सारी मूर्तियां तो बिक गई पर एक शनीचरकी मूर्ति न बिकी। लोग न जानें क्यो शनीचरको बुरा मानते हैं। मगलके काम,अध्ययनके काम ये सब शनीवारको शुरू किए जाते हैं पर शायद इसलिये बुरा मानते हो कि इसका नाम है शनैश्चर अर्थात् शनै चर। शनै. मायने धीरे और चर मायने चलने वाला धीरे-धीरे चलना किसीको पसद है नही, आज कल तो लोग थोडी ही देरमे न जाने कहाके कहा पहुँच जाते हैं, तो शायद इस कारणसे लोग शनीचरका दिन बुरा मानते हो तो शनीचरकी मूर्ति न बिकनेपर वह राजाके पास आया। राजाने उसे मुह मांगे दाम दे दिये। तो हुआ क्या कि उस शनीचरके आनेपर राजाके यहाँ का समस्त धन वैभव ऐश्वर्य विदा होने लगा। सत्य भी जाने लगा। तो सत्यको पकडकर वह राजा कहता है कि तुम नहीं जा सकते। तुम्हारी वजहसे तो ये सब काम सह सके। सत्यको लौटाना पडा तो सब को लौटाना पडा। निष्कर्ष केवल इतना लेना है कि यदि सच्चाईका व्यवहार है तो एक बार पहिले निर्दयता, गरीबी नौकर उपद्रव सबका सामना करना पडेगा, पर सच्चाई पर रहेंगे तो वे सब बातें शान्त हो जायेंगी।

उत्तम संयमसे आस्रव निरोध—सयम धर्म अपनी इन्द्रिय और मनको गयत करना, ६ कायके (समस्त) जीवोके प्राणोकी रक्षा करना सो सयम है। जिस तत्त्वज्ञानीने अपने आत्माका यथार्थ स्वरूप जाना है और निर्णय किया है कि यह ही मैं अपनेमे विशुद्ध विकास करूँ तो मेरी भलाई है। बाहरी किसी भी प्रवृत्तिमे मेरा कल्याण नही है। सारा स्वप्न है, सब झूठा है, सब जीव समान हैं मैं किसको अपनाऊ, किससे स्नेह करू, सब मिटने वाले हैं और यह मैं भी मिटने वाला हूँ। जो अविनाशी तत्त्व है एक शुद्ध ज्ञान ज्योति, उसका ही शरण लेना वास्तविक शरण है। अपनी ओरसे दो बातें स्नेहकी की, दूसरेने भी दो बातें स्नेहकी की अब यह भी पागल ससारमे रुले। अपने आत्माके अनुभवकी पात्रता उसमे कैसे आ सकती है। तो जो सयमी जीव है, मनको वश रखने वाला है, अपने स्वरूपकी दृष्टि रखने वाला है उस पुरुषके कर्म रुकते हैं और सचित कर्म झडते हैं।

उत्तम तपसे आस्रवनिरोध तप नाम है इच्छा निरोधका। इच्छाको रोकना, मायने इच्छावोको दिलमे रोके रहना, भरते रहना, वे इच्छाये कही बाहर निकलकर नष्ट न हो। यें :सका नाम है इच्छानिरोधी। ऐसा इच्छा निरोध तो प्राय सभी मनुष्य कर रहे हैं। इच्छा भरे हैं, भरते जा रहे हैं और, उनको रोके हुए है, उनपर डाट लगा रखा है कि यह इच्छा कम न हो जाय। इसे इच्छानिरोध नही कहते हैं कि इच्छाये दिलमे रहे और उन्हे रोका जाय। इच्छा आश्रवभाव है और यह परिणमनमे आता है। तो इच्छाका परिणमन रोक देना, इच्छाभाव उत्पन्न न हो सके इसका नाम इच्छा निरोध है। इच्छा निरोधमे कर्मका सम्वर होता है और सचितकर्मोकी निर्जरा होती है।

उत्तम त्यागसे आस्रवनिरोध—त्याग धर्म-जिस पुरुषने अपने अन्त:स्वरूप ऐसा निर्णय किया है कि यह तो अपने विशुद्ध ज्ञान आदिक शक्ति मात्र है। जो इसमे है वह यहांसे कभी जा नही सकता। जो इसमे नही है वह आत्मामे कभी आ नहीं सकता। समस्त पर वस्तुवोंसे भिन्न है, उनका निरन्तर त्याग बना ही हुआ है कोई पुरुष कल्पनासे परवस्तुको अपनाये तो ऐसा अपनानेसे कही चीज अपनी बन नही जाती वह तो अपनी ही ईमानदारीपर है। प्रत्येक पदार्थ, जीव, अजीव पुद्गल ये सब अपनी अपनी ईमानदारीपर डटे हुए हैं, लेकिन ये मोही जीव ईमानदारीको खो रहे हैं। कोई पदार्थ किसी दूसरेका बनता नही है। ये पुद्गल किसीको अपना बनाते नही हैं, हैं और उत्पादव्यय कर रहे हैं, पर ये मोही जीव सारे विश्वको अपना बनाना चाहते हैं समस्त वैभवपर अपना राज्य चाहते हैं। कितना मोहका गहन अधकार है कि बात कुछ नही है और विडम्बनायें नाना बनाती है। जिसने अपने विशुद्ध विविक्त अन्त स्वरूपका निर्णय किया है ऐसा पुरुष बाह्य पदार्थोके त्यागमे विलम्ब नहीं करता है। बाह्य त्याग भी है और अन्त त्याग भी है। सबंसे विविक्त अपने परमात्मस्वरूप

का आश्रय-लेना वह भी चल रहा है। त्याग धर्ममें कर्मोंका सम्वर होता है और पूर्व बद्ध कर्मोंकी निर्जरा होती है।

उत्तम आकिञ्चन्यसे परमार्थ आनन्दका अनुभव—आकिञ्चन्य—अहो कितना परमरूप अमूर्त भाव है, सारे सङ्कट इस आकिञ्चन्य भावनासे दूर हो जाते हैं मेरा कही कुछ नही है, बात सत्य है। मानलो शान्ति मिलेगी। न मानोगे तो अशान्ति मिलेगी। वैभव कम है आमदनी कम है उसकी लिन्न लगी है। अरे, उसकी क्या चिन्ता करते हो। अगर सबके प्रति चिन्ता रखते हो तो वह तो खुद पापका उदय है। परिणामोमे मोह लाना यही है पापका उदय। जो भी स्थिति है उसीमे खुश रहो। कदाचित् खोमचा लगाकर भी पेट पालना पड रहा हो, पर जिसने तत्व का निर्णय किया है वह तो अपनी अन्त निराकुलताका स्वाद ले रहा है। वह तो विशिष्ट पुरुष है। बाहरी परिस्थितिसे क्या अन्दाजा लगाते कि अब बडा है यह छोटा है। अरे, बडा पुरुष तो वह है जो ससार, शरीर और भोगोंसे विरक्त है और अपने आत्माके सहज स्वरूपमे हितबुद्धि है। और, सब कुछ वैभव पाकर भी यदि उन बाहरी चीजोका ही महत्व उसने दिया है, अपने आत्माका कुछ भी महत्व नही दिया है, वह तो महा गरीब है। बहुत धन हो जानेके बाद यदि गरीबी आती है तो जीवन सङ्कटमे गुजरता है। जैसे बहुत बडी विद्या पढ लेनेके बाद यदि अपना उस लायक सम्मान दुनियामे नहीं हो पाता है तो वह दुःखी रहता है। मोही पुरुषकी बात कह रहे हैं। निर्मोही ज्ञानी पुरुषकी तो और बात है। इसी प्रकार धन अधिक हो जानेपर जब उसका विनाश होता है तो उसको बडा क्लेश होता है। और, कृपण धनीकी हालत तो बहुत दयनीय है। कोई पुरुष कितना बडा धनी है कृपणकी बात यह कब मालूम होगी जब उसका धन चला जाय, लुटेरे लूट ले जायें। यो उस धनके विनष्ट हो जानेपर उसे बडा क्लेश होता है—उस वैभवको न भोग पाया, न दान कर पाया और न उससे अपना गौरव प्राप्त कर सका, साराका सारा धन यों ही चला गया। तो धनसे महत्त्व मानना यह कोई धर्मकी बात नही है। ज्ञानी पुरुष निहारता है अपने आपमे, मैं अकिञ्चन हूँ, मेरा कही कुछ नही है। इस भावसे वह अपने आपको केवल ज्ञानज्योतिर्मय निरख रहा है।

उत्तम आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्यसे आस्रवनिरोध—ये बडे विनयशील घरके लोग, बडी सभ्यता और सुन्दरतामे रहने वाले परिजन, बडे योग्य बुद्धिमान मित्र ये सब समागम ये सब तो बरबादीके ही कारण बनेंगे, कल्याणमे निमित्त न बनेंगे। और, ये निरपेक्ष बन्धु साधुजन त्यागी पुरुष तत्त्वज्ञानी लोग, इनका सम्पर्क हो सत्सङ्ग हो तो ये कल्याण के निमित्त बन जायेंगे, पर कल्याणमें निमित्त होने वाले देव, शास्त्र, गुरुके प्रसङ्गोंपर इतनी उमङ्ग नहीं है जितनी उमङ्ग घरके परिजनोंपर है। तन, मन, धन, वचन सब कुछ घरके लिए अर्पित है। अरे हमें करना क्या है?

बच्चे अच्छे हो जायें, बच्चोका रोजिगार बढने लगे, ये खुश रहे, हमे तो इतना ही करना है और दो रोटियाँ खा लेना है, बाकी सारा मरना इनके लिए है। कितना समर्पण किया जाता है उन परिजनोपर, जिनमे मोह बसा हुआ है। और, देव शास्त्र गुरु धर्मके प्रसङ्गमे कुछ भी समर्पण करनेकी उमङ्ग नही रखते है। निर्णय रखिये तो जो कल्याणके हेतुभूत है उनका सम्पर्क सत्सङ्ग बढना और जो मोहके कारणभूत हैं उनका यथार्थ ज्ञान रखना इससे आकिञ्चन्य भाव बढेगा। अन्तिम धर्म है ब्रह्मचर्य। अपने आत्मामे लीन होना, रमना जिसमे सर्वविकल्प शान्त होते है। ऐसे इस ब्रह्मचर्य धर्मके पालनसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। इस प्रकार वे समस्त कर्म दूर होते है और यह ज्ञान निरावरण होकर पूर्ण प्रकट हो जाता है।

ज्ञानकी निरावरणताके उपायभूत सवर तत्त्वमें अनुप्रेक्षाका वर्णन — मुख्य प्रत्यक्ष सम्पूर्णरूपसे स्पष्ट रहता है, इस स्पष्टताका कारण यह है कि वह अतीन्द्रिय हुआ करता है, इन्द्रियसे उत्पन्न नही होता, स्वत ही आत्मासे उत्पन्न होता है। स्वय आत्मासे उत्पन्न होता, इन्द्रियादिक किसी भी परतत्त्वकी पराधीनता इस मुख्य प्रत्यक्षमे नही आती इसका कारण यह है कि ज्ञान निरावरण है। ज्ञानपर किसी भी प्रकृतिका आवरण नही है। ज्ञान निरावरण है। इसका कारण यह है कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप सामग्री विशेषसे इन आवरणोका प्रक्षय हुआ है। तो इस प्रसङ्गमे इस आशङ्कापर कि कर्मोका विशेषरूपसे क्षय कैसे हो सकता है, बताया जा रहा है कि सम्वर भावके कारण नवीन कर्मोंका आना रुक गया और जिन परिणामोसे सम्वर भाव होता है उन्ही परिणामोसे कर्मोंकी निर्जरा भी हो गई तो सवरपूर्वक निर्जरा होती रहनेसे इसका विशेष क्षय हो जाता है। तो सम्वर भावके प्रकरणमे अब अनुप्रेक्षाका वर्णन चलेगा। अनुप्रेक्षा कहो अथवा भावना कहो - एक ही तात्पर्य है। अनुप्रेक्षा शब्दका अर्थ है —अनुप्र ईक्षा। जैसे आत्माका हित हो उसके अनुसार प्रकर्षरूपसे उत्तम विधिसे तत्त्वका ईक्षण करना, निरीक्षण करना सो अनुप्रेक्षा है। भावनाका अर्थ है कि ये स्वरूपकी भावना करना, बारबार चिन्तन करना कि जिससे परपदार्थोंमे उपेक्षा हो और अपने आत्माके विशुद्ध चैतन्यस्वरूपमे रुचि बढे उसका नाम है भावना। ये अनुप्रेक्षाये बारह होती है अनित्य, अशरण, ससार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि आश्रव, सम्वर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्मभावना।

अनित्यभावनामे दृश्यनिरीक्षण—यह ज्ञानी पुरुष अनित्य भावनामे यह निरीक्षण कर रहा है कि जगतमे जितने भी दृश्यमान पदार्थ है, जिनको निरखकर अन्तरङ्गमें राग और द्वेषकी उत्पत्ति हुआ करती है। ये सारे समागम पर्याय हैं। ये मूल द्रव्य नहीं हैं किन्तु यह द्रव्य इस परिणमनमे आया हुआ है। और जितने परिणमन होते है वे सब विनाशीक होते है। तो परिणाम दृष्टिसे यह सारा पदार्थ विनश्वर है, जो नष्ट हो जाने वाली चीज है, जिसका सदा सयोग, रह नही सकता उससे लगाव

क्यो समाना ? अनित्य वस्तुमे रागभाव करनेका फल क्लेश ही है। जैसे परिवारमें वगते ही है कि जब तक समागम है जब तक उनमे लगाव है, मोह बडा रह है तब तक बडा सुख मानते हैऔर जब उनका वियोग होता है तब फिर ये कितना तकलीफ मानते हैं। जिन पदार्थोंका सयोग हुआ है उनका वियोग नियमसे होगा। इसमे किसी का न समर्थन चलेगा न किसीका बुद्ध वडप्पन चलेगा। इस निगाहमें अमीरी गरीबी ज्ञानी मूर्ख सब एक मकान है। सभीके समागम नियमसे नष्ट होंगे। तो ऐसे अनित्य पदार्थोंमे उपेक्षा करके अपने आपमें बसे हुए उस नित्य चिदानन्द स्वरूपकी दृष्टि करना इस परिणामसे नवीन कर्मोंका आस्रव रुकता है और पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा होता है।

अशरणभावनामे तत्त्वनिरीक्षण—अशरण भावनामें ज्ञानी यह निरख रहा है कि जगतमें कोई भी पदार्थ मेरे लिये शरण नहीं है। जिसको भी अपनी शरण समझकर उसके पास पहुँचा, उसमे राग बढाया उसके लिये अपना सारा समर्पण भी कर दिया फिर भी वहासे धोखा ही मिला। उससे शरण नहीं मिला। बाहरमें कोई भी शरण नहीं। चक्रवर्तियोंकी सेना जहाँ करोडो पदाति होते हैं लाखों घोडा हाथी होते है बहुत बडा दल बल होता है, इतना बडा भी वैभव मरण समयमें सहाय नही हो सकता। बडे आरामके साधन भी बना लिए हों बडी अच्छी कोठी, बडा दृढ रोजिगार सब तरहकी सुविधायें भी बना ली हों, पर मरण समयमें किसीकी भी सिफारिस नही चलती है। बाहरमे कोई शरण नहीं है और अन्तरङ्गमें देखते हैं तो यह मरण ही कुछ नहीं। यह जीव है सत् है, शाश्वत है अपने गुणोंमें परिपूर्ण है, अपने सर्वस्वको लिए हुए है। यह यहा न रहा और कहीं चला गया, इसका मरण क्या ? इसका शरण यह स्वय है। अपने आपके स्वरूपकी ओर दृष्टि लगाये तो खुद ही खुदका शरण मिलता है। ऐसे इस ज्ञायक स्वभावी निज अन्तस्तत्त्वकी शरण गहनेके प्रसादसे आस्रवका निरोध होता है और पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा होती है।

ससारभावनामे तत्त्वनिरीक्षण – ससार भावनामें यह जीव ससारकी दुर्गतिके प्राणियोको देख रहा है कि सब दुःखी हैं, ससार ही दुःखमय है। किसका नाम सुख रखें ? जिस किसीका भी नाम सुख रखगे वह तो केवल काल्पनिक सुख है। वह विघट जायगा, जो कल्पना बनी है जिस कल्पनाके कारण मौज माना है, जब वह कल्पना ही न टिक सकेगी तो बाहरी पदार्थ तो क्या टिकेंगे। सुख कहीं नहीं है, जिसको सुख माना है वह दुःख है। लोग भी ऐसा भी कहते हैं कि ससारमें दुःख तो पर्वत बराबर है और सुख है राईके दाने बराबर, तो राईके दाने बराबर भी सुख नही है जिसे सुख माना है वह भी आत्माके क्षोभकी एक अवस्था है। किसीने खुश होकर उस क्षोभका अपनाया तो किसीने दुःखी होकर उस क्षोभको अपनाया, हर्ष और विषाद दोनोंमे क्षोभ बसा हुआ है। शान्ति नहीं है। तो ससार समस्त दुःखमय है, पर अन्तरङ्गमे निरखो— यह आत्मस्वरूप यह केवल ज्ञानमय है, यह दुःख रहित है, इसमे किसी

भी प्रकारकी आकुलता नहीं है। ऐसे निःसार निर्मलेश आत्मतत्त्वकेआश्रयसे आश्रव का निरोध होता है और वधे हुए कर्मोंका विनाश होता है।

एकत्व व अन्यत्वभावनामें तत्त्वनिरीक्षण एकत्व भावनामें इस जीवने अपने आपमे विराजमान शुद्ध एकत्वका दर्शन किया है, मैं केवल ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, इस मुझके साथी ये रागद्वेष भी नहीं, जिन रागद्वेषोमे हम रमते है ये रागद्वेष होते हैं और होनेके साथ ही मिट जाते है फिर नये रागद्वेप होते हैं, इस रागद्वेषकी परम्पराने हमे हैरान किया है, यदि परम्परा न बने और रागद्वेष आये तो चाहे जो आयें जो आयेंगे सो मिटेंगे नये नये रागद्वेप न आयें तो आनेका कोई क्लेश नहीं है, आये है सो जायेंगे ये रागद्वेष भी मेरे साथी बनकर न रह सकेंगे। मेरी कल्पना ये मेरा मन भी तो मेरा साथी बनकर नही रह सकता। ऐसा मैं अपनी इन्द्रिय और मनमे भी परे केवलज्ञानानन्दस्वरूप हूँ उस सत्का जिसने आश्रय किया है ऐसा पुरुष ससारके समस्त सङ्कटोका क्षय कर देता है, उसके नवीन कर्मोंका आस्रव रुकता है और पूर्व कर्मोंकी निर्जरा होती है। अन्यत्व भावनामे इस ही एकत्वको प्रतिलोमरूपसे भाया गया है। मेरा कही कुछ भी नहीं है, सब मुझसे निराले है। जिन्होने अपने द्रव्य, क्षेत्र काल, भावरूप अपने ही प्रदेशमय, अपने ही गुणोमय निज तत्त्वको निरखा है वह इस ममको जानता है कि मेरेसे ते समस्त पदार्थ अत्यन्त बाह्य है परिजन, मित्रजन रागके कारणभूत चेतन अचेतन पदार्थ ये सब मेरे स्वरूपसे निराले हैं, ये सब जुदे है, इनमे मेरा कही कुछ नही है। इस भावनाके प्रसादसे परद्रव्योमे उपेक्षा होती है और अपने आपमे बसे हुए चिदानन्दस्वरूप एकत्व स्वभावका आश्रय लिया जाता है, उसके कर्म दूर होते है।

अशुचि भावनामे तत्त्वनिरीक्षण अशुचि भावनामे ज्ञानी चिन्तन करता है- ये समस्त शरीर अत्यन्त अशुचि हैं जिनमे इष्टबुद्धि करके ये मोही प्राणी उन्मत्त हो जाते हैं अपना सर्वस्व समर्पण कर देते है दीन बन जाते हैं, रागदामे जलते हैं। पौराणिक कथा है, एक राजपुत्र सेठकी बहूको देखकर कामसे व्यथित हुआ और दासो को भेजकर कहलवाया। वह सेठानी चतुर थी। उसने खबर देदी कि १५ दिनके बाद मे तुम आ जाना। वह राजपुत्र १५ दिनके बाद आया। उसी १५ दिनके बीचमे उस सेठकी बहूने क्या किया रोज जुलाब लेती रही और एक मटकेमे शौच करती रही। १५ दिनके जुलाब दस्तोमे वह अत्यन्त दुर्बल हो गई, हड्डियां झलकने लगी शरीर अत्यन्त कुरूप, पीला पड गया। राजपुत्र जब आया तो उस बहूको देखकर बडा आश्चर्य चकित हुआ अहो मैंने तो किस रूपमे देखा था अब यह किस रूपमे है। तो वह बोलती है कि आप चकित मत होओ। हमारी आपसे बहुत प्रीति है। आप चकित क्यो हो रहे हैं। जिस रूपपर आप मुग्ध थे चलो वह रूप हम तुम्हें दिखाये और तुम उस रूपका खूब भोग करो। बहू राजपुत्रको उस मटकेके पास ले गई और

खालकर बताया कि देखो इसमें भरा है मेरा रूप। राजपुत्र शर्मिन्दा होकर वापिस चला गया। तो शरीरपर जो रूप है कान्ति है वह है क्या ? शरीरमे भरे हुए मल-मूत्र खून आदिक अशुचि पदार्थ हैं। उनका ही तो ढेर है यह शरीर और है क्या ? तो ये सब शरीर अशुचि है। अन्दर निरखो तो अत्यन्त शुचि पवित्र मेरे आत्माका चिदानन्द स्वरूप है जिसकी वृत्ति है केवल जानना। उससे पवित्र हम लोकमे और क्या देखें। जहाँ इतना बड़ा वैभव कि लोकालोक व्यापक बन गया इससे और विशेष महत्त्वकी बात और क्या निरखी जाय ? अपने उस पावन स्वरूपकी भावना करके यह ज्ञानी जीव आश्रवका निरोध करता है और कर्मोंका नाश करता है।

आस्रव व संवर भावनामे तत्त्वनिरीक्षण आश्रव भावनामे यह ज्ञानी भावना कर रहा है कि रागद्वेष मोह परिणाम आत्माके अत्यन्त क्लेशरूप हैं। इसके ही कारण ससारमे भटकना पडता है, जन्म मरणके चक्कर लगाने पडते हैं। यह बहुत दुखदायी है। इसके ही कारण नवीन कर्म आया करते हैं। यह आश्रव हेय है। रागद्वेष मोह भाव हेय हैं। उपादेय तो आत्माका वीतराग विज्ञानस्वरूप है जिसमे विशुद्ध प्रकाश है और सत्य निरपेक्ष आनन्द है ऐसा आत्मस्वरूप ही उपादेय है। इस भावनाके प्रसादसे भी आश्रवनिरोध होता है। सम्वर भावनामें यह ज्ञानी पुरुष चिंतन कर रहा है आश्रवका रुक जाना ही आत्महित है। ज्ञान और वैराग्यके बलसे यह रागादिक भावको आश्रव और द्रव्यकर्मोंका आश्रव रुकता है। मेरे लिये ज्ञान और वैराग्य ही शरण है। जब जब भी क्लेश होता है तब तब भी कोई चिन्ता सताये तो ज्ञानस्वरूप अपने आत्मतत्त्वकी सुध लें और मानले कि मैं तो ज्ञानमात्र हूं, मेरे पर कुछ भार ही नहीं है। यह स्वप्नकी दुनिया है, जिसमे अपना चित्त फसाकर हम अपनेको भारसहित मानते हैं। मैं निर्भार ज्ञानस्वरूप हूँ। इस भावनाके प्रसादसे कर्मोंका आना रुकता है और बद्ध कर्मोंकी निर्जरा भी होती है।

निर्जरा भावनामे तत्त्वनिरीक्षण—निर्जरा भावनामें यह निरखा जा रहा है कि इच्छाका निरोध करनेसे, रागादिक भावनाओंकी अपेक्षा करनेसे इच्छा रहित जो आत्मस्वभाव है उसका अवलम्बन लेनेसे पहिलेके बंधे हुए कर्म झडते हैं। कर्मोंके झडनेमे ही आत्माको शान्तिका, मुक्तिका लाभ मिलेगा। जीव चाहे कहीं भी गुप्तरूप मे भी किसी भी पाप कर्मको करे तो कर्म वहाँ यह नहीं निरखते कि यह गुप्तरूपमे करता है। बन्धन वहाँ ही हो जाता है। और, जो कर्म बंधे हैं वे कर्म उदयमें आते हैं तब जीवको क्लेश भोगना पडता है। विरला ही कोई पवित्र जीव होता है जो किए हुए कर्मोंका फल देनेसे पहिले भी काट दे। उस विरलेको छोडकर शेष समस्त जीव इन कर्मोंके उदयमे क्लेश भोगा करते हैं। कर्मोंकी निर्जरामे ही आत्माका हित है। ऐसी भावना वाले ज्ञानीके कर्मोंका आस्रव रुकता है।

लोक एव बोधिदुर्लभ भावनामे तत्त्वनिरीक्षण लोक भावनामे ज्ञानी

इस विशाल लोकको निरख रहा है और सोच रहा है कि इस जीवने निजकारण परमात्मतत्त्वकी सुध नहीं की इस कारण इस लोकमें सर्वादेशोमे अनन्त बार यह जन्म-मरण करता आया। जब अज्ञानभाव हटे और आत्माका चित्त विकसित हो, तब लोकका यह भ्रमण, यह जन्ममरणका चक्कर समाप्त हो सकता है। यो यथार्थ निर्णय करके तत्त्ववेदी महात्मा अपने उस सहज ज्ञानस्वभावका आलम्बन करता है जिसके प्रतापसे कर्मोका आश्रव रुकता है। बोधिदुर्लभ भावनामे अपनी वर्तमान परिस्थितिको देख रहा है कि यह कितनी दुर्लभ चीज थी जो प्राप्त करली गई है। ससार में कैसे कैसे विचित्र जीव हैं– एकेन्द्रिय, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, कीडा-मकोटा, पतगे मक्खी मच्छर, पशु पक्षी आदिक कितनी ही तरहके देहधारी हैं, उन सब जीवोके मुकाबलेमे हम आपका कितना श्रेष्ठ जीवन है। कितनी कला, कितना ज्ञान, कितनी बुद्धि प्राप्त हुई है। अपने दिलकी बात दूसरोंसे बडे साहित्यिक ढङ्गसे भी बता सकते हैं, दूसरेकी बातको भी समझ सकते हैं। यह बात इन पशु पक्षी कीडा मकोडोमें कहाँ है ? कितना दुर्लभ मानव जीवन पाया है तिसपर भी दुर्लभ चीज पाया है उत्तम जाति, उत्तम कुल, उत्तम देश आदि। इन सभी दुर्लभ चीजोको पाकर आत्मरक्षामे इनका उपयोग करलें तो इसमे आत्म कल्याण है। यो जानकर अपने उस शुद्ध चिदानन्द स्वरूपकी ओर दृष्टि करके अपनी रक्षा करना है। इसमे कर्मोके आश्रव रुके, पूर्वबद्ध कर्म झड़े, यही आत्माकी रक्षा है।

धर्मभावनामे तत्त्वनिरीक्षण व धर्मके प्रतापसे ज्ञानकी निरावरणता— ज्ञानी पुरुष धर्म भावनाका चिन्तन कर रहा है। मेरे आत्माका धर्म यह एक शाश्वत ज्ञानानन्द स्वभाव है। इस धर्मकी दृष्टि करनेसे धर्मका पालन होता है। इस धर्मपालन के समय रहे सहे रागभाव चलते हैं तो देव, शास्त्र, गुरुके प्रसङ्गमे चलते हैं तब इसके धर्मध्यान होता है। उस धर्मध्यानके प्रतापसे उत्तम देवोमे जन्म होता, अहमिन्द्रोंमे जन्म होता और उसी सिलसिलेमे वहाँसे चलकर मनुष्य होकर तपश्चरण करके निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं। धर्मका अतुल प्रताप है। लोकमे हम आपका मात्र धर्म ही शरण है। उस धर्मका सहारा लें। धर्मके सहारेका अर्थ यह है कि अपने आपका जो स्वरूप है, जिसमे रागकी तरग नहीं है। केवल एक प्रतिभासमात्र है। ज्ञाताद्रष्टा रहने वाला है ऐसे शुद्ध तत्त्व आनन्दस्वरूपका आलम्बन ले, यहा अपनेमें ही ऐसी दृष्टि लगायें तो यह कहलायेगा धर्मपालन। इस धर्मपालनके प्रतापसे नवीन कर्मोका आश्रव रुकता है और पूर्वबद्ध कर्म दूर होते हैं. यो जब समस्त कर्म दूर हो जाते हैं तो ज्ञान निरावरण हुआ, फिर इन्द्रियकी कोई अपेक्षा न रही, यों निःशेष रूपसे निर्मल ज्ञान प्रकट होता है, वही मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है।

ज्ञानकी निरावरणताकी विधिका प्रकरण- ज्ञानके दो भेद होते हैं—एक प्रत्यक्ष ज्ञान दूसरा परोक्ष ज्ञान। जो स्पष्ट ज्ञान है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। स्पष्ट ज्ञानके

दो प्रकार हैं—एक एकदेश स्पष्ट और दूसरा सर्वदेश स्पष्ट । जो ज्ञान एकदेश स्पष्ट है उसे साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं । जिसके सम्बन्धमे हम आप बोला करते हैं कि हमने प्रत्यक्ष देखा, प्रत्यक्ष सुना वह प्रत्यक्ष वास्तवमे तो परोक्ष है किन्तु उस ज्ञानमे कुछ एकदेश स्पष्ट विदित होता है इस कारण उसका नाम सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। जो सर्वदेश स्पष्ट होता है उसका नाम है मुख्य प्रत्यक्ष । मुख्य प्रत्यक्ष इन्द्रियातीत है। ऐसा ज्ञान जो सर्वदेश उत्पन्न हो वह इन्द्रियके द्वारा उत्पन्न नही हो सकता, किन्तु इन्द्रियके व्यापारसे रहित केवल एक आत्माके आलम्बनसे ही स्पष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है अतएव यह मुख्यज्ञान अतीन्द्रिय है और निरावरण भी है। ज्ञानपर आवरण कर्मोंका है । कर्मोंका आवरण दूर भी हो सकता है या नही । इस शङ्कापर यह प्रसङ्ग चल रहा है कि आगामी जो कर्म आ सकते हो न आयें अथवा कर्मोंका आना रुक जाय और सचित कर्म झड जायें तो इस विधिसे निरावरणता हो सकती है । अर्थात् सम्वर और निर्जरा इन दो तत्त्वोके प्रसादसे मोक्ष अवस्था हो सकती है ।

सवरतत्त्वके प्रसङ्गमे परीषहविजयका वर्णन — मोक्षके प्रमुख उपायभूत सम्वरके प्रसङ्गमे परीषहजयोका वर्णन चल रहा है । २२ प्रकारके परीषहोका विजय होनेसे कर्मोंका आश्रव रुकता है और सचित कर्मोंकी निर्जरा होती है। उनके नाम हैं— क्षुधा, पिपासा शीत, उष्ण दसमशक, नग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन । इनमे क्लेश भरा हुआ है। इन सर्व परीषहोपर विजय प्राप्त कर लेना, इन परीषहोके आनेपर अपनेमे क्षोभ न आने देना, इस हीका नाम है परीषह-विजय । परीषह विजय एक बहुत बडा आत्मबल है जिस विजयके प्रसादसे कर्मोंका सम्वर और निर्जरा होती है । आत्मसाधनाका बहुत बडा महत्त्व है । लोकमे तो मोही मिथ्यादृष्टि अज्ञानी स्वार्थी विषयानन्द लोलुपी पाप कलङ्कसे भरे हुए परिणाम करके मलिन हैं, उन लोगोको खुश करनेके लिए उनकी खुशामद करना, सेवा करना यह उद्देश्य तो एक बहुत अधम भाव है मोक्षमार्गकी दृष्टिसे । मोक्षमार्गमे तो सबसे निपाले अपने ज्ञायकस्वरूप अन्तस्तत्त्वकी उपासनाके बलको महत्त्व दिया है । यह बल परीषह विजयसे प्रकट होता है । परीषहविजयपर अधिकार साधु सतोका हुआ करता है तो उस ही दृष्टिसे परीषह विजयका अर्थ समझना चाहिए ।

क्षुधापरीषहविजय — कोई साधु एक निर्दोष विधिसे आहारार्थ चर्या कर रहा है । कितने ही दिनोका उसका उपवास है, पर कदाचित् उस भिक्षाका लाभ न हो, ऐसी विधि न जुडे, लोगोका भक्ति सम्मान उतना न उसकी समझमे आये तो आहारका वहा अलाभ रहता है । लेकिन, आहार आदिक न मिलनेपर भी वह सत अपने कर्तव्यमे जरा भी उत्साह नही भग करता, स्वाध्याय और ध्यानकी भावनामें तत्पर रहता है । क्षुधा वेदनासे यद्यपि शरीर क्षीण हो गया है। नही भी भोजनकी

प्राप्ति हुई। तो भोजनकी प्राप्तिसे भी अधिक गुण भोजन न मिलनेमे समझता है और ऐसी क्षुधा की वेदना आनेपर भी उसके प्रति चिन्तन नही करता वे, अपने समताको परिणामको सम्हाले रहता है। यह है साधुवोका क्षुधापरीषह विजय। आहार न मिलनेके बाहरमे कई कारण होते है। एक कारण तो यही है कि नवधाभक्तिको यदि कोई गृहस्थ भली प्रकार प्रकट नही कर सकता तो साधु जन वहा आहार नही लेते। कोई शङ्का कर सकता है कि यह तो उनको एक अभिमानकी बात है कि पूरी भक्ति न मिले तो वहा आहार न ले यह शका ठीक नही है, क्योकि साधुजनोके पास और कोई दूसरा तरीका नही है कि वे यह जान सके कि यह भोजन पवित्र है और भोजन देने वालोका हृदय पवित्र है और बडे भावोसे उदारतासे यह हमे पडगाह रहा है, इसके जाननेका साधुवोके पास और कोई उपाय नही है। वे मौनसे चर्या करते हैं। बोलते हो तो पूछ ले कि अमुक चीज कितने दिनोकी है। शुद्ध बना या नही बना। तो मौनसे चर्या करने वाले साधुजनोके पास सिवाय नवधाभक्तिको ठीक निरख ले, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नही है कि जान सकें कि आहार भी शुद्ध है और दाताके भाव भी शुद्ध हैं इसकी परीक्षा वे उस भक्तिसे ही कर पाते हैं। जिनको विधि मालूम है उनके मन, वचन, कायकी चेष्टासे वे जानते हैं कि यह आहार निर्दोष है। कभी नवधाभक्तिमे कमी आये तो उससे वे जानकर कि यह आहार पवित्र नही है, आहार नही करते, दूसरा कारण कोई अन्तराय आ जाय अथवा कोई रोक दे, कुछ भी आहारके प्रकरणमे निषेध वाचक शब्द कह दे तो आहार नही लेते। जैसे गृहस्थजन भी तो भोजन करते समय यदि कोई उन्हे टोक दे कि अब यह न चाहिए अब यह न चाहिए अब अमुक चीज दो। किसी चीजका निषेध किसी भी शब्दसे करे तो गृहस्थ भी भोजन नही कर सकता। तीसरा कारण है- वृत्तिपर संख्यानकी विधि न मिले। जो अटपटी आखडी लेकर उठे है उसकी पूर्ति न हो सके तो आहार नही लेते है। अनेक कारण होते है। तो क्षुधाकी वेदना भी है। आहारका लाभ भी नही हुआ तिसपर भी ग्लानि न करना और अपने आत्मध्यानमे उत्साह बनाना यह है क्षुधापरीषहजय।

तृषापरीषहजय –तृषापरीषहजय अद्भुत ज्ञानबलको प्रकट करता है। कैसी ही गरमी है फिर भी अध्यात्मयोगी मत स्नानका परिषेकका भाव भी नही रखते है। पक्षियोकी तरह अनियत स्थानमे जहा चाहे विहार करते हैं। जहाँ पिपासाके कारण पित्तज्वर आदिक अनेक रोग हो गए है ऐसी पिपासा रूपी अग्निकी शिखाओको जो धैर्यरूपी ज्ञानजलसे बुझा देते हैं और आत्महितके कर्तव्यमे विचलित नही होते, अपने आत्मध्यानमे सावधान रहते हैं, ऐसे सन्तोका यह है तृषापरीषहजय। जब तक अपने तत्त्वज्ञानकी दृढ भावना न हो तब तक इन परीषहोको भली भांति कोई जीत नहीं सकता।

शीतपरीषहजय—कितना ही शीतकाल पड रहा हो फिर भी कोई साधु

वृक्षके नीचे कोई खुली शिला तलपर विराजे हैं, बर्फ, ओस भी गिरे तो भी उसके प्रतिकारके सबधमे कुछ चिन्तन नहीं करते। कैसी धुन है उन तत्त्ववेदियोकी कि ऐसे दु:सह परीषह हैं फिर भी उनमे रच भी विचलित नहीं होते। जो पुरुष उस तत्त्वकी दृष्टि नहीं कर पाते उनको ये सब अचरजकी बातें मालूम होती हैं। इतना तो गृहस्थो के भी देखा जाता है कि किसी दिन यदि विशेष आय हो रही हो, ग्राहकोंका तांता लगा हो, दूकान अच्छी चल रही हो तो भूख प्यासकी सुध भूल जाती है। तो यह तो सिद्ध है कि कोई धुन ऐसी होती है कि जिसमे ये वेदनायें सब आसानीसे निकल जाती हैं। फिर साधुजनोंको तो अपने आपमें बसे हुए कारण परमात्मतत्त्वकी धुन है उसे स्वय एक अलौकिक आनन्द प्रकट हो रहा है, तो वे इन परीषहोंको विजय करनेमें समर्थ होते हैं।

उष्णपरीषहजय कैसी ही गर्मी पड रही हो, कुवोंमें जल नहीं रहा, ऐसी तीव्र गर्मीके समयमे जहाँ गला, तालू, मुख सूख रहा है क्योंकि यह तो शरीरकी बात है, उसपर साधुका क्या वश, फिर भी साधु अपने उस तत्त्वज्ञानके आनन्दसे आनन्दित रहकर इस ओर दृष्टि नही देते। उस उष्ण वेदनाके प्रतिकारमें समर्थ बहुत गृहस्था-वस्थामें साधन जुटाये थे पर उन साधनोंका अब ख्याल नही करते और अपने इस तत्त्वज्ञानरूपी शीतल जलमे समुद्रमें अवगाह रहे हैं, ऐसे साधुजनोंके उष्णपरीषह विजय होती है।

दशमशकपरीषहजय —एक कठिन परीषह है दशमशक। डास, मसक, मक्खी, चीटी बिच्छू आदिक कोई भी जीव जतु डस रहा हो, काट रहा हो, उनसे जो बाधा हो रही है उस बाधाके प्रतिकारकी वाञ्छा भी नही है योगीके और न उस बाधाको वे मन, वचन, कायसे दूर करनेका यत्न करते। केवल एक निर्वाण प्राप्तिका ही जिनके सकल्प बना हुआ है ऐसे पुरुषोंके द्वारा जो दंशमशककी वेदना सह ली जाती है, उस उपद्रवमे रच खेद नही मानते हैं वहाँ होता है दशमशकपरीषहजय। बताते हैं कि जब अंग्रेजी राज्यमे क्रान्तिका समय आया तो भगतसिहको गिरफ्तार किया गया और गुप्त रहस्य जाननेके लिये उनके अगुलीके नीचे एक मोमबत्ती जलाई गई, तिसपर भी गुप्त रहस्यको भगतसिहने नही बताया। तो धुन ही तो है। उनकी धुन और किस्मकी थी। तो अपनी धुनमें रहकर ऐसे कठिन परीषह भी सह लिए जाते हैं। और, जहाँ शरीरसे भिन्न केवल आत्मतत्त्वके अनुभवनकी ही धुन बस रही हो वहाँ तो यह परीषहविजय आसान रहता है। जब तक परीषहविजयकी कुञ्जी नहीं प्राप्त कर ली जाती तब तक ये सब आश्चर्यकी बातें लगती हैं। कुञ्जी है अपने आनन्दस्वरूपका दर्शन और उसमें रमण करनेकी धुन। जिसके कारण यह शरीर ऐसा निराला विदित होने लगता है जैसे कि और दूसरे शरीर।

नाग्न्यपरीषहजय—एक परीषह है नग्नपरीषह। जैसे उत्पन्न हुआ बालक

निर्विकार होता है, निष्कलङ्क होता है इस प्रकारका जिन्होंने रूप धारण किया है, जो किसी पापक छुपा नही सकते निष्परिग्रह है निर्वाणकी प्राप्तिके लिए साधनभूत समझकर जिन्होंने यह नग्न अवस्था धारण की है, मनमे विकार जिनके रच नही है, बाहरके शरीर, स्त्रीके रूप अत्यन्त अशुचि है, इस प्रकार कुरूप रूपसे भावना करने वाले साधुजनोके जो रातदिन अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन है ऐसी नग्नावस्थाको धारण करके भी विकार न आने देना यह है नाग्न्यपरीषहविजय।

अरतिपरीषहजय — साधुजनोके कितने भी अनिष्ट समागम आये फिर भी इष्ट बुद्धि जोडनेके लिए उत्सुक नही रहते, वे गानोमे रुचि रखे, रागके भजन सुननेमे रुचि रखे जिनमे एक रा ा रस बढता हो ऐसी वृत्ति साधुवोके नही होती है। वे विकट-विकट स्थानोंमे रहा करते जहाँ लौकिकजन निवास भी नही कर सकते, वृक्षकी गुफावोंमे, सूने घरोमे रहकर भी वे स्वाध्यायसे रंचमात्र भी अरति नही करते हैं। ऐसे अनिष्ट प्रसङ्गोमे भी कभी उन भोगोका ध्यान नही करते उन आरामोका ध्यान नहीं करते जो बहुत-बहुत आराम भोगा है घरमे रहकर। उन सबका ख्याल न रखकर केवल एक विशुद्ध ज्ञान ज्योतिमात्रके अनुभवकी ही जिनके चाह लगी है ऐसे पुरुष अनिष्ट प्रसङ्गोमें भी खेद न मानते है, इसे अरतिपरीषहजय कहते है। देखिये -कर्म बन्ध तो जीवके रागद्वेष मोहभावका निमित्त पाकर होता है। इन ज्ञानबली पुरुषमें रागद्वेष मोह कहाँ उत्पन्न हो रहे हैं फिर बंध कहाँसे हो? ऐसा ही पुरुष परीषह विजयमे निष्णात होता है।

स्त्रीबाधापरीषहजय — स्त्रीबाधापरीषह — कदाचित् जङ्गलके स्थानमें भी एकान्तमे या अन्यत्र भी कहीं नवयौवन वाली स्त्रीके द्वारा भी कोई रागरङ्गकी बातें हो, या कोई देवांगना अपना सुन्दर स्त्रीरूप रखकर किसी ऋषिका चित्त डिगाना चाहती हो तो उस समय भी ऐसे साधु जिन्होने इन्द्रियके व्यापारोका सकुचित् कर दिया है वे स्त्रीकी राग भरी बाते सुनकर, उनकी मुस्कान निरखकर उनके विलास सहित कटाक्षको देखकर, उनके प्रहासको देखकर रंचमात्र भी उद्वेग नही करते उनमे काम व्यथा नहीं होती, ऐसे साधुओंके स्त्रीपरीषह विजय होती है, कोई यदि ऐसा ध्यान करले कि कोई मनुष्य गाली दे रहा है तो वह तो हमारी परीक्षा कर रहा है, ख्याल कर लेनेसे उसपर क्रोध नही आता। यों ही सर्वत्र ख्याल करलो जहा कुछ भी घटना आपके समक्ष कोई घटाये बस यही सोचलें कि यह तो मेरी परीक्षा करनेके लिए ऐसी चेष्टा कर रहा है, इतनी बात सोच लेनेसे ही कषाय मद हो जायगी। तो यह भी ध्यान करलें कि ये देवांगनायें अथवा कोई मित्र मेरी परीक्षाको तो नहीं आया तो इतनेसे ही उसका विचार परिवर्तित हो जाता है, ये साधुजन कभी विकल्पमे भी आयें तो इस प्रकारके शुभ विकल्प करते है, और मुख्यतया तो अपने आत्मस्वरूपकी दृष्टि रखकर वहाँ आनन्दित रहते हैं। ऐसे साधुवो के स्त्रीपरीषह विजय म ़ ़

हृती है।

चर्यापरीषहजय चर्यापरीषहजयमे संत योगी चलते समय जो तकलीफ होती है—कांटा चुभे, पृथ्वीमे जमे हुए तृण चुभें, लेकिन वे उसमे अपने चित्तको म्लान नही बनाते। जिन्होने दीर्घकाल तक गुरुकुलमे रहकर ब्रह्मचर्यकी सेवा की है बंध और मोक्षके तत्त्वका जिन्होने भली प्रकार निर्णय किया है, संयमके साधन देव शास्त्र गुरु, आत्मतत्त्व इनकी भक्ति करके जिन्होंने आत्माको पवित्र बनाया है ऐसे मुनि गुरुजनोसे आज्ञा लेकर कभी विहार भी करें तो अनेक तपश्चरणोमे वे डिगते नहीं, और ईर्यासमितिसे संयमकी रक्षा करते हुए विहार करते हैं। तो कुछ भी चुभे पैरमें फिर भी वे खेद नहीं मानते और न यह ध्यानमे लाते कि मैं पहले ऐसे रथोंपर चलता था, कारोंमे घूमता था, विमानोंमे जाता था कभी पृथ्वीपर पैर नहीं रखा, मखमलके गद्दोंपर कदम रखता था, इस आरामको भी जरा रंचमात्र भी नहीं सोचते और यथा समय अपने आवश्यक धर्मकार्योंमे सावधान रहते हैं ऐसे साधु संत जनोंके चर्या परीषह विजय होती है।

निषद्यापरीषहजय – निषद्यापरीषहजय एक आसनसे बैठनेका परीषह सहना निषद्यापरीषहजय है। संतजन श्मशानमे, किन्ही गुफाओं कन्दराओंमे अथवा अन्य भयानक स्थानोंमे पहुँचकर जिस आसनमे बैठकर ध्यान लगाया बस उसी आसनमे बैठे रहते हैं, वहाँपर सिंह व्याघ्र आदिककी गर्जनाके शब्द भी सुन पड रहे हों तो भी उन्हे भय नही होता। किसी प्रकारके उपसर्ग होते हो तो भी वे अपने ध्यानमार्गको नहीं छोडते। यों एक क्या अनेक बाधायें वे साधुजन सहन करते हैं। उन साधुजनोके निषद्यापरीषहजय होती है। इन विशुद्ध परिणामोसे कर्मोंका सम्वर होता है, संचित कर्म झडते है। इस सम्वर निर्जराके प्रतापसे कर्मोंका पूर्णक्षय होता है। वहाँ निरावरण अतीन्द्रिय ज्ञान प्रकट होता है जिसे मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

सम्वरतत्त्वमे योगीका शय्यापरीषहजय—ज्ञानका स्वभाव जाननेका है। जाननेमे आते हैं ज्ञेय पदार्थ, सत् पदार्थ। तो जो भी सत् हो वे समस्त ज्ञानमे आ जायें ऐसा ज्ञानका स्वभाव है। किन्तु संसार अवस्थामे यह ज्ञानस्वभाव अपने स्वभावके अनुरूप पूर्ण विकसित नही हो रहा है, इसका कारण है ज्ञानपर लगा हुआ ज्ञानावरण कर्म। जब उस कर्मका आवरण नष्ट होता है तब यह विकास सम्पूर्ण उत्पन्न होता है। वह निरावरणता सम्बर तत्त्व और निर्जरा तत्त्वके कारण होती है। नवीन कर्म न आयें और पूर्वबद्ध कर्म झड जायें इस विधिसे समस्त कर्मोंसे छुटकारा मिल जाता है तो उस ही निरावरणता प्रसङ्गमे सम्बर तत्त्वका वर्णन चल रहा है और उसमे परीषहविजयका प्रसङ्ग है। साधु संतजन ज्ञान ध्यानके तपश्चरणमे रत रहा करते हैं, उनके इस परिश्रमके कारण शरीर थक जाता है। तो एक मुहूर्तको वे खर विषम कठोर, पाषाण किसी भी जमीनपर जो निर्दोष हो उसपर कुछ निद्रा लेते हैं सो भी

निद्रा एक करवटसे लेते हैं और ऐसा निश्चल पडकर लेते कि मानो काठ पडा है अथवा प्राणरहित कोई देह पडा है। इस प्रकार एक करवटसे ककरीली जमीनपर शारीरिक थकान दूर करनेके अर्थ ज्ञानका सस्कार लिए हुए कुछ शयन करते हैं। उस समय कोई उपद्रव भी आये, कोई स्वतरकृत बाधा भी आये तो भी उन समस्त परीषहोको वे समतासे सह लेते हैं। जो सतजन इतने परीषहोसे भी खेद नही मानते, और ज्ञानस्वरूप निज अतस्तत्त्वकी भावनामे प्रसन्न रहते है उन सतोके शय्यापरीषह विजय होती है।

आक्रोशपरीषहविजय - ये योगीश्वर अपने ज्ञानबलसे इतना बलिष्ट होते हैं कि वे दूसरे अज्ञानी जनोके द्वारा कैसी ही गाली दी जानेपर भी चित्तमे खेद नही लाते है कोई दुष्ट जन निन्दाकी बात बोले, असभ्यताकी बात बोले, मर्मभेदी वचन बोले, ऐसे वचन जो क्रोध अग्निकी सिखाको बढा दे लेकिन उन शब्दोमे, उन अर्थोमे उनका चित्त नही लगता। यद्यपि वे योगी इतना बलिष्ट हैं कि गाली देने वालेका मुँह तोड सकते हैं, पर उनके रच भी प्रतिकार करनेकी भावना नही है। वे अपने आप कर्मका भी चिन्तन करते कि ऐसा ही निमित्तिनैमित्तक भाव है कि खोटे कर्म जो किए गए थे पहिले, उनक यह विपाक है। अथवा गाली देने वालेके भी पापकर्म का चिन्तन करते है कि देखो यह बेचारा कितना दुखी है। कितना पापका उदय है कि इस ज्ञानका प्रकाश नही मिल रहा, और इस शरीर जडको ही मुझे समझकर यह गाली गलीज बक रहा है। वे साधु सतजन यो विचार करके उस उपद्रवसे अपना मन फेर लेते हैं, तपश्चरणकी भावनामे रत रहते हैं। कषाय विषका लेशमात्र भी मुझमे आये तो वह महा विष है। उस विषकी कणिकाको भी अपने हृदयमे स्थान नही देते हैं। ऐसे ज्ञानी पुरुषोके आक्रोशपरीषह विजय होती है।

वधपरीषह विजय — जगतमे प्राणी नाना भावोंके होते हैं। साधुवोको भी निरखकर किसीके वैर भाव उमड जाता है तो कोई वैरी उन्हे छेदे काटे, मुद्गरोंसे मारे, कितना ही शरीरपर आक्रमण करे, वध भी करे तो ऐसे हिंसक पुरुषोमे जीवोंमे रच मात्र भी मनका विकार नही करते। उन्हें शत्रु नहीं मानते। कोइ ऐसा अलौकिक ज्ञान प्रकाश होता है जो उन योगीश्वरोको सर्वत्र वही विशुद्ध प्रकाश नजर आता है। मेरा कोई जीव विरोधी नही है। कोई कुछ करता है तो उसके उस प्रकार के कर्मका उदय है, बेचारा विवश है, पराधीन है यो और दयाका भाव लाते हैं। जैसे कोई मां अपने किसी कुपूत बच्चेके द्वारा सतायी भी जाय तो भी उसपर बच्चे जैसी ही बुद्धि रखती है। कोई बच्चा दो चार थप्पड भी मारे, सरके बाल भी नोचे, मुखसे काट भी खावे पर वह मां उस बच्चेपर दया बुद्धि ही करती है। बेचारेके दिमाग कम है, सोच नही सकता, यो अपने पुत्रपर करुणाकी बुद्धि ही करती है इसी प्रकार ये साधु सत जन किसी दुष्ट पुरुषके द्वारा सताये जानेपर भी उस पुरुषमे करुणा बुद्धि

करते हैं। यह बेचारा मोहके वश है, इसे ज्ञान प्रकाश नहीं मिला, बाह्य दृष्टि किए हुए है और दुःखी हो रहा है। यों सताये जानेपर भी उन पुरुषके प्रति योगीश्वर रंच मात्र भी द्वेष बुद्धि नहीं लाते हैं। चिन्तन करते हैं कि यह तो मेरा कमाया हुआ, पाप कर्मका फल है। यह बेचारा क्या करे, और फिर जिस शरीरपर ताडन करनेके लिये यह उताम्र हुआ है यह शरीर तो जलके बुदबुदकी तरह अस्थिर है। वही तो बाधा जायगा। मेरा धन तो सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है, यह तो नहीं घाता जा सकता। ऐसा विचार करने वाले साधुसन्तोके जिनके इतनी समता है कि कोई चन्दनका लेप करता हो अथवा कोई चाकूसे शरीरको छील रहा हो तो भी उनके किसी के प्रतिराग अथवा किसीके प्रति द्वेष नहीं जगता है। उनके तो एक आत्महितकी ही धुनि लगी है। हितमार्ग है समता। वे साधुजन अपने इस समता मार्गसे नहीं डिगते। ऐसे योगीश्वरोंके वध परीषह विजय होती है।

याचनापरीषह विजय आत्महितके भावसे योगी अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग तपका आचरण करते हैं। नाना प्रकारके तप करते हैं। सर्दीमें खुले स्थानमें रहते, गर्मीमें पहाड़ोंपर बैठना, छायारहित वृक्षोंके नीचे रहना, कठिन तप किए हुए और नसाजाल ही जिनपर दिखता है, कठिन रोग भी हो गए हैं प्राणोंका चाहे वियोग हो भी जाय उसका वे इतना ख्याल नहीं रखते, पर किसी भी परिस्थितिमें वे औषधि आहार आदिकी याचना नहीं करते। भिक्षाकालमें भी बिजलीके प्रकाशकी तरह निकल जाते हैं, किसीने भक्ति पूर्वक पडगाहन किया और उन्हें यह जच गया कि इसका हृदय विशुद्ध है और आहार दान देनेका इसका बडा ऊंचा भाव है तो वहां आहार ले आते हैं पर वे किसी चीजकी याचना नहीं करते। ऐसे योगीश्वरोंके यह याचनापरीषह विजय है।

अलाभपरीषहविजय शरीर तो जब तक आत्माका केवलज्ञान नहीं हुआ तब तक आहारके बिना नहीं टिकता, सो संयमकी रक्षा करनेकी वे आवश्यकता समझते हैं, सो वायुकी तरह निःसंग अनेक देशोंमें पर्यटन करनेके कारण जिनका शरीर खेद हो गया है, जिनके एक बारका ही जीवन पर्यन्तको भोजन लेनेका नियम है ऐसे साधुसतजन भिक्षालाभके लिये नगरमें निकले और उन्हें भिक्षाकी प्राप्ति न हो तो उनके चित्तमें संक्लेश नहीं होता और जब आहार लाभसे भी बढकर उस अलाभमें गुण समझते हैं। यह तो मेरा परम तपश्चरण है। परीक्षाके समय यदि उत्तीर्णता होती है तब तो उसकी योग्यता मानी जाती है और परीक्षाके समय वह अनुत्तीर्ण हो समय चाहे अपनी कितनी ही विशुद्ध चर्या बतला रहा हो तो भी समझिये कि उसमें वह योग्यता नहीं है। जैसे कोई गृहस्थ घरके पास मंदिर है, कभी कभी दर्शन करने चला जाता है, तो जब कभी पहुँच भी जाता है, कभी अच्छी तो वह भी कोई खास श्रद्धा नहीं है। कोई आता है परीक्षाका समय, न हो आहार आदिकका लाभ, बहुत

दिनोंके उपवासे भी हैं ऐसी स्थितिमे अलाभमे परमतपश्चरण मानते हुए और आत्म स्वरूपके दर्शनमे सन्तुष्ट हुए योगीके अलाभ परीषह विजय होती है। जैसे किसी कृपण पुरुषको किसी चीजमे कुछ धनका लाभ होता दीख रहा हो तो उस प्रसङ्गमे वह अनेक विपदायें भी सह लेता है, लाभ मिलनेकी निकटता जान करवह सतुष्ट रहा करता है ऐसे ही आत्मीय विशुद्ध आनन्दके अनुरागी योगीश्वरोंके बाह्य परिस्थितिमे कुछ भी विपदा आये वह देख रहा है कि मेरा यह अनन्त आनन्द आने वाला है उस आनन्दके श्रोतभूत शुद्ध ज्ञायकस्वरूप अतस्तत्वका अवलोकन कर रहा है, सन्तुष्ट है।

रोगपरीषहविजय— यह शरीर व्याधियोका घर है। मनुष्य शरीरमे सभी अशुचि पदार्थ भरे पडे हैं लेकिन इसमे विराजमान यह आत्मा गुणरत्नोंका भण्डार है उनके सचयके लिए उनकी वृद्धिके लिए, उनकी रक्षाके लिए वे कभी कभी आहार करते हैं, ज्ञानमात्रको अनुभवमे लेकर आनन्दानुभव करते रहनेकी धुन है, वे आहारमे उत्सुकता नहीं रखते किन्तु शरीरकी परिस्थिति है ऐसी कि कभी आहार लेना पडता, उस आहारको बहुत उपकार वाला इस कारण मानते हैं कि शरीर टिका रहेगा, मेरा ज्ञान भी मेरे अपने स्वरूपमे बसाये रहनेका अवकाश रहेगा तो यो कभी आहार करते है और आहारमे किसीने तत्त्वविरुद्ध भोजन दिया, शरीरमे विषमता हुई, वात आदिक विकार बढ गए और फिर नाना तरहके रोग उत्पन्न हो गए, लेकिन रोगके वशीभूत नहीं होते। उन योगीश्वरोंके ऐसी ऋद्धियाँ है कि जिनका थूक मूत्र, लार आदिक भी किसीके स्पर्श हो जाय तो उसके रोग दूर हो जाते, इतनी बडी ऋद्धियोंके अधिकारी है तो भी वे अपने शरीरसे निस्पृह हैं और अपने रोगोके प्रतिकारकी भी अपेक्षा नही करते। ऐसे योगीश्वरोंके रोगपरीषह विजय होती है।

तृणस्पर्श परीषहविजय एव मलपरीषहविजय शरीरका आराम चाहने वाले लोग तो बडे बडे आरामके साधनोमे रहते हैं, पर साधु सतजन ऐसे वनोमे स्वतन्त्र विहार करते हैं कि हवाके झोंके लगते, कटक भी चुभते, मिट्टीके कण भी चुभते, अन्य अन्य तृण भी चुभते, पर मनमे वे रच भी खेद नहीं लाते हैं, ऐसे तृणस्पर्शकी बाधावोंसे उपेक्षा रखने वाले योगीश्वरोंके तृणस्पर्श परीषह विजय होती है। उनकी इस आन्तरिक भावनासे कर्मोका सम्वर चलता और बँधे हुए कर्म झडते है। मल परीषह विजय यह भी एक कठिन परीषह है। मनुष्य तो दिन भरमे कई बार तेल साबुन लगाकर नहाते है और सुनते हैं कि कोई लोग एक ही नहानमे तीन चार बार साबुन लगा कर नहाते हैं ताकि रच भी मल न रह जाय, पर वे साधु सतजन चाहे पहिले बडे राजा महाराज थे, बहुत बडे आराममे थे पर वे अब जीवनभरके लिए स्नानका त्याग किए हुए हैं, उनके शरीरमे पसीना निकलनेसे उडती हुई धूल भी खूब चिपकी है, खाज भी उत्पन्न हो गई है लेकिन वे अपने शरीरपर आये हुए मलको दूर करनेका सकल्प भी नहीं रखते। वे तो अपने आत्मामें आये हुए मलोंका सम्यग्ज्ञान

चारित्ररूपी निर्मल जलसे ही प्रक्षालन करते हैं, ऐसे योगीश्वर देहके मलसे उत्पन्न हुई पीडाको भी समता से सहन करते हैं और वहाँ रंच मात्र भी खेद नहीं करते। ऐसे पुरुषोंके मलपरीषह विजय होती है।

सत्कारपुरस्कारपरीषहविजय सत्कार सम्मान न हो यह भी एक बड़ा क्लेशका प्रसङ्ग है, अथवा अपमान होना, अथवा सम्मान हो रहा है तो उसमें हर्ष मानना यह भी क्लेश है तथा सम्मान हो रहा है तो उसका भी खेद करना कि क्यों हो रहा है यह सम्मान ? इससे तो मेरा पतन है, किसी तरहका भी न हर्ष हो न विषाद हो यह कर्तव्य है। सबसे बडी कमजोरी यह है कि सम्मान न पानेपर खेद करना, दूसरे नम्बरकी कमजोरी है सम्मान पानेपर हर्ष करना, तीसरे नम्बरकी कमजोरी है अपमान होनेपर खेद करना और चौथे नम्बरकी कमजोरी यह है कि सम्मान होनेपर उसका विकल्प रखना, खेद मानना कि क्यों हो रहा है यह सम्मान, यह तो मेरी बरबादीका कारण है। ये सब अपनी कमजोरीकी बातें हैं। अरे बाहरमें जो हो रहा है वह सब बाहरका है। जो तत्त्वज्ञानी पुरुष है वे तो अपने आत्माके सत्कारमें शान्त रहते हैं, इन बाहरी सत्कारोंमें रंच भी हर्ष अथवा विषाद नहीं करते। जैसे कोई कलाकार कोई चीज बना रहा है तो उसे सफलता मिलती जाती है वैसे ही वैसे वह सन्तुष्ट होता रहता है अथवा जैसे बालक लोग अपनी ड्राइङ्ग तैयार बनाकर फूल पत्तियोंसे खूब सजाकर जब ड्राइङ्ग तैयार कर लेते हैं तो वे बडे सन्तुष्ट होते हैं। इसी प्रकार ये योगीश्वर अपने आत्मस्वरूपमें रमनेकी कला खेल रहे हैं, वे आत्मतत्त्वके चिन्तन अनुभवनमें ही अपना सम्मान समझते हैं ऐसे योगीश्वर सत्कार परीषह के विजयी होते हैं।

प्रज्ञापरीषहविजय —जो पुरुष संसार भोगोंसे अत्यन्त विरक्त होते हैं ऐसे पुरुषोंके यह मौका आता है कि ज्ञानावरणका क्षयोपशम बढता है, ज्ञानका विकास होता है, बहुत विद्यायें सिद्ध हो जाती हैं, वे शास्त्रज्ञानमें भी विशारद हो जाते हैं, इतनी निपुणता प्राप्त करने पर भी वे दूसरे जीवोंके प्रति यह ख्याल नहीं लाते कि मेरे सामने ये लोग तो कुछ भी नहीं हैं, वे तो सबमें समताका भाव रखते हैं। ऐसे योगीश्वर प्रज्ञापरीषह विजयके अधिकारी होते हैं। देखिये किसी पुरुषमें चाहे व्याकरणके ढङ्गसे, छंद शास्त्रके ढङ्गसे वह कला नहीं जगी जो एक साहित्यिक क्षेत्रके विज्ञानमें बुद्धिमानी समझी जाती है, किन्तु वह कला, सहजभाव स्वयं ही अपने आप पर दृष्टि आये और उस अलौकिक ज्ञानप्रकाश और आनन्दका अनुभव करले, यह तो सबमें सम्भव है, फिर छोटा कौन ? कदाचित् व्याकरणकी बातमें किसीका इस प्रकार विज्ञान नहीं बना, लेकिन इस विज्ञानका फल क्या है, इससे फायदा क्या है ? अरे समस्त फल यहीं गर्भित है कि आत्माको अपने विशुद्ध सहज ज्ञानानन्द स्वरूपकी सुधि आ जाय। यह बात तो कोई न भी पढा हो उसके भी प्रकट हो सकती है। तब फिर

कौन छोटा रहा ? प्रज्ञाके जग जानेपर भी अन्यको अपनेसे तुच्छ समझना, यह तो सूर्यके आगे पटबीजनाकी तरह है आदि तुच्छ प्रकारके भावोका आना यह इस प्रज्ञा का मद है। साधुसतजन कितनी भी प्रज्ञा पाये, पर वे मद नही करते।

अज्ञान परीषहविजय— कोई साधुसत अपने सम्यक् मार्गमे चल रहे हैं और ऐसे ही ज्ञानावरणका उदय है इतना ही क्षयोपशम है कि उनके छद व्याकरण साहित्यिक कला आदिकका ज्ञान नही जग पाया, ऐसे साधुवोके प्रति यदि कोई कहे कि ये तो अज्ञानी हैं, पशुके समान हैं, ये तो कुछ जानते ही नही निरक्षर भट्टाचार्य हैं, यो अनेक आक्षेपके वचनोको सहते हुए भी अपनी आवश्यक क्रियावोमे प्रमाद नही लाते और वे धर्मके लिये एक मूल तत्त्वको पकड़े हुए हैं, उस तत्त्वको नही छोडते और कदाचित् भी चित्तमे ऐसा नही लाते कि मुझको तपश्चरण करते हुए अनेक वर्ष हो गए पर कोई विज्ञानका अतिशय हो नही उत्पन्न होता, अवधिज्ञान भी नही होता, इस तरह किसी भी तरहका अभिप्राय नही लाते, ऐसे योगीश्वरोके अज्ञान परीषह विजय है।

अदर्शन परीषहविजय— जिनका हृदय परम वैराग्य भावनासे शुद्ध हुआ है जिनको दीक्षा हुए अनेक वर्ष गुजर गए है और ज्ञानका अतिशय नही उत्पन्न हुआ तो वे ऐसा सदेह नही लाते कि जो मैं कर रहा हूँ क्या यह सही मार्ग नही है, मुझे ज्ञान क्यो नही पैदा होता है ? बडे बडे उपवास आदिक करते हैं पर कुछ भी अतिशय नहीं हुआ है। शास्त्रोमे वर्णन आता है कि बहुत उत्कृष्ट तपश्चरण करने वालेको बड़े बड़े चमत्कार प्रातिहार्य विशेष उत्पन्न हो जाते हैं, क्या यह गलत है ? इस प्रकार किसी भी प्रकारका सन्देह न लाना और अपने आत्म विशुद्धिके प्रयोगमे व्रत परिपालन आदिकमे सावधान रहना ऐसा जिन योगीश्वरोका दृढ श्रद्धान है और आत्महितमे जिनकी लगन है उनके अदर्शनपरीषहविजय होती है। यो परीषहविजयके परिणामसे योगियोके ज्ञानावरण कर्मोंका विनाश होता है और ज्ञानकी निरावरणता बनती है तब यह ज्ञान अतीन्द्रिय होता है, समस्तरूपसे निर्मल स्पष्ट हो जाता है। यह है मुख्य प्रत्यक्षज्ञान। इस प्रकार ज्ञानके भेदोमें मुख्य प्रत्यक्षके समर्थनमे उसकी निरावरणता सिद्ध ही है।

अनादिपरम्परा होनेपर भी कर्मोंके निःशेषरूपसे क्षयकी सभवता— परिपूर्ण विकसित ज्ञान निरावरण होता है। ज्ञानपर जो आवरण छाया था उसका विनाश सवर और निर्जरा तत्त्वके प्रसादसे होता है, निर्जरा और सम्वर ये सम्यग्दर्शन आदि गुणरूप हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रके जो परिणाम हो उन परिणामोसे कर्मोका सम्वर होता है और निर्जरा होती है। किसी आत्मामे सम्यग्दर्शन आदिक गुण परिपूर्ण रूपसे प्रकट हो जाते हैं तो वहाँ कर्मोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है। यद्यपि ये कर्म अनादि सततिसे बराबर चले आ रहे हैं तो भी ऐसा नियम तो नही

कि जो अनादि संततिसे चला आया हो उसका कभी वियोग नहीं हो सकता। सम्यग्ज्ञदर्शन आदिक परिणामके प्रतापसे ये कर्म अनादि बद्ध हैं परम्परासे तो भी समूल नष्ट हो जाते है। जैसे पहिलेसे ही चला आया हुआ शीतल जल यदि किसी बर्तनमें भरकर अग्निपर रख दिया जाय तो उसका शीतलपना प्रतिपक्षी उष्ण अग्निके सम्बन्धसे नष्ट हो जाता है इसी प्रकार अनादिकालसे चले आये हुए ये पौद्गलिक कर्म प्रतिपक्षी सम्यग्ज्ञदर्शन आदिकके प्रभावसे समूल नष्ट हो जाते हैं। अथवा जिसकी सतान परम्परा अनादिसे चली आयी है ऐसे बीज और वृक्षमे देखिये बीज हो तो वृक्ष हो और वृक्ष हो तो बीज हो। इस तरह बीज और वृक्षकी परम्परा अनादिसे चली आयी है, तो भी यदि किसी बीजको जला दिया जाय तो उसकी परम्परा खतम हो जाती कि नही ? खतम हो जाती है, इसी प्रकार यह द्रव्यकर्म भावकर्मकी परपरा अनादिसे चली आयी है और फिर भी सम्यग्ज्ञदर्शन आदिक परिणामसे इन रागादिक भावोको नष्ट कर दिया जाय तो क्या यह कर्म बन्धनकी परम्परा नष्ट हो सकती ? होगी। तो इस प्रकार यहाँ यह सिद्ध किया गया कि कोई आत्मा ऐसा भी है कि जिसमे कर्मका बिल्कुल क्षय हो जाता है।

किसी आत्मामे रत्नत्रयकी परमप्रकर्षताकी सिद्धि—अब शङ्काकार यह कह रहा है कि हम तुम्हारी यह बात तो मान लेंगे कि सम्यग्दर्शन आदिक गुणोकी प्रकर्षता होनेसे कर्मोंका क्षय होता है मगर उससे कर्मोंका क्षयमात्र ही सिद्ध होगा। पूर्णरूपसे समूल कर्मोंका नाश हो जाय यह सिद्ध नही हो सकता, क्योंकि सम्यग्दर्शन आदिक हो भी तो उनका परम प्रकर्ष सम्भव नहीं है ऐसा शङ्काकार कह रहा है। समाधानमे कह रहे कि यह बात असङ्गत है। किसी आत्मामे सम्यग्दर्शनकी पूर्ण प्रकर्षता सम्भव है। प्रकर्षता कहते हैं सीमाकी आखिरी हदको। तो किसी आत्मामे सम्यग्दर्शनादिकी प्रकर्षता सम्भव है। कैसे ? सो इसकी युक्ति सुनिये ! जिस जिस चीजमे तारतम्यरूपसे प्रकर्ष होता है उसका कही परम प्रकर्ष भी होता है। जैसे अमुक चीज लाल है, अमुक चीज ज्यादा लाल है, तो कोई चीज प्रकर्ष प्राप्त भी लाल होती है जिस चीजमे मूर्तमत्ता होगी उस उस वस्तुमे प्रकर्ष भी हुआ करता है। जैसे उष्ण स्पर्श, यह कम गरम है, यह उससे ज्यादह गरम है, यह उससे ज्यादह गरम है। तो गर्मीकी हम तारतमता देखते है तो किसी न किसी वस्तुमे यह गरमी परिपूर्ण भी रहती है। ऐसे ही रत्नत्रयमे तारतमता देखी ही जाती है। चौथे गुणस्थानमे रत्नत्रयकी छोटी अवस्था है फिर ऊपर ऊपरके गुणस्थानोमे रत्नत्रय ऊँचा बढ जाता है। जब रत्नत्रयमे तारतमता देखी जा रही है तो यह सिद्ध है कि किसी आत्मामे यह रत्नत्रय परिपूर्ण भी होता है।

तरतमता होनेके कारण दुःखप्रकर्षकी सिद्धि—तरतमतामे रत्नत्रयकी प्रकर्षताकी सिद्धिके प्रसङ्गमे शङ्काकार कह रहा है कि यह बात तो यो समझमें नही

आती कि तारतमता तो दु खोमे भी देखी जाती है, किसीमे कम दु ख है किसीमे ज्यादह, किसीमे और ज्यादह। मगर किसीमे प्रकर्ष प्राप्त दु ख हो ऐसा तो कोई नजर नही आता ? उत्तर देते हैं कि किसी आत्माके दु खका प्रकर्ष भी होता है। सप्तम नरक का नारकी है - वह दुखकी परम हद है। जहाँपर अत्यन्त वेदना है, जहाँ शीतके कारण मेरु समान लोह भी छर छरकर बिखर जायगा, इतनी अधिक शीत है। जहाँ की भूमि बडी दु खप्रद है। जैसे किसी कमरेमे बिजलीका रेण्ट फैल जाय तो उस जगहपर आदमीको जो दु ख हो सकता है उससे भी अधिक दु ख नरकोमे पृथ्वीके कण-कणके छूनेमे पडा हुआ है। और जहाँ नारकी एक दूसरेको निरखते ही मार डालते है, मरते नही है, फिर भी उस शरीरके खण्ड-खण्ड हो जाते है और फिर पारे की तरह वे टुकडे मिल जाते है और जीवित रहना पडता है। तो दु खकी परम हद सप्तम नरकके नारकीमे पायी जाती है।

तरतमता होनेके कारण सुखप्रकर्षकी सिद्धि अब शङ्काकार पूछता है कि सासारिक सुखोमे भी तारमता तो देखी जाती है—कोई कम सुखी, कोई ज्यादा सुखी, कोई उससे भी ज्यादह सुखी, किन्तु पूरी हद वाला तो यहाँ कोई नजर नही आता। उत्तर देते हैं कि सांसारिक सुखमे भी परम प्रकर्षता किसी आत्माको होती है और वह है सर्वार्थसिद्धिमे रहने वाला देव। उन देवोके इन्द्रिय और मन सम्बन्धी सुख है, उनका वह सुख परम प्रकर्ष सुख है। देखिये! सर्वार्थसिद्धिके देवोके देवाङ्गनाये नही सर्वार्थसिद्धिके देव अपने निवासस्थानको छोडकर बाहर भ्रमण करते नही तिसपर भी बताया गया है कि सुखकी परम हद है सर्वार्थसिद्धिके देवोमे। तो इससे सिद्ध है कि इन्द्रियके विषयमे जो पडना है वह सुखकी प्रकर्षता नही उत्पन्न करता उसमें तो वेदना लगी है तृष्णा लगी है। सर्वार्थसिद्धिके देवोका सुख निरखिये! वहाँ भोग विषयको वेदनाये नही, काम वेदनासे रहित हैं तिसपर भी जो इन्द्रियविषय होता है और मनका वह सब विशिष्ट होता है वह परम प्रकर्षताका सुख है।

तरतमता होनेके कारण क्रोधप्रकर्षकी सिद्धि—शङ्काकार कहता है कि क्रोधमे भी तो तरतमता देखी जाती है। किसीके क्रोध कम है किसीके ज्यादह है और किसीके उससे भी ज्यादह है मगर कोई ऐसा नही नजर आता कि जिसमे क्रोध की पूरी हद मिले। तो उत्तर देते है कि क्रोधका भी परम प्रकर्ष किसी आत्मामे सम्भव है - जैसे मिथ्यादृष्टि जन। उनमे अनन्तानुबन्धी क्रोधकी परम प्रकर्षता है, परिपूर्ण क्रोध है। जैसे सिद्ध भगवानके अनन्त आनन्द है, सर्वार्थसिद्धिके देवोमे परम प्रकृष्ट सुख है, सप्तम नरकमे परम प्रकर्ष दु.ख है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवोमे परम प्रकर्ष क्रोध, मान, माया, लोभ है। कोई ज्ञानी गृहस्थ भूपति किसी दुष्ट राजाका युद्ध मे मुकाबला कर रहा हो तो उसके कितना क्रोध नजर आता है, उसपर शस्त्रोका प्रहार भी करता है पर धर्मके प्रसङ्गमे वह धर्मध्यान करके शान्ति प्राप्त करता रहता

है। और कोई पुरुष बाह्य धर्म भी खूब करता हो, बड़े नियम त्याग भी करता हो, पर यदि अन्दरकी गुत्थी नहीं सुलझी है, आत्माका स्वभाव ज्ञानमात्र है इसका उसने रंच भी दर्शन नहीं पाया, तो आप बतावें कि इन दोनों प्रकारके व्यक्तियोंमेंसे क्रोधकी प्रकर्षता किसकी अधिक कही जायगी ? क्रोधकी प्रकर्षता तो उसमें अधिक कही जायगी जिसे कुछ अपने आत्माकी सुध नहीं हुई, जो जानता ही नहीं कि मोक्षपथ क्या है ? उसमे क्रोधकी प्रकर्षता कहेंगे। उसका तो अपने परमात्मतत्त्वपर क्रोध है, कषाय है। अपने स्वरूपको वह समझ भी नहीं सकता और फिर वही अज्ञानी तीव्र कषायमे हो हिंसादि प्रवृत्ति करे तो क्रोधका परम प्रकर्ष उसमे पाया ही जाता है, वह मिथ्या दृष्टियोंमे है। तो इससे यह सिद्ध है कि जिस चीजका तारतम्य हो, कमी बेसी हो उस चीजकी कही परमहदकी वृद्धि भी होती है।

तरतमता होनेके कारण क्षयोपशमिकज्ञान हानि प्रकर्षकी सिद्धि— अब शङ्काकार कहता है कि ज्ञानमे भी तो तरतमता देखी जाती है। किसीका ज्ञान कम है किसीका ज्यादह कम है किसीका उसमे भी ज्यादह कम है। मगर किसी के ज्ञान बिल्कुल न हो ऐसा तो कोई समझमे आता नहीं। तो उत्तर देते है कि किसी जीवमे ज्ञानकी बिल्कुल हानि है ऐसा भी हो सकता है। यहां ज्ञानका अर्थ लगाना क्षयोपशमिक ज्ञान। क्योंकि क्षायोपशमिक ज्ञानमे ही हानिकी तरतमता पायी जाती है। क्षायिक ज्ञानमे तरमता नही है, क्षायिक ज्ञानमे, केवलज्ञानमें किसीके कम है किसी के ज्यादह है ऐसा तो है नही। केवलज्ञान तो समान होता है। तो क्षायोपशमिक ज्ञानमे जब हानि देखी जाती है, किसीका कम ज्ञान है किसीका और कम ज्ञान है, तो जब क्षायोपशमिक ज्ञानमे हानिकी तारतमता है तो केवली भगवानमें क्षायोपशमिक ज्ञान बिल्कुल नही है तो ज्ञानहानिकी तारमतामे भी यह युक्ति लगती है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि जिस बातमे तरतमता हुई वह कही परम प्रकर्षताको भी प्राप्त होती है। रत्नत्रयमें भी तरतमता नजर आ रही है। रत्नत्रय किसीके कम है, किसीके ज्यादह है किसीके और भी ज्यादह है यह प्रकर्षता देखी जा रही है, तो कोई आत्मा ऐसा है जिसके रत्नत्रयकी पूर्णता है। जब रत्नत्रयकी प्रकर्षता सिद्ध हो गयी तो उस ही आत्मामे ज्ञानावरणका निःशेषरूपसे अभाव है यह सिद्ध हो जाता है। यो ज्ञान निरावरण है और निरावरण होनेके कारण समस्त विश्वका जाननहार है, इसको ही मुख्यप्रत्यक्ष कहते हैं।

अनुमानप्रमाणसे अशेषकर्मप्रक्षयकी सिद्धि अब दूसरे प्रकारसे भी कर्मों का क्षय कही पूर्णतया सिद्ध हो जाता है। इसकी सिद्धि कर रहे हैं। एक युक्ति है कि जिसकी बढोतरीमे जिसकी हानिकी अधिकता हो उसकी पूरी बढोतरीमें दूसरेकी हानि पूरी हो जाती है। जैसे गरमी बढे तो ठंड कम हो जाती है। और जब गर्मी पूरी बढ़ जाती है तो ठंडा नाम निशान नही रहता, इसी तरह रत्नत्रयकी बढोतरीमें

कर्मोका क्षय होता है तो जहाँ रत्नत्रय पूरा बढ़ चुका है उस आत्मामे कर्मोका लेश भी नही रह सकना। इससे सिद्ध है कि कोई आत्मा ऐसा है कि जिसका आवरण रंच भी नहीं है। सम्यग्ज्ञदर्शन क्या ? पर द्रव्योसे भिन्न निज ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वमे रुचि होना, प्रतीति होना और एतावन्मात्र अपना अनुभव होना—मैं ज्ञानमात्र हूँ इस प्रकारका अनुभव होना, ऐसा ही उपयोग रखना और इस ही स्वरूपमे रम जाना यही है रत्नत्रय। ऐसा परिणाम जिसके हो उसको कोई चिंता सताये, उसमे किसी प्रकारकी वेदना जगे यह सम्भव नही है। जिसके यह रत्नत्रय परिपूर्ण प्रकट हो जाता है उसके कर्म समूल नष्ट हो जाते हैं। लोग तो भगवानसे प्रार्थना करते है कि मेरे अष्ट कर्म नष्ट हो जाये और उन अष्ट कर्मोको जलानेके लिये मैं धूप खेता हूँ पर इन विनतियोसे ही काम न चलेगा, क्योकि वहाँ सुनने वाला कौन है ? भगवान तो सुनते नही, वे तो वीतराग हैं, लोग तो आने जाने वाले लोगोको वह विनती सुनाते है। पहिले तो वेसुरा, वेरासका धीरे धीरे कुछ गा रहे थे, जब देखा कि कुछ आदमी आ गए तो वे झठ सावधान होकर बड़े सुन्दर रागमे जोर जोरसे गाने लगते है। तो वह विनती तो उन आने वाले लोगोको ही गाई। भगवान तो उन शब्दोको सुनते नही हा निज परमात्मा सुनता है। किन्तु शब्दोको नही, वे तो भावोको सुनते है। तब अष्ट कर्मोके नष्ट करनेकी तरकीब क्या है ? भगवानके स्वरूपका स्मरण करके उनके ही समान अपने आपके स्वभावका परिचय पाये और उस स्वभावको निरख निरखकर सन्तुष्ट रहें, बस उसने समस्त वैभव पा लिया, अब कुछ उसे चाहिए नही। यो अपने आत्माकी उपासनामें तुष्ट हो जाये बस यही कर्मोपर विजय करनेका उपाय है। यह बात किसीमे उत्कृष्ट रूपसे भी सम्भव है। तो यह समझना चाहिए कि कही कर्मोका बिल्कुल भी क्षय हो जाता है।

अनुमानप्रमाणसे निःशेष आवरणहानिकी सिद्धि—अब और भी युक्ति देखिये कर्मोके आवरणमे हानिया जब देखी जा रही हैं तो किसी पुरुषमे यह आवरण हानि सम्पूर्णरूपसे भी हो जाती है परिमाणकी तरह। जैसे परिमाणमे हानि देखी जाती है, यह एक किलो है, यह ६०० ग्राम है यह १०० ग्राम है आदि तो कही १ ग्राम भी है। इसी तरह किसी पुरुषमे प्रकृष्टरूपसे भी आवरण हानि हो सकती है। अथवा जैसे किसी ढेरपर कोई आवरण डाल दिया है तो आवरण हटावो हट गया, और भी हटावो तो और हट गया, तो कभी पूरा भी हटाया जा सकता है। इसीप्रकार ये कर्म जब क्षयको प्राप्त हो रहे हैं तो कही इनका बिल्कुल भी क्षय हो सकता है। और जहाँ आवरणकर्मका क्षय हो जाता है बस वही ज्ञानकी उत्कृष्टता सिद्ध हो जाती है जो जो प्रकाशात्मक चीजें हैं वे वे अपने आवरणको हानिके पूर्ण होनेपर उत्कृष्ट रूपसे प्रसिद्ध हो जाती हैं जैसे नेत्र ये अवलोकनका काम करते है, इन नेत्रोपर कोई आवरण आ जाय और उस आवरणको पूरे रूपमे हटा दिया जाय तो यह पूरा निरख सकता है। नेत्रपर आवरण है पलकोंका। पलक बन्द कर लीजिए, जरा थोडा नजर

आयगा, कुछ और अधिक खोलो तो कुछ और अधिक नजर आयगा, पूरे खोल दें तो सब कुछ नजर आयगा। जैसे सूर्यपर बादलोका आवरण हो, बादलोका थोडा आवरण हटे तो कुछ और ज्यादह प्रकाश हुआ, कुछ और ज्यादह आवरण हटे तो कुछ और ज्यादह प्रकाश हुआ और जब पूरा आवरण हटे तो पूरा प्रकाश हो गया। इसी प्रकार ज्ञान भी एक प्रकाशात्मक चीज है, उसपर आवरण न रहे तो पूर्णज्ञान प्रकाश को प्राप्त होगा।

अपना स्वरूप, अपनी चर्या व अपनी निरख— आत्माको जाननेके लिये ज्ञानप्रकाशके रूपमेसे स्वयको निरखना चाहिए। मैं क्या हूँ? एक ज्ञान ज्योति सिर्फ जाननतत्त्व। ज्ञानप्रकाशमात्र मैं हू इस द्वारसे आत्माको जाननेके लिये चलें तो आत्माका अस्तित्व ज्ञात होता है। आत्म प्रकाश होता है। तो चूकि ज्ञान भी प्रकाशात्मक है। तो जैसे आवरणका विनाश होता है वैसे ही ज्ञान परिपूर्ण प्रकट हो जाता है। इस तरह यह सिद्ध हुआ कि जैसे आवरण कोई चीज है तो कही आवरण का भी अभाव पूर्णरूपसे होता। जहाँ आवरणका अभाव हुआ कि समस्त विश्वको, समस्त पदार्थोंको जानने वाला ज्ञान प्रकट हो जाता है। यह चर्चा किसकी की जारही है? भगवानके ज्ञानकी, मुख्यप्रत्यक्षकी अपने स्वभावकी। यह सब चर्चा अपनी है। जैसे किसके परिजनोकी चर्चा करे तो उस कुटुम्बका एक व्यक्ति समझता है कि देखो यह हमारी चर्चा कर रहा है, यद्यपि यह बात सही नहीं है, पर यह बिल्कुल सही बात है कि जो भगवानकी चर्चा है वह सब हमारी चर्चा है। भगवानके सम्बन्ध मे आप जो जो कुछ भी गुणगान करें अनन्तज्ञानी हुए अनन्तदर्शी हुए, अनन्त आनन्दमय हुए रागद्वेपसे रहित हुए— वे अपनी ही तो चर्चायें हैं। अपने स्वभावका देखो, क्या आत्मामें आत्माके स्वभावसे रागद्वेष लगे हुए हैं? आत्मामे जो ज्ञान स्वभाव पडा है क्या उस स्वभावमे इतनी सीमा है कि मेरा ज्ञान इतनी दूर तक ही जाने इस से अधिक दूरकी बात न जाने? जो भगवानकी बात है सो मेरी बात है। यह चर्चा अपनी ही है। परिपूर्णज्ञान विकासके ज्ञानमे समग्र सत् आते हैं तिसपर भी यह अपने आनन्दसे विचलित नही होता, अपने ही सुखमे मग्न रहता है।

ज्ञानपर कर्मप्रवृत्तियोका आवरण—जब ज्ञानपर रचमात्र भी आवरण नही रहता तो यह ज्ञान समस्त पदार्थोंका जाननहार हो जाता है, क्योकि जिस ही पदार्थके विषयमे ज्ञानका आवरण पडा होगा उस ही पदार्थका ज्ञान नही हो सकता। ज्ञानपर आवरण करने वाली कर्म प्रकृत्तिया ५ प्रकारकी मानी गई हैं—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। ५ ज्ञान हैं तो ५ ज्ञानोका आवरण करने वाले कर्म भी ५ प्रकारके हैं। अब उनमेसे कोई भी एक ज्ञान ले लीजिए! मतिज्ञान—मतिज्ञानसे कितनी तरहके ज्ञान हम किया करते हैं। चौकी जाना, बेंच जाना, पुरुष जाना, भींट जाना आदिक। कितनी तरहके

होते हैं उतने ही ज्ञानावरण होते है। जिसे जिस ज्ञानावरणका क्षयोपशम है उस ही पदार्थ का वह मतिज्ञानी ज्ञान किया करता है। तो जिस भी पदार्थका आवरण होगा उस पदार्थका ज्ञान नही हो सकता। यदि लेशमात्र भी आवरण हो तो ज्ञानमे यह सामर्थ्य नही प्रकट हो सकती है कि वह समस्त विश्वको जान सके। यहां अशेप ज्ञान की सिद्धि की है फिर भी प्रयोजनभूत आप इतना ही देखें कि इन समग्र ज्ञानोमे राग का अश भी नही है अतएव अनन्त आनन्द है। रागका अश हो तो सर्वज्ञ नहीं हो सकता। जितना भी आनन्द प्रकट होता है वह वैराग्यके कारण प्रकट होता है। ज्ञानका काम तो मात्र जना देना है। यदि राग नही है तो विशुद्ध आनन्द मिलेगा और यदि राग है तो उस ज्ञानका अर्थ कल्पना बन जायगा। और, कल्पना से क्षोभ हुआ ही करता है। यो समस्त आवरणोके दूर होनेसे पूर्ण ज्ञान विकसित होता है। यो मुख्यप्र प्रश्न सिद्ध हुआ।

आगमसे ही अशेपज्ञता माननेके मन्तव्यमे प्रश्नोत्तर किसी आत्मामे ज्ञान समस्त पदार्थोंको जानने वाला होता है। इस प्रसङ्गमे शङ्काकार कह रहा है कि चलो हम भी मान लेते हैं कि कोई ज्ञान समस्त पदार्थोको जाननहार है किन्तु वह ज्ञान आगमके द्वारा ही समस्त पदार्थोंको जानता है। कोई अतीन्द्रिय ज्ञान हो, निरावरण हो ऐसा ज्ञान कही भी नही होता। कोई ज्ञान यदि समस्त पदार्थोंको जानने वाला भी होगा तो आगमके द्वारा वह जानेगा, इस शङ्काका उत्तर देते हैं। कि यह बात भली नही है क्योकि यहा तो विशद ज्ञानका प्रकरण है। जो स्पष्ट ज्ञान है वह आगम द्वारा नही होता। शास्त्रोसे आगमसे जो जाना जायगा, जान तो लिया जायगा कुछ, पर वह अस्पष्ट जाननेमे रहेगा। जिस आगमसे स्वर्ग और नरकोकी रचना भी जानी जाती है किन्तु जैसे आखो देखी रचना स्पष्ट है कैसी गङ्गा नदी है, कैसी जमुना है कैसा पहाड है। जो कुछ आखोसे देख लिया गया जैसे वह स्पष्ट रहता है, इसी प्रकार स्पष्टज्ञान आगमसे नही हुआ करता आगमज्ञान परोक्ष ज्ञान है।

आगमज्ञानमे अशेषज्ञताकी असभवता आगमसे सर्वज्ञता माननेके प्रसङ्ग मे साथ ही यह भी बात है कि आगम भी समस्त पदार्थोका ज्ञान करानेमे समर्थ नही, किन्तु आगमज्ञानकी अर्थ पर्यायमे प्रवृत्ति नही। अर्थ पर्याय किसे कहते है—वस्तुमे स्वभावत जो षड्गुण हानिवृद्धि रूपसे क्षण-क्षण परिणमन होता है उसको। उस परिणमनको हम आगम द्वारा नही जान सकते, किन्तु उसका ज्ञान निर्मल निरावरण प्रत्यक्षके द्वारा हो जाता है। हम पदार्थमे अर्थ पर्यायको हेतुसे तो जान रहे है कि भिन्न पदार्थोमे प्रतिक्षण परिणमन होता है क्योकि अर्थ क्रिया देखी जाती है। अथवा पदार्थोंका सत्त्व है। प्रतिक्षण अर्थ परिणमन हुए विना सत्त्व नही ठहर सकता। तो यो हम अनुमानसे जान लें। आगमसे जानलें अन्दाजारूपमे, पर उस अर्थ पर्यायको

हम स्पष्ट नही जान सकते । अर्थ परिणमन पदार्थ सत्त्व नहीं रख सकता, अवस्तु बन जाता । तो अर्थ पर्याय आगमसे नही जाना जा सकता । फिर समस्त पदार्थोंका भी ज्ञान आगममे सम्भव नही है । जैसे कोई पुरुष किसी मकानके बारेमे बहुत कुछ बताये फिर भी अनेक बाते बतानेको छूट ही जाती हैं इसी प्रकार आगम द्वारा, कितने ही ज्ञान इकट्ठे किए जाये, पर समस्त पदार्थोंका ज्ञान सम्भव ही नही है, और प्रत्यक्ष ज्ञान होनेपर निरावरण ज्ञान प्रकट होनेपर सब कुछ प्रत्यक्ष एक ही साथ एक झलक मे स्पष्ट जान लिया जाता है ।

इन्द्रियजन्य ज्ञानमे अशेषज्ञताकी असंभवता —चाहे आगमके द्वारा जाननेकी कल्पना करें चाहे इन्द्रियके द्वारा जाननेकी कल्पना करें, उस ज्ञानको इन्द्रिय-जन्य मानने पर भी उस ज्ञानकी अतीन्द्रिय अर्थमे प्रवृत्ति नही हो सकती । इन्द्रियके द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न हो वह इन्द्रियसे अगोचर सूक्ष्म परमाणु आदिक पदार्थोंको जान ले यह सम्भव न ी, क्योकि इन्द्रिय केवल रूप, रस, गध, स्पर्श पुद्गलको ही जानता है, सो भी वह सामने हो, किसीका व्यवधान न पड रहा हो तिसपर भी अनेक पर-माणुका स्कध हो ऐसे स्थूल विषयका इन्द्रियज्ञान जानता है इन्द्रियज ज्ञानरूप आदिक रहित, व्यवहित और सूक्ष्म पदार्थोंको जाननेमे क्या समर्थ हो सकता है । इससे मानना चाहिए कि जब कर्मोंका अक्षय हो जाता है तो ज्ञान ऐसा निरावरण प्रकट होता है कि वह समस्त पदार्थोंका जाननहार बन जाता है यही केवल ज्ञान कहलाता है, ऐसे ही प्रभुका ज्ञान होता है । इस स्थलमे जो कुछ भी वाद विवाद चल रहा है वह ज्ञान की अशेषज्ञता निरावरणता और अतीन्द्रिय इन तीन बातोपर चल रहा है ।

योगज धर्मानुग्रहसे भी इन्द्रियज्ञानमे अशेषज्ञताकी असभवता शङ्का-कार पुन कहता है कि बडे बडे योगीश्वरोकी जो समाधिया होती हैं योगजधर्म होता है उन योग धर्मोंसे योगसे उत्पन्न हुए प्रभावसे सहित इन्द्रिया समस्त पदार्थोंको जान सकती हैं । फिर उस ज्ञानमे अशेषज्ञता आ गयी, क्या रुकावट हो सकती है । अती-न्द्रिय माननेकी फिर कोई जरूरत ही नहीं रहती । अतीन्द्रिय कोई ज्ञान होता नही ये इन्द्रिया ही जब योग समाधिके बलसे उत्पन्न होकर प्रभाववाली होती हैं तो ये ही इन्द्रिया आकाश आदिक समस्त पदार्थोंको जाननेमें समर्थ हो जाती हैं । उत्तरमे कहते है कि यह कहना भी बिना सोच विचारका है क्योकि इन्द्रियोमे जो योगज धर्मका प्रभाव बनता है कि योगके कारण इन्द्रियमे प्रभाव बनता है कि वह उस योग धर्मसे इन्द्रियमें अनुग्रह क्या हुआ ? क्या यह अनुग्रह हुआ कि इन्द्रियां अपने विषयमे लग रही हैं उसमे कुछ अतिशय पैदा कर दिया अथवा इन्द्रियके जाननेमे कुछ सहयोग दें । यदि कहो कि इन्द्रिया जो जान रही थी अब योगियोके योगके कारण उसमें अतिशय और पैदा हो गया । खैर अतिशय भी मान लो, फिर भी जिस इन्द्रिय के द्वारा जो बात जानी जायगी उसमे ही तथा उनका अतिशय होगा जितनी सीमा

हैं वहा तक ही तो अतिशय होगा। यह तो न होगा कि वे इन्द्रियाँ अमूर्त पदार्थ को जानने लगें। चक्षु इन्द्रिय रूपको जानती है तो योगज धर्मसे उसमे अतिशय आता है। तो यह आ जायगा कि चक्षु इन्द्रिय जरा और दूरका जानने लगें, पर यह तो सम्भव नही है कि चक्षु परमाणुको भी जानने लगे? जो उसका विषय नही है उसे भी समझने लगे। यदि ऐसा अतिशय मानोगे ही तो आख इन्द्रिय रूप रस, गध, स्पर्श आदिक सब विषयोको जान जाय ऐसा अतिशय बन जायगा, फिर एक इन्द्रियसे अधिक इन्द्रिया माननेकी भी क्या जरूरत? और, एक ही इन्द्रिय ज्ञानसे काम निकाल लिया जायगा। यदि कहो कि इन्द्रिय अपने विषयोंमे लग रही थी, उनमे सहयोग दिया तो ठीक है। तब भी यह बात है कि वह अपने विषयको ही जानेगी। तो इन्द्रियमे सामर्थ्य नही है कि समस्त पदार्थोंको जान सके। चाहे कितना ही आत्माका अतिशय प्रकट हुआ हो, चाहे कितने ही द्रव्योने प्रभावित किया हो, लेकिन इन्द्रिया अतीन्द्रिय अमूर्त पदार्थोंके जाननेमे समर्थ नही हो सकती। यह ज्ञान जो निरावरण हो गया उसमे ही यह सामर्थ्य है कि अपने ही स्वभावसे समस्त सत् पदार्थोंको जान सकता है।

भावनाप्रकर्षज योगिविज्ञानमे अशेषज्ञताका पक्ष — अब शङ्काकार यह शङ्का कर रहा है कि योगियोका जो ज्ञान होता है वह भावनाका जो अतिमरूप है, प्रकर्ष है उस पर्यन्त भावना बनानेसे उत्पन्न होती है। तब योगियोके ज्ञानमे अशेषज्ञता सम्भव है वह योग विज्ञान समस्त पदार्थोंको जान लेगा तब अतीन्द्रिय निरावरण ज्ञान माननेकी कोई जरूरत न रहेगी। देखिये भावना दो प्रकारकी होती है एक श्रुतमयी और एक चिन्तामयी। अर्थात् दूसरेके मुखमे वचन सुनकर जो उनका भाव समझा, अर्थ जाना, एक साधारण रूपसे वह तो है श्रुतमयी भावना। और उसके द्वारा जो पदार्थके स्वरूपका चिन्तन किया वह है चिन्तामयी भावना। जिसे सीधे शब्दोमे समझा जाय तो जैन सिद्धान्तके शब्दोसे समझ लिए — द्रव्य श्रुत और भाव श्रुत। जो दूसरोके वाक्य सुननेमे आ रहे हैं उनसे उत्पन्न हुआ जो ज्ञान है भावना है वह तो है श्रुतमयी भावना। जब श्रुतमयी भावना निर्मल होती है अर्थात् जो शब्द सुने हैं उन शब्दोका ज्ञान विशिष्ट रूपसे हो जाता है तो फिर चिन्ता-मयी भावनाका प्रारम्भ होता है अर्थात् भावज्ञान बनता है, फिर उस भावज्ञानकी भावनाको बहुत किया जानेपर वह ज्ञान समस्त पदार्थोंका जाननहार हो जाता है। फिर आवरण वगैरह मानना, फिर उसका विनाश सिद्ध करना ये सब श्रम व्यर्थ हैं। कहा आवरण और कहा उसका विनाश है? यह तो केवल श्रुतमयी और चिन्तामयी भावनाका प्रसाद है। सभी शास्त्र पढा, उनका अर्थ समझा और उनका मनन किया फिर तत्त्वके अन्त स्वरूपमे पहुँचे, उसकी भावना बना ली। तो अपने आप ऐसा महान विज्ञान प्रकट हो जाता है कि वह समस्त पदार्थोंका जाननहार बन गया। अब आवरण माननेकी क्या जरूरत है? भावना न करते थे तो ज्ञान न जान पाता। अब भावना भली प्रकार बन गयी तो ज्ञानमे सब प्रकारके जाननेका सामर्थ्य आ गया।

ज्ञानावरण कर्म मानना फिर उसका क्षय मानना इसकी क्या जरूरत है ?

भावनाप्रकर्षज योगिविज्ञानमे भी अशेषज्ञताका अभाव—अब भावना प्रकर्षज ज्ञानकी समस्याका समाधान करते है कि यह बात तुम्हारी सारहीन है। यहा समस्या रखी है क्षणिकवादियोंने, तो यह भावना दानोके दोनो क्षणिक हैं और नैराग्य की भावना है। क्षणिकवादके सिद्धान्तमे क्षण क्षणमे नवीन नवीन पदार्थोंका उत्पन्न होना माना गया है। पदार्थ उत्पन्न होता है और उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाता है, दूसरे क्षणमे दूसरा पदार्थ उत्पन्न होता है। इस प्रकार पदार्थ क्षणिक माने गए हैं और नैरात्म्य माना गया है अर्थात् आत्मा कुछ भी नही है। सदा रहने वाला आगे पीछे जिसकी पर्याय परम्परा चले ऐसा आत्मा नही माना गया है जो प्रत्येक समय अपनी यूनिटमे इकहरे पनमें जो ज्ञान वर्त रहा है बस वही पदार्थ है। कोई आत्मा हो जिसमे ज्ञान बनता हो और सदाकाल रहता हो, जिसमे ज्ञान नये नये उत्पन्न होते हो ऐसा आत्मतत्त्व क्षणिकवादियोकी चीज नहीं है। किन्तु क्षण क्षणने जो ज्ञान नवीन नवीन बनता रहता है बस वही मात्र तत्त्व है। कोई ज्ञानक्षणोका आधारभूत ध्रुव आत्म हो ऐसी बात नही है। तो जिसके सिद्धान्तमे आत्मतत्त्व नही है, क्षणिकवाद है उसके यहा न तो श्रुतभावना सिद्ध होती है और न यह चिन्तामयी भावना सिद्ध होती है। कुछ शब्द सुननेमे आयें तो उनका भाव समझनेमे कुछ समय व्यतीत होता है। किन्तु यह क्षणिक वाद है प्रतिक्षण नया पदार्थ उत्पन्न होता है। जहा कहने सुननेको आत्मा है, जहां आत्मा माना ही नही गया वहा क्या भावना, किसकी भावना, किसके लिए भावना। वहा सारी भावना मिथ्यारूप है। दूसरेकी बात सुनकर वे शब्द खुद भी बोलना चाहे केवल इस अभिप्रायसे यह शास्त्र रचना हुई है। मिथ्याज्ञान कही परमार्थविषयक योगिज्ञानको उत्पन्न नही कर सकता अगर मिथ्याज्ञान पदार्थको जानने लगे तो फिर दुनियाकी कोई व्यवस्था ही न रहेगी। तो जैसे क्षणिकपना सिद्ध नही होता है इसी प्रकार वस्तुमे नैरात्म्यपना होना, वस्तुका दूसरे समय न ठहरना, वस्तुमे स्वय कोई गुण भी नही है वस्तु कोई पर्यायोसे सहित कुछ हो ऐसा जहां माना ही नही गया है वहा पदार्थ क्या चीज है, सत्त्व क्या चीज है। न तो नैरात्म्य उनका सिद्ध होता और न उनकी भावना सिद्ध होती है।

ज्ञानके आवरणके प्रक्षयसे ज्ञानविकास—ज्ञानका प्रसङ्ग सबके साथ है, सब जान सकते है। सीधी बात मानना चाहिए कि प्रत्येक आत्मामे ज्ञान ऐसा स्वभाव रखता है कि वह समस्त विश्वके पदार्थोंको जान ले, लेकिन ज्ञानपर आवरण पडा हुआ है यह आवरण निमित्त दृष्टिसे तो पौद्गलिक कर्मका है और उपादानगत दृष्टिसे विषय कषायके परिणामोका है। जब तक जीवमे रागद्वेष मोह विषय कषाय बसते हैं तब तक इसका ज्ञान सही विकसित नहीं हो सकता। जिसकी क्रोध करनेकी प्रकृति बनी है ऐसे क्रोधी पुरुषका ज्ञान आपको सही ढङ्गमे न मिलेगा। जिसके

विषय कषायमे तीव्रता है, उसका ज्ञान सही ढङ्गमे नहीं रह सकता है। तो साक्षात् तो कितने ही आवरण है जो इस ज्ञानको विकसित नही होने देते। पर वे कषायें भी किस तरह हैं, किस प्रकार उनकी उत्पत्ति हुई है। क्या आत्मामे आत्माके ही कारण स्वभावसे कषाये जग जाती है? नही पौद्गलिक कर्मोंका निमित्त पाकर ये कषायें जगती हैं। तो मानना चाहिए कि ज्ञानमे समस्त पदार्थोंके जाननेका स्वभाव है। आवरण सहित होनेसे यह ज्ञान जान नही पाता। जब निरावरण होता है तब यह अतीन्द्रिय होकर समस्त पदार्थोंको स्पष्ट जानने लगता है।

भावनाप्रकर्षवादियोके प्रतिबन्धक कर्मके माननेकी अनिवार्यता—इस प्रसङ्गमे जो भावनाके द्वारा ज्ञानसे सवज्ञ बना है उनसे पूछा जा रहा है कि यह तो बतलावो कि तुम्हारी श्रुतमयी व चिन्तामयी भावना अर्थात् शब्दोको मनका ज्ञान हुआ उसके उपयोग और उसके माध्यमसे आश्रयसे फिर पदार्थोंके अन्त स्वरूपको जाननेकी भावना की, इन दोनो भावनाओको करने वाले लोग तो अनेक हैं, सबको क्यो नही वह योग विज्ञान हो जाता जैसा कि सुगतको माना है। जब सभी लोग भावनामे लगे हैं तो सभीको क्यो नही अशेषज्ञता होती? कोई कारण तो होगा जैसे यहाँ भी तो भगवान तो सर्वज्ञ हैं और भगवानके मार्गपर योगी भी चल रहे हैं, गृहस्थ भी चल रहे हैं, भावना सब बना रहे हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रकी सब भावना बनाये है। धर्मपालनका सब लोग यत्न करते हैं, पर सबको सर्वज्ञता क्यो नही हो जाती? इस उलझनमे उनकी भावना वालेके उलझनामे फिर भी अन्तर है। वहा केवल एक श्रुतभावना है। कोई कितना ही तपश्चरण करले, उसके थोडा ज्ञान ज्यादह तो मान लिया गया है, पर अशेषज्ञता नही मानी है। किन्तु यदि यह बन सके किसी योगसे रत्नत्रयका मार्ग तो वह सर्वज्ञ बन सकता है। लेकिन दृष्टान्तके लिए जितनी बात कही गई है उतनेमे यह घटा लीजिए कि जो अरहन्त हुये, सर्वज्ञ हुए, उनके ही मार्गपर ये सब चल रहे हैं। ये सब क्यो नही ध्यानस्थ हो जाते क्यों नही सर्वज्ञ हो गए, तो उसका कारण स्पष्ट है। अभी इस आत्मामे विभावोका और उनके निमित्तभूत पौद्गलिक कर्मोंका आवरण इतना चढा हुआ है कि इस आत्माको सर्वज्ञता नही मिली। यहा तो यह उत्तर है पर आप बतलावो कि भावना सभी मनुष्य करते हैं, पर सभीको क्यो नही सर्वज्ञता होती? यदि यह कहो कि उस प्रकारकी भावना नही बन सकी सबके जैसीकी सुगतकी बनी तो इसमे भी कारण बतलावो। जब तत्त्व सबने जान लिया और भावनामे जिसका मन लग रहा, मन भी चाह रहा कि मैं भावनामे कुशल हो जाऊ फिर भी सबकी भावना समान क्यो नही बन जाती? सुगतकी तरह क्यो नही बन जाती? यदि यह कहो कि प्रतिबन्धक कर्म उनके लगा हुआ है इसलिए वे भावनामे सुगतकी तरह नही बन पाते हैं तो बस हो गया उत्तर। खैर यहा मान लिया इसका प्रतिबन्धक कर्म, यही गनीमत। जरा पहले से ही मान लेते तो कर्मोंका आवरण होनेके कारण सबकी भावना सुगतकी तरह नही

बन पायी और न वे सर्वज्ञ हो पाये, यही बात तो इस प्रसङ्गमे कही जा रही है कि ज्ञानपर आवरण पड़ा है उसके निमित्तमे यह ज्ञान समस्त विश्वको जाननेमें समर्थ नही हो रहा है। जब आवरणका क्षय हो जायगा, कर्म दूर हो जायेंगे तब अशेषज्ञता उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार यहा तक यह सिद्ध किया गया कि पूर्णरूपसे आवरणका विनाश होनेपर जो ज्ञान उत्पन्न होता है जो कि अतीन्द्रिय है, समस्त पदार्थोंका जाननहार है उसे मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

ग्रन्थमे प्रमाणका विवेचन—इस ग्रन्थमे जितना भी प्रतिपादन है वह इसी ग्रन्थके प्रथम सूत्रके विषयमे ही स्पष्ट बोध करानेके लिये है। प्रमाणका लक्षण माना है—जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये वह ज्ञान प्रमाण है। देखिये—पदार्थका निर्णय प्रमाणसे ही होता है। और पदार्थके निर्णयमे कमी होगी। संशयादिक होगा तो प्रमाणाभाससे होगा। इस ग्रन्थमे उस निर्णय करने वाली कुञ्जीका ही निर्णय दिया गया है कि कैसा प्रमाण हुआ करता है जिससे पदार्थका निर्णय किया जाय। वह है प्रमाणभूत जो निजको और परको निर्णयमे रखे। उस ज्ञानके भेदमे इस समय मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञानका वर्णन चल रहा है। जहा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी प्रकर्षताके कारण आवरणका क्षय हो जाता है वहा अतीन्द्रिय निर्मल स्पष्ट रूपसे जानने वाला ज्ञान उत्पन्न होता है, उस ज्ञानका नाम है मुख्य प्रत्यक्ष। इस मुख्य प्रत्यक्ष मे यद्यपि तीन ज्ञान कहे हैं—अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। फिर भी वर्णनमे जो उत्कृष्ट हो वही मुख्यतासे आया करता है। तो केवलज्ञानके सम्बन्धमे जो कि समस्त तीन लोक तीन कालके पदार्थोंको जानता है, उसका वर्णन चल रहा है कि कोई ज्ञानी समस्त विश्वका जाननहार भी होता है। कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं कि निरावरण और परिपूर्ण स्पष्ट ज्ञान ही नही मानते और उनके न माननेका सीधा कारण यह है कि उन्होने सारी नाप तोल अपने ज्ञानसे की। हमको जिस तरह सुख मिल रहा है उसी तरह और सब लोगोको भी सुख मिलता होगा, इस प्रकार अपने ही ज्ञानकी खूंटीसे तुलना करके निर्णयका सिद्धान्त रखने वाले लोग अशेषज्ञानको नही मानते कि ऐसा भी कोई ज्ञान होता है आत्मामे, जो सबका जाननहार है, किन्तु जैन दर्शनमे ज्ञानके स्वभावको ही बताया है कि ज्ञानमे सबके जाननेका स्वभाव है वही निरावरण होनेपर ऐसा विकसित होता है कि समस्त जान लेता है। अब इसके बाद बहुत लम्बे प्रसङ्गमे सर्वज्ञ नही है यह पूर्व पक्ष होगा और सर्वज्ञ है यह उत्तर पक्ष होगा। यह विषय रोचक भी है और अपने कामका भी है। लेकिन पहिलेसे ही कठिन जानकर मनको ढीला करदे कोई तो कुछ नही पल्ले पड़ता और यह समझकर कि ज्ञान क्या नहीं समझ सकता, उपयोग लगाये तो उत्तरोत्तर आत्माकी महिमा ज्ञात होगी कि आत्माका कैसा वैभव है और कैसा प्रभाव है, यदि उपयोग लगाकर सुने तो सब विदित हो जायगा।

सर्वज्ञके अभावकी आशंका—एक सिद्धान्त केवल क्रिया काण्डोमे विश्वास

रखता है - यज्ञ होम आदिकमे ही स्वर्गकी प्राप्ति होती है स्वर्गसे बढकर और कोई जीवकी अवस्था नही है। सर्वज्ञ कोईनही होता। वेद आगमके द्वारा ही अशेष तत्त्व जाने जाते हैं, पर कोई सर्वज्ञ ऐसा नही है कि जो सबको जानता हो और कर्मोंके आवरणसे दूर हो। उस सिद्धान्तके अनुयायी यह शङ्का कर रहे हैं कि समस्त पदार्थोंको जान जाय ऐसा कोई ज्ञानवान पुरुष होना असम्भव ही है। फिर ऐसे ज्ञानकी कल्पना करना कि केवलज्ञान हंता यह कपोल कल्पित है। क्योकि अनुमान प्रमाणसे भी यह सिद्ध होता है कि दुनियामे कोई पुरुष सर्वज्ञ नही है, क्योकि सर्वज्ञकी सिद्धि करा देने वाला कोई प्रमाण नही है, न प्रत्यक्षसे सर्वज्ञको सिद्धि होनी है, अनुमानसे, न आगममे न अर्थापत्तिमे, न अनुमानसे, और अभाव प्रमाण तो सद्‌भावको सिद्ध ही क्या करेगा ? यो किसी भी प्रमाणसे सर्वज्ञकी सिद्धि नही है। यह सब शङ्काकार कह रहा है और यह बहुत लम्बे समय तक शङ्का चलेगी।

प्रत्यक्षसे सर्वज्ञकी असिद्धि – अच्छा तुम्ही बताओ कि समस्त पदार्थोंको जानने वाला यदि कोई सर्वज्ञ है तो वह प्रत्यक्षसे जाना जाता है अथवा अनुमान आदिक प्रमाणसे। प्रत्यक्ष तो केवल सामनेकी चीज, पास वाली चीज, रूप रस, गध स्पर्श विषय इनको ही जानता है, इसके तो दूसरे पुरुषमे रहने वाला जो ज्ञान है उस तकको भी जाननेमे सामर्थ्य नही है, फिर प्रत्यक्ष सर्वज्ञको क्या जानेगा। प्रत्यक्ष ज्ञान तो जो सामने है, स्थूल पदार्थ हैं उनको ही जाननेमे समर्थ है, अतीतकाल, भविष्य कालके सूक्ष्म परमाणु आदिक समस्त पदार्थोंको साक्षात् करले प्रत्यक्ष, यह तो सम्भव ही नही है, फिर कैसे प्रत्यक्षसे सिद्ध होगा कि कोई लोकमे सर्वज्ञ है। शङ्काकार जैन आदिकके प्रति यह कह रहा है कि यदि आप लोग यह कहें कि अतीत भविष्यके समस्त पदार्थोंको यदि कोई ज्ञान ग्रहण नही कर रहा है तो न करे तो भी प्रत्यक्षके द्वारा उन समस्त पदार्थोंको साक्षात्कार करने वाले निज ज्ञानका तो ग्रहण है। उत्तर मे शङ्काकार कहता है कि यह बात अयुक्त है, जब ग्राह्यका ग्रहण नही तो ग्राहकका ग्रहण कैसे ? ज्ञानका तो ज्ञान हो गया और ज्ञानमे जो पदार्थ आया उसका ग्रहण नही होता तो ऐसा भी कोई ज्ञान है क्या ? जैसे हमने चौकीको जाना तो चौकी जाननेमें आयी तब हमारा ज्ञान ग्रहणमे आया। चौकीको तो नही जाना, पर चौकीके जानने वाले ज्ञानको हमने जान लिया यह बात अयुक्त है। प्रत्यक्षसे तो सर्वज्ञकी सिद्धि नही है।

अनुमान प्रमाणसे सर्वज्ञकी असिद्धि– अनुमानसे भी सर्वज्ञ प्रतीत नही होता। यह कैसे ? अनुमान ज्ञान बनता कब है जब कि साधन और साध्यका परस्पर सम्बन्ध जान लिया गया हो। जैसे इस पर्वतमें अग्नि है—धुवा होनेसे, यह अनुमान बनाया तो यह अनुमान कब प्रमाण होगा। कैसे सही बनेगा ? जब यह ज्ञात हो कि धुवां और अग्निका ऐसा सम्बन्ध रहा करता है। जहां जहा धुवा होता है वहां वहा

अग्नि होती है। अग्निके बिना धुआं हो ही नहीं सकता है इन कारणोंसे धुवां देखकर अग्निका ज्ञान कर लेना यह अनुमान सही है। तो इस तरह सर्वज्ञकी सिद्धि करनेमें तुम जो भी अनुमान बनावोगे और उसमें तुम जो भी हेतु दोगे उस हेतुका सर्वज्ञ साध्यके साथ सम्बन्ध किसीने जाना ही नहीं। जिस पुरुषने अग्नि भी देखा हो, धुवा भी देखा हो वही तो उसका सम्बन्ध बता सकता है सर्वज्ञकी सिद्धिके लिए तुम जो हेतु दोगे उसका सर्वज्ञके साथ सम्बन्ध विदित हो ही नहीं सकता। जब साध्य और साधन ये दो बातें देखी गयी हों तब तो वहां सम्बन्ध बनाया जा सकता है।

सर्वज्ञत्व साध्यका हेतुके साथ सम्बन्धका प्रत्यक्षसे अनिर्णय सर्वज्ञकी सत्ता तुम्हारा साध्य है और हेतु तुम जो भी दोगे उसका सर्वज्ञके अस्तित्व के साथ सम्बन्ध तुमने किस तरह जाना प्रमाणसे या अनुमानसे। प्रत्यक्षसे तो ज्ञात हो ही नहीं सकता, क्योंकि सर्वज्ञका प्रत्यक्ष है नहीं। कहीं सर्वज्ञका प्रत्यक्ष हो जाय तब तो किसी हेतुके द्वारा सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध कर सकते हो। जैसे कहीं अग्नि देखी हो तब तो धूम का अग्निके साथ सम्बन्ध बताया जा सकता है। तो सर्वज्ञ तो प्रत्यक्षसे कहीं देखा ही नहीं है फिर उसका सम्बन्ध कैसे बन सकेगा। और जब तक सम्बन्ध ज्ञात न हो साधन और साध्यका तब तक अनुमान नहीं बन सकता। जितने भी अनुमान होते हैं वे सब साधन साध्यके सम्बन्धको जानने के बाद ही होते हैं। जैसे नदीमें बाढ़ आई हुई है और जिस जगह दिख रही है बाढ़ उस जगह आस पास वर्षा भी नहीं है तो वह अनुमान करता है कि ऊपर वर्षा हुई है, क्योंकि ऊपर अगर वर्षा न हुई होती तो यह बाढ़ न आती। तो ज्ञानसे जाना और अनेक बार देखा भी कि वर्षात होती है तो बाढ़ आया करती है। तो वर्षाका होना और बाढ़का आना ये दोनों हमने जब आंखों देखा है तब हम उसका सम्बन्ध बना सकते हैं। तो सर्वज्ञ की सिद्धिमें जो भी तुम हेतु दो उसका भी और सर्वज्ञका भी साक्षात्कार हो जाय तब तो उसका सम्बन्ध माना जा सकता है। जब तक सम्बन्ध विदित नहीं होता तब तक अनुमान भी नहीं बन सकता। यदि बिना सम्बन्धके अनुमान बना लिया जाय तो अनेक अव्यवस्थायें हो जायेंगी। जो चाहे कहलें। जैसे कुछ लिखते लिखते गलत लिख गया तो कहने लगे कि यह गलती इसलिए हुई कि इस दालानमें तीन खम्भे हैं, सो अटपट जो चाहे बोल दिया जाय। तब सम्बन्ध माने बिना अनुमान प्रमाण बन गया तो जो चाहे अटपट सिद्ध किया जा सकता है। तो अनुमान से भी सिद्धि सर्वज्ञकी नहीं हुई, क्योंकि साध्य और साधनका सम्बन्ध प्रत्यक्षसे विदित नहीं होता।

सर्वज्ञत्व साध्यका हेतुके साथ सम्बन्धका अनुमानसे अनिर्णय—यदि कहो कि सर्वज्ञको सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया जायगा, उस हेतुका सर्वज्ञके साथ सम्बन्ध अनुमानसे मान लेंगे तो यह तो बतलावो कि क्या इसी अनुमानसे साध्यसाधन

का सम्बन्ध भी मान लोगे या अन्य अनुमानसे ? यदि इसी अनुमानमें मानोगे तो इतरेतराश्रय दोष है। सर्वज्ञ है क्योंकि जो चाहे कह लो। तो इस ही हेतुसे सर्वज्ञ सिद्ध करोगे और इस ही अनुमानसे सर्वज्ञका और इस ही अनुमानसे सर्वज्ञका और इस ही अनुमानसे सर्वज्ञका और हेतुका सम्बन्ध जानोगे तो इसमें इतरेतराश्रय दोष है। जब पहिले सर्वज्ञ सिद्ध हो तब तो साध्यसाधनका सम्बन्ध सिद्ध हो। जब साध्य साधनका सम्बन्ध सिद्ध हो तब सर्वज्ञ सिद्ध हो। जैसे कि इस पर्वतमें अग्नि है धुवाँ होनेसे। इस अनुमान प्रमाणको सिद्ध करनेके लिये अग्नि और धुवाका सम्बन्ध जानना आवश्यक है। तो अग्नि और धुवाका सम्बन्ध कहा जाना जा रहा है ? प्रत्यक्षसे तो जाना नहीं जा रहा है क्योंकि उस समय अग्नि आंखो दिख नहीं रही है, अनुमानसे भी नहीं जाना जा रहा है, क्योंकि अनुमानसे जानेंगे तो इतरेतराश्रय दोष है, अनुमान से जानेंगे तो अनवस्था दोष है। तो जैसे अग्नि और धुवाँका सम्बन्ध व्याप्तिज्ञानसे जाना जाता अथवा दोनोंका सम्बध जाना जाता ऐसे ही व्याप्ति यहा हो ही नहीं सकती। कारण यह है कि व्याप्ति वहा ही होती है जहा दोनों साध्य साधन देखे हों जहा धुवा होता है वहा अग्नि होती है, जहाँ अग्नि नहीं होती वहा धुवाँ नहीं होता ऐसी जो व्याप्ति है यह तब ही तो जान गई जब अनेक बार अग्नि और धुवाँ का सम्बन्ध आंखो देख चुके। जब सर्वज्ञ देख चुके हो तब ही तो सर्वज्ञके साथ किसी हेतुकी व्याप्ति बनायी जा सकती है, सो अनुमानसे भी इसका सम्बन्ध नहीं जाना जाता प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं है क्योंकि जो इन्द्रिय प्रत्यक्षसे परे है ऐसे परोक्षभूत किसी बातमें प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती औ अगर प्रत्यक्षसे सर्वज्ञ जान लिया गया तो ठीक है, अनुमानकी जरूरत क्या रही। और प्रत्यक्षमें जानी हुई चीजमें किसीका विवाद भी नहीं रहना चाहिये। अग्निको प्रत्यक्षसे देख लिया और स्पर्श करके जान लिया अब उसमें कौन विवाद करता है कि अग्नि ठण्डी होती है या गरम। सर्वज्ञ धर्मी अनुमानसे भी नहीं जाना जाता क्योंकि सर्वज्ञके धर्मी तत्त्वका परिचय हो, तब तो उसकी प्रवृत्ति हो। जब तक धर्मी नहीं जाना जायगा तब तक हेतुका सम्बन्ध नहीं बनाया जा सकता। देखिये शङ्काकार कह रहा है कि न तो सर्वज्ञका किसीको पता न सर्वज्ञके अस्तित्वका ही परिचय और सिद्ध किया जायगा कि सर्वज्ञ है तो यह तो एक अव्यवस्थाकी बात होगी। इससे सर्वज्ञ नहीं है क्योंकि उसकी सिद्धि करने वाला कोई प्रमाण नहीं मिलता।

सर्वज्ञत्व साध्यके साधनमें दोषत्रय—शङ्काकार सर्वज्ञवादियोंके प्रति कह रहा है कि और भी सुनिये। सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करनेमें तुम जो भी हेतु दोगे, उन सब हेतुओंमें तीन दोष हो जायेंगे किसीमें असिद्ध दोष होगा किसीमें विरुद्ध दोष होगा, किसीमें अनैकान्तिक दोष होगा, कैसे सो सुनिये, तुम सर्वज्ञको सिद्ध करनेमें जो भी हेतु दोगे, यह बतावो कि वह हेतु भावस्वरूप है या अभाव स्वरूप वाला है या दोनों धर्मों वाला है ? हेतु कोई सद्भाव परक होता है कोई अभावपरक। जैसे यहां

अग्नि होना चाहिए धुवा होनेसे—यह सद्‌भावपरक हेतु है। धुवाकी सत्ता बताकर अग्निकी सत्ता बताना, और यहा ठण्ड अधिक है क्योंकि गर्मी रच भी नहीं है तो अभाव करके सद्भाव सिद्ध किया है ऐसा कोई हेतु अभावपरक। तो सर्वज्ञको सिद्ध करनेमे आप जो हेतु देंगे वह सद्भाव धर्म वाला ? सद्भाव धर्म वाला तो असिद्ध है—क्योकि सर्वज्ञका सद्भाव ही असिद्ध है फिर उसके भावस्वरूप धर्मकी सिद्धि कैसे हो सकती। यदि अभावकी बात कहकर सर्वज्ञकी सिद्धि करोगे तो विरुद्ध है। अभावसे सद्भाव कैसे सिद्ध होगा। सर्वज्ञ है क्योकि न होनेसे। अभावसे सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध नही हो सकती और यदि हो जाय तो फिर कोई भी हेतु जिस चाहेको सिद्ध कर दें। यदि कहो कि अभाव और सद्भाव दोनो धर्मोको लिए हुए हेतु है तो इसमे अनेकातिक दोष होगा जो दोष दोनोमे दिया है वह दोष आयगा और वह हेतु व्यभिचारी हो जायगा। सर्वज्ञकी सत्ताको सिद्ध भी कर सकेंगे और न भी सिद्ध कर सकेंगे। इस तरह सर्वज्ञका निषेध करने वाले मीमासक सिद्धान्तने सर्वज्ञके अभावका पुष्टि की है कि लोकमे सबको जानने वाला ज्ञान हो ही नही सकता।

अनुमानप्रमाणसे सर्वज्ञकी सिद्धि—अब सर्वज्ञकी सत्ताके सम्बन्धमे आचार्य देव समाधान देते हैं कि यह तुम्हारा कहना कि सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नही है यह बात गलत है। सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करने वाला अनुमान आदिक प्रमाण है। कैसे ? सो सुनो कोई आत्मा समस्त विश्वका साक्षात्कार करने वाला है, क्योकि ज्ञानमे पदार्थोके ग्रहण करनेका स्वभाव होनेपर फिर आवरण कर्म जरा भी नही रहा, इससे सिद्ध है कि ज्ञान समस्त पदार्थोका जानने वाला होता है। ज्ञानका स्वभाव जाननेका है और जाननेमें कोई सीमा नही होती कि ज्ञान इतना को ही जाने। जो ज्ञान इन्द्रियसे उत्पन्न होता है और अर्थात् जिस ज्ञानकी उत्पत्तिमे इन्द्रिया निमित्त हैं उस ज्ञानमे तो हद हो जाती है, पर वह हद ज्ञानकी ओरसे नहीं हुई, उत्पत्ति कारणकी ओरसे हुई। ज्ञानमे स्वभावत कोई सीमा नही होती कि कितनेको जाने। ज्ञानमें तो यह भी अडचन नही है कि ज्ञान सामनेके पदार्थोको ही जाने। सामने हो, पीछे हो, किसी ओर हो, सबको ज्ञान जान सकता है। तो जब ज्ञान सर्व सत्को ग्रहण करनेमें समर्थ है। और फिर उस ज्ञानपर कोई प्रतिबध न रहे तब वह ज्ञान समस्त विश्वको जान लेगा। इसमें कोई सन्देह नही रहता। जो जो प्रकाश जिसको ग्रहण करनेका स्वभाव होनेपर बाधा रहित हो वह उसका साक्षात्कार करने वाला है। जैसे हम आपके ज्ञानमें यह सामर्थ्य है कि सामनेकी चीज जान सकते हैं और सामने पडा हो पर्दा तो पर्दाके मिटते ही हम उस पदार्थको जान जाते हैं। नेत्रमें सामनेके पदार्थको देखनेका स्वभाव है और नेत्रपर पड गई है जाली अथवा कोई पर्दा, वह पर्दा नष्ट हो जाय तो एकदम सामने दिखने लगेगा, इसी प्रकार ज्ञानमें पदार्थको जाननेका स्वभाव पड़ा हुआ है और फिर ज्ञानका आवरण सब दूर हो जाय विषय कषायोका आवरण व पौद्‌गलिक कर्मोका आवरण दूर हो जाय, तो यह ज्ञान

समस्त पदार्थोंको जान लेगा इसमे कोई सन्देहकी बात नही है। जैसे कि नेत्रमें सामर्थ्य है कि यहाँके पदार्थोंको जान ले नेत्र विज्ञानसे और छाया हो अवेरा तो उस समय नही जान पा रहे न सही, किन्तु इस नेत्रज्ञानमे ऐसा स्वभाव पडा है कि इन सर्व पदार्थोंको जान सकता है और फिर हो जाय अधकारका विनाश। उस प्रतिवधका अभाव तो समस्त पदार्थ जाननेमे आ जायेंगे। इसी प्रकार ज्ञानका स्वभाव है पदार्थोंको जाननेका और फिर हो जाय ज्ञानके आवरणका विनाश तो नियमसे वह ज्ञान समस्त विश्वको जान लेगा। इस प्रकार सिद्ध होता है कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है।

आत्मामे समस्त पदार्थोंका अवगम करनेके स्वभावकी सिद्धि—यहा शङ्काकार कर रहा है कि हम तो नही मानते कि आत्मामे समस्त पदार्थोंके ग्रहण करनेका स्वभाव पडा है। स्याद्वादी उत्तर देते हैं कि तुम्हारे यहा भी तो वेदके बलसे समस्त पदार्थोंके ज्ञानकी उत्पत्ति मानी गई है, और फिर अनुमान प्रमाणसे भी इन समस्त पदार्थोंको जान लेते हैं। जगतमे जितने भी पदार्थ हैं वे सब अनेकात्मक हैं क्योंकि सत् होनेसे। जो जो भी सत् होते हैं वे अनेकात्मक होते हैं। जो अनेकात्मक नही वह सत् भी नही। देखो इस अनुमानसे हमने समस्त पदार्थोंकी शकल, लम्वाई चौडाई रूप, रग, लेकिन सामान्यरूपसे हमने समस्त पदार्थोंको जान ही लिया। जिस समय हम अनुमानसे यह जानते है कि जगतमे जितने भी पदार्थ प्रतिक्षण उत्पन्न होते हैं, व्ययको प्राप्त होते हैं और सदा काल बने रहते हैं। क्योंकि सत् होनेसे। इस प्रकार जो भी सत् होता है वह उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक है। ये तीन चीजें पायी जाती हैं प्रत्येक पदार्थमे सत्त्व, रज तम। तो हम भी सभी अनुमानोसे समस्त पदार्थोंका ज्ञान करने वाले हो जाते हैं। स्पष्ट न जान पाया, विशेष न जान पाया, पर एक साधारणरूपसे जिस धर्मको दृष्टिमे रखकर जान रहे है हम समस्त पदार्थोंको जान लेते हैं। तो आत्मामे समस्त पदार्थोंके जाननेका स्वभाव पडा हुआ है।

अनुमान प्रमाणसे ज्ञानमे अशेषार्थ ग्रहण स्वभावकी सिद्धि—जो जिस विषयक ज्ञान होता है वह उसके ग्रहण करनेका स्वभाव वाला है। जैसे रसना इन्द्रिय पदार्थके रसको विषय करती है तो इससे सिद्ध है कि रसना ज्ञानमें रसको ग्रहण करनेका स्वभाव पडा है। कभी किसी चीजका रूप जानना हो तो जीभसे चखकर तो नही जाना जा सकता क्योंकि रसना इन्द्रियका तो रसके ही ग्रहण करानेका स्वभाव है। चक्षु इन्द्रियमे रूपके ही ग्रहण करनेका स्वभाव है। स्वभाव तो है किसी इन्द्रियका और जानना चाहे किसी इन्द्रियके द्वारा तो उसमे विडम्बना बन जायगी। एक पुरुष जन्मसे अन्धा था, एक बच्चेने कहा कि बाबाजी आज हम तुम्हे खीर खिलायेंगे, तो बाबाजी बोले कि खीर कैसी होती है ? तो वह बच्चा बोला कि सफेद सफेद होती है। सफेद कैसी ? अगर रूप देखा हो तो वह अधा सफेद जाने। तो बच्चा बोला—बगुला जैसा। अब बगुला भी कभी देखा हो तो जाने। तो वह बाबाजी पूछते हैं कि

बगुला कैसा होता है ? तो बाबाजीके आगे बगुला जैसा टेढा हाथ करके कहता है कि बगुला ऐसा होता है। बाबाजीने उसे टटोल कर देखा तो कहा अरे ऐसी खीर हम नही खावेंगे। यह तो हमारे पेटमे गड जायगी। अब देखो बताना तो था खीरका स्वाद और बता दिया बगुलाका आकार। तो इसीसे कहते हैं कि बडी टेढी खीर है। यह काम सिद्ध कर लेना यह तो बडी टेढी खीर है। जैसे अधे पुरुषके लिए खीरका ज्ञान करना बहुत टेढा काम है। कैसे ज्ञान कराये ? इसी प्रकारका कठिन और विडम्बनापूर्ण झगडे वाला कोई रूप हो तो उसके लिए यह मुहाना बोला करते हैं कि यह तो 'टेढी खीर है'' तो जिस इन्द्रियके द्वारा जिस विषयको ग्रहण करनेका स्वभाव है जान लिया जाता है तो समझना चाहिये कि उसको इसी प्रकार समझना चाहिए कि आत्मामें पदार्थोंको जाननेका स्वभाव पडा है तब हम पदार्थोंको जानते हैं। तो यह सिद्ध है कि इन पदार्थोंके जाननेका इसमे स्वभाव है। तो जब पदार्थोंके जाननेका आत्मामें स्वभाव है और फिर उसके जाननेके रोकने वाला आवरण कोई रहा नहीं तो नियमसे यह ज्ञान समस्त विश्वका जाननहार हो जायगा। इस प्रकार सर्वज्ञको सिद्ध करने वाला अनुमान प्रमाण है। यह आत्मा समस्त पदार्थोंको जानता है यह व्याप्तिसे सिद्ध है, आगमसे भी सिद्ध है और ज्ञानसे भी सिद्ध है। सर्वज्ञका तुम अभाव नहीं कह सकते।

ज्ञानमे सकलार्थ ग्रहण स्वभावकी झाकी मीमासावादमें कोई मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान सर्वज्ञ नही माना गया है। केवल एक आगमसे ही जाना जा सकता है, जान लिया जाता है कोई पुरुष ऐसी सामर्थ्य नही रखता कि कभी समस्त विश्वका जानकार बन सके। ज्ञानका सर्वोच्च स्थान (साधन) आगम ही है। यो असर्वज्ञत्व मानने वालोके प्रति सिद्ध किया जा रहा है कि आत्मा सर्वको जानता है। यह बात तो अब भी किसी न किसी पद्धतिसे है। न भी हुआ कोई प्रभु सर्वज्ञ, हम आप ससारी जीव हैं तिसपर भी ऐसी पद्धति है कि जिस पद्धतिसे विदित होता है कि हम आप भी सबको जानते हैं। इस विषयमें अनुमान द्वारा तो सिद्ध किया ही था। कैसे कोई जान ले कि जगतमें जितने भी पदार्थ है वे सब उत्पादव्यय ध्रौव्य वाले हैं, त्रिगुणात्मक हैं, क्योंकि सत् होनेसे। तो यो एक सामान्यरूप से समस्त पदार्थोंको जान लिया गया। जैसे कोई पुरुष अपने ज्ञानी मित्रसे बहुत बहुत कहता है कि चलो अमुक पहाडका दृश्य देखें, अमुक सरोवरका दृश्य देखें, चलो वहा ले चलें जङ्गलका दृश्य दिखावें, तो वह ज्ञानी कहता है कि मैंने देख लिया सब। अरे अभी चले कहाँ हो, कहाँसे देख लिया ?…हाँ देख लिया सब, जो कुछ होगा वह पौद्गलिक होगा, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वाला पिण्ड होगा। तो उसने यहाँसे ही अपने प्रयोजनके अनुसार अपनी पद्धतिमें सब देख लिया। तो सबको जान लेनेकी पद्धति आत्मामे है, वह इस समय निरावरण नहीं है, अतएव केवल ज्ञानकी तरह स्पष्ट समस्त विश्व नहीं ज्ञात होता है, पर पद्धति तो है सकल पदार्थोंके जाननेकी।

व्याप्तिज्ञान और आगमसे भी ज्ञानमें सकलार्थ ग्रहण स्वभावकी सिद्धि –सर्वज्ञके ज्ञानके सम्बन्धमें दूसरी बात यह है कि सबको जाने बिना व्याप्तिज्ञान नही बन सकता। जिसे तर्क प्रमाण कहते है, जब अनुमान बनाया कि इस पर्वतमे अग्नि होना चाहिए, धूम होनेसे तो यह व्याप्ति प्रथम ही ज्ञात होती है। जितने भी जहा जहाँ भी धुवा है वे सब अग्नि से उत्पन्न हुए है। अतएव यह धुवाँ अग्निका ज्ञापक है। देखो इस तर्क ज्ञानने दुनियाभरके धुएँका और अग्निका ज्ञान कर लिया। हुआ है यह सामान्य रीतिसे, युक्तिके ढङ्गसे, किन्तु पद्धतिमे तो सब विषय आ गया। और भी देखिये! आगमसे भी सर्वज्ञ होता है यह सिद्ध है। इस ग्रन्थमें जो सर्वज्ञवादी हैं वे यदि अपने आगमके प्रमाण देने लगे तो उनकी कौन मानेगा? जो सर्वज्ञ नही मानते है उनके आगमका ही प्रमाण मिल सके तो उनके लिए मान्य होगा। तो देखो! मीमासकोके आगममे भी लिखा है कि वेद भूत वर्तमान और भविष्यत् और दूरवर्ती समस्त पदार्थोंको, पुरुषोको जना देनेमे समर्थ तो इससे सिद्ध हुआ कि पुरुष सर्वज्ञ बन सकता है। वेदने जना दिया, किसी तरह जाना, आखिर सबको जाननेमे समर्थ तो हो गया पुरुष और फिर अनुमान ज्ञान जितने भी बनते हैं उन सबमे विधि प्रतिषेधका विचार जरूर चलता है। जहाँ जहाँ धुवाँ है वहाँ वहाँ आग है, जहाँ आग नही, वहाँ धुवाँ नही। तो देखिये! विधि रूपसे और प्रतिषेध रूपसे सारे विश्वके स्थलोको जान लें ऐसा जाने बिना तर्क ज्ञान नही बन सकता। तो व्याप्तिज्ञानमे भी सबका जानना बन गया। फिर यह क्यो कहते हो कि आत्मामे समस्त पदार्थोंके जानने का स्वभाव नही है? स्वभाव है।

सर्वज्ञत्व साध्यका हेतुके साथ सम्बन्धका तर्कसे निर्णय सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करनेमें जो असर्वज्ञवादियोने यह युक्ति दी थी कि देखो सर्वज्ञको सिद्ध करने के लिए जो भी हेतु दिया जायगा उस हेतुका सर्वज्ञत्व साध्यके साथ सम्बन्ध विदित नही हो सकता। और, जब तक हेतुमें साध्यका सम्बन्ध न जान लिया जाय तब तक अनुमान प्रमाण नही बनता। जैसे जहाँ जहाँ धुवाँ है वहाँ वहाँ अग्नि है, यह सम्बन्ध विदित हो वही पुरुष तो धुवाँ देखकर अग्निका ज्ञान कर सकेगा। जिसे इस व्याप्तिके सम्बन्धका परिचय नही हैं वह कैसे अनुमान बनायेगा? तो सर्वज्ञके लिए तुम जो हेतु दोगे उस सर्वज्ञके साथ सम्बन्ध अविदित है। यदि विदित है तो बतावो प्रत्यक्षसे या अनुमान से? और, ऐसा कहकर दोष दिया था किन्तु वह सब असङ्गत है, सर्वज्ञत्व साधनामें इन दोषोका अवकाश नहीं है, इसका कारण यह है कि सर्वज्ञ पना सिद्ध करने के लिए जो हेतु दिया जायगा उस हेतुका और सर्वज्ञत्वके साथ सम्बन्ध है, वह यद्यपि न प्रत्यक्षसे जाना जाता और न अनुमान से, किन्तु तर्क नामका एक प्रमाण है उससे जाना जाता है। देखो—तर्कयुक्तियाँ! अन्यथानुपपत्तिके माध्यम से अविनाभाव जाना जाता है। इसके बिना यह नही हो सकता। और, यह है तो वह जरूर है। बस, यही एक कुञ्जी है अनुमान प्रमाण की। तो उस तर्क नामके

प्रमाणसे हम व्याप्ति सिद्ध करते हैं, अतएव हेतुका और सर्वज्ञत्व साध्यका सम्बन्ध मिल जाता है और अनुमान बन जायगा कि कोई न कोई पुरुष सर्वज्ञ अवश्य है, क्योंकि उन सब पदार्थोंके जाननेका स्वभाव होकर भी आवरण एक भी नहीं रहे। इससे सिद्ध है कि कोई पुरुष समस्त विश्वका जाननहार है।

सर्वज्ञत्वसाध्यमे अन्य अनुमानवत् धर्मीकी सिद्धि—सर्वज्ञत्वके खण्डनमें असर्वज्ञवादियोंने जो यह युक्ति दी थी कि तुम यह सिद्ध करते हो कि सर्वज्ञ है और उसके लिए हेतु देते हैं तो जैसे कोई पर्वतमे अग्नि सिद्ध करना चाहे धुवांका हेतु देकर तो पर्वत तो आंखो दिखता है तब तो उसमे आग सिद्ध करेंगे। पर्वत हुआ पक्ष, इसी प्रकार पहले पक्ष, धर्मी सर्वज्ञ तो दीखें तब उसमे हेतुना सिद्ध कर सकेंगे पर सर्वज्ञ किसी प्रमाणसे नही जाना जाता। इस प्रकारकी युक्ति देकर जो खण्डनका प्रयास किया था वह भी असिद्ध है। कारण यह है कि इस अनुमानमें पक्ष सर्वज्ञ नही सर्वज्ञको हम धर्मी नही बना रहे जिससे सर्वज्ञकी असिद्धिको यह दोष दिया जा सके। तब फिर क्या धर्मी बना ? कोई आत्मा ? हमारा तो अनुमान प्रमाण यह है कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है। समस्त पदार्थोंको जाननेका स्वभाव होनेपर आवरण कोई नही रहा। तो हमारा धर्मी तो कोई आत्मा है और 'किसी आत्मामें" कोई विवाद नही। बहुतसे आत्मा हैं उनमेंसे किसी आत्माका हम अनुमान बना रहे हैं, तो यह भी दोष नही आता सो अनुमान निर्दोष है, उससे सर्वज्ञकी सिद्धि होती है। एक दोष दिया था असर्वज्ञवादियोंने कि उस सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करनेमे जो भी कुछ हेतु दोगे उसमे तीन दोष आते हैं असिद्ध, विरुद्ध, अनेकान्तिक, यह भी बात ठीक नही है कारण यह है कि इस तरहके विकल्प बनानेसे तो सारे अनुमान प्रमाण नष्ट हो जायेंगे। किसी भी जगह हम पूछ सकते हैं। जैसे कि एक सही अनुमान बनायें कोई कि यह पर्वत अग्नि वाला है—धूमवाला होनेसे। तो पूछा जा सकता है वहा कि यह धूमपना क्या अग्नि वाले पर्वतक धर्म है या अग्नि रहित पर्वतका धर्म है ? यदि अग्नि वाले पर्वतका धर्म है ऐसा जान लिया तो अग्निवान तो पहिले ही उसने मान लिया, फिर हेतु देने की जरूरत क्या ? यदि कहो कि अग्नि रहित पर्वतमे धर्म है यह धुवा तो, उससे तो उल्टी बात सिद्ध हो जायगी कि दोनो बातें हैं तो उसमें हेतु व्यभिचारी बनेगा तो सारे अनुमान यो खतम कर सकते। जैसे युक्ति देकर सर्वज्ञत्वका खण्डन करना चाहा था कि सर्वज्ञका सद्भाव मानने वाले, तुम सर्वज्ञत्व सहित सर्वज्ञत्वमे सत्ता सिद्ध करते हो या सर्वज्ञत्व रहित पदार्थमे तुम सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करते हो तो यह तो कोई युक्ति नहीं है। जैसे सब प्रकृतमें कहेंगे कि जिस अग्निका अभी विवाद है या नही, उस धर्मसे सत् पर्वतमे हम अग्नि सिद्ध करते हैं तो यही बात यहा है कि जिसकी सत्तामे विवाद है उस धर्म करके सहित किसी आत्मामें हम सर्वज्ञपना सिद्ध करते हैं। तो जैसे पर्वत अचल है और उस रूपसे हमें बिल्कुल समझमें आ रहा है और उस रूपसे ठीक हमे समझमे आ रहा है अब उसमें अग्निका संदेह है। अग्नि है या

नहीं, उस साध्यका हम हेतु बना रहे हैं कि धुवा है अतएव अग्नि है इसी प्रकारसे आत्मा ता प्रसिद्ध है जगतमे हम अनेक आत्मावोंको जानते हैं उन आत्मावोके विशेषण से उनकी सत्ता प्रसिद्ध है। अब सर्वज्ञपना अप्रसिद्ध है। तो सवज्ञपना करके सहित जिसका कि विवाद चल रहा है, किसी आत्मामे हम सर्वज्ञपना सिद्ध करते हैं इसमे विरोधकी कोई बात नही है। तो सर्वज्ञके खण्डन करनेमे जो युक्तिया देते जो वे सब असत्य हैं, निर्बल हैं, अतएव सर्वज्ञका खण्डन नही हो सकता। कोई आत्मा नियमसे सवज्ञ है।

अविशेष या विशेषरूपसे सर्वज्ञत्व सिद्ध करनेकी आशङ्का अब शङ्काकार फिर अपनी बात रख रहा है कि तुम जो सर्वज्ञ सिद्ध कर रहे हो वह सामान्य रूपसे सिद्ध कर रहे या विशेष रूपसे ? अर्थात् कोई है सर्वज्ञ इतना ही बात सिद्ध करना चाहते हो या अरहन्त सर्वज्ञ हैं ? आदिक कोई विशेषरूपसे सर्वज्ञ सिद्ध करना चाहते। यदि कहो कि हम सामान्यरूपसे सर्वज्ञ सिद्ध करना चाहते तो फिर विशेष रूपसे अरहत भगवान द्वारा प्रणीत आगमका आश्रय करना तो युक्त नही बैठा, क्योकि तुम तो सामान्यरूपसे सर्वज्ञ मानते हो। यदि विशेष रूपसे सर्वज्ञको सिद्ध करना चाहते कि अरहत सर्वज्ञ हैं तो और कोई सर्वज्ञ रहा नही, फिर दृष्टान्त किसका दोगे ? कोई भी बात दृष्टान्तसे ही तो स्पष्ट होती है। और कोई सर्वज्ञ रहा नही तो दृष्टान्त किसका दोगे ? तब फिर उसमें यो अनेकान्तिक दोष आ जायगा। और, भी सुनो ! जिस हेतुसे तुम प्रतिनियत अरहतको सर्वज्ञ सिद्ध करोगे उसी हेतुसे तुम प्रतिनियत अर्हन्तको सर्वज्ञ सिद्ध करोगे उसी हेतुसे सुगत भी सवज्ञ बनेंगे, क्योकि उनमें अब कोई विशेषता तो न रही, हेतु उनमे भी जायगा क्योकि सर्वज्ञके सिद्ध करनेमे इस लोकमे कोई हेतु नही, तुम अटपट बोलोगे तो उससे अरहत ही सर्वज्ञ है, यह कैसे निर्णय बनेगा, सभी सर्वज्ञ होगे। तो सर्वज्ञकी सिद्धि न सामान्यरूपसे होती है और न विशेषरूपसे।

अविशेषरूपसे सर्वज्ञत्व सिद्ध करके विशेषरूपसे सिद्ध करनेकी पद्धति— अविशेष या विशेषरूपसे सर्वज्ञ माननेकी शङ्कापर आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि सामान्यरूपसे सर्वज्ञ सिद्ध करते हो या विशेषरूपसे ? यह कहना तुम्हारा केवल बकवाद मात्र है क्योकि जरा उसे सोचो सर्वज्ञताकी सिद्धिमे सर्वप्रथम तो सामान्यतया सिद्ध करना होगा, तब माना जायगा सामान्यतया सिद्धकी दलील सुनकर, कि हाँ बात ठीक है कोई आत्मा सर्वज्ञ हो सकता है, तब उसके बाद कोई आत्मा सर्वज्ञ हो सकता वे यह विशेषरूपसे सिद्ध किया जाता है। अतः ये दोनो दोष नहीं आते। इस समय तो सामान्यरूपसे सर्वज्ञके सम्बन्धमें ही विवाद है, तुम तो सर्वज्ञपना जरा भी नही मानते, तो पहिले यह सिद्ध होता है कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है क्यो ? यो कि ज्ञानका समस्त पदार्थोंके ग्रहण करनेका स्वभाव है और फिर उस ज्ञानपर आवरण रहा नही, इससे

सिद्ध है कि जो इस परिस्थितिमें आ गया, आत्मा निरावरण हो गया वह सर्वका ज्ञान हार बन गया। ज्ञानमें सब पदार्थोंके ग्रहण करनेका स्वभाव है यह भी भली भांति सिद्ध कर दिया गया है और जब कि ज्ञानोंपर आवरणोंकी कमी वैसी देखी जा रही है। किसीका ज्ञान विशेष विकसित है उसमें आवरणकी हानि अधिक है, किसीका आवरण अधिक नष्ट है तो आवरण हानिकी जब प्रकर्षता देखी जा रही है तो कोई आत्मा ऐसा भी है जिसके आवरण रंच भी नहीं है। बस वह सर्वज्ञ होगया। कितना सुगम साधन दिया गया है। सर्वज्ञताके माननेमें विवाद क्या है ? फिर तो यह परखा जायगा कि हो तो गया सर्वज्ञ, जान तो लिया इतने समस्त पदार्थोंको, किन्तु रागद्वेष तो रंच मात्र भी नहीं है। तो जहां रागद्वेष नहीं रहते वहां ज्ञान किस प्रकारसे जानता है ? बस, इसके परखने भरकी एक कसर रह जाती है। इसे परख लो प्रभु सबको जानता है इसमें तो रंच भी सन्देह नहीं पर रागद्वेष न रहनेपर जीव का परिणाम, किस प्रकारका चलता है इसमें बुद्धि लगावो। तो पहिले तो यह सिद्ध किया गया है कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है इसके बाद फिर विशेष जानकारी करनेके लिये फिर सिद्ध किया जायगा कि अरहंत ही सर्वज्ञ हैं।

विशेषरूपसे सर्वज्ञत्व सिद्धि—अरहंत प्रभु सर्वज्ञ हैं क्योंकि प्रत्यक्ष और आगमसे अविरुद्ध वचन उनके ही पाये जाते हैं। जो जिस विषयका स्पष्ट और निर्दोष जानकार होता है उसका वचन कहीं भी स्खलन नहीं हो सकता, मिथ्या नहीं हो सकता। कोई पूछे कि हम कैसे समझें कि अरहंत प्रभुके वचन प्रत्यक्ष और आगमसे विरोध नहीं खाते। तो यह बात बतानेके लिए तो बहुत लम्बा समय चाहिये। और इस ही प्रकारकी निर्दोषता बतानेके लिए देवागम स्तोत्र बना है। जिसपर अकलंक देवने अष्टशती टीका की और उसे अपने पेटमें रखकर उन वचनोंमें बीच-बीचमें अपने व्याख्यानसे प्रवाह रूपमें मिलाकर अष्टसहस्री की व्याख्या हुई है जिसे विद्यानन्दी स्वामीने की है। ये बहुत पहिले समयमें बड़े दिग्गज विद्वान हो गए। और मोटे रूपसे तो इतनासा ही परखले कि वस्तु स्वरूप बताया गया है कि प्रत्येक पदार्थ अनादि सिद्ध है और वह उत्पादव्यय ध्रौव्य स्वभाव वाला है। किसी भी पदार्थको उठाकर देख लीजिए—ये तीनों चीजें स्वभावतः पायी जाती हैं। या नहीं, जबकि अनेक लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि कभी दुनियामें कुछ न था, अंधकार ही था, फिर एक आगकी कणिका निकली, सूर्य बना, समुद्र बना मछली बनी फिर मेढक बना, फिर और और तरहसे मनुष्यके निर्माणकी कल्पना करते हैं, वह प्रत्यक्षसे बिल्कुल विरुद्ध बैठता है, आगमसे अविरुद्धता है, इस बातको आप निरख लीजिए जो लोक की रचनाका विषय है। जितने भी आगम मिलेंगे चाहे दक्षिण देशके आचार्यने बनाया हो या उत्तर देशवासी आचार्यने बनाये हों, कहीं एक अंगुलका भी तो फर्क नहीं है। जो भी पर्वत बताये, जो भी विस्तार बताये कहीं रंच भी तो फर्क नहीं है। चरणानुयोगमें, द्रव्यानुयोगमें, सभी अनुयोगोंके सम्बन्धमें जो वर्णन किया है पहिले

से बादमें विरोध होता हो ऐसी स्थितियां नहीं नजर आतीं । तो ऐसे वचन उनके ही हो सकते हैं, उनकी परम्परासे ही निर्णय हो सकता है तो सर्वज्ञ है इसमें कोई विवाद नहीं यों पहिले सर्वज्ञको सामान्यरूपसे सिद्ध किया जाता है फिर विशेषरूपसे । यह युक्ति सही नहीं बैठती तुम्हारी कि बतावो तुम सामान्यरूपसे सर्वज्ञ सिद्ध करते या विशेषरूपसे ?

अविशेष या विशेषरूपसे सर्वज्ञत्व प्रतिषेधकी असङ्गति— अविशेष व विशेषरूपके विकल्प करनेकी हठ ही रखोगे तो हम यह कह बैठेंगे कि अच्छा तुम बतावो तुम सामान्यरूपसे सर्वज्ञका निषेध करते या विशेषरूपसे ? जो दोष दिया है वह दोष आपके लिए भी आ सकता है । किस तरह ? यदि कहो कि हम सामान्यरूप से सर्वज्ञका खण्डन कर रहे हैं तो यह खण्डन तो नहीं आया कि अरहंत सर्वज्ञ नहीं हैं, यह बात तो नहीं बैठी । विशेषरूपसे कहोगे कि अरहंतके सर्वज्ञत्वका खण्डन करेंगे, तो उसका फिर दृष्टान्त बतावो । तो जो दोष सर्वज्ञकी विधिमें दिया गया है वह दोष सर्वज्ञके निषेधमें भी किया जा सकता है । तो यह कोई दोष नहीं बैठता । पहले सामान्यसे सर्वज्ञताकी सिद्धि करते हैं फिर विशेषरूपसे करते हैं ।

विशेषरूपसे सर्वज्ञत्वका परिचय—समन्तभद्राचार्यने जब प्रभुके नमस्कारके लिए भक्ति की तो तर्क किया अपने आपमें कि कैसा प्रभु मेरे नमस्कारके योग्य है ? तो किसीने कहा कि जिसके पास देवता लोगोंके आनेका तांता बना रहे, जो आकाशमें चले, जिसके ऊपर चमर ढुलें बस वह है प्रभु ! तो आचार्य कहते हैं—नहीं, इतनी बात तो कोई मायावी पुरुष भी कर सकता है । जिसे कुछ सिद्धि हो या और प्रकारके चमत्कार हो वह भी ये बातें करा सकता है । इस कारण तो कोई हमारा प्रभु नहीं है । तो फिर कहने लगा वह कि जिसके शरीरमें हाड-मांस आदिक कुधातु नहीं, दिव्य शरीर है, पसीना मल आदिक नहीं हैं वह है प्रभु ! तो बोले—नहीं, ऐसा शरीर तो देवोंके भी मिल जाता है । तो फिर कहने लगा कि लो जैन शासन चलाया है इसलिये ये प्रभु हैं । तो यों तो शासन सभीने चलाया, जिसका जो धर्म है उसने वही चलाया, इससे भी सिद्ध नहीं होता कि मेरे नमस्कारके योग्य ये प्रभु हैं ! अच्छा, तो तुम बतावो, प्रभु कौन हो सकता है ? तो बताया उन्होंने कि जिसमें दोष और आवरण बिल्कुल भी न हो, वही प्रभु है । रागादिक दोष, अज्ञान दोष और कर्मोंका आवरण, ये जहाँ नहीं हैं वही सर्वज्ञ प्रभु हो सकता है । तो यह तो सामान्य कथन है, और इस सामान्य कथन से टिकाव तो कहीं नहीं हो सकता है । तो कहा उन्होंने कि हे प्रभो ! अरहंत, तुम ही वह सर्वज्ञ हो प्रभु, क्योंकि आपके वचनोंमें कहीं दोष नजर नहीं आता । जैसे जिसका जुखाम बुखार मिट गया उसके वचनों से ही लोग पहिचान जाते कि इसका रोग दूर हो गया, और यह निर्दोष है, इसी प्रकार जो वचन निर्दोष है उसकी निर्दोषतासे ही यह प्रकट होता है कि प्रभु आप ही सर्वज्ञ हैं । फिर

वह निर्दोषता कैसी है उसको बतानेके लिये सब मत–मतान्तरोंका विवेचनात्मक प्रतिपादन समन्तभद्राचार्यने किया है और सिद्ध किया है कि आपके इस अनेकान्तमें कोई विवाद नहीं है अतएव आप ही सर्वज्ञ हैं। पहिले सामान्यरूपसे सिद्ध कर लीजिए है कोई वह अवश्य सर्वज्ञ। फिर विशेषरूपसे भी वह सर्वज्ञ सिद्ध कर लिया जायगा।

सर्वज्ञत्व साधक अनुमानके साध्यमें शङ्काकारके दो विकल्प जो किसी भी आत्माको सर्वज्ञ नहीं मान रहा है ऐसा सिद्धान्तवादी स्याद्वादवादियोंसे प्रश्न कर रहा है कि तुम जो यह मानते हो कि सूक्ष्म और दूरवर्ती तथा अतीत भविष्यकालके पदार्थ किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष हैं क्योंकि प्रमेय होनेसे अग्निकी तरह जैसे अग्नि प्रमेय है, पर्वतमें छुपी हुई है अग्नि, जिसका कि धुवां बाहर निकल रहा है वह अग्नि किसी न किसीके द्वारा प्रमेय है। जो पर्वतपर हुआ वह तो उस अग्निको देख ही रहा होगा। तो किसीको प्रत्यक्ष तो जरूर है अग्नि क्योंकि प्रमेय होनेसे। इसी प्रकार ये सूक्ष्म पदार्थ प्रमेय हैं अतएव किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष हैं ऐसा जो स्याद्वादी कहते हैं वह कथनमात्र है। वह बात युक्त नहीं हो सकती। शङ्काकार यहाँ इस अनुमानका खण्डन कर रहा है। सर्वज्ञ न मानने वाले लोग सर्वज्ञत्व साधक अनुमानमें आपत्ति दे रहे हैं। क्या ? अच्छा बताओ तुम्हारे अनुमानमें दो बातें आयीं, कि यह पदार्थ प्रमेय है इस कारणसे दूसरी बात क्या आयी कि किसी न किसीके प्रत्यक्ष है। एक है हेतु और एक है साध्य। साध्य तो यह है जो सिद्ध किया जा रहा है कि सूक्ष्म आदि पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं तो साध्यके बारेमें ही पूछ रहे हैं कि किसीके प्रत्यक्ष हैं इसका अर्थ क्या ? क्या यह ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष है या अनेक ज्ञानोंके द्वारा वह पदार्थ प्रत्यक्ष है ? इन विकल्पोंका भाव यह है कि जैसे हम इतने पदार्थोंको जान रहे हैं तो इतने पदार्थ जो जाने जा रहे हैं ये एक ज्ञानके द्वारा जाने जा रहे हैं या अनेक ज्ञानों के द्वारा ? आप ही सोचिये एक आँखसे देखकर जाना तो एक ही बात जाना, तो एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष करना कहलायेगा। और देखनेके ही साथ यदि तत्सम्बन्धी दसों बातें जाननेमें आ जायें तो अनेक ज्ञानोंके द्वारा प्रत्यक्ष कहलायेगा। यों इस सम्बन्धमें पूछ रहा है शङ्काकार कि परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थ राम रावण आदिक अतीत पदार्थ और मेरु आदिक दूरवर्ती पदार्थ ये किसीके प्रत्यक्ष हैं तो क्या एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष हैं या अनेक ज्ञान उत्पन्न किए, उन ज्ञानोंके द्वारा प्रत्यक्ष है।

सर्वज्ञत्व साध्यके दोनों विकल्पोंसे शङ्काकार द्वारा सर्वज्ञत्वका निराकरण – इन परमाणु आदिक पदार्थोंको एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष मानोगे तो यह तो विरोध है, क्योंकि हम देख रहे हैं कि जो पदार्थ प्रमेय हैं वे पदार्थ एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होते। देखते ही के साथ यह रूप है, यह कड़ा है यह ऐसे आकारका है, कहाँका बना है ? कितनी बातें जानी जाती हैं। तो ऐसे ही यह प्रमेय है, तो अनेक

आदिके द्वारा प्रत्यक्ष तो कह लेने पर एक ज्ञानके द्वारा नही कहा जा सकता, क्योंकि जितने भी प्रमेय होते हैं वे सब एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष नही होते। क्योंकि जैसे इन्द्रियाँ अलग अलग विषयोंको जानती हैं, नेत्र रूपको जानेगे घ्राणेन्द्रिय गंधको जानेगी रसना रसको जानेगी, कर्ण शब्दोको जानेगे। तो जब ज्ञानके विषय न्यारे न्यारे हैं और किसी वस्तुमे उसके धर्मोंका बोध होता है तो एक ज्ञानके द्वारा कैसे बोध हो सकता है ? दूसरी बात यह है कि जो दृष्टान्त दिया है अग्नि आदिकका तो वे सारे प्रमेय ऐसे है कि वे एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष नही होते तो तुम्हारा दृष्टान्त भी साध्यसे रहित हो गया। यदि कहो कि अनेक ज्ञानो के द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं वे सारे पदार्थ तो शङ्काकार कह रहा है कि यह बात तो हम मान लेंगे, अनेक प्रत्यक्षोंके द्वारा, अनुमान आदिकके द्वारा समस्त पदार्थोंका परिज्ञान किया जा सकता है। यदि प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम आदिक सभी प्रमाणोंके द्वारा तुम सबका जानने वाला ज्ञान मानते हो तो उसमें हमे एतराज नहीं है, पर एक ज्ञानके द्वारा ही समस्त लोकालोक प्रत्यक्ष हो जाय, ज्ञानमे आ जाय यह बात स्वीकार नहीं करते। यहाँ शङ्काकारका अभिप्राय यह है कि वेद आगम, अनुमान आदिक प्रमाणोसे यदि धीरे-धीरे बटोर बटोरकर उन ज्ञानोसे सब विश्वको जान लिया जाय यह तो हम मान सकते है, पर कोई एक ज्ञानप्रकाश ऐसा उत्पन्न होता है आत्मामे कि सिर्फ उस ज्ञानके ही द्वारा सारा लोकालोक एक साथ ज्ञानमे आ जाय यह हम नही मान सकते। यो शङ्काकार आत्माकी असर्वज्ञताके सम्बन्धमे कि कोई भी आत्मा सर्वज्ञ नही हो सकता है, इस सिद्धान्तको समर्थित करते है।

सर्वज्ञत्वसाधक अनुमानके साध्यमे दोषका अनवकाश — सर्वज्ञत्व साध्य के विकल्पोंके समाधानमे कहते है कि वे सूक्ष्म आदिक पदार्थ एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं या अनेक ज्ञानोंके द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं ऐसा विकल्प करना असगत है क्योंकि इस अनुमानमे तो हम प्रत्यक्ष सामान्यके द्वारा यह सिद्ध कर रहे है कि किसी न किसीके सूक्ष्म आदिक पदार्थ भी प्रत्यक्ष हो जाते है, क्योंकि प्रमेय हैं। इस समय हम यह नही सिद्ध कर रहे कि एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष होता है या अनेक ज्ञानोंके द्वारा, यह बात पीछे बतायेंगे। पहिले यह तो स्वीकार करलो कि हाँ जो भी प्रमेय है जो भी सत् है, यदि वस्तु है तो किसी न किसीके द्वारा वह प्रत्यक्ष गम्य है। पहिले तो यह सिद्ध किया जा रहा है। जब सामान्यरूपसे यह सिद्ध हो जायगा कि हाँ ये राम रावण आदिक अतीत कालके लोग, मेरु आदिक दूरवर्ती पदार्थ, परमाणु आदिक सूक्ष्म वस्तुयें किसीके प्रत्यक्ष होते ही है ऐसा सिद्ध हो जानेपर फिर बतायेंगे कि वह प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मनकी अपेक्षासे उत्पन्न हुआ नही हो सकता। इन्द्रियाँ जो स्पर्शन इन्द्रिय है या मन है। इनके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले ज्ञानमें राम रावण आदिकका स्पष्ट अनुभव करा देना इसकी बात नहीं है। परोक्ष रूपसे भले ही उन का स्मरण चिन्तन करके जाना जा सकता है, पर सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका स्पष्ट

बोध उस ही ज्ञानसे हो सकता है जो ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नहीं रखता और फिर जो ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखकर स्वभावसे उत्पन्न होता है वह ज्ञान एक स्वरूप होगा। नानास्वरूप नहीं हो सकते। कार्यमें नानापन तब आता है जब कारणोंका नानापन हो। जो ज्ञान केवल आत्माके स्वभावसे ही विकसित होता है, इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नहीं रखता है उस ज्ञानमें नानापन नहीं हो सकता। वह एक ही ज्ञान है, जिसे केवल ज्ञान कहते हैं। तो यहा तक इतना सिद्ध हुआ कि परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष होते हैं और जिस ज्ञानके द्वारा यह प्रत्यक्षीभूत होता है वह ज्ञान इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न नहीं होता। यो अतीन्द्रिय ज्ञानके द्वारा सारा लोकालोक, विश्व किसीके द्वारा एक साथ ज्ञात होता है।

सकलप्रत्यक्ष ज्ञानकी इन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षता— इस प्रसगमे यदि यह पूछेगा कोई कि हम यह कैसे निश्चय बनायें कि वह ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नहीं रखता तो सिद्धि सुनो किसी भी तत्त्वकी सिद्धि करनेके लिये जितना समर्थ प्रत्यक्ष ज्ञान होता है उतना ही समर्थ अनुमान ज्ञान होता है। लोक व्यवहारमे अनुमानका अर्थ लचकड ज्ञान करते हैं जिस ज्ञानमे दम नहीं है, हाँ अनुमानमे तो ऐसा ही लगता है। पर न्याय शास्त्रमे अनुमान प्रमाणको उतना ही ठोस माना गया है जितना ठोस प्रमाण प्रत्यक्ष रहता है। अन्तर इतना होता है कि प्रत्यक्ष प्रमाण तो विशद होता है और अनुमान प्रमाण अविशद होता है, जैसे कि आजकी मानी हुई दुनियाका नक्शा है, उसे देखकर ज्ञान करते हैं कि यह अमेरिका है, यह एक जर्मन है —एक तो यह ज्ञान और कोई पुरुष अमेरिका हो आये और उसने समझ लिया कि यह अमेरिका है एक यह ज्ञान। इन दोनो ज्ञानोमे झूठ तो किसीको न कहा जायगा। दोनो ही दृढतासे कहते हैं कि अमेरिका यही है - और कितनी ही बातें वह भी न बता सकेगा जो अमेरिकासे आया हो। और उससे अधिक बाते वह बता देगा जिसने भूगोलसे, इतिहाससे, नक्शोमे ज्ञान किया है। लेकिन नक्शोका ज्ञान वाला ज्ञान अविशद है और जो स्वय हो आया वहा, उसका ज्ञान स्पष्ट है। तो विशदता और अविशदतामे तो अन्तर है किन्तु प्रमाणतामे अन्तर नहीं है। प्रभुका ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नहीं रखता है, इस बातको अनुमान प्रमाणसे सिद्ध कर रहे हैं। योगि प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखकर ही होता है, क्योकि वह ज्ञान सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको विषय करता है। जो इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा करके उत्पन्न होता है वह ज्ञान सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको विषय नहीं कर सकता। जैसे हम आप छद्मस्थ जीवोंको प्रत्यक्ष और बाह्यका ज्ञान सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको विषय करता है, इससे सिद्ध है कि वह ज्ञान इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न नहीं होता।

साध्यविकल्पोंके शङ्कापर अनुमानोच्छेदका प्रसङ्ग—ये समस्त पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं, ऐसा साध्य बनानेपर जो लोग यह शङ्का लगा देते हैं कि अच्छा

बतावो एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष है या अनेक ज्ञानोके द्वारा प्रत्यक्ष है ? ऐसा प्रश्न लगानेपर तो हम उनके किसी भी सही अनुमानको सिद्ध न करने देंगे। हम इसे उनमे पूछ सकते हैं। जैसे कि कोई अनुमान बनाये कि इस पर्वतमे अग्नि है, धुवाँ होने से। जैसे रसोईघर याने रसोईघरमे अग्नि है, धुवाँ होनेसे यह बार-बार जाना, सो ऐसे ही धुवाँ होनेसे पर्वतमे भी अग्नि है। यह अनुमान हुआ तो सही है ना, अग्निके रहनेकी बात तो सही है ना, पर हम इसे भी सिद्ध न होने देंगे। वहाँ पूछा जा सकता है कि तुम किस अग्निको वहाँ सिद्ध कर रहे हो ? इसको स्पष्ट समझनेके लिए थोडा यों जानो कि एक पुरुष चला जा रहा है देशाटनको, रास्तेमे उसने किसी छोटे पहाडपर बहुत सा धुवाँ देखा ता देखकर वह ज्ञान करता है कि इस पर्वतमे अग्नि है, धुवाँ होनेसे। जहाँ जहाँ धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है जैसे रसोईघर। तो इस अनुमानमे जो पर्वतमे अग्नि सिद्ध कर रहे हो वह क्या पर्वतमे रहने वाली अग्नित्वसे सहित अग्निका सिद्ध कर रहे हो या दृष्टान्तमे आई हुई अग्निसे विशिष्ट अग्निको सिद्ध कर रहे हो ? क्या मतलब इस विकल्पका, कि रसोई घरमे जो अग्निपना है उसमे सहित अग्निको पर्वतमे सिद्ध कर रहे हो या पर्वतका स्वय जो अग्निपना है उसमे सहित सिद्ध कर रहे हो ? देखिये ! अनुमानको जब बिगाडना है, उसकी कोई बात हम आगे बढने ही नहीं देना चाहते है तो उसका उपाय है कि ज्यादह विकल्प करके उसका दिमाग बिगाड दे। तो जो रसोईघरकी अग्नि है जिसको हम सिद्ध करना चाहते है उस अग्निके धर्मवाली अग्निको सिद्ध करना चाहते हैं तो यह विरुद्ध हेतु है, क्योकि वह अग्निपना दृष्टान्तमे नही है। पर्वतकी अग्नि रसोईघरमे नही पहुँची। यों दृष्टान्त साध्यविकल भी हो जायगा। उसका कोई दृष्टान्त ही न मिलेगा। यदि कहो कि हम रसोईघरकी अग्निके धर्मसे सहित अग्निको सिद्ध कर रहे हैं तो बिल्कुल विरुद्ध बात है। वहाँकी आग वही है। तो यो विकल्प बनाकर कुछ सिद्धि ही नही हो सकती। यदि यह कहो कि पर्वत और रसोईघर दोनो जगह पाई जाने वाली जो अग्नि सामान्य है हम उसको सिद्ध कर रहे हैं तो तुम्हारी बात ठीक बैठेगी। इस प्रकार यह अनुमानसे न तो एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष है ये, अभी न यह सिद्ध कर रहे और अनेक ज्ञानो द्वारा प्रत्यक्ष हैं ये परमाणु-आदिक, न यह सिद्ध कर रहे, किन्तु प्रत्यक्ष सामान्य सिद्ध कर रहे। तो जब यह सिद्ध हो जाता है कि परमाणु आदिक पदार्थ किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष होता ही है फिर यह बतावेगे कि यह सब किस ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष होता है। इस प्रकार इस अनुमानके बताये गए साध्यको दोष नही दिये जा सकते।

प्रमेयत्व हेतुमे विकल्प करके शङ्काकार द्वारा दोषापादन—अब शङ्काकार हेतुमे दोष ढूंढता है, इस अनुमानमे चूंकि यह बात कही गयी कि परमाणु आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष है प्रमेय होनेसे, अर्थात् इसमे ज्ञेयपना है, किसी न किसीके द्वारा जाना जा सकता है। तो जरूर किसी के प्रत्यक्ष है। जो बात किसी न

किसीके द्वारा जानी जा सकती है वह अ श्य किसीके प्रत्यक्ष होती है। तो इसमे जो प्रमेयत्व हेतु दिया है इस प्रमेयत्वका अर्थ क्या है ? अब शकाकार हेतुमे दोषके खोज की पकड कर रहा है। क्या सर्वज्ञके ज्ञानमे आने वाले प्रमेयके धर्म करके सहित प्रमेय हेतु मानते हो या हम आप छद्मस्थोके प्रमाणमे जिस प्रकार ज्ञेय होता है उस प्रकार का ज्ञेयपना मानते हो ? या दोनो जगह साधारण सामान्य स्वभाव रखने वाला प्रमेयपना मानते हो ? पहिली बात तो यो अयुक्त है कि उसीका ही तो विवाद चल रहा कि सर्वज्ञ है कि नही, और हेतु तुम दे रहे कि सबका जानने वाले प्रमाणमे जैसा प्रमेयपना आया करता है ऐसा प्रमेय है इस कारण यह पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष है। तो उस ही हेतुमे विवाद है तो कैसे वही हेतु दिया जा सकता है ? यदि हेतुमे ही सर्वज्ञता मान ली गई तो सर्वज्ञता सिद्ध करनेके लिए हेतु देना ही व्यर्थ है। जैसे कोई कहे कि इस पर्वतमे अग्नि है—अग्नि होनेसे, इसका कोई अर्थ भी है क्या ? अग्नि होने से, इसे यदि स्वीकार कर लिया तो फिर अनुमान बनानेकी जरूरत क्या है ? इसी प्रकार 'प्रमेय होनेसे' इसका अर्थ यह लगा लिया कि सबको जानने वाला जो प्रमाण है उस प्रमाणके द्वारा प्रमेय है। तो हेतुका अर्थ ही यह हो गया कि सब किसीके द्वारा प्रत्यक्ष है क्योकि प्रत्यक्ष होनेसे। तो इसका अर्थ तो कुछ भी नही रहा, और फिर प्रमेयत्व हम आप लोगोमे पाया नही जाता। जिसका तुमने दृष्टान्त दिया, अग्नि आदिकका, उसमे भी ऐसा प्रमेय नहीं पाया जाता कि सबको जानने वाले ज्ञान मे आया हुआ प्रमेय हुआ। यदि कहो कि लोकके प्रमाणमे जैसा प्रमेय आता है वह प्रमेय मानते हैं तो हम लोगोके प्रमाणमे प्रमेय किस प्रकार आता है तो वह तो यहा स्पष्ट है, उससे तो सर्वज्ञताकी सिद्धि नही हो सकती। यदि सामान्य कहो तो जो दोनोमे रहे, ऐसा कोई सामान्य नही होता। सामान्य तो सामान्य होता है, उसमे आपत्ति नही है। तो यो प्रमेयत्व हेतु देकर भी सर्वज्ञको सिद्ध नहीं किया जा सकता है। ऐसी यह शकाकार शका कर रहा है।

परमार्थतत्त्वकी बुद्धिकी दुर्लभता—देखिये ! सर्वज्ञको न मानने वाली बात तो आसान है। प्राय सभी लोग नास्तिक हैं अथवा चार्वाक हैं। जो सामने चीज दिखी उसे ही तो स्वीकार करना और जो सामने नही आया उसे न मान सकना यह तो साधारणतया सभी जीवोंकी बुद्धि है। जब नरक और स्वर्गोंका वर्णन शास्त्रो मे आता है तो आजकलके भी कुछ विद्वान यह कहने लगे कि यह वर्णन वाला अध्याय निकाल देना चाहिये। इसे कौन मान लेगा, पर जिसको तत्त्वके स्वरूपका दृढ निर्णय हुआ है जो कि सर्वज्ञ परम्परासे प्ररूपित है, जीवादिक ७ तत्त्वोका स्वरूप क्या है, किस प्रकारसे परस्परमे निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है ? और किस तरहसे पदार्थोंमे स्वय अपने आपकी योग्यता है ? पदार्थ अपने ही धर्ममे शाश्वत रहते हैं। अन्य समस्त पदार्थोंसे त्रिकाल विविक्त रहते हैं और किस प्रकार आश्रव, बध, सम्वर, निर्जरा की परिणति बनती है ? इन सब वर्णनोको जो कि इस अनुभवसे उतारकर

निर्णीत कर सकते है जिन्हे जब वे सब बाते एकदम सही उतरती हैं तो प्रभुपर इतनी भक्ति उमडती है कि उनके कथनमे प्रतिपादनमे शङ्का नही हो सकती। भला हम किसी महापुरुषकी उन बातोको तो झट मानलें जो हमारी आँखोके आगेकी बात है और जो बातें ऐसी बताये कि जहाँ तक हमारे नेत्र नही पहुँच सकते, उनको हम न माने तो इसके मायने यह है कि हमे अपनी ही बुद्धिपर गौरव है, घमण्ड है, हम दूरकी बातोंमे कुछ भी विश्वास नही रखते, और ऐसी मान्यता वाले तो एक मण्डूकन्याय वालोकी तरह हैं जो कि एक सकुचित दायरेमे रहते हैं। जैसे कि कोई कुआँके भीतर बैठा हुआ मेढक हस पक्षी से पूछे कि तुम कहाँ रहते ? वह कहे कि मानसरोवरमे। मानसरोवर कितना बडा है ? बहुत बडा। तो एक पैर फैलाकर उस मेढक ने पूछा - क्या इतना बडा है ? अरे इससे बडा। फिर उसने दूसरा पैर फैलाकर पूछा—क्या इतना बडा ? अरे इससे भी बडा। फिर क्रमश- तीसरा और चौथा पर फैलाकर पूछा क्या इतना बडा ? अरे इससे भी बडा। फिर खूब चारो पैर फैलाकर और पेटको भी खूब फुलाकर पूछना चाहा तो उसका पेट ही फट गया। वह मेढक जान ही न पाया कि मानसरोवर कितना बडा है ? जिसके कथनमे पूर्वापर कही विरोध नही, जो सुगम तत्त्व है वह तत्त्व जब शतप्रतिशत यथार्थ अनुभवमे आता है तो उन सर्वज्ञदेवकी वाणीमे जो परोक्षभूत कथन हो वह भी यथार्थ है। कर्मोंके बारेमे हम आप अनुमानसे कुछ जानते तो हैं कि हैं कर्म, होगे कम कोई, किन्तु उन कर्म परमाणुवोका प्रकृति स्थिति, अनुभाग आदिकके कैसे विभाग और कैसी रचनाये, कैसे उनकी निर्जरा ? एक एक समयकी बातका निरूपण जैसे करणानुयोग है उसमे ही कोई जो भी रचनाये परोक्षभूत बतायी गयी है वे आस्तिक पुरुषोकी श्रद्धामे तो अवश्य रहती हैं और न मानने वाले नास्तिकोकी दशा तो अन्धानन्द है। या केवल आँखसे देखे उसे ही प्रमाण माने, ऐसी बुद्धि वाले लोग सर्वज्ञको न माननेमे अपनी युक्तियाँ दे रहे है। अभी शङ्काकारका पक्ष सुनते जाइये। समाधान बादमे देंगे।

आगमसे भी सर्वज्ञत्वसिद्धिके अभावकी आशङ्का—ज्ञानको निरावरण और अशेषज्ञताका स्वभाववाला न मानने वाले लोग शङ्का कर रहे हैं कि सर्वज्ञकी सिद्धि प्रत्यक्षसे भी नही हो सकी, अनुमानसे भी नहीं हो सकी और आगमसे भी सर्वज्ञकी सिद्धि नही होती है। जिस आगमसे सर्वज्ञ सिद्ध करोगे वह आगम नित्य होता हुआ सर्वज्ञका प्रतिपादक है अथवा अनित्य होता हुआ सर्वज्ञका प्रतिपादक है ? नित्य आगमका अर्थ है कि जिसे किसीने न बनाया हो, अनादि कालसे चला आया हो वह तो है नित्य आगम और जो किसी आचार्यने, ऋषिने, पण्डितने बनाया हो वह है अनित्य आगम। नित्य आगम तो सर्वज्ञका प्रतिपादक हो नहीं सकता क्योंकि सर्वज्ञ हुआ है किसी समय जीव और आगम है अनादिकालसे, तो सर्वज्ञसे पहिले आगम है। जो चीज पहिले है, आगम है, आदिवान चीजका जिकर क्या कर सकेगा, एक बात। दूसरी बात ऐसा कोई आगम नित्य है नही जिसने सर्वज्ञत्वका प्रतिपादन बना हो।

और यदि आगम है भी नित्य तो वह किसी भी सद्भावमे प्रमाण नही है किन्तु कार्य के अर्थमे उसकी प्रमाणता है। मीमांसक सिद्धान्त आगमको तो मानते कि है कोई वेद और है नित्य लेकिन उनका अर्थ वस्तुके स्वरूपका प्रतिपादन करता नही है किन्तु लोगोको यज्ञमे, धर्ममे, व्यवहारमे लगानेका प्रयोजन है। तो नित्य आगम तो सर्वज्ञत्व का प्रतिपादन करता नही। अनित्य आगमकी बात यदि कहोगे तो यह बतलावो कि वह अनित्य आगम जो सर्वज्ञको सिद्ध करे वह सर्वज्ञके द्वारा बनाया हुआ है या किसी अन्य पुरुषके द्वारा बनाया हुआ है ? यदि कहो कि सर्वज्ञके द्वारा बना हुआ है तो अन्योन्याश्रय दोष हो गया। पहिले सर्वज्ञके द्वारा प्रणीत है आगम यह सिद्ध हो तो आगममे प्रमाणता आये, और आगम जब प्रमाणभूत सिद्ध हो जाय तो उसमे सर्वज्ञकी बात लिखी हो तो सर्वज्ञकी बात सिद्ध हो सके। यदि कहो कि आगम किसी अन्य पुरुषने बनाया तो अन्य पुरुषोकी बात तो पागलोकी तरह मानी जायगी सर्वज्ञके सम्बन्धमे, अन्य पुरुष जो सर्वज्ञ नहीं है कुछ जानते ही नहीं है, उनकी बातोंका क्या मूल्य ? इस प्रकार सर्वज्ञकी सिद्धि आगमसे भी नही हो सकती।

उपमानप्रमाणसे भी सर्वज्ञत्वसिद्धिके अभावकी आशङ्का शङ्काकार कह रहा है कि सर्वज्ञकी सिद्धि देखो न प्रत्यक्षसे हुई न अनुमानसे, न आगमसे और उपमान प्रमाणसे भी सर्वज्ञकी सिद्धि नही होती। एक प्रमाण है उपमान। जैसे जङ्गलमे जा रहे हैं और वहाँ एक रोझ देखा तो यो ज्ञान करना कि यह रोझ गाय के सदृश है तो यह उपमान हो गया। रोझको बताया है और गायकी तुलनासे बताया है तो उपमान तो तब बनता है जब दोनोंका प्रत्यक्ष हुआ हो। यहाँ देखो रोझको सामने देख रहे है और गायका कई बार प्रत्यक्ष किया है तो उसका स्मरण हो रहा और रोझका प्रत्यक्ष हो रहा तब यह उपमान कर सकते हैं कि यह रोझ गायकी तरह है। सदृशताकी तुलनाकी बात वही तो आयगी जहाँ दोनोका प्रत्यक्ष हुआ हो, अन्यथा नहीं आ सकती। किन्तु कोई सर्वज्ञ प्रत्यक्षसे देखा तो गया नही जिससे कि उससे किसीकी सदृशता लगायें और उसमे उपमान प्रमाण लगा सकें कि यह सर्वज्ञ किसकी तरह है ? जिसने कभी सर्वज्ञको देखा नहीं वह सर्वज्ञको क्या बतायेगा ? तो उपमासेसे भी सर्वज्ञत्वकी सिद्धि नहीं होती।

अर्थापत्ति प्रमाणसे भी सर्वज्ञत्वकी सिद्धिके अभावकी आशङ्का—प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान इन चारो प्रमाणोंसे सर्वज्ञत्वका निराकरण करनेके बाद शङ्काकार कह रहा है कि सर्वज्ञत्वकी सिद्धि अर्थापत्तिके प्रमाणसे भी नहीं हो सकती। अर्थापत्ति प्रमाण उसे कहते हैं जिसके बिना जो बात न हो उसे बताकर उसकी सत्ता सिद्ध करना। जैसे अग्निके बिना धुवाँ न हो सके तो धुवाँ बताकर अग्नि सिद्ध करना कि यहाँ अग्नि है यह अर्थापत्ति प्रमाण कहलाता है। तो अर्थापत्ति प्रमाणसे भी सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं हो सकती, क्योकि सर्वज्ञके बिना न उत्पन्न हो

ऐसा कोई पदार्थ किसी प्रमाणसे जाना नहीं गया। यदि यह कहो कि धर्म आदिकका जो उपदेश है, धर्म अधर्म पुण्य पाप इनके सम्बन्धमे जो उपदेश है वह सर्वज्ञके बिना नहीं हो सकता और उपदेश पाया जाता है इससे सर्वज्ञकी सिद्धि हो जायगी। तो शङ्काकार उत्तर देता है कि यह बात भी तुम्हारी यों ठीक नहीं कि धर्म आदिकका उपदेश बहुतसे लोग सुनते हैं, ग्रहण करते हैं और वे उनके नाना अर्थ लगाते हैं और सर्वज्ञके अभावमें भी धर्म आदिक उपदेश सम्भव हैं। इस शङ्काकार के सिद्धान्तके अनुसार धर्म अधर्मका उपदेश वेद आगमसे चलता है, किसी सर्वज्ञकी मूल परम्परासे नहीं चलता। अत. अर्थापत्ति प्रमाणसे भी सर्वज्ञत्वकी सिद्धि नहीं होती।

सर्वज्ञत्वके अभावमे शङ्काकारकी शङ्काओंका संक्षिप्त तात्पर्य — शङ्काकार अपनी शङ्कायें रख रहा है कि देखिये! सर्वज्ञका हम लोगोंको प्रत्यक्ष भी हो नहीं रहा, आंखो तो सर्वज्ञ दिखता नहीं, तो उसे हम कैसे मानलें? कोई हेतु भी नजर नहीं आता अथवा सर्वज्ञका कोई एक देश अंश समझमें आ जाय, जिससे हम अनुमान कर सकें ऐसा भी कोई साधन विदित नहीं होता। न नित्य आगमसे सर्वज्ञ की सिद्धि है, न अनित्य आगमसे। जितनी भी सिद्धि है मात्र वचनोंसे, ये लोग अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार अर्थ लगाया करते हैं। यदि सर्वज्ञकी चीज होती यह देखना, यह आगम रचना तो इसके कई अर्थ क्यों लगते? जो अर्थ होता वह लगना चाहिए था। तो आगमसे भी नहीं जाना जाता। सर्वज्ञकी तरह कोई आदमी मिले जिससे कि हम उसकी तुलना कर सकें कि देखो सर्वज्ञ इसकी तरह होता है, ऐसा भी कोई नहीं दिखता। तो किस तरह मान लिया जाय कि सर्वज्ञ कहीं दुनियामें है, किसी भी प्रमाणसे सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं होती। इस प्रकार शङ्काकारने अपनी शङ्का रखी है।

अन्यत्र भी सर्वज्ञकी अप्रत्यक्षताकी आशङ्का — अप्रत्यक्षवादी सर्वज्ञके अभावके ही सम्बन्धमें सर्वज्ञवादियोंसे फिर भी कह रहा है कि यदि तुम यह कहोगे कि इस समय ही हम लोगोंके ज्ञानमें कोई सर्वज्ञ नहीं है, हमारा प्रत्यक्ष इस समय सर्वज्ञको सिद्ध नहीं कर रहा, लेकिन किसी दूसरे देशके लोगोंको तो सर्वज्ञ सिद्ध हो रहा होगा अथवा चौथे कालमें तो लोग सर्वज्ञके दर्शन करते होंगे, तो यह बात भी तुम्हारी युक्त नहीं है, क्योंकि जिस जातिका जो प्रमाण होता है उस प्रमाणसे उसी जातिका पदार्थ दीखा करता है। जैसे आंखोंसे जो देखा गया तीन कालमें भी वैसा ही दिखेगा, वही दिखेगा। आज हमें सर्वज्ञ नहीं दिख रहा तो कैसे कल्पना करें कि कोई सर्वज्ञ था या विदेह आदिकमें है या आगे होगा? जिस जातिके प्रमाणसे जैसा जाना जाता है उस जातिके प्रमाणसे वैसा ही सब जाना जायगा। जैसे इस देश कालमें हम जिन प्रत्यक्ष आदिकसे जान रहे हैं वैसे ही अन्य देश कालोंमें भी सभी लोग भी इसी प्रकारका इन्द्रियजनित अर्थको जानेंगे। सर्वज्ञको ग्रहण करने वाला कोई प्रत्यक्ष हो ही नहीं सकता।

सर्वज्ञत्वनिषेधक प्रत्यक्षके स्वरूपमें विकल्पोंके रूपमें प्रतिशङ्का— अथवा शङ्काकार ही फिर, यह कह रहा है, स्याद्वादकी ओरसे कोई समाधान उठाकर अथवा इस समय सर्वज्ञवादी ही कह रहा है यों मानकर सुनिये कि तुम जो सर्वज्ञका निषेध कर रहे हो प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे तो क्या जिस प्रकारसे ये इन्द्रिय आदिक जनित प्रत्यक्ष ज्ञान सर्वज्ञ अर्थको नहीं सिद्ध कर पा रहे हैं क्या इस ही प्रकार कालदेशान्तरमें या अन्य समयोंमें प्रत्यक्ष आदिकके द्वारा तुम सर्वज्ञका अभाव सिद्ध कर रहे हो या अन्य प्रकारके प्रत्यक्ष आदिकके द्वारा सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करते हो? यदि ऐसे ही चतुर्थकाल आदिकमें प्रत्यक्षका अभाव सिद्ध करते हो तो हम मानते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष तो ऐसी ही चीज जानेगी, जैसा हम यहाँ जानते हैं। और, यदि दूसरे प्रकारके प्रत्यक्षसे तुम सर्वज्ञका अभाव सिद्ध कर रहे हो तो यह बात तुम्हारी अयुक्त है। फिर तो हम तुम्हारे सिद्धान्तमें भी बाधा उपस्थित कर सकते हैं। जैसे कि तुम मीमांसक आदिक लोग यह मानते हो कि यह दुनिया किसी बुद्धिमानके द्वारा बनायी गई है क्योंकि इन सब चीजोंमें आकार पाया जाता है, जिस जिस चीजमें आकार पाया जाय वह किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाया गया होता है। जैसे घड़ेमें आकार है, उस आकारको कुम्हार बनाता है। इसी तरह ये पर्वत, वृक्ष आदिकके आकार बनाये गये हैं। और, वह बुद्धिमान है एक ईश्वर। तो हम तुम्हारे इस सिद्धान्तमें भी बाधा उपस्थित कर सकते हैं कि जैसे यहाँके शिक्षा लेने वाले छद्मस्थ लोग अल्पज्ञजन घट आदिकके बनाने वाले हैं, क्या इस ही प्रकारका कोई बुद्धिमान है इस जगतको बनाने वाला? यदि है तो वह तो हम लोगोंकी तरह ही एक संसारी प्राणी हो गया, उसमें बनानेका सामर्थ्य ही नहीं हो सकता। और, अन्य प्रकारसे हम मान नहीं सकते क्योंकि सर्वज्ञके अभावमें भी तुम अन्य प्रकारका प्रत्यक्ष नहीं मान रहे। इसपर पूर्वपक्षकार मीमांसक सिद्धान्तकी ओरसे उत्तर आयगा।

आत्मतत्त्वके अपरिचयमें सर्वज्ञत्वके अभावकी आशङ्का— इस प्रसङ्गमें इतनी बात जान लेने की है कि मूल बात यह चल रही है कि स्याद्वादी लोग, आत्माकी यथार्थ श्रद्धा करने वाले लोग यह बात रख रहे हैं कि आत्मा ज्ञानपुञ्ज है। ज्ञानके सिवाय और कुछ स्वरूप नहीं है आत्माका, इन रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक रूप नहीं है। जब और कुछ रूप नहीं है तो यह ज्ञानस्वरूप है, यह ज्ञानस्वरूप अपना ऐसा स्वभाव रखता है कि सब कुछ जानता ही जाय। ज्ञानमें जो रुकावट पड़ी है वह इन इन्द्रियोंके आवरणसे पड़ी है। अज्ञानीजन तो यों देखकर खुश होते हैं कि देखो हम इन्द्रियोंसे जानते हैं, इन इन्द्रियोंमें भ्रम करते हैं, उन इन्द्रियोंका आधार मानते हैं, पर तत्त्वज्ञानी यह समझते हैं कि हमारे ज्ञानमें ये इन्द्रियाँ बाधा डाल रही हैं, यदि ये इन्द्रियाँ न होतीं, यह शरीर न होता, केवल ज्ञानपुञ्जमें ही होता तो चूंकि इसमें जाननेका स्वभाव पड़ा है, तो समस्त विश्वका जाननहार होता। जैसे किसी मकानमें बैठा हुआ पुरुष खिड़कियोंसे बाहरकी चीजों को देखे तो वह पुरुष उन खिड़कियोंको आधार मानता है

उस देखनेके कामके सम्बन्धमें कि देखो खिड़कियोंका कितना बड़ा उपकार है, मैं इन चीजोंको बाहरकी देख रहा हूँ, पर यह विदित नहीं है कि तेरे देखनेका स्वभाव ज्ञान तो इतना बड़ा है कि तू चारों तरफका सब कुछ देख और जान। ये भीट खिड़की आदि तो तेरे देखने जानने में बाधायें हैं। ज्ञान अपने स्वभावमें सर्वका जाननहार है, पर हमारा उपयोग पर पदार्थोंकी ओर लगता है हम बाहरकी ओर दृष्टि करके जानने का प्रयत्न करते हैं तो यह हमारा प्रयत्न ज्ञानमें बाधक बनता है न कि साधक। अर्थात् ज्ञानका जो स्वाभाविक कार्य है अशेष पदार्थोंका जानना, वह रुक गया। तो ज्ञानमें ऐसा प्रभाव है कि सबको जान जाय, यह तो स्वभाव है और और आवरण सारे हट जायें विषय कषाय कर्म ये सब आवरण दूर हो जायें फिर कौन ऐसी शक्ति है जो आत्माकी अशेषज्ञताको रोक ले, फिर यह आत्मा समस्त विश्वका जाननहार हो जाता है, स्वभाव ही उसमें ऐसा पड़ा हुआ है। यों तो है आत्मतत्त्वकी बात, किन्तु यह है एक स्वसम्वेदनजन्य। विषय कषायोंके उपशमसे बुद्धिमें जो निर्मलता आती है, जिसमें आत्महितकी भावना जगती है, अपने आपके स्वरूपकी दृष्टि होती है, उस पुरुष द्वारा जानने योग्य यह बात है लेकिन जिसे आत्माका परिचय नहीं, जो आत्माको ज्ञानस्वभावी भी नहीं मानता, भले ही एक दर्शन दार्शनिकताके नाते काट छांट करके सिद्ध करे कि ज्ञान जुदा पदार्थ है, आत्मा जुदा पदार्थ है, इनका समवाय होता है तब आत्मा ज्ञानी कहलाता है बड़े बड़े शास्त्र भी रच दिये जायें लेकिन स्वानुभव जब तक नहीं होता है तब तक आत्माके मर्मको कोई पा नहीं सकता। यों आत्मपरिचयसे रहित अज्ञानी पुरुष सर्वज्ञका सद्भाव नहीं मानता। सर्वज्ञ कोई हो भी सकता है यह भी कल्पनामें नहीं आता यों शङ्काकार सर्वज्ञके निराकरणमें अपनी सब समस्यायें रख रहा है।

धर्मपराम्पराके स्रोतके परिचयसे धर्ममें दृढ भक्ति—धर्मसाधनाकी परम्पराका मूल क्या है किस स्रोतसे धर्मकी परम्परा चली आयी है उस मूलको जान लेनेपर धर्मपालनमें स्पष्टता आ जाती है इस कारणसे यह भी जानना आवश्यक है कि हमें जो धर्म मिला है जिसकी परम्परासे प्राप्त हुआ है तो उस परम्पराका मूल कौन था इस सम्बन्धमें जो सर्वज्ञमें विश्वास न रखने वाले हैं वे कहते हैं कि अनादि अनन्त वेद वाक्यसे इस धर्मकी परम्परा चली, किन्तु सर्वज्ञवादी कहते हैं कि किसी समय कोई आत्मा ऐसा पवित्र निर्मल प्रकट होता है कि जो समस्त विश्वका जाननहार हो जाता है ऐसी सर्वज्ञदेवके कर्मक्रियाका वहाँ जो उपदेश आदिक होते हैं, दिव्य ध्वनि खिरती है, उसका समागम पाकर बड़े ऊंचे विशिष्ट गणधर आदिक उनका अवधारण करते हैं और फिर उनसे यह धर्म अनादि अनन्त है, किसी दिन धर्म आ गया हो ऐसी बात नहीं है क्योंकि धर्म कहते हैं वस्तुके स्वभावको वस्तु अनादिकालसे है, जबसे वस्तु है तबसे धर्म है। उस धर्मको बतानेका काम समय समयपर हुआ करता है। इसकी भी परम्परा अनादिसे है। जब किसी देशमें बहुत काल तक धर्मका

विच्छेद हो जाता है, प्रयोगरूपमे धर्म जब न रहा तब कोई एक विशिष्ट पुरुष उत्पन्न होता है जो अपने स्वानुभवके बलसे कर्मोंका विध्वंस करके सर्वज्ञता प्राप्त करता है। फिर विच्छेद होनेके बाद जो अब धर्मका प्रकाश हुआ तो उस परम्पराका स्रोत सर्वज्ञ हुआ। तो सर्वज्ञपनेकी सिद्धि जो इस प्रकरणमे की जा रही है वह अपने लिए अनेक दृष्टियोसे उपकारी है। सर्वज्ञ जो होता है वह समस्त विश्वको एक साथ स्पष्ट जानता है। उसका स्वरूप समझमे आ गया तो प्रभुमें भक्ति बढेगी, प्रभुकी महिमा जानी जायगी और फिर धर्ममे भी दृढ श्रद्धान होगा कि इस धर्मकी परम्परा सर्वज्ञसे, वीतरागताके पोषणसे होती आयी, यह धर्मवचन यथार्थ है।

इन्द्रियादिजनित प्रत्यक्षसे सर्वज्ञत्वके अभावकी आशङ्का—यहाँ असर्वज्ञवादी सर्वज्ञत्वका खण्डन कर रहे हैं। और उस प्रसङ्गमे सर्वज्ञवादियोंने यह बात रखी थी कि जो तुम सर्वज्ञपनेका खण्डन करते हो, प्रत्यक्षके द्वारा सर्वज्ञ नहीं जाना जा सकता। तो क्या जैसे यहाँ लोग इन्द्रियोसे जानते हैं, सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष करते हैं? क्या ऐसा प्रत्यक्ष सर्वज्ञको सिद्ध नही कर सकता या अन्य प्रकार के प्रत्यक्ष सर्वज्ञको सिद्ध नहीं कर सकते? दोनोमें आपत्ति दी, जिसपर अब शङ्काकार उत्तर दे रहे हैं कि जिस प्रकारका हम लोगोको प्रत्यक्ष होता है उस ही प्रकारकी प्रत्यक्षसे यह सिद्ध किया जाता है कि सर्वज्ञ कोई नहीं है। जब हमे प्रत्यक्षसे सर्वज्ञ न विदित हुआ तो दुनियामे कही जावो, किसीको भी प्रत्यक्षसे सर्वज्ञकी प्राप्ति नही हो सकती है, क्योंकि और तरहसे हमने प्रत्यक्ष माना ही नही है। जो इन्द्रिय और मनसे न उत्पन्न हो ऐसा कोई प्रत्यक्ष नही हुआ करता। यो शङ्काकार अपनी शङ्काको व्यवस्थित बना रहा है, अनुमान प्रमाणसे भी यह सिद्ध है कि ये प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण जिनके सबधमें तुम विवाद कर रहे हो वह इन्द्रिय मन आदिक सामग्रीकी अपेक्षा रखकर नहीं होता, क्योंकि प्रमाण ही तो है। जैसे हम लोगोंके प्रमाण है, हम इन्द्रिय और मनकी सहायताके बिना क्या जान पाते हैं? प्रत्येक ज्ञानोमे या तो हम इन्द्रियका व्यापार जुटाया करते हैं तब बात समझमें आती या मनका बल लगाया करते तब बात समझमे आती। किसीका ज्ञान ऐसा नही हो सकता जो इन्द्रिय मन प्रकाश आदिककी अपेक्षा न रखे। शङ्काकार यह सिद्ध कर रहा है कि जैसा हम लोगोको प्रत्यक्ष ज्ञान होता है बस प्रत्यक्ष ज्ञान ऐसा ही हुआ करता है। इससे निराला कोई अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष होता हो जो केवल आत्मशक्तिसे जानता हो ऐसा कोई प्रत्यक्ष नहीं है।

इन्द्रियोमे अविषयग्रहणके अतिशयकी असभवताकी तरह प्रत्यक्ष ज्ञानमे सर्वज्ञत्वकी असभवता—कोई यह भी दोष नही दे सकता कि भाई जैसे गृद्ध है तो वह दूरसे ही देख लेता है ऐसे ही कोई ऐसा प्रत्यक्ष होता है वह उस प्रत्यक्षसे भी और विशेष जान लेता है, अथवा जैसे रात को चलने फिरने वाले पशु होते हैं, वे बिना ही प्रकाशके खूब देख लेते हैं इसी प्रकार कोई प्रत्यक्ष ऐसा होता है जो

इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा रखे बिना वस्तुको जान लेता है । यह बात भी ठीक नही है, क्योकि उन सब ज्ञानोमे इन्द्रिय आदिकके उपयोग की आवश्यकता रहती ही है, इन्द्रिय आदिककी अपेक्षा किए बिना गृद्ध अथवा बिल्ली आदिक जानवरोको ज्ञान उत्पन्न नही होता, बडे बडे आचार्य हुए हैं जिन्होने अनुमान प्रमाणकी बहुत बडी सूक्ष्म व्याख्या की है जिन्होने बडे ऊँचे आगम लिखे हैं, भले ही लिखा, भले ही बडा सिद्धि कर ली, इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा रखे बिना वे कुछ भी नही कर सके हैं। कितने भी इन्द्रियमे अतिशय आजायें पर इन्द्रियां अपने विषयका उल्लघन करके नहीं जान सकती । शङ्काकारका यह अभिप्राय है कि जितने भी प्रत्यक्ष होते हैं वे इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा करके होते हैं और उस प्रत्यक्षमे यह सामर्थ्य नही अथवा उस प्रत्यक्षका यह विषय ही नही कि वह सर्वज्ञको जाने अतएव सर्वज्ञ कोई नहीं होता है। जो कुछ भी ज्ञान है वह सब हम आप जैसा ही ज्ञान होता है जो किसी भी प्रकारसे हम अपने ज्ञानको बढालें । जहाँ भी अतिशय देखा गया, जैसे गृद्धोने बहुत दूरसे देख लिया तो आखिर देख ही तो लिया, और कुछ तो नही किया, अतिशय अपनी सीमामें हुआ करता है, अपना विषय छोडकर अतिशय नही होता ।

ज्ञानमें सर्वविषयज्ञताका अभाव—कोई पुरुष यदि बुद्धिमें बहुत बढ जाय तो वह एक दूसरेकी अपेक्षा बुद्धिमे बडा है, पर यह नही है कि उनका अतीन्द्रिय ज्ञान हो गया इसलिए बडा है। भले ही कोई बहुत उच्च जानकार हो फिर भी वह अतीन्द्रियके ढङ्गमे जानकार नही हो सकता जानेंगे तो इन्द्रियसे ही । कितना ही बुद्धिमान् हो कोई, बडे सूक्ष्म अर्थको भी जाननेमे समर्थ हो, पर वह अपनी ही जातिमे जानेगा, कोई यदि एक शास्त्रमे बडा निपुण हो गया तो उस शास्त्रकी निपुणतामें यह न मान लेंगे कि यह समस्त शास्त्रोमे निपुण हो गया । व्याकरण जानने वाले लोग व्याकरण उत्पत्ति, शब्द कैसे बनते है ? सब कुछ जान जायेंगे, पर वे नक्षत्र, तिथि, ज्योतिष आदिक विद्याओंमे प्रवीण हो जाये सो नही हो सकता। इसी प्रकार ज्योतिषी लोग भले ही तिथि नक्षत्र आदिक का भरपूर ज्ञान करलें पर वे किसी शब्दके सिद्ध करनेमे असमर्थ है। तो ज्ञानकी सीमा होती है। ज्ञान जानता है इन्द्रिय मनसे जानता है उस ज्ञानमे यह सामर्थ्य नही है कि वह समस्त विश्वको एक साथ बिना इन्द्रिय मनकी सहायताके जान जाय ! शङ्काकार सर्वज्ञताका खण्डन कर रहा है कि लोगकर्म सर्वज्ञ कहीं भी होता नही है। उसका मतलब यह है कि जो अनादि निश्य आगम हैं वेद वाक्यादिक उनसे ही धर्मकी उत्पत्ति होती है, सर्वज्ञ कोई नही होता। और, जब कभी कोई जीव उन धर्मादिकका पालन करके मुक्त भी हो जाता है तो मुक्तिका अर्थ यह है कि यह कुछ समयको एक ज्योतिमें लीन हो गया, उसकी भी हद है। किसी समय वह उस लीनतासे हट जाता है और फिर संसारमें जन्म मरण करना पड़ता है ।

प्राप्त ज्ञानमें भी विशारदताका अभाव—भैया ! यो समझिये कि जो

कुछ दिखता है, समागम है बस इतना ही मात्र सब कुछ है, अतीन्द्रिय पदार्थ कुछ नही है, ऐसी शङ्काकारका मतव्य है और वह युक्तियां दे रहा है। प्रथम तो यह निर्णय नहीं कि जो जिस बातको जानता है वह उस बातमे पूर्ण विशारद है अथवा वह अपने विषयसे छूट नहीं सकता, और कदाचित् छूटा भी हो तो कोई किसी दूसरे विषयका अधिकारी तो नहीं बन जायगा। चार विद्वान् थे—एक था वैयाकरण, व्याकरणका बड़ा उच्च जानकार, एक था ज्योतिषी, एक था वैद्य और एक था नैयायिक। ये चारों सलाह करके चले किसी देश, कि चलो वहां धन कमानेका कोई उपाय बनायेंगे, उनके साथमें एक घोड़ा था, घोड़ेपर सारा सामान रखे थे। वे चारों पैदल जाते थे। रास्तेमें एक जगह ये ठहर गये। तो ज्योतिषी महाराजसे पूछा कि इस घोड़ेको किस दिशा में चरनेके लिए छोड़ दें? तो उस ज्योतिषीने विचारकर बता दिया कि अमुक दिशामें छोड़ दो। छोड़ दिया। अब वह घोड़ा स्वतन्त्र हो जानेसे कहींका कहीं चला गया। जब रसोई बनानेका प्रसङ्ग आया तो न्यायशास्त्रीसे कहा कि तुम जावो बाजार से घी ले आवो। वैद्य महाराजसे कहा कि तुम जावो बाजारसे जो निर्दोष सब्जी हो वह ले आवो। और, वैयाकरणको वहीं रसोई बनानेके लिये चूल्हेके पास छोड़ दिया, अब सुनो सबका हाल। नैयायिक गया घी लेने के लिये—एक गिलासमें घी लेकर चला। रास्तेमें सोचता है—घृताधार पात्रः अथवा पात्राधारं घृतम्। घी पात्रके आधारमें है या पात्र घीके आधारमें है? बड़ी युक्तियां लगायी, पर विशेष समझमें न आया। तो परीक्षा करने के लिये उसने गिलासको औंधा कर दिया। घी नीचे गिर गया। वह तो बड़ा खुश हुआ। ओह! मेरी समस्या हल हो गयी। घी पात्रके आधारमें है, पात्र घीके आधार नहीं है। घी जरूर धूलमें मिल गया, मिलने दो। जो ज्ञानके इच्छुक हैं उन्हें समस्याओंके हल होनेमें बड़ी खुशी होती है। फिर थोड़ी देरमें दिमाग ठिकाने आया तो उसी धूलसे मिले हुए घीको उस गिलासमें भरकर चला। वैद्य महाराज गये थे सब्जी लेने, अब वे सोचते हैं कि इस शालकमें ठंडका दोष है, मेथीमें पित्त बढ़ता है, यों और और भी अनेक चीजें सदोष देखी। सोचा कि निर्दोष तो ये नीमकी पत्तियां हैं। सो नीमकी पत्तियां ही लेकर आये, हसियासे विदारण करके दिया। अब वैयाकरणजी महाराज जब रसोईमें दाल उबाल रहे थे तो खदखद खदखदकी आवाज हो रही थी। होती है ना ऐसी ही आवाज? हां होती है। तो उस शब्दको सुनकर कहा कि यह शब्द तो शुद्ध नहीं है। खूब सूत्रोंपर निगाह डाली। सोचा कि यह शब्द तो अशुद्ध है, फिर सोचा कि अशुद्ध बोलने वालेके मुखमें धूल डालना चाहिए। तो उस नीमकी पत्तीके सागसे उसमें धूल छोड़ दिया। और, ज्योतिषी द्वारा बताई गई दिशामें छोड़ा हुआ घोड़ा तो स्वतन्त्र हो जानेसे कहींका कहीं चला गया था। तो इन ज्ञानोंका भी क्या हिसाब है? कोई ज्ञानमें कितना ही बढ़ जाय पर वह सब बातोंमें सब स्थानोंमें निष्णात हो जाय यह कोई नियम नहीं है।

ज्ञानकी इन्द्रियानिन्द्रियजन्यता होनेसे सर्वज्ञताकी असिद्धिका पूर्वपक्ष—

कोई कितना ही जाने ? खूब जाने, शास्त्रोसे जाने, प्रेक्टिकल जाने, खूब सीखकर जाने, और तपश्चरण करके योग सिद्धि करके भी जाने, तो जैसा हम लोगोका ज्ञान है उस ही जातिका तो ज्ञान बढ सकेगा। कोई अतीन्द्रिय ज्ञान होजाय ऐसी स्थिति नही हो सकती, तो जितने भी पुरुष है, आत्मा है उन सबका प्रत्यक्ष ज्ञान हमारे ही प्रत्यक्षकी जातिका होगा। हमारा प्रत्यक्ष है इन्द्रिय और मन अपेक्षा रखकर जाननेका, तो ऐसा ही सबका है। कोई पुरुष अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष वाला नही हो सकता। इस प्रकार शङ्काकारने यह सिद्ध किया कि जितने भी ज्ञानी जीव है वे हम आप लोगोकी ही तरह हुआ करते हैं, चाहे कोई कम जाने कोई उससे कुछ अधिक जाने। तो कितना ही कोई ज्यादह जाने, पर हम लोगोकी जातिका उल्लंघन करके कोई नही जान सकता। इस कारण न कोई अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष है और न सर्वज्ञ है। शङ्काकार द्वारा यहाँ तक इस स्थलमे सर्वज्ञके निराकरणकी समाप्ति हुई।

सर्वज्ञत्वसाधक अनुमानमें प्रमेयत्व हेतुकी सामान्यता—अब असर्वज्ञत्ववादीकी शङ्काके सम्बन्धमे समाधान किया जाता है। इस प्रसङ्गमें सबसे पहिले यह बात कही थी कि सर्वज्ञसाधक अनुमानमें जिसका कि रूप इस प्रकार है कि लोकमे ये सूक्ष्म, दूरवर्ती और अतीत भविष्यके पदार्थ किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष है, क्योकि प्रमेय होनेसे, पदार्थ होनेसे, ज्ञेय है ना तो कोई इन्हे स्पष्ट भी जानता है। इससे प्रमेयत्व हेतुमे दोष दिया था कि प्रमेयत्वका क्या अर्थ है ? क्या समस्त ज्ञेयोमे व्यापकर रहने वाले प्रमाणके द्वारा प्रमेय है, ऐसे प्रमेयत्वकी बात कह रहे हो या हम लोग जिस प्रमाणके द्वारा प्रमेय हैं ऐसे प्रमेयत्वकी बात करते हो ? तो उसपर समाधान दिया जा रहा है कि हम प्रमेय सामान्यकी बात करते हैं। प्रमेय है अतएव किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष है। फिर इस प्रकारके विकल्प बढानेसे तो यह विडम्बना बनेगी कि कोई जीव कुछ भी अनुमान प्रमाण न बना सकेगा। अच्छा, हम ही पूछेंगे कि कोई ऐसा अनुमान बनाता हो कि इस पर्वतमे अग्नि है, धुवाँ होनेसे। अनुमान तो सही है ना। लेकिन जैसे सर्वज्ञ साधक अनुमानके हेतुमे विकल्प उठाकर असर्वज्ञवादियोने सर्वज्ञत्व नही सिद्ध करने दिया, उसी तरहके विकल्प उठाकर हम पर्वतमे अग्नि भी सिद्ध न करने देंगे, क्योकि उनसे पूछा जायगा कि यह तो बतलावो कि जो तुमने साध्य बनाया जा रहा है—यह पर्वत अग्नि वाला है तो अग्निवान पर्वतमे पाया जाने वाला धुवाँ इस हेतुमे दिया है या जिस रसोई घरका दृष्टान्त देते हो उस अग्निवाला रसोई घरसे रहने वाले धुवाँको हेतुमे लेते हो या दोनोमे जो सामान्यरूप है उस धूमको लेते हो ? यदि कहा कि जिसको हम सिद्ध करना चाहते हैं उस ही अग्निवान पर्वतका धर्म है, धुवाँ, तो इसके मायने यह हुआ कि पर्वत अग्नि वाला है, अग्निवाला होनेसे। सीधा ही न बोलो, हेतु देनेकी क्या जरूरत ? और, तिसपर भी इसका दृष्टान्त ठीक न बन सकेगा, वह हेतु विकल हो जायगा, क्योकि रसोई घरमें अग्निवान पर्वतका धर्मवाला धुवाँ नही है और फिर यदि कहो कि अग्निवान रसोई घरका धर्म है यह धुवा

तो उस धुवाँसे तो रसोई घरकी अग्नि सिद्ध हो जाय, पर पर्वतकी अग्नि सिद्ध नहीं हो सकती। यदि कहो कि दोनों में रहने वाला सामान्य धुवाँको सिद्ध करना है तो भाई जैसे तुमने एक सामान्यको असम्भव बताया तो यह भी असम्भव हो जायगा। यदि यह कहोगे कि हम तो उस धुवाँ सामान्यकी बात कह रहे हैं जो कण्ठमें लग जाये जिससे कण्ठ रुक जाय। पर्वत वाली अग्नि है, रसोई वाली अग्नि है यह हम कुछ नहीं कहते। तो आचार्य कहते हैं कि बस अब तुम्हारी बुद्धि व्यवस्थित हुई। इसी तरह तो हम प्रमेय सामान्यकी बात कह रहे हैं। सर्वज्ञके प्रमाणमें प्रमेय होता है न उसकी बात कहते और न छद्मस्थके प्रमाणमें प्रमेय होता है उसकी बात कहते, किन्तु जो जाना जाता है ऐसे प्रमेय सामान्यकी बात कह रहे हैं। अब उसमें अनुमानका तुम खण्डन नहीं कर सकते हो, क्योंकि पदार्थ सब प्रमेय हैं।

पदार्थोंमें ६ साधारण धर्मोंमें प्रमेयत्व हेतुका स्थान—पदार्थमें ६ साधारण धर्म पाये जाते हैं—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व। ये ६ गुण न होंगे तो कोई सत ही नहीं रह सकता। चाहे आकाश हो, चाहे पुद्गल हो, चाहे जीव हो यदि सत् है कुछ तो उसमें ६ गुण अवश्य पाये जायेंगे। जैसे कि अस्तित्व गुण न हो तो सत्ता ही क्या रही? जब है ही नहीं कुछ। और, है तो माना जाय, तो पदार्थ नहीं रह सकता अर्थात् वह है अपने ही चतुष्टयसे है, परवस्तुके चतुष्टयसे नहीं है। यह बात सत्में है। है यदि सतमें न पड़ा हो तो उस है का अर्थ क्या रहा? कोई व्यक्ति ही न रहे, वस्तु ही न रहे। और, अस्तित्व भी माने, वस्तुत्व भी माने, किन्तु उसमें परिणमन कुछ न माने तो चीजकी हालत क्या रही, चीज ज्ञात ही क्या होगी? उसका अर्थ ही क्या रहेगा? तो द्रव्यत्वगुण यह व्यवस्था बनाता है कि प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय प्रतिक्षण निरन्तर परिणमता रहता है। लो चलो—वस्तु है, अपने स्वरूपसे है निरन्तर परिणमती है इतनी बात कह देने के बाद भी अभी व्यवस्था ठीक नहीं बन सकती। क्योंकि परिणमती तो है, पर कोई वस्तु आज अपने रूप परिणम रही, कल दूसरे रूप परिणम जाय, तो फिर व्यवस्था बन जायगी। तो अगुरुलघुत्व गुण इस अव्यवस्थाको बनाता है कि प्रत्येक पदार्थ परिणमता तो है पर अपने ही स्वरूपसे परिणमता है, परके स्वरूपसे नहीं परिणमता। आप लोग घरमें रहते हो, परस्परमें प्रेम भी है, एक दूसरेका आदर भी करते हैं, एक दूसरेकी सज्जनता जानकर उनपर प्रसन्न होते हैं, इतना सब कुछ होनेपर भी कोई एक दूसरेका कुछ नहीं कर रहा। सभी अपनी अपनी कल्पनासे अपने आपका परिणमन कर रहे हैं। कोई भी परिस्थिति हो, हर स्थितियोंमें प्रत्येक जीव अपने आपमें अपना ही परिणमन करता है दूसरेमें नहीं। इससे अधिक और घटना क्या हो सकती कि मिट्टीको सानकर कुम्हार घड़ा बना रहा है, चाकपर रखकर जिस प्रकारसे वह अपने हाथ चला रहा है उस निमित्तको पाकर मिट्टी उस उस प्रकारका अपना आकार बना रही है, ऐसी जबरदस्तीके परिस्थितिमें भी आप सत्यार्थ दृष्टिसे

निहारें तो कुम्हार मिट्टीमे कुछ कर रहा है क्या ? जितना कि कुम्हार माना गया है शरीर मात्र, वह अपने हाथ चला रहा है तो हाथकी क्रिया भी हाथमे ही समाप्त होकर रहती है। हाथके प्रदेशोसे बाहर हाथकी कोई क्रिया, कोई गुण कोई बात नही पहुँचती, पर वहाँ निमित्त-नैमित्तिक भाव है कि ऐसी परिस्थितिको प्राप्त हुई वह मिट्टी अपने मे नाना रूप अङ्गीकार कर लेती है। सब स्थितियोमे प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे परिणमता है, दूसरके स्वरूपसे नही परिणमता। इतना सब मान लेनेपर भी यदि पदार्थके प्रदेश, पदार्थका आकार, पदार्थका विस्तार नही समझमे आया तो पदार्थके बारेमे हम जानकारी क्या करें ? ये सब होकर भी पदार्थमे अगर ज्ञेय हो जानेकी बात न हो, प्रमेयत्व शक्ति न हो, गुण न हो तो रहे जावो पदार्थ कोई पदार्थ, जाने ही न जा सकेंगे तो व्यवस्था क्या बने ! यों ये ६ साधारण गुण प्रत्येक पदार्थमे हुआ करते हैं, और उससे ही व्यवस्था बनती है। तो चूँकि प्रमेयत्व है सब पदार्थोंमे अतएव सभी पदार्थ किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष है, और जिसमे प्रत्यक्ष है वही सर्वज्ञ कहलाता है।

सर्वज्ञत्वसाधक अनुमानमे प्रमेयत्व हेतुकी सामान्यरूपताका समर्थन— कोई पवित्र पुरुष सर्वज्ञ होता है, अर्थात् उसके ज्ञानमे सूक्ष्म आदिक पदार्थ ज्ञेय हुआ करते हैं क्योकि सभी पदार्थ ज्ञेय हैं। इस अनुमानमें प्रमेयत्व हेतुमे शङ्काकारने दोष दिया था - क्या सर्वज्ञके प्रमाणसे जो प्रमेय होता है उस ही प्रमेयको हेतु बना रहे हो या छद्मस्थके प्रमाणमे जो प्रमेय होता है उसे हेतु बना रहे हो ? उसके उत्तरमे स्याद्वादीने बताया था कि ऐसा तर्क करनेसे तो कोई भी अनुमान नही बनाया जा सकता। इस पर्वतमे अग्नि है धुवाँ होनेसे—जैसे रसोई घर ! तो वह हेतुरूप धुवाँ क्या पर्वतकी अग्निसे सम्बन्ध रखने वाला है या रसोई घरकी अग्निसे सम्बन्ध रखने वाले धुवाँको हेतु बनाया ? यदि पर्वतीय अग्निसे सम्बद्ध धूमको हेतु कहोगे तो अग्नि तो पहिले ही मान ली, फिर अनुमान बनानेकी क्या जरूरत ? और, रसोई घरकी अग्नि के धुवाँको हेतु बनावोगे तो उससे पर्वतकी अग्नि नही सिद्ध होगी, रसोई घरकी अग्नि सिद्ध होगी। इसपर शङ्काकार कहता है कि नही हम धुवाँ सामान्यको हेतु बनाते हैं। जो धुवाँ कण्ठ और आँखोमे लग जाता है, विक्षेप उत्पन्न करता है ऐसे पर्वत और रसोई घर दोनोमे व्यापने वाले सामान्य धुवाँको हम हेतु बना रहे हैं और वह रसोई घरके प्रदेशमे भी है और पर्वतके प्रदेशमे भी है। धूम सामान्यको हम हेतु बनाते हैं और वह धूम सामान्य इन दोनो जगहोंमे धूमसे कुछ विलक्षण नही है बल्कि दोनो जगह घटित होजाय ऐसे सामान्य धुवाँको हेतु बनाया है। तो यही उत्तर स्याद्वादीका है। प्रमाणका लक्षण किया गया है जो खुदका और परका निर्णायक हो— उस ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। तो चाहे वह प्रमाण सर्वज्ञदेवका हो और चाहे छद्मस्थो का हो—प्रमाणका रूप दोनोका समान है। तो दोनो जगह प्रमाणमे व्यापकर रहने वाला जो प्रमेयत्व धर्म है उस प्रमेयत्व धर्मको हम हेतु बनाते हैं और वह दोनोंसे

विलक्षण नही है, दोनोमे रहने वाला है, इस कारणसे प्रमेयत्व हेतु प्रसिद्ध नहीं होगा। तब यह सिद्ध हो गया कि किसी न किसीके प्रत्यक्षमें सारा विश्व आता है क्योकि प्रमेय होनेसे। यो सर्वज्ञकी सिद्धि होती है।

प्रसङ्ग और विपर्यय दिखाकर शङ्काकार द्वारा सर्वज्ञत्वकी सिद्धिमे बाधाका प्रदर्शन — अब शङ्काकार पुन शङ्का करता है कि प्रसङ्ग और विपर्यय होनेके कारण सर्वज्ञतामे बाधा आती है। प्रसङ्ग और विपर्ययका क्या अर्थ है? किसी व्याप्यका सद्भाव बताकर किसी व्यापकका सद्भाव बताना वह तो प्रसङ्ग है और व्यापकका अभाव बताकर व्याप्यका भाव बतावे उसको विपर्यय कहते हैं। जैसे किसीने अनुमान बताया कि यह जो सामने खडा है यह वृक्ष है क्योकि शीसम होनेसे। तो शीसम तो है व्याप्य और वृक्ष है व्यापक अर्थात् वृक्ष तो रहता है बहुत जगह और शीसम रहता है कुछ जगहमे। शीसमके पेड थोडे होते हैं और वृक्षके पेड सारे होते हैं। तो जहाँ व्याप्य मान लिया गया, शीसम जान लिया गया वहाँ व्याप्य मान लिया गया, शीसम जान लिया गया वहा व्यापक तो अपने आप सिद्ध हो गया। इसको कहते हैं प्रसङ्ग और व्यापक न रहे तो व्याप्य भी न रहे, इसे कहते हैं विपर्यय। जैसे भींटको ही कोई कहे कि यह शीसम नही है वृक्ष न होनेसे। जब पेड ही नही है तो शीसम कहाँ से होगा? यो प्रसङ्ग और विपर्यय ये दो साधन होते हैं किसी चीजको पहिचाननेके। तो प्रसङ्ग और विपर्ययके द्वारा सर्वज्ञता है किसीमे, समस्त पदार्थोंको जानता है इसमे बाधा आती है। वह कैसे? देखो, शङ्काकार कह रहा है सब कि यदि सर्वज्ञका ज्ञान प्रत्यक्ष मानते हो तो वह ज्ञान पुण्य पापका ग्रहण करने वाला नही हो सकता, क्योकि प्रत्यक्ष जो है वह विद्यमान चीजको ही ग्रहण किया करता है। पुण्य पाप धर्म अधर्म ये विद्यमान नही है, तो किसीके भी प्रत्यक्ष नही हो सकते, चाहे वह प्रत्यक्ष हमारा और चाहे आपके द्वारा कल्पित सर्वज्ञका हो, प्रत्यक्षका विषय ही नही है कि वह विद्यमानको ग्रहण करले। है कोई ऐसा पुरुष? जो प्रत्यक्षको, अविद्यमान अर्थको ग्रहण करता हो। सर्वज्ञके ज्ञानको यदि प्रत्यक्ष मानते हो तो वह धर्म अधर्म आदिकका ग्रहण करने वाला नही हो सकता क्योकि, प्रत्यक्ष सत्-सम्प्रयोजक है अर्थात् जो पदार्थ वर्तमानमे मौजूद है उसका सम्बन्ध बने तब ज्ञान होता है प्रत्यक्षसे, इससे प्रत्यक्ष वर्तमानको ही ग्रहण करता है, धर्म आदिकको ग्रहण नही कर सकता। जब धर्म आदिकका ग्रहण न किया तो सर्वज्ञतामे यही तो खास बात थी, बाकी दुनियाभरके पदार्थोंको कोई अनेक प्रमाणोंसे जान जाय, तब भी वह सर्वज्ञ न कहलायेगा। सर्वज्ञ तब होगा जब धर्म अधर्म अदृष्ट इनके भी जानने वाले हो, और कोई भी पुरुष धर्मादिकका जानने वाला होता ही नही है, धर्म अधर्म आदिकका परिज्ञान तो वेदसे हुआ करता है। यदि प्रत्यक्ष अविद्यमानको ग्रहण करने लगे अथवा असत् पदार्थोंका सम्बन्ध बनाने लगे तो वह प्रत्यक्ष नही कहला सकता। जैसे हम लोगोको प्रत्यक्ष है। क्यो प्रत्यक्ष नाम पडा कि यह सद्भावको जानता है और विद्-

मान पदार्थसे सम्बन्ध होता है तब जानते है, ऐसा शङ्काकार सर्वज्ञत्वमे बाधा डालने की बात पुष्ट कर रहा है कि लोकमे सर्वज्ञ कोई भी नहीं है, क्योकि यह पुरुषके पते की बात नही है कि वह धर्म अधर्म पुण्य पाप अदृष्ट कार्य ऐसे सूक्ष्म तत्त्वोका ज्ञान कर सके। उसका ज्ञान तो वेदसे आगमसे प्रारम्भ होता है।

प्रसङ्ग विपर्यय द्वारा सर्वज्ञत्वसाधक अनुमानमे बाधाका अभाव अब इस शङ्काका समाधान दिया जा रहा है कि जो यह कहा कि प्रसङ्ग और विपर्ययोके द्वारा समस्त पदार्थोंका विषय होना बाधा जाता है अर्थात् कोई पुरुष सर्वज्ञ नही है यह कथन तुम्हारा मनोरथमात्र है, अर्थात् अपने ही मनमे अपनी ही कल्पनाका रथ बना लिया तुमने। और उस रथ पर बैठ करके तुम कोरी गप्पोकी हवायें खा रहे हो, इस तुम्हारे कथनमे कोई बल नही है, क्योकि उन बातोमे प्रसङ्ग नही बनता अर्थात् ये चार बातें जो कही हैं तुमने कि प्रत्यक्षपना और विद्यमान पदार्थोंसे सम्बन्ध होना और विद्यमानको ही ग्रहण करना और धर्म आदिक अदृष्ट तत्त्वोका ग्राहक न होना इन चार बातोमे व्याप्य व्यापक सम्बन्ध नही पाया जाता। अच्छा बताओ कहाँ पाया जाता ? यदि कहो कि अपने आपमे पाया जाता तो यह बात गलत है। अपने आपमे अर्थात् छद्मस्थ जीवोमे तो चक्षु आदिक इन्द्रियोसे जो प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है उसका विषय तो थोडा माना गया है, जहाँ व्यवधान न आये, जो दूर देश कालका न हो, जो सूक्ष्म-स्वभावका न हो ऐसे प्रतिनियत रूप, रस, गंध, स्पर्श इनका ही ज्ञान करता है। आपका प्रत्यक्ष, तब नियम तो न रहा यह कि जो प्रत्यक्ष स्वभावके द्वारा वाच्य हो वह व्यवहित देश काल अर्थका ग्राहक नही होता। वह प्रत्यक्ष शब्दसे नही कहा जा सकता। कैसे ? सो सुनो। देखो—तुम्हारे भी ग्रन्थोमे बताया है कि गरुड ने, वैनतेयने हजारो योजन की चीजको जान लिया यह रामायण आदिकमे बताया भी गया है तो इससे यह सिद्ध हुआ ना, कि प्रत्यक्षके द्वारा बहुत दूरकी बात जो सामने न हो उसे भी जान लिया जाता है। तब फिर तुमने जो यह कहा कि जिसका नाम प्रत्यक्ष ज्ञान है वह समस्त ज्ञान पासकी चीजको ही जानेगा, विद्यमानको ही जानेगा, यह बात तुम्हारी अब युक्त नही रही। किसी वैनतेयने हजारो योजन दूरकी चीजको जाना है ऐसी आगममें प्रसिद्धि है और लोकमे अत्यन्त दूरके पदार्थको गृद्ध-आदिक जान लेते है अथवा जब प्रत्यभिज्ञान उत्पन्न होता है सामने आयी हुई चीजको निरखकर उसके ही बारे मे जब अतीतकालकी परिणतिका स्मरण होता है तो बतलावो अतीतकालकी बातसे सम्बद्ध प्रत्यक्षीभूत बातका ग्रहण करनेका स्वभाव हो गया या नहीं ? जैसे किसी पुरुषको देख कर यह सोचना कि यह तो वही है जिसे हमने एक वर्ष पहिले अमुक जगह देखा था। तो इस ज्ञानमे एक साल पहिलेकी बातसे सम्बन्ध रखने वाले इस पुरुषका प्रत्यक्ष कर रहे कि नही कर रहे ? तो इससे सिद्ध है कि प्रत्यक्ष ज्ञान अतीतकी भी बातको जानता है, यह नियम नही बना कि जो जो प्रत्यक्ष ज्ञान हो वह वर्तमानको ही जाने, यह नियम नही बनता।

ज्ञानमे सर्वसत्को जाननेका स्वभाव—ज्ञानमें ऐसा स्वभाव पडा है कि वह सत्को जानता है। अभी आप १० वर्ष पहिलेकी घटनाका स्मरण करलें तो कर सकते ना ? जो बात गुजर चुकी है, अनेक वर्ष हो चुके हैं उसका भी ज्ञान आप आज करते हैं। ज्ञानमे अतीत-भविष्यकालकी चीजोंको जाननेका स्वभाव पडा है। जैसे कल कौन सा दिन होगा ? शनीवार। लोकलकी होने वाली बात आपने आज ही जान लिया। तो स्वभाव पडा है चाहे हम किसी रूपसे जानें, पर स्वभाव तो है कि हम आगे होने वाली बातको भी समझ सकते हैं और अतीत कालकी भी बात जान सकते हैं। अगर भविष्य कालकी बातके जाननेका स्वभाव न पडा हो तो कोई काम ही नहीं कर सकते आप। अब सगाई हुई, चार माह बाद शादी है अमुक दिन लोग आवेंगे निमन्त्रण पत्र अभीसे छपा लिया। यह जान रहे है कि अमुक दिन काम होना है, तो भविष्यकी बातोंका जाननेका स्वभाव यदि ज्ञानमें न होता तो तद् विषयक कल्पनायें भी न हो सकती थीं। तो ज्ञानका स्वभाव है कि वह भूत वतमान और भविष्यकी सभी बातोको जान सके। यह नही कह सकते कि जिस जिस ज्ञानका नाम प्रत्यक्ष ज्ञान रखोगे वह केवल वर्तमानका ही ग्रहण कर सकेगा। इसके अतिरिक्त और भी वह केवल वर्तमानका ही ग्रहण कर सकेगा। इसके अतिरिक्त और भी देखिये कुछ प्रातिभज्ञान भी होते हैं अर्थात् अपने विशिष्ट विचारसे हम उसका ज्ञान किया करते हैं। जैसे कल मेरा भाई आने वाला है तो कलके सम्बन्धमे कलकी परिणतिका ज्ञान वह अभी प्रतिभज्ञानसे कर रहा है। देखो न तो शब्दके व्यापारसे यह ज्ञान उत्पन्न हुआ, न किसी हेतुसे और न इन्द्रियके व्यापारसे उत्पन्न हुआ, पर उमने एक अपनी प्रतिभासे जागृत दशामे कुछ विशिष्ट अनुभव किया है। प्रयोजन यह है कि ज्ञानका ऐसा स्वभाव है कि वह अतीतको भी जाने, भविष्यको भी जाने, जो सामने न हो उसे भी जाने। यह तो हम आपकी एक निर्बलता है, पराधीनता है—इन्द्रिय और मनके आधीन ज्ञान बन रहा है, पर ज्ञानमें ऐसा स्वभाव नही पडा कि वह इन्द्रियकी अपेक्षा लेकर ही उत्पन्न हो। ज्ञानमे जाननेका स्वभाव है।

ज्ञानस्वभावकी प्रतीतिके बिना वेदशास्त्र गुरुके निर्णयका अभाव—देखिये ! यह बात जब तक प्रतीतिमें न आयगी कि ज्ञानका तो मात्र जाननेका स्वभाव है, वह वर्तमानको जाने ऐसी सीमा नही रखता। वह सामनेकी वस्तुको ही जाने ऐसी उसमें आड नहीं रहती है, किन्तु ज्ञानमे तो जाननेका स्वभाव होना है इसका जब तक विश्वास न होगा तब तक आपने न अरहत को पहिचाना न सिद्ध को पहिचाना। जब आदर्श को ही न जान पाया तो फिर आपका गुरु ही कौन रहा, फिर आपके शास्त्र ही क्या रहे ? यो तो अपना मन बहलाने के लिए आप उपन्यास पढ़ते हैं या अखबार पढते हैं, और नई नई बाहरी बातोंकी जानकारी करके उसका मौज भी लेते हैं तो यह तो एक लौकिक वैभवमे सामिल हो गया। मोक्षमार्गकी बात अभी नही आयी। जब तक इस बातका विश्वास न हो कि ज्ञानमें जाननेका ऐसा स्वभाव पडा रहता है

उसमें क्या यह कैद कर सकते हैं कि यह इतने समयकी ही जानेगा ? अगर कैद करते हैं तो उनसे प्रश्न किया जा सकता है कि इससे पहलेकी बातको ज्ञान नही जान सके, ऐसा इसपर क्या कोई आवरण पड़ा हुआ है ? इस ज्ञानपर कौन सी उपाधि पड़ी हुई है जो ज्ञानमे यह सीमा हो जाय कि यह १० वर्षकी बात तो जानेगा आगेकी न जानेगा। आप यदि कहे कि हम लोगोके ज्ञानमे तो ये सीमायें नजर आती है, हम ४०–५० वर्ष पहलेकी बातको बता सकते हैं, इससे पहिलेकी बात नही बता पाते, तो भाई ठीक है। आपके ज्ञानपर आवरण पड़ा हुआ है, ज्ञानावरणका उदय है, इन्द्रिय और मनकी अपेक्षासे ज्ञान उत्पन्न होता है तो यहाँ तो विवशता हुई, यहा तो सीमा आ गई, किन्तु जहाँ कोई भी आवरण न रहा वहाँ ज्ञानमे सीमा कौन करे, कहाँ तक का जाने, कितना सूक्ष्म जाने, कितनी दूरकी जान। ज्ञानका काम है कि जो भी सत् हो वह समस्त ज्ञानमे ज्ञेय हो जाता है।

आन्तरिक वैभवके परिचयसे ही प्रभुका यथार्थ परिचय भैया ! यह प्रकरण चाहे कुछ सुनने समझनेमें कठिन लगता हो, लेकिन इसमें जो भाव पड़ा हुआ है, वहाँ लक्ष्य कराया जाता है, मुख्य प्रत्यक्षका सामर्थ्य जो बताया गया है उस उस सामर्थ्यका जब तक परिचय न हो तब तक समझना कि मैंने वास्तवमे अरहंत और सिद्धको भी नही जाना। क्या है अरहत ? कुछ पता ही नही। जैसे यहां लोकमे यह मामा है, यह फूफा है, यह अमुक है, यह धनी हैं, यह योगीश्वर हैं, ऐसा मान लिया जाता है। ऐसे ही यह अरहत हैं। इस प्रकार मान लिया। इस प्रकार की केवल बाहरी प्रतीति है, अरहत कहते किसे हैं ? अरहतके स्वरूपमे चमत्कार क्या है ? उसका ज्ञान जब तक नही है तब तक अरहतकी क्या परख की ? जैसे कोइ पुरुष किसी सज्जन पुरुषके बारेमें तारीफ करने खड़ा हो और तारीफ करे ऊपरी-ऊपरी, तो दूसरे लोग कहते हैं कि अभी आपने इस सज्जनको पहिचाना ही नही। आप ऊपरी-ऊपरी बातें करते हैं तो उसके भीतरी गुणोंको समता, क्षमा, विशुद्ध आशय सबमे समान बर्ताव करनेकी प्रकृति, ऐसे जो भीतरी गुण हैं उन भीतरी गुणोपर प्रकाश डाले तो लोग मानेंगे कि हाँ, तुमने इस सज्जनको पहिचाना है और उसका मर्म न जाने तो जैसे कुछ ऊपरी बातें बोली जाती हैं उनसे ही मान लिया कि यह अरहत हैं। पर, उससे उनकी श्रद्धा विकसित नहीं होती और न अपने लिए कोई शिक्षा मिली।

प्रभु-पूजाका प्रयोजन –हम भगवानको क्यों मानें ? भगवानकी उपासना क्यो करने जायें ? जैसे कि बहुतसे लोग ऐसी शङ्का करते है कि मन्दिरमे क्यों जायें, वहाँ जानेसे कुछ मिलता नहीं है न वहाँ कोई बताने वाला न कोई कुछ सुनने वाला। तो भाई ठीक है, कुछ भी नही मिलता। अरे मिलेगा उनको जिन्होंने परिचय पाया है कि भगवान तो उस विश्वज्ञताके स्वभाव रखने वाले हैं। ज्ञानका नाम है वह ज्ञान-

पुञ्ज, वह ज्ञान ज्योति जो एक अद्भुत चमत्कारमें है वह है प्रभु ! और, उस प्रभुका परिचय होनेसे अपने आपमें भी यह बोध बनेगा कि यही स्वभाव तो मेरा है जब इस जीवको इन बाहरी विडम्बनाओसे वैराग्य होगा तब खुद अनुभव करेगा कि मैंने प्रभु दर्शनसे क्या पाया ? इन बाहरी विषयोमे लगा रहनेसे आत्माको क्या हाथ आ गा ? लगे रहो खूब इस वैभवके उपार्जनमें, सब जगह डटे रहो, पर क्या होगा अन्तमे मरण तो अवश्यभावी है, उसके बाद फिर कहाँ जन्म होगा, क्या होगा वह सब इस जन्मकी करतूत पर निर्भर है। तो क्या मिला यहाके स्नेहसे, मोहसे, आसक्तिसे ? कदाचित् चार लोगोने कह दिया कि यह बहुत बडा है, बहुत धनी है, बहुत समझदार है, बहुत चतुर है, यो कुछ भी कह दिया तो उनके कहनेसे यहाँ कही हम पेटेन्ट तो नही हो गए किसी अपने सुखकी प्राप्तिके लिये। मोहीजन हैं, अपनी कषायके अनुसार, अपने स्वार्थभावके अनुसार कहा करते हैं। तो प्रभुके स्वरूपको पहिचाने और प्रभु स्वरूपको जानकर ऐसा निर्णय बनाना कि यह मैं आत्मा जो केवल ज्ञानमात्र है वह मात्र ज्ञाता द्रष्टा रहे यह तो है मेरा उत्थान, यही है मेरा सर्वस्व, यही है परमार्थ उत्कृष्ट आनन्द। इसके अतिरिक्त जगतमे मेरा कही कुछ नही है। यहा भाव बनानेके लिए मदिर आना चाहिए। यही भावना रोज भाते रहेंगे, वैसी ही भावना बनाये रहेंगे तो आत्मबल प्रकट होगा। ज्ञानबल जिस बलके प्रकट होनेपर फिर लोक मे आकुलता न ठहर सकेगी। यह प्रयोजन है प्रभु स्वरूपके जाननेका।

कथनके आन्तरिक भावके ज्ञानसे स्पष्ट विज्ञप्ति—जो केवल ऊपरी ऊपरी बातें ही समझलें और ऊपरी शब्दका ऊपरी ही अर्थ लगालें तो वह तो धोखा खायगा। एक मास्टर स्कूलमे पढा रहे थे, उन लडकोंको डाट भी रहे थे। जिनके सवाल गलत निकले थे - देखो हमने कितना पढाया किस ढगसे पढाया, कितने ही गधोको मनुष्य बनाया, फिर भी तुम लोगोने सवाल गलत कर दिया ? इस बातको सुन लिया किसी मुसाफिर ने, वह मुसाफिर था कुम्हार। उसके घर कई गधे थे। सोचा कि हमारे घर कोई बच्चा नही है, चलो हम भी अपने एक गधेका एक लडका बनवालें ! सो उस मास्टर से कहा—भैया ! हमारे एक गधेका एक लडका बना दो, मास्टरने समझ लिया कि यह बेवकूफ है। कहा—अच्छा, ले आना गधा, हम उसका लडका बना देंगे। वह ले आया गधा, मास्टरने कहा देखो ७ दिनके बाद अमुक दिन ठीक १० बजे आ जाना, लडका तुम्हें तैयार मिल जायगा। मास्टरने उस गधेको ५०-६० रुपयेमें बेचकर अपना काम चलाया। अब वह बेचारा देहाती आदमी पहिले तो ठीक-ठीक उस तारीखको भी न जान सका, फिर पहुँचा वह करीब चार बजे। और कहा कि हमारा लडका दे दो। मास्टरने कहा—ओह ! तुम इतनी देर करके आये, इतनी देरमे तो वह लडका बन गया, आदमी हो गया और अब तो मजिस्ट्रेट बन गया। हमारे वशका तो अब बात रही नहीं, तुम अगर ला सकते हो उसे तो लेआवो, वह कुम्हार उस गधेका टोकना, पट्टा, लगाम आदि जो कुछ था लेकर उस अदालत

पहुँचा जहाँ कि मजिस्ट्रेट बैठा था। वे सब चीजे इसलिए वह ले गया था कि इनको देखकर वह पहिचान जाय कि हाँ, हमको इन्हीके यहाँ जाना है। सो वह कुम्हार बार बार कहे– ओह, ओह, आजा, आजा, अरे तुम तो ३ घण्टेमे ही हमसे नाराज हो गए, चलो घर! इतनी बातें सुनकर चपरासीने उसे वहाँसे निकाल बाहर किया। तो वहाँ गधोको आदमी बनानेका अर्थ था मूर्खोंको बुद्धिमान बनाना। तो भाई! किसी भी बातका पहिले मर्म तो समझना चाहिए। जब तक हम अपने इस, ज्ञानस्वभावका प्रभुस्वरूपका मर्म न समझेंगे कि इसका अन्त चमत्कार क्या है?, तब तक हम इस देवको क्या जानें, गुरुको क्या जाने? और फिर शास्त्रमे भी हम क्या पढेंगे? यह ज्ञानस्वभावका और सर्वज्ञकी सिद्धिका वर्णन चल रहा है। ज्ञानस्वभावका परिचय होनेसे सर्वज्ञका परिचय हो जायगा।

शङ्काकार द्वारा अभिमत धर्माद्यनभ्युपगममे ३ विकल्पोकी सभावना– असर्वज्ञवादीका यह सिद्धान्त है कि समस्त तत्त्वोको जानने वाला कोई पुरुष विशेष नही हो सकता। तत्त्वोकी जानकारी अपौरुषेय आगमसे ही प्रकट होती है। भले ही कोई पुरुष अनेक प्रमाणोसे धीरे-धीरे ज्ञानोका सचय कर करके सबको जान ले तो भले ही जान ले, किन्तु धर्म आदिक जो अदृष्ट तत्त्व हैं उनकी जानकारी किसी पुरुषको नही हो सकती है, यो कह कर सर्वज्ञत्वको निषेध करने वालेके प्रति पूछा जा रहा है कि धर्म आदिकका जो अनभ्युपगम है, न जानकारी है वह किस कारणसे है, क्या धर्म आदिक अतीन्द्रिय हैं इस कारणसे चक्षु आदिकके द्वारा उनकी उपलब्धि नही होती, अथवा धर्मादिक अविद्यमान है, इस कारणसे उनका ज्ञान नही होता अथवा धर्मादिक के साथ कोई विशेषण ही नही लग सकता है, धर्म है तत्त्व है जो है सो है, उसके साथ कोई विशेषण नही हैं इस कारण धर्मादिककी अजानकारी होती है।

अतीन्द्रिय और अविद्यमान होनेसे धर्मादिकके अनभ्युपगम माननेका निराकरण– धर्मादिकके अनभ्युपगमके सम्बन्धमे कहे गये तीन विकल्पोमेसे पहिली बात तो यो ठीक नही बैठती कि अतीन्द्रिय बहुत सी बातें है और उनका परिज्ञान पुरुषसे हुआ करता है। जैसे अतीतकालका ज्ञान हम आपको है कि नही? है, और, अतीतकाल अतीन्द्रिय है, इन्द्रियके अगोचर है, इन्द्रि से रहित है इसलिये जो समय गुजर गया वह कितना समय गुजर गया? तो कोई बतावेगा इतना काल व्यतीत हो गया और कोई कहेगा कि अनादिकाल व्यतीत हो गया। तो उस अतीन्द्रियज्ञानका भी परिज्ञान हो गया। यदि यह कहो कि धर्म पुण्य पाप आदिक अदृष्ट हैं अविद्यमान हैं इस कारणसे हमारी जानकारी नही होती तो यह भी कोई नियम नही है कि जो जो अविद्यमान हो उसकी जानकारी नही होती। जैसे अतीतकाल तो अविद्यमान है फिर भी जानकारी उसकी है अथवा होने वाला जो एक कुछ विकास है योगियोंको जो कुछ प्राप्ति हो सकती है योग द्वारा वह यद्यपि वर्तमानमे अविद्यमान है फिर भी

उसकी जानकारी रहती है। तो यह भी बात तुम्हारी सही बैठी कि धर्मादिक अविद्यमान होनेसे पुरुषके द्वारा अज्ञात रहते हैं।

अविशेषणता होनेसे धर्मादिकका अनभ्युपगम माननेका निराकरण - यदि कहो कि पुण्य पाप धर्म इनमें कोई विशेषण नहीं लगते इस कारण इनकी जानकारी नहीं बनती। तो सुनो। विशेषण कैसे न लगेगा ? समस्त पुरुषोंके द्वारा भोगने में आने वाले विषयभूत पदार्थोंका जनक है पुण्य, धर्म। पुण्यके उदयसे विषयोंकी सामग्री रहती है, और वे सब विषय मनुष्योंके द्वारा भोगनेमे आते हैं तो धर्म किसे कहते हैं। धर्मका अभिप्राय है यह कि धर्म समस्त मनुष्योंके उपभोगमें आने वाली वैभव सामग्रीका जनक है। इतना बड़ा विशेषण लग गया। तुम कहते कि कोई विशेषण ही नहीं, और फिर यह धर्म द्रव्यसे, गुणसे, कर्मसे उत्पन्न होता है तो इसमें तो समस्त पदार्थोंकी विशेषणता सम्भव है। तो इस प्रकार कोई कारण नहीं है कि धर्म आदिक न जाने जायें, अविद्यमान पदार्थ न जाने जायें। इसकी जब सिद्धि नहीं है तो प्रसग और विपर्ययसे सर्वज्ञमें बाधा नहीं दी जा सकती है। फिर यों कहना कि जितने प्रत्यक्ष होते हैं वे सब अव्यवहितको ही जानते हैं, वे सब व्यवधानरहितको ही जानते हैं ये सब बातें तुम्हारी युक्त नहीं बैठी। तब प्रसग और विपर्ययके साधनोंसे भी सर्वज्ञ सिद्ध करनेमे बाधा नहीं आती।

सस्कृत साधनसे अविद्यमान व व्यवहित अर्थोंका परिचय—और, भी देखो—जैसे तत्र मंत्रादिकसे जो सस्कृत चक्षु हैं, सस्कार किए हुए नेत्र हैं वे बहुत दूर की बातको जान जाते हैं। एक घटना देखिये चाहे उसमें कुछ सार हो या न हो। अनेक लोग किसी बच्चे के अगूठेमे कुछ काला मसाला-सा लगा देते हैं और उससे पूछते हैं कि देखो इसमे कौन खडा है ? वह कुछ कल्पनाएँ करता है या न जाने क्या होता है कि उसे देखकर वह कहता है कि हाँ, कोई खड़ा तो है। फिर उससे दूतोंको बुलवाया जाता है आदि। तो वह जत्र-मत्र औषधिसे सस्कृत करणसे अविद्यमानको बतानेका उपाय है और उन उपायोंसे अविद्यमान अर्थकी भी जानकारी कराई जाती है। अथवा जैसे नाव खेने वाले कर्णधार पुरुषोंकी आँखोंमें कोई ऐसी चीज लगाकर सस्कार बना देते हैं कि उन पुरुषोंको समुद्रमें बहुत गहराईकी चीजें भी दिखने लगती हैं। तो जो दूरकी चीज है, व्यवधान वाली चीज है उसका भी ज्ञान कराया जाता है, और आजकल तो कुछ लोग ऐसा कहने लगे हैं कि कुछ ऐसे यत्र हैं जो जमीनके अदर क्या चीज पडी है ? इसकी भी जानकारी कर लेते हैं। तो यह कहना कि जो चीज सामने हो उसकी ही जानकारी सम्भव है यह बात युक्त न रही। इससे सिद्ध है कि सूक्ष्म आदिक जो अशेष पदार्थ हैं, अतीत कालकी जो घटनायें हैं उन सबका भी जाननहार कोई पुरुष होता है। तो यह कोई सीमाका उल्लङ्घन नहीं है कि जो विद्यमान है उस ही पदार्थका ज्ञान होता है।

ज्ञानमे अशेषज्ञताके स्वभावका दिग्दर्शन भैया ! ज्ञानमे तो सत्को जाननेका स्वभाव पडा हुआ है । यह बात कही दूसरेकी नही कही जा रही है जिससे कि अपने उपयोगको अपनेसे बाहर निकालकर बहुत दूर ले जाकर वहाँ कुछ निरखनेकी कोशिश करें । यह सब अपने आपकी सबकी अन्तःस्वरूपकी बात चल रही है । हम आपमे सबमे जो स्वरूप है, तत्त्व है जिससे हमारी निष्पन्नता है वह स्वभाव सबको जाननेकी सामर्थ्य रखता है । कुछ ये इन्द्रिया मिली, शरीर मिला यह तो जेलखाना है, बन्धन है, विवशता है इस कारण थोडा जान पाते है, पराधीनतासे जान पाते हैं, स्थूल जान पाते हैं, पर ऐसा जानना ज्ञानके स्वभावकी ओरकी बात नही है । ये तो उस स्वभावकी और भी विशदताको प्रकट करते है । जैसे कि सूर्यके नीचे बादल आ जायें और किसी समय एक मील तक ही धूप निकली हुई है तो एक मील तक जो धूप निकली है वह एक आवरणके कारण ऐसी परिस्थिति बनी है । सूर्यका स्वभाव एक मील तकका ही प्रकाश करनेका है । साथ ही यह भी निरखिये कि यह एक दो मीलका प्रकाश सूर्यकी कमजोरीका ज्ञान नही करा रहा किन्तु सूर्यके स्वभावका ज्ञान करा रहा है । सूर्यमे कितना महान तेज है कि इतना बादलोका आवरण होनेपर भी, सूर्यके नीचे पूरे बादल आ गए हो न भी एक मील की धूप हो, पूरे बादल आ चुकनेपर भी वह सूर्य सर्वत्र प्रकाश करनेका स्वभाव रखता है । तो वह एक दो मीलका प्रकाश उस सूर्यके तेजकी याद दिलाता है न कि सूर्यका तिरस्कार करता है, इसी प्रकारसे हमारे ये छुट पुट ज्ञान जो इन्द्रियके द्वारा जाने जाते हैं, जो कि हमारे सब कुछ जाननेमे बाधक बन रहे हैं, ये सब छुट पुट जानन इस आत्माकी कमजोरीका ज्ञान नही करा रहे किन्तु आत्माके अनन्त सामर्थ्यकी याद दिलाते है । हैं यद्यपि छुटपुट ज्ञान, पर देखो तो सही कि आत्मापर कितनी आपदायें छाई हुई हैं, विषय कषाय मोह रागद्वेषसे इसका उपयोग कितना बदल गया है फिर भी ये छुटपुट ज्ञान इस आत्माके सामर्थ्यकी याद दिलाते हैं । तो ज्ञानमे समस्त सत् पदार्थोंके जाननेका स्वभाव पडा हुआ है । तो जिसपर कोई आवरण नही रहा वह सर्व सतोको जानले तो इसमे कोई बाधा नही आती ।

अल्पज्ञके प्रत्यक्षत्वसे सर्वज्ञके प्रत्यक्षकी तुलना करनेका व्यामोह— शङ्काकारने जो यह कहा था कि इन्द्रियमे कितना भी अतिशय आ जाय अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान चाहे कितना भी महान बन जाय पर महान बनकर भी अपने स्वभावको न छोड सकेगा क्योकि वह प्रत्यक्ष सामनेकी चीजको ही जाने स्थूलको ही जाने, गा, सबको जाननेकी बात प्रत्यक्षसे नही बन सकती । तो इसपर उनसे पूछा गया था कि तुमने यह कैसे निर्णय किया कि ज्ञान सामनेकी ओर प्रत्यक्ष चीजोको ही जाननेमे समर्थ है ? इसपर शङ्काकारने उत्तर दिया कि हमने अपने आत्मासे जाना, सो चाहे जिस जगहके लोग हो, विदेह क्षेत्रके हो या अन्य कहीके भी हो योगीश्वर हो, प्रत्यक्ष तो वैसा ही ज्ञान करेगा जैसा कि हम जानते है । तो इसपर उनसे पूछा जा रहा है कि

यह तो बतावो कि तुम्हारे स्वात्मामे जितने कारणोंसे उत्पन्न हुआ ज्ञान जिस पदार्थ को ग्रहण करता हुआ प्रत्यक्ष तुमने माना है क्या उतने ही कारणोंसे उस ही प्रकारसे सब जगह सब समय सभी प्राणियोको प्रत्यक्ष होता है क्या तुम्हारा यह मतव्य है ? शङ्काकार कहता है हाँ तुमने तो और खुलासा करके बता दिया। हमारा यह मतव्य है कि जिस प्रकार जिस ढङ्गसे जितने कारणोसे जैसा प्रत्यक्ष हमारा होता है ऐसा ही प्रत्यक्ष सब प्राणियोको हुआ करता है। तब समाधान सुनिये कि यह नियम तुम्हारा ठीक नहीं है। तुम यदि प्रकाशके बिना कुछ ज्ञान नही सकते तो ये बिल्ली उल्लू आदि अनेक जीव तो बिना प्रकाशके सब चीज रात्रिमे ही देख लेते हैं। तब तो फिर तुम्हारे ज्ञानसे इनके ज्ञानमे विलक्षणता देखी जा रही है। तो तुम्हारे स्वात्माकी बात तो यहीं नही मिल रही, फिर सारी दुनियामे सारे पदार्थोंकी बात तुम कैसे जान सकोगे ?

अक्षज ज्ञानको ही प्रत्यक्ष मानकर अभिमत प्रसङ्ग विपर्ययसे सर्वज्ञत्व की असिद्धिका निराकरण तुम्हारे प्रतीत्यामासकी दूसरी बात यह है कि क्या तुमने खूब परख लिया यह कि सब जगहके लोग सब समयोमे किस किस प्रकारसे प्रत्यक्षको जानते हैं। अगर तुमने परख लिया तो तुम्ही बन गए बडे सर्वज्ञ और प्रभु सो तो हो नही ! तुम्हारे स्वात्माकी प्रतीतिमे मेल नही खाता है इन सब प्रत्यक्षोंमे। तुम्हारी यह खुदकी कल्पना है, जो चाहे कल्पना करो, पर यह नियम नहीं बन गया कि जो जो प्रत्यक्ष ज्ञान होते हैं वे सब इस ही प्रकार स्थूल और विद्यमान और सम्बन्धित पदार्थोंको ही जाना करते हैं जब यह नियम नही बना तो तुम्हारे प्रसङ्ग और विपर्यय ये दोनो असिद्ध हो गए। सर्वज्ञमे फिर कोई बाधा नही है। तुम्हारी इन दोनो समानताओंकी बात तो यहाँ ही खण्डित हो जाती है तब समझिये कि सूक्ष्म पदार्थका जानना, अतीतकालका जानना ये बात भी कही पायी जाती हैं। तुम्हारे प्रत्यक्ष ज्ञानसे यह भी मेल नहीं होगा क्योंकि किसी न किसीके सब पदार्थ प्रत्यक्ष होते हैं।

घातिकर्मक्षयज प्रभुज्ञानकी अशेषज्ञतामे अबाधा प्रत्यक्षसे सर्वके अनभ्युपगमके सम्बन्धमे तीसरी बात यह है कि हम सर्वज्ञके ज्ञानको इन्द्रियजन्य नहीं मानते। इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष मानकर यदि हम यह सिद्ध कर रहे हो कि सर्वज्ञका ज्ञान परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंको जानता है तो तुम इसमे बाधा दो, पर वास्तविकता तो यह है कि प्रभुका ज्ञान ज्ञानका घात करने वाले कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है। घातिया कर्म हैं चार ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय। ज्ञानावरण कर्म जीवके ज्ञानका विकास न होने देनेमे निमित्त है, दर्शनावरण कर्म ज्ञानस्वरूप वर्तने वाले अपने आपको अपने अवलोकनमे न लाने देनेके लिये निमित्त है। मोहनीय कर्म आत्माकी दृष्टि न करानेमे आत्म का रमण हटानेमें निमित्त है, और अन्तराय कर्म अपनी शक्तिका विकास न होने देनेके लिए निमित्त है। जहाँ ये चारो कर्म दूर हो गए ऐसे सर्वज्ञदेव लोकालोकके जानने वाले हो जाते हैं।

धर्मादिकके अभ्युपगममे शङ्काकार द्वारा प्रस्तावित चार विकल्पोमे आद्य विकल्पद्वय - अब शङ्काकार फिर सर्वज्ञवादीके प्रति कह रहा है कि फिरसे शुरू करो अपना वाद विवाद। यह बतलावो कि सर्वज्ञका ज्ञान जो धर्मादिक पदार्थों का ग्रहण करता है तो वह ज्ञान है कैसा ? क्या वह ज्ञान चक्षु आदिक कारणोसे उत्पन्न होता है या अभ्यास करनेसे बन गया है या शब्दसे, शास्त्रसे, आगमसे उसका ज्ञान बना है या अनुमानसे उसका ज्ञान बना है ? इन चार प्रकारके विकल्पोमेसे पहले विकल्पकी बात तो यो ठीक नही बैठती कि चक्षु आदिक इन्द्रियसे उत्पन्न हुए प्रत्यक्ष ज्ञानसे सर्वज्ञ भगवान सबको जान लें यह बात सभव नही है क्योकि इन इन्द्रियोके प्रवृत्तिरूप, रस, गध स्पर्श और शब्दोमे ही पाई जाती है। इन्द्रियसे उत्पन्न हुआ ज्ञान धर्म आदिकको ग्रहण करले, यह बात असम्भव है। तो तुम्हारे सर्वज्ञका ज्ञान चक्षु आदिक इन्द्रियोसे उत्पन्न होकर फिर सारे विश्वको जाने यह बात तो बनती नही है। यदि कहो कि अभ्यास कर करके सर्वज्ञने अपना उतना ज्ञान बढा लिया सारे विश्वका ज्ञान अभ्यास कर करके कर लिया (यह असर्वज्ञवादी सर्वज्ञ मानने वालेसे कह रहा है) तो यह कहना तुम्हारा केवल मनोरथ मात्र है, क्योकि ऐसा हो ही नहीं सकता कि कोई ज्ञानका अभ्यास कर करके सारे विश्वका ज्ञान कर सके। यहीपर किसीका भी अभ्यास देख लो, प्रतिनियत विषयमे तो उसकी कुशलता होती है। जैसे कोई लुहार है तो वह लोहेके काम कर सकनेमे ही सफल हो पाता है, उससे यदि कोई बिजलीका सामान बनवाना चाहे तो वह न बना सकेगा। अथवा कोई जुलाहा कपडे बुननेका काम करता है, उससे कोई बहुत बडा ग्रथनिर्माणका कार्य करवाना चाहे तो वह नही कर सकता है। हां, जिस कामको वह कर रहा है उसको तो बडी कुशलतासे वह कर लेगा। तो इस तरह अभ्यास करने से तो दो एक बातें ही बन पायेंगी, अभ्यास कर करके कोई त्रिलोक त्रिकालवर्ती बातोको जान जाय यह बात कोई मान सकता है क्या ? नही मानेगा।

अभ्यास द्वारा सर्वके ज्ञानकी असभवता—एक कोई बी० ए० पढकर ताजा निकला हुआ बाबू एक समुद्रकी सैर करने चला,, नाविकसे कहा कि तू मुझे अपनी नौकामे बैठालकर इस समुद्रकी लहरोमें ले चल !···अच्छा बाबू जी, एक रुपया पडेगा।···अच्छा साहब ! जब थोडी दूर नाव खे ले गया तो वह बाबू पूछता है क्यो बे नाविक ! तू कुछ पढा-लिखा है या नही ? ··नही साहब !·· तेरा बाप पढा है या नही ?···नही साहब !···तो क्या तू ए० बी० सी० डी० भी नही जानता ?··· नही साहब !···तो क्या तू अ आ इ ई भी नही जानता ?···नही साहब ! तो उन बाबूजीने उसे कई गालियाँ सुनाई नालायक, बत्तमीज आदि। और कहा कि ऐसे ही लोगोंने तो इस हिन्दुस्तानको बरबाद कर दिया है। उस बेचारेने सुन लिया। जब नाव करीब १ मील पहुँच गयी तो एक जगह भँवरमे नाव कुछ डगमगाने लगी। तो वह बाबू कहता है—अच्छी तरह नाव खेना, कही डूब न जाय ! तो वह नाविक

बोला—क्या तुमने तैरना सीखा है बाबू साहब ? नहीं ! तो क्या तैरना बिल्कुल ही नहीं सीखा ? नहीं नाविक ! तो उस नाविकने उन बाबूजीको उतनी ही गालियाँ सुनाई जितनी कि बाबूजीने सुनाई थी। और कहा कि ऐसे ही लोगों ने तो हिन्दुस्तान को बरबाद कर दिया है। तो प्रयोजन यह है कि अभ्यास बना बनाकर कोई सारे विषयोंमे प्रवीण हो जाय यह बात तो नहीं हो सकती। शङ्काकार कह रहा है सर्वज्ञ वादियोंसे कि अभ्यास कर करके भी कोई सारे विश्वका ज्ञाता हो जाय, यह बात असम्भव है।

अभ्याससे सर्वज्ञता माननेमे अन्योन्याश्रय दोषकी आशङ्का—अभ्यासमे सर्वज्ञता पानेके सम्बन्धमे एक अन्य यह बात है कि समस्त पदार्थोंका उपदेश अथवा समस्त पदार्थोंका ज्ञान सम्भव ही नहीं है। अगर समस्त पदार्थोंका ज्ञान सम्भव हो जाय तो फिर अभ्यास करनेके उद्यमसे क्या फायदा है ? समस्त पदार्थोंका ज्ञान तो उसे सिद्ध हो ही गया, और फिर देखो तो इसमे अन्योन्याश्रय दोष है। कैसे ? यदि यह कहो कि अभ्यास कर करके प्रभु सर्वज्ञ बन जाते हैं तो किसका अभ्यास कर कर के बने सर्वज्ञ ? समस्त पदार्थोंकी जानकारीका अभ्यास कर करके वे सर्वज्ञ बने। अरे तो पहिले सबको जानलें तब तो उसका अभ्यास करें और जब अभ्यास हो तब सबको जाने। तो इसमे तो अन्योन्याश्रय दोष है। जैसे ताली रख दिया बक्सके भीतर और यों ही हाथसे दाब देने वाला ताला बंद कर दिया तो अब वह ताला कैसे खुले ? चाबी हो तो ताला खुले, और ताला खुले तो चाभी निकले। तो वहाँ विवशता आ गई कि नहीं ? इसी प्रकार सब पदार्थोंके ज्ञानका अभ्यास करके सर्वज्ञता बने और जब अभ्यास बने तब सबका ज्ञान हो। तो यह विकल्प भी युक्त नहीं है कि अभ्यास कर करके प्रभु सर्वज्ञ बने। शङ्काकार ही कह रहा है कि सर्वज्ञकी सिद्धि किसी प्रकार नहीं होती।

आगमसे सर्वज्ञके ज्ञानकी उत्पत्ति माननेपर अन्योन्याश्रय दोष—सर्वज्ञत्वकी बात जिसके हृदयमे नहीं समा पा रही है ऐसा सिद्धान्तवादी यह पूछ रहा है सर्वज्ञ वादियोंसे कि क्या सर्वज्ञका ज्ञान चक्षु आदिकसे उत्पन्न होकर धर्मादिक अदृष्ट तत्त्वोंका ग्रहण करने वाला है अथवा अभ्यास कर करके वह ज्ञान सबका ज्ञाता बना है अथवा शब्दोंसे उसका ज्ञान उत्पन्न हुआ है फिर वह धर्मादिकका जानने वाला है अथवा अनुमानसे उसका ज्ञान उत्पन्न हुआ है। इन चार विकल्पोंमसे दो विकल्पोंकी बात तो कह दी गई थी। अब तीसरे विकल्पके सम्बन्धमे सुनो शङ्काकार कह रहा है कि यदि सर्वज्ञका ज्ञान आगमसे उत्पन्न हुआ होकर फिर धर्मादिक तत्त्वोंका ग्रहण करने वाला है ऐसा यदि मानते हो तो इसमे अन्योन्याश्रय दोष होगा। जिस आगमसे भगवानका ज्ञान उत्पन्न हुआ है वह आगम क्या प्रमाणरूप है ? कैसे प्रमाणभूत है ? जब सर्वज्ञके द्वारा यह आगम प्रणीत है यह सिद्ध हो तब तो आगममें प्रमाणता

आयगी और जब आगममे प्रमाणता आये तो आगमसे ज्ञान उत्पन्न होकर वह धर्मादिक का ग्राहक बनेगा। तो इसमे यह कठिनाई आई कि सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत होनेसे आगम की प्रमाणता आनेपर तो सर्वज्ञका ज्ञान सम्भव हो सकता है और जब सर्वज्ञको जानने वाला ज्ञान सिद्ध हो तो उसके द्वारा यह आगम प्रणीत है यह कहा जा सकता है। तो आगमसे भी सर्वज्ञका ज्ञान उत्पन्न नही हुआ जो समस्त विश्वको, धर्मादिक तत्त्वको जान सके।

सर्वज्ञज्ञानकी अनुमानप्रभवताकी असिद्धि—यदि यह कहो कि सर्वज्ञका ज्ञान अनुमानसे उत्पन्न हुआ है तो यह बात बिलकुल अयुक्त है। शङ्काकार कह रहा है कि धर्मादिक पदार्थ तो अतीन्द्रिय हैं, उनकी सिद्धिके लिए जो भी तुम साधन बनाओगे उन साधनोका धर्मादिक अतीन्द्रिय पदार्थोंके साथ सम्बन्ध नही बैठ सकता। और, जब तक साध्य साधनका सम्बन्ध न विदित हो तब तक वह हेतु, अनुमानज्ञापक नही बन सकता। जैसे इस पर्वतमे अग्नि है धुवा होने से तो अग्नि और धुवाका सम्बन्ध निश्चित् है तब तो धुवांसे अग्निका ज्ञान किया जाता है। तो जिस हेतुसे तुम सर्वज्ञको ज्ञाता मानोगे उस हेतुका सब पदार्थोंकी ज्ञप्तिसे सम्बन्ध तो विदित नही होता, क्योंकि सब पहिले ज्ञानमे आये तब हेतुका सम्बन्ध जान सके। और, यदि सब ज्ञानमे आ गया तो लो यही सर्वज्ञ बन बैठा। आगे क्या ढूढना? दूसरी बात यह है कि अनुमानसे अगर सर्वज्ञता मानते हो तो हम लोगोमे भी सर्वज्ञताका प्रसङ्ग होगा, हम आप सभी सर्वज्ञ कहलाने लगेंगे। क्योंकि बड़े अनुमान तो ऐसे भी हैं कि जिनसे सब पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है। जैसे अनुमान किया कि सारे पदार्थ, समस्त जगत भावाभावोभय रूप है अर्थात् हैं भी और है नही व दोनो रूप हैं, क्योंकि प्रमेय होनेसे। तो इस अनुमानसे सब जान लिया गया ना, और अनुमान आपके होता है। तब फिर आप भी सर्वज्ञ बन गये।

आगम और अनुमानसे सर्वज्ञज्ञानकी उत्पत्ति माननेपर ज्ञानमे विशदताकी असम्भवता—और भी देखिये! आगमसे सर्वज्ञके ज्ञानकी उत्पत्ति माननेमे यह दोष है कि चूकि अनुमानज्ञान और आगमज्ञान दोनो ही ज्ञान अस्पष्ट हैं और दोनोसे सर्वज्ञका ज्ञान उत्पन्न हो तो सर्वज्ञका ज्ञान भी अस्पष्ट बन गया। तब वह आपका अभिमत ज्ञानवान न रह सका, सर्वज्ञ न बन सका, वह तो अनुमान और आगमसे सीखकर सर्वज्ञ बना है, इस प्रकार किसी भी तरह सर्वज्ञकी सिद्धि नही होती। शङ्काकार कह रहा है कि यदि कोई अन्य सर्वज्ञवादी पुरुष ऐसा कहे कि बारबार जब उस ज्ञानकी भावना की जाती है तो भावनाका जब प्रकर्ष होता है उच्च भावना बन जाती है तो योगिज्ञान बन जाता है। हम आप लोग जब ज्ञानकी, धर्मोपदेशकी, तत्त्वकी भावना करते है तो भावना कर करके हम कभी योगीज्ञानको भी प्राप्त कर सकते है। तब निर्मल बन सकते हैं। अभी जो कुछ अनुमान ज्ञान, आगमज्ञान

सीखा है वह अविशद है अस्पष्ट है लेकिन वारवार उसकी भावना करें। वारवार उसे समझें तो वह स्पष्ट ज्ञान वन जायगा। शङ्काकार कहता है कि यह भी बात तुम्हारी ठीक नहीं है, क्योंकि अभ्यासके वलसे तो ऐसे पुरुषके ज्ञानमें विशदता आ जाती है। जो कामसे विह्वल है, शोकसे विह्वल है तो अभ्यासके वलसे अगर ज्ञानमें ऐसी स्पष्टता आती है तो उस स्पष्टताका मूल्य कुछ नहीं है। जिसे इष्टका वियोग हुआ वह उस इष्टका वरावर ध्यान रखनेसे उसकी आंखोके आगे वह इष्ट नजर आता रहता है। इतना स्पष्ट बोध हो रहा है, पर ऐसी स्पष्टताका कोई क्या करे? इस तरहकी स्पष्टता मानोगे तो तुम्हारा सर्वज्ञ भी विह्वल वन गया। इस प्रकार किसी भी प्रमाण से, अनुमानसे, किसी भी प्रकारसे सर्वज्ञका ज्ञान वन ही नहीं सकता है, तब फिर कोई सर्वज्ञ है, ऐसा कहना प्रलापमात्र है।

अशेषज्ञताकी उत्पत्तिमे तत्त्वाभ्यासकी परम्परया साधकता अब शङ्काकारकी उक्त शङ्काओके समाधानमे कहा जा रहा है सर्व प्रथम तुमने चार विकल्प रखे कि सर्वज्ञका ज्ञान क्या चक्षु आदिकसे जनित है अथवा अभ्यासजनित है या आगमजनित है अथवा अनुमानजजनित है? ये सब ही विकल्प तुम्हारी नासमझी से उठ खड़े हुए हैं। पहिले विकल्पके सम्बन्धमे तो अभी अभी कहा गया था कि चक्षु आदिकसे उत्पन्न होनेपर भी ज्ञान धर्मादिक तत्त्वोका ग्राहक वन सकता है इसमें कोई विरोध नहीं। अभ्यासजनितकी वात यह है कि प्रथम तो सब अभ्यास करते ही हैं प्रभुताके मार्गमे अभ्यास किसका किया जाना चाहिए? तत्त्वस्वरूपका। तत्त्व स्वरूप है उत्पादव्यय—ध्रौव्ययुक्त सत। यह निरखना है। यह सूत्र बहुत वडा मर्म रख रहा है। इसके मर्मको जाने बिना न भेद विज्ञान होता और न हेय उपादेयका ग्रहण हो सकता, तब फिर आत्माकी दृष्टि न वनेगी, आत्ममग्नता न होगी, मुक्तिका लाभ न मिल सकेगा। इससे निर्णय यह अवश्य कर लेना चाहिए कि प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्यय, ध्रौव्ययुक्त हैं। यदि है कुछ तो नियमसे उसका कोई परिणमन है। और परिणमन है तो पूर्व परिणमनका व्यय है। किसी भी पदार्थमें पूर्वोत्तर पर्याय एक साथ रह नहीं सकती और पूर्व पर्यायका व्यय होता है, उत्तरका उत्पाद होता है, किन्तु सव पर्यायोका आधारभूत जो एक तत्त्व है वह वहीका वहीं है। यही है समस्त पदार्थों का स्वरूप। इस स्वरूपसे ही आप जान सकते हैं कि मेरे आत्माका जो भी परिणमन है वह मुझमे ही होता है। मेरे लिए ही होता है। मेरेसे होता है, मेरेमें होता है। अन्य समस्त पदार्थोंकी भी यही बात है। उन सबका स्वयमे स्वयसे स्वयके लिए, स्वयकी हरिणतिरूप परिणमन होता है। इस तत्त्वका अभ्यास किया, देखो यह जो ज्ञान वनाया है कि समस्त सत् उत्पादव्यय ध्रौव्यसे युक्त हैं। इसमें समस्त पदार्थ आ गये ना, तो समस्त पदार्थोके विषयमे जो यह उपदेश है, अविसम्वादी ज्ञान है। यह तो सामान्य रूपसे हुआ। अब ऐसा ज्ञान करने वालोंने तत्त्वका अभ्यास किया। हम यह नहीं कहते कि इतना ही मात्र कोई ज्ञान करले तो वह सर्वज्ञ बन गया पर यह

भी एक ज्ञान है । इस ज्ञानका अभ्यास किया तो सामान्यरूपसे ये समस्त पदार्थ यो जाने गए, इसमे अभी अस्पष्टता है, स्पष्टरूपसे प्रत्यक्षमे जैसे आना चाहिए पदार्थ यो न कहेंगे, लेकिन इसका अभ्यास बनाये रहें और इससे शिक्षा लेते रहे तो समस्त पदार्थोंके विषय करने वाले स्पष्ट ज्ञानपर जो आवरण पडा हुआ है उस आवरणका विनाश होगा । तो उस आवरणके विनाशकी सहायता लेकर इस अभ्याससे स्पष्टज्ञान की उत्पत्ति हुई ना, अभ्यास व्यर्थ कहाँ रहा ? जिस ज्ञानका अभ्यास किया जा रहा है हम उस ज्ञानको सर्वज्ञ नही कहते किन्तु तत्त्वके स्वरूपके अभ्याससे स्पष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है ।

विशदज्ञानावरणके विश्लेषकी अभ्यास साध्यता—प्रयासके सम्बन्ध मे जो शङ्काकारने कहा था कि अभ्याससे सर्वज्ञके ज्ञानकी उत्पत्ति माननेपर अन्योन्याश्रय दोष होगा सो बात सम्भव नही, क्योंकि हम यह नही कह रहे कि अभ्याससे ही समस्त पदार्थोंका स्पष्ट ज्ञान होता है, किन्तु अभ्यासकी सहायतासे तत्त्व दृष्टि जमती है और तत्त्वदृष्टि जमनेसे स्पष्टज्ञान पर जो आवरण पडा है उसका क्षय होता है । और तब स्पष्ट ज्ञान उत्पन्न हो जाता है । इसमे अन्योन्याश्रयकी क्या बात है ? लौकिक ज्ञानोकी वृद्धिमे अभ्यास और किस्मका चलता है और सर्वज्ञताके लिए अभ्यास और तरहका चलता है । लौकिक ज्ञानोकी वृद्धिके लिए पर पदार्थोंकी अपेक्षा की जाती है अनेक स्थानोका आलम्बन लिया जाता है, किन्तु सर्वज्ञताके विकासके लिये केवल एक सहज अतस्तत्त्वका आलम्बन लिया जाता है, और इस एक स्वरूप सहज कारण समयसारका आलम्बन जब अभ्यस्त हो जाता है तो निर्विकल्पता उत्पन्न होती है । उस समय समस्त आवरण कर्मोंका विनाश होता है । तत्काल ही सर्वज्ञता प्रकट होती है ।

आगमसे ज्ञानविकासका प्रभव माननेमे अन्योन्याश्रय दोषकी असङ्गति—शङ्काकारने तीसरा यह विकल्प किया कि सर्वज्ञका ज्ञान आगमजन्य है क्या ? आगमजन्य माननेपर अनवस्था दोष होता है । वह बात भी असङ्गत है । ये दोष तो उनके लगे जो आगमको अकृतक अपौरुषेय माने, किन्तु आगम तो सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत है । उस आगमका अभ्यास करके उससे उत्पन्न हुआ जो विशिष्ट बोध है उसकी अन्ततामे यथेष्टता बनती है । अन्योन्याश्रय दोष इस कारण न होगा कि जो भी सर्वज्ञ होता है उसने पूर्व सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत आगमसे अभ्यास करके अपनी साधना बनाकर निर्विकल्प बनकर सर्वज्ञता प्राप्त की है तो यह सब बात अनादि सन्तानकी है, अन्योन्याश्रित नही है । जैसे बीज और अकुरका अनादि सतान है, यह अकुर पूर्व बीजसे उत्पन्न हुआ वह बीज पूर्ववृक्षसे उत्पन्न हुआ, वह वृक्ष पूर्व बीजसे उत्पन्न हुआ । इसमे कोई कहने लगे कि यह तो काम यो नही बन सकता कि जब बीज हो तो वृक्ष आये और जब वृक्ष हो तो बीज आये ! अरे, ऐसी शङ्काका क्या अवकाश ? सामने देख लो—यह

अनादि संतानसे इसी प्रकार चला आया है। तो इसी प्रकार आगम और सर्वज्ञ इनकी परम्परा भी अनादिसे चली आयी है।

सर्वज्ञत्व साध्य साधनके सम्बन्धका तर्कप्रमाणसे निश्चय होनेसे अनुमानकी निर्दोषता—अब शङ्काकारने जो चौथा विकल्प किया था कि यदि सर्वज्ञके ज्ञानको अनुमानसे उत्पन्न हुआ मानोगे तो वह यो युक्त नहीं है कि साध्यमें और साधनमे सम्बन्ध सिद्ध नही है। यह विकल्प भी अयुक्त है। कारण यह है कि साध्य और साधनका सम्बन्ध हम प्रत्यक्षसे नही मानते, अनुमानसे नही मानते, किन्तु उसके सम्बन्धको सिद्ध करने वाला तर्क नामका अलग प्रमाण है। जैसे पर्वतमे अग्नि है, धुवाँ होनेसे। तो कोई पूछने लगे कि धुवाँ और अग्निका सम्बन्ध क्या तुम प्रत्यक्षसे जानते हो या अनुमानसे ? अरे, जहाँ जहाँ धुवा होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है, जहाँ अग्नि नही होती वहाँ धुवा नही होता। यह सम्बन्ध हम प्रत्यक्षसे नहीं, अनुमान से नहीं किन्तु तर्कप्रमाणमे जानते हैं। इसी प्रकार सर्वज्ञकी सिद्धिमे जो अनुमान देंगे, हेतु देंगे उसकी सिद्धि तर्कप्रमाणसे करनी चाहिए। कुछ भी पदार्थ सर्वज्ञके अगोचर नही है अथवा कोई भी व्याप्ति प्रमाणके अगोचर नहीं है। ठीक न होगा तो तर्कप्रमाण कहेगा यह गलत है। युक्ति बैठे तो कह देगा कि यह बात यथार्थ है। तो सर्वज्ञकी सिद्धिमें किसी प्रकार बाधा नही आ सकती।

आगमाभ्याससे उत्पन्न अविशद ज्ञानसे कालान्तरमे विशद ज्ञानकी उत्पत्तिकी संभवता—एक बात शङ्काकारने यह कही कि अनुमानज्ञान और आगम ज्ञान अस्पष्ट ज्ञान हैं और अस्पष्ट ज्ञानसे स्पष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। यह बात सही नही है, कारण यह है कि सर्वथा यह नियम नही बनाया जा सकता कि कारणके समान ही कार्य होगा। कुछ सीमामे, कुछ जातिमें तो यह बात कह सकते हैं मगर सर्व दृष्टियोसे यह बात नही कह सकते कि जितने भी कार्य होते हैं वे सब कारण के सर्वथा समान ही होते हैं। यद्यपि यह बात बहुत कुछ अंशोमे कुछ दृष्टियोमें यथार्थ है कि कार्य कारणके समान होगे, लेकिन सर्वप्रकारसे समानता आ जाय कार्यमे यह बात नियमसे सिद्ध नहीं है। जैसे बीजसे अकुरकी उत्पत्ति होती है। अकुरसे बीज आदिककी उत्पत्ति होती है—कहाँ तो पेडका एक ऐसा आकार और उससे उत्पन्न हो गया बीज, हाँ कुछ दृष्टियोमें कुछ जातियोमे समानताओंकी सदृशता कह लो मगर सर्वप्रकारसे सदृशता नही बनी। अनुमान, आगमज्ञानसे भी ज्ञान किया और सर्वज्ञज्ञान होनेपर भी ज्ञान हुआ पर वहाँ पूर्ण सदृशता आप लगाना चाहे कि यदि आगमज्ञान अनुमानज्ञान अस्पष्ट ज्ञान हैं तो उनकी भावना, उनकी उपासना कर करके जो जो भी ज्ञान बनेगा वह अस्पष्ट ही बनेगा, यह नियम सदृशतामे नही किया जा सकता। सामग्रीके भेदसे सब जगह कार्योमे भेद पाया जाता है और फिर देखिये—आगम आदिक का ज्ञान बनाया, शिक्षा लेते ही है, शास्त्रोको जाननेका अभ्यास बनाते ही हैं तो आगम

ज्ञानसे और अभ्यासका प्रतिबंध करने वाले कर्मके विनाशमे, उपासनाके प्रतापसे विकल्पना मिटकर निर्विकल्प होकर जब अशेषज्ञता प्रकट होती है तो विशदता उत्पन्न हो जाती है, तो मुक्तिका जो साधन है, ससारके सकटोसे मुक्त होनेका जो उपाय है वह उपाय तो यही है कि प्रथम तो आगमसे अनुमानसे अविशद ज्ञान बनाया जाता है, फिर तत्त्वस्वरूपका अभ्यास किया जाता है, और कोई यह ही डर रखे कि अभ्यास मे जो हम ज्ञान सीख रहे है यह ज्ञान तो हमारा अस्पष्ट है, मलिन है तो हम इससे निर्मल और स्पष्ट ज्ञानकी क्या आशा करें, और, डरसे इस भावना उपासनाको जोड दे तब फिर यह बनाओ कि आत्म विकासका और क्या साधन है ? यही हमारा अविशदज्ञान कभी विशद हो जाता है।

विशदज्ञानकी उत्पत्तिमे तत्त्वभावनाका सहयोग—शङ्काकारने यह भी कहा था कि यदि सर्वज्ञवादी यह कहे कि बारबार भावना करनेसे उस स्पष्टता आ जाती है तो बारबार भावना करनेसे तो कामी शोकवालक जीवोके चिन्तन किए हुए पदार्थमे भी स्पष्टता आ जाती है। तो यो सर्वज्ञ भी विह्वल बन जायगा। उसका ज्ञान व्याकुल हो जायगा। कभी स्पष्टता आयी कभी खतम हुई, कभी विह्वलता हुई, फिर कभी उस स्पष्ट ज्ञानके लिये ललचाने लगा ये सब प्रसग हो जायेंगे, यह कहना भी शकाकारका अयुक्त है। इस दृष्टान्तमे भी या किसी भी दृष्टान्तमे भी बात एक देश देखी जाती है। भावनाके बलसे ज्ञान विशद हो जाता है इतने मात्रमे ज्ञानके दृष्टान्तकी बात सोचियेगा। जितने दृष्टान्त दिये जाते हैं उनके जितने धर्म हैं वे सारे धर्मप्रमेयमे, साध्यमे, धर्मोंमे पटक दिये जायें यह बात तो युक्त नही है, अन्यथा न कोई किसीसे दृष्टान्त मिलेगा न कोई अनुमान बन सकेगा। जैसे कोई कहे —देखो मेरी चादर कितनी बढिया सफेद है, जैसे कि बगुला! तो कोई कहने लगे कि बगुला तो टेढा-मेढा होता है, उसके पैर-पङ्ख आदि होते है और तुम दे रहे हो बुगलेका दृष्टान्त, यह तो ठीक नही बैठता। तो भाई किस दृष्टिसे, कितनी बातके लिए दृष्टान्त दिया है उतनी ही बात तो पकडो! नही तो नह अधेकी टेढी खीर बन जायेगी। सर्वज्ञके ज्ञानको हम क्रमसे समस्त पदार्थोंको जानने वाला नही मानते, जो उस पक्षमे बताये गए तुम्हारे दोष आ सकें। किन्तु होता क्या है कि जब समस्त आवरणोका क्षय हो जाता है तो उसका ज्ञान एकदम एक साथ पूर्ण स्पष्ट प्रकट होता है और वहाँ इन्द्रियके क्रमका अडङ्गा और व्यवधान भी नही रहता। प्रभुका वह ज्ञान इन्द्रियज है ही नही। जैसे सूर्यके नीचे बादल आया हो तो बादलका क्षय होते ही सूर्यका एकदम प्रकाश हो जाता है। इसी प्रकार सकल ज्ञानावरणके क्षय होनेपर प्रभुके ऐसा सकल ज्ञान उत्पन्न होता है कि समस्त विश्व एक साथ स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। तो ज्ञानस्वभावकी प्रतीति बनावें हम अपने अन्तरमे दृष्टि देकर तो यह बात समझमे आयगी कि होते हैं महापुरुष सर्वज्ञ जो समस्त विश्वके जाननहार होते है।

अखिलार्थज्ञताके सम्बन्धमे एक आशङ्का—सर्वज्ञत्वके निराकरणमे

असर्वज्ञवादी यह प्रश्न कर रहा है कि क्या सर्वज्ञपनेका यह अर्थ लगाते हो कि ससार मे जितने भी पदार्थ हैं समस्त पदार्थोंका ग्रहण कर लेना ? अर्थात् क्या समस्त पदार्थो के जाननेके मायने सर्वज्ञता है अथवा कुछ मुख्य पदार्थोंको जाननेके मायने सर्वज्ञता है. यदि समस्त पदार्थोंके जाननेको ही सर्वज्ञपना कहते हो तो यह बतलावो कि उन समस्त पदार्थोंका ग्रहण क्रमसे होता है या एक साथ होता है ? यदि सर्वज्ञक्रमसे समस्त पदार्थोंके जानने वाले हैं, यह माना जाय तो भूत भविष्य वर्तमानके जो पदार्थ हैं उनकी कभी समाप्ति ही न होगी। क्रम क्रमसे जानें तो ये जानते ही जायेंगे वहाँ गुजरते जायेंगे, आगे बढते जायेंगे तो समस्त पदार्थोंके जाननेका सही गुण भी सम्भव नही है। यदि कहो कि समस्त पदार्थोंका ज्ञान सर्वज्ञदेव एक साथ करते हैं। तो यह बात यो ठीक नही बैठती कि परस्पर जो विरुद्ध पदार्थ हैं -कोई गरम है कोई ठण्डा तो ऐसे परस्पर विरुद्ध पदार्थ एक ज्ञानमे कैसे प्रतिभासित होगे ? और अगर ठण्डा-गरम दोनो ज्ञान एक साथ आ गए तो फिर उनमें यह निर्णय न बन सकेगा कि यह ठडा है यह गरम, इस कारण सर्वज्ञपना सम्भव नही है।

युगपत् अखिल अर्थका जाननेमे विरोधका अभाव—अब समाधान सुनो -शङ्काकारने यह कहा कि क्रमसे यदि समस्त अर्थोंका ग्रहण माना जाय तो जो अतीत आदिक पदार्थ हैं भूत भविष्य, एक तो उनका स्वरूप ही सम्भव नही, क्योंकि क्रमसे जाननेपर न पदार्थोंका अन्त आयगा और न पूरी जानकारी बनेगी। यह बात इसलिए अयुक्त है कि हमने क्रमसे सर्वज्ञके द्वारा जानना माना ही नही। प्रभु समस्त पदार्थोंको एक साथ जानते है क्रमसे नही जानते, और एक साथ जाननेमे जो दोष दिया था कि परस्पर जो विरोधी हैं, ठण्डे गरम हैं उन पदार्थोंका ज्ञानमे प्रतिभास कैसे हो सकता है। तो यह बात तुम्हारी असगत है। क्यो नही हो सकता प्रतिभास क्या पदार्थोंका अभाव है इस कारण न हो सकेगा ? या ज्ञानमे सामर्थ्य नही है कि वह परस्पर विरुद्ध समस्त पदार्थोंका प्रतिभास कर सके ? यह तो कह नही सकते कि परस्पर विरुद्ध शीत उष्ण पदार्थ है नही। वे तो सब एक साथ मौजूद हैं, और यह कहना भी ठीक नही कि ज्ञानकी सामर्थ्य नही है ऐसी कि परस्पर विरुद्ध शीत उष्ण पदार्थोंको एक साथ जान जाय, क्योंकि यहा भी देख लो ये अन्धकार और प्रकाश परस्पर विरोधी हैं, पर दोनो एक साथ नजर आते हैं। दृष्टि पसारकर यहीं निरखलो जहाँ अधेरा ज्ञात हो रहा वहाँ अधेरा है और जितनी जगहमे उजेला है वहा उजेला ज्ञात हो रहा है। तो परस्पर विरोधी पदार्थ ज्ञानमे एक साथ प्रतिभासमे आयें इसमें कोई विरोध नही है। साथ ही यह दोष आयगा यदि ज्ञानमे परस्पर विरोधी पदार्थों का प्रतिभास न माना जाय तो फिर कोई अनुमान सिद्ध नही हो सकता, क्योंकि अनुमान सिद्ध करोगे तो उसमे साध्य-साधन तो बताओगे ही कि हम यह सिद्ध करना चाहते हैं और इस हेतुसे सिद्ध करना चाहते हैं। तो साध्य अलग चीज है और साधन अलग चीज है। साध्यका ही नाम तो साधन नही और साधनका ही नाम तो साध्य

नही। तो आखिर ये दोनो भी तो परस्पर विरोधी हो गए। और साध्य साधन दोनो एक साथ ज्ञानमे न आयें तो व्याप्ति क्या बनाओगे ? जहाँ—जहाँ साधन होता है वहाँ वहाँ साध्य है, जहाँ साध्य नही है वहाँ साधन नही है। यह व्याप्ति तब बनेगी जब दोनोका एक साथ प्रतिभास हो। और तुम परस्पर विरोधी पदार्थोंका एक ज्ञानमे एक साथ प्रतिभास मानते हो नही, तो व्याप्ति बन ही नही सकती। जब व्याप्ति न बनी तो अनुमान क्या बनेगा ?

परस्पर विरुद्ध पदार्थोंके ज्ञानमे निर्बाधता व प्रतिनियतार्थग्राहित्वमे अविरोध—शङ्काकारने यह कहा था कि ज्ञानमे एक साथ परस्पर विरोधी पदार्थ जाननेमे आ जायें तो उनका स्वरूप न रहेगा कि यह ठढा है और यह गरम है। यह बात भी ठीक नही है क्योकि एक ज्ञानमे परस्पर विरोधी पदार्थोंका प्रतिभास होनेपर प्रतिनियत अर्थका बोध न मिट सकेगा। यहाँ भी तो अपन लोग अधेरा उजेला दोनो एक साथ जान रहे हैं। और उस ही एक ज्ञानमे यह निर्णय भी बना है कि यह अधेरा है और यह यह उजेला है। तो समस्त पदार्थोंके जाननेका नाम तो सर्वज्ञता और एक साथ ही सबका ग्रहण होता इसका कारण यह है कि ज्ञानमे तो जाननेका स्वभाव पडा है और जाननेका स्वभाव होनेपर फिर रोकने वाली कोई चीज है नही। आवरण रहे नही, तो वह सबको जानेगा। जैसे एक छाता ऐसा आता था कि बटन दाब देनेसे ही खुल जाता था। तो उसमे खुलनेकी प्रकृति पडी है, क्योकि उसमे ऐसी रचना की गई है। केवल उसे एक बटनसे रोक दिया गया इस कारणसे वह छाता बद पडा है। तो खुलनेका उसमे स्वभाव पडा है। यदि बटनका उसमे आवरण न रहे तो वह तो तुरन्त खुलेगा। ऐसे ही कोई किवाड भी इस तरहके होते हैं कि वे लगे ही रहते हैं, उनपर एक हाथ भरका स्प्रिगदार पेच ठुका होता है जिससे वह किवाड सदा लगा रहता है। जब तक कोई उसे पकड रहे तब तक ही वह खुला रहता है नही तो वह झट बन्द हो जाता है। उसमे बन्द रहनेका स्वभाव पडा है क्योकि उसमे उस तरहकी रचना है। इसी तरह ज्ञानमे सबको जाननेका स्वभाव पडा है, इसपर ये राग-द्वेष विषय कषाय आदिकके आवरण न रहे तो यह ज्ञान समस्त अर्थोंको जान जायगा। यदि ज्ञान कुछको ही जाने तो उसमे प्रश्न किया जा सकता है कि इतना तक ही क्यो जाना ? सबको जाननेमे प्रश्न नही उठता, किन्तु थोडा जाननेमें प्रश्न उठता कि प्रभु थोडा क्यो जाने ?

सर्वज्ञकी प्रतिक्षण जानन परिणति—अब शङ्काकार कहता है कि चलो मान लिया कि प्रभु सबके जानकार है, लेकिन यह तो बतलावो कि प्रभुने अब एक ही समयमे समस्त पदार्थोंको जान लिया सो दूसरे क्षणमे तो कुछ जाननेको नही रहा, तो फिर वे दूसरे क्षणमे अजानकार बन गए ? उत्तर—यह बात तुम्हारी बिल्कुल असम्बद्ध है कि एक क्षणमे ही समस्त पदार्थोंको ग्रहण कर लेनेसे आगे अजानकार न बन

जायेंगे। अज्ञानी तो तब बने जब दूसरे क्षणमे न तो पदार्थ रहे और न ज्ञान रहे। पदार्थ भी सदा रहेंगे और ज्ञान भी सदा रहेगा, फिर अज्ञ कहा रहेगा ? जानना रहेगा सदा। दोनों ही अनन्त हैं। न पदार्थका कभी अन्त आयगा और न ज्ञानका। जो जाना है वह आगे भी जानते रहेंगे। जैसे कोई बिजली ११ मिनट तक जल तो क्या कोई वहा शङ्का कर सकता है कि इस बिजलीने पहिले ही सेकेण्डमे सबको प्रकाशित कर दिया अब उसे कुछ भी प्रकाशित करनेको नही रहा, तो अब तो बिजली बेकार हो गयी ? अरे प्रकाश न रहेगा यह बात तो तब सम्भव है जब यहाँ की सब चीजे उठाकर बाहर फेंक दी जाय या बिजली बुझा दी जाय। पर चीजें भी सब रखी हैं जायेगी कहा, और बिजली भी जल रही है। तो एक सेकेण्डमें प्रकाश किया आगे भी प्रकाश बना रहता है, इसी प्रकार एक क्षणमे जाना सो ठीक है, पदार्थ भी रहेगा ज्ञान भी चलेगा, सो सदाकाल जानते रहेंगे।

सर्वज्ञके ज्ञानमे गृहीतग्राहित्वकी आशङ्का —इस प्रसगमें शङ्काकार एक प्रमाणके स्वरूपसे सम्बन्ध रखने वाली शङ्का कर रहा है कि देखो प्रमाणका स्वरूप तुमने बताया है —जो स्व और अपूर्व अर्थका निर्णय कराये उसका ज्ञान कराये उस का नाम प्रमाण है अर्थात् ज्ञान अपने स्वरूपको जानता है और पर पदार्थोंको जानता है सो भी अपूर्व पर पदार्थोंको, जिसका कि ज्ञान न बनाया हो, ज्ञानमे भी जिसमे कुछ विशेषताको लेकर ज्ञान बन रहा हो ऐसे पदार्थका जो ग्रहण करे उसे प्रमाण कहते हैं, यह अपूर्व शब्द इसलिए डाला था कि कही गृहीतग्राही ज्ञान पदार्थ न मान लिया जाय धारावाही ज्ञानको प्रमाण न कबूल किया जाय। अर्थात् जैसे यह चौकी है और १० मिनट तक बराबर कहते रहे कि यह चौकी है यह चौकी है, जो जाना है बस उसे ही जानते रहें तो आगेके ज्ञान कोई प्रमाणभूत नही हैं, क्योंकि गृहीतको ग्रहण किया। तो गृहीतग्राही प्रमाण बन जाय इसलिए अपूर्व शब्द डाला था, लेकिन सर्वज्ञके ज्ञानमे गृहीतका दोष आता है। कैसे ? सर्वज्ञने सारा विश्व जान लिया फिर दूसरे समयमे वही जानेगा वही जानेगा, नया क्या जानेगा ? जब सारा लोक जान लिया गया और उसीको बराबर जानेगा, तो गृहीतग्राही हो गया। गृहीतग्राही ज्ञान प्रमाण नही माना गया। तो सर्वज्ञका ज्ञान उन्मत्तो की तरहका हो गया। जैसे कोई १० मिनट तक रटे कि चौकी है, चौकी है तो उसे तो लोग पागल कहेंगे, यो ही सर्वज्ञ भी जब सारे लोक को पहिले क्षणमे जान लिया और उसीको जानते रहे तो प्रभु भी उन्मत्त हो गए, प्रभु क्या रहे ?

सर्वज्ञके ज्ञानमे गृहीतग्राहित्व दोषका निराकरण —प्रभुज्ञानके गृहीत-ग्राहित्वकी आशङ्कापर समाधान करते हैं अब कि सूक्ष्मतासे विचार करो, भगवान प्रतिसमय जानते रहते हैं, गृहीतग्राहीपनेका वहाँ दोष नही है। वह किस तरह कि भविष्यमें होने वाले पदार्थोंको, परिणमनोको भविष्यरूपसे जाना था, उत्पत्स्यमानरू

से उन परिणमनोको, पदार्थोंको जाना था, वर्तमानरूपसे तो न जाना था, उत्पन्न हो चुके इस ढङ्गसे तो न जाना था और अब उत्तरकालमे कुछ समय गुजरनेपर वही पदार्थ वर्तमानरूपसे जाना गया, न अतीतरूपसे न भविष्यरूपसे और समय गुजरनेके बाद वही भूतरूपसे जाना गया। तो उत्पत्स्यमानरूपसे आकर उत्पन्नरूपमे पदार्थ जाना जाता है तो वह अपूर्व अर्थ है। जिस समय जिस धर्मसे सहित पदार्थ जाना जाता है उस समय उस ज्ञानमे उस धर्मसे सहित ही पदार्थ प्रतिभासमे आया करता है अन्य प्रकार नही। अगर अन्य प्रकारसे प्रतिभास हो तो उसका नाम विपर्ययज्ञान है। भविष्यमे होने वाले पदार्थको वर्तमानरूपसे जानना यह तो मिथ्याज्ञान है। तो सर्वज्ञके ज्ञानमे गृहीतग्राहीपनेका दोष नही आता। तो आप पूछ सकते कि अगर किसी पागलने दसो बार यह चौकी है यह चौकी है ऐसा कहा तो उसे अप्रमाण क्यो कहते? इसमे फर्क है। उसके ज्ञानमे कोई नई बात नही आती। छद्मस्थके ज्ञानमे किसी बात को लगातार बार बार वही वही कहनेसे कोई नई बात नही आती है। इसमे भूत, भविष्य वर्तमानकी इतनी सूक्ष्मदृष्टि नही है कि वह तो ठीक इतनेको ही जानता है। यदि कदाचित् उसमे कोई नई बात जाने, तो चौकी है चौकी है यो दसो बार भी जाने तो भी गृहीतग्राही नही, क्योकि हर बारमे कोई उसने नया तत्त्व जान लिया। सर्वज्ञान सर्वथा गृहीतग्राही नही है। अत सर्वज्ञका ज्ञान प्रमाणभूत है।

रागादिकके ज्ञानसे रागादिमत्ताके भावकी आशङ्का—प्रश्न जैसे ससारी लोगोमे छद्मस्थ जीवोमे अथवा ससारी अल्पज्ञोमे रागद्वेषादि बसे हुए हैं तो उन्हे भी तो वे ज्ञानमे लेते होगे, तब तो फिर वह सर्वज्ञ भी रागी द्वेषी विकारी हो गया। जैसे हमारे ज्ञानमे चौकी आ गयी तो यह ज्ञान चौकीके आकाररूप हुआ, ऐसे ही वे रागद्वेष जब सर्वज्ञके ज्ञानमे आ गए तो वह सर्वज्ञ भी रागद्वेषरूप हो गया। किसी भी तरह समझो। कोई सिद्धान्त आकाररूप मानते, तो कोई विकल्परूपमे आकारग्रहण मानते, जब दूसरेमे रहनेवाले रागादिक भावोका साक्षात्कार कर लिया तो फिर प्रभु रागादिक वाला हो गया। यदि वह रागादिक वाला न बने तो समस्त अर्थोके साक्षात्कार करनेका विरोध आयगा। यह भी नही बनता कि विकाररूप परिणमनका तो ज्ञान छोड दे याने सर्वज्ञ न जाने, शुद्ध शुद्ध जाने, यह भी नही है क्योकि ऐसा जाननेपर सर्वज्ञता क्या रही?

रागादिकके ज्ञानमात्रसे रागादिमत्ताके भावका निषेध—उत्तर प्रत्येक आत्माओमे बसने वाले रागादिक विकारोंका साक्षात्कार कर लेनेसे जान लेनेसे प्रभु रागादिमान् नही बनते, क्योकि रागादिमान् बननेका कारण तो रागादिकरूप परिणमना है। उसका सम्वेदन करने मात्रमे प्रभु रागादिक वाले नही बन जाते नही तो यहाँ भी बडी आफत आ जायगी। किसीका अगर थर्मामीटरसे बुखार देख लिया कि १०३ डिग्री बुखार है तो उस बुखारकी जानकारी करने वालेमे भी बुखार आ जाना

चाहिए, पर बुखार जान लेनेसे कहीं उसमे बुखार तो नही आ जाता। अगर जान लेनेसे बात बीतने लगे तब तो फिर जिस त्यागीके कानोमे ये शब्द आ गए कि शराब मे यह रस है, उस त्यागीका तो त्यागीपन खतम हो जाना चाहिए क्योंकि उसने उस शराबकी बातको सुनकर ज्ञान किया। अथवा किसीने साग भाजी काटनेके लिए चाकू या हसिया मगाया तो उस हसियाका ज्ञान हो जानेसे उसकी जीभ वगैरह भी कट जाना चाहिए। पर भाई ऐसा नहीं है। ऐसे ही समझो कि रागादिकका ज्ञान अगर प्रभुने कर लिया तो वे रागादिक रूप न बन जायेंगे। रागादिक रूप बननेका कारण रागादिक रूपमे परिणमना है। रागादिकका परिणमन नहीं बनता। यदि यह कहो कि अगर दूसरे पुरुषने कह दिया कि मदिरामे ऐसा रस होता है और वहीं से सुन लिया तो यह जो ज्ञान किया कहो रसना इन्द्रियमे ज्ञान नहीं किया। कर्ण इन्द्रियसे ज्ञान किया है और स्वाद आता है रसना इन्द्रियमे। तो कही सुन लेनेसे उस मे वह दोप नही आ गया। ऐसे ही सर्वज्ञका ज्ञान इन्द्रिय और मनसे होता ही नहीं है, और ये सुख, ये रागादिक इन्द्रिय और मनसे सम्बन्ध रखते हैं इस कारण किसी पुरुषका रागादिक विकार जान लेने मात्रसे प्रभु रागादिक वालेने हो जायेंगे। रागादिक तो उन जीवोमे उत्पन्न होते हैं जो इन्द्रियके विषयोंके सेवनकी इच्छा रखते है और इन्द्रियोंमें मद चढता है जब उनमे रागादिक होते हैं, पर भगवानमे मोह भी नही, इच्छा भी नही, इन्द्रिय भी नही, तो उनमे रागादिक भावोकी तो आशङ्का रच भी नही हो सकती।

ज्ञानका अन्यमे अकर्तृत्व व अभोक्तृत्व—प्रभु सर्वज्ञ हैं, समस्त पदार्थों को एक साथ जानते हैं और फिर भी अविकार रहते हैं न वे कर्ता हैं और न भोक्ता हैं। जैसे अपनी आँखें दूरकी चीज देखती हैं पर किसीका कुछ न ये आखें करती हैं और न भोगती हैं। आँखोंका काम तो देख लेना मात्र है, बस देख लिया। यदि ये आँखें कुछ करने लगें तो फिर क्या है। सामने यदि कोई खम्भा खडा है, आपको सूर्यकी धूप नही मिल रही है तो आप आँखें खूब फैला दें तो खम्भा हट जाना चाहिए, अथवा बरसातके दिनोमे जब रसोई बनाती हैं तो लडकिया गीली होनेसे चूल्हा नही जलता, तो वे महिलायें व्यर्थ ही मुखसे फूकनेका व पखा आदि चलानेका परिश्रम करती और वह आग तो आँखोके देखनेसे ही जल जाना चाहिए, क्योकि तुम ने आँखोको कर्ता मान लिया। पर ऐसा नही होता है। और, ये आँखें भोगने वाली भी नही हैं। अगर आख भोगे तो आगको देखने पर आँखें ही खतम हो जाना चाहिए जल जाना चाहिए पर ऐसा नही है। तो जैसे आँखें पर पदार्थको न करती हैं और न भोगती हैं इसी प्रकारसे विज्ञान न किसी परको करता है और न किसी परको भोगता है। मात्र जाननहार है। प्रभु समस्त लोकको जानकर भी केवल ज्ञाता रहता है। उनमें रागद्वेष आकुलता आदिक किसी भी प्रकारका विकार नही होता।

प्रधानभूत कतिपय पदार्थके परिज्ञानसे सर्वज्ञत्वका अनभ्युपगम—

अपने ही ज्ञानके मापसे समस्त प्राणियोके ज्ञानका माप करने वाला पुरुष सर्वज्ञकी कैसे श्रद्धा कर सकता है। उसके विकल्पमे आया कि शायद ये सर्वज्ञवादी लोग ससारके कुछ प्रधानभूत पदार्थोके जान लेनेके कारण सर्वज्ञ मानते होगे, सो यह भी विकल्प उनके सामने रख रहा है कि क्या इस कारणसे तुम किसीको सर्वज्ञ मानते हो कि कुछ प्रधानभूत पदार्थोको वह ग्रहण कर लेता है। जैसे कि सम्यक्त्वके लक्षणमे बताया है कि मोक्ष मार्गके प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्वोका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। समस्त पदार्थ न जाननेमे आयें तो न आयें, उनकी श्रद्धासे क्या करना, लेकिन जो प्रयोजनभूत तत्त्व है उन तत्वोकी श्रद्धा होनेसे सम्यक्त्व होता है। जैसे यहा कहा है इसी तरहमे यह भी कहने होगे कि ससारके समस्त पदार्थोको जान लेनेकी आवश्यकता नही है। सर्वज्ञ होनेके कारण प्रधानभूत कुछ पदार्थोके जान लेनेसे सर्वज्ञ हो जाता होगा। यदि ऐसा विकल्प करे तो शङ्काकार कह रहा है कि यह भी बात बन नही सकती, क्योकि पहिले वह समस्त पदार्थोका ज्ञान करे, फिर उसमेसे छांट करे कि ये तो हमारे प्रयोजनके पदार्थ है और ये हमारे गैर प्रयोजनके हैं तब तो प्रयोजनभूत पदार्थोकी श्रद्धा कर सकेगा। यह पदार्थ प्रधान है ऐसा निश्चय समस्त पदार्थोके ज्ञान होनेपर ही बन सकता है अन्य प्रकारसे नही। तो यह बात भी ठीक नही बैठती। जब सबको जान नही सकता तो सबमे ये प्रधान पदार्थ हैं ऐसी छटनी भी नही कर सकते। इस आशङ्काका समाधान तो इतना है कि कुछ पदार्थोका ज्ञान करके सर्वज्ञता बनती है ऐसा मानता कौन है? सर्वज्ञ लोकालोकके समस्त पदार्थोको एक साथ एक ही समयमे स्पष्ट जानता है और इसकी सिद्धि बहुत विस्तार पूर्वककी है और की जा रही है। प्रभु सर्वज्ञ है तो त्रिकाल त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोके जान लेनेसे सर्वज्ञ है और यह बात सुगम पद्धतिमे आ सकती है कि जब आत्माका ज्ञान स्वभाव है और ज्ञानका काम जानन है और उस जाननमे यह कैद नही है कि सामनेकी ही बात जाने, इतनी ही बात जाने। उसका तो जाननेका काम है। यह ज्ञान बाहरमे जानकर नही जानता किन्तु अपने ही प्रदेश महलमे विराजा हुआ वह ज्ञान महाराज सारी व्यवस्था बनाता रहता है, जानता रहता है। तो जब ज्ञानमे जाननेका स्वभाव है और उस ज्ञानपर आवरण कोई रहे नही तो इसका सीधा अर्थ है कि जब निरावरण ज्ञान होता है तो यह ज्ञान समस्त विश्वका जाननहार हो जाता है।

सर्वज्ञ द्वारा अतीत अनागत पदार्थोकी अज्ञेयताकी आशङ्का—अब शङ्काकार एक शङ्का और कर रहा है कि यह समझमे नही आता कि कोई पुरुष जिसे आपने सर्वज्ञ मान लिया वह भूत और भविष्यकी चीजोको जाने, यह सम्भव ही नही है। क्यो सम्भव नही कि उसका स्वरूप ही सम्भव नही। जो गुजर गया, वह अब है क्या कुछ? असत् हो गया। जो होगा कभी वह है क्या अभी? वह तो असत् है। जब अतीतके पदार्थ और भविष्यके पदार्थ असत् हैं, हैं ही नही तो असत्को अगर ग्रहण करना ही मान लिया जाय तो जिसकी आंखोमे एक तिमिर रोग हो जाता, कि

ोज नही है, पर दिखती है अथवा चीज छोटी है पर बडी दिखती है, तो उसके ज्ञान को भी प्रमाण मानो, क्योंकि अब तो यह माना जाने लगा कि जो नहीं है उसे भी जान लिया जाता है। जैसे तुम्हारा सर्वज्ञ अतीतकी बात जान लेता है और अतीत कुछ है नही ? कोई कहे कि हमारे दादा थे ? थे तो थे पर वे अब हैं क्या ? तो जो चीज है नहीं उसका ग्रहण सर्वज्ञ कैसे कर लेगा ? स्वरूप ही नहीं है। और, यदि असत्को ग्रहण करने लगे, जो नहीं है उसकी भी जानकारी बनने लगे तो फिर अटपट बहुतोका ज्ञान कर लें। यदि कहो कि नहीं, उस अतीत और भविष्यकी चीजको सत्व रूपसे प्रभु जानते हैं, जो गुजर गया उसे भी सत्रूपसे जानते हैं और जो होगा उसे भी सत्रूपसे जानते हैं, तो इसके मायने हैं कि अतीत और भविष्य कुछ नही रहा, सब खतम हो गया, जब गुजरे और अनागतको सत्रूपसे जाना तो इसका अर्थ यही है कि वर्तमान बन गया। और, अब है तो अतीतकी बात और जान रहे हैं वर्तमानरूप से तो वह मिथ्याज्ञान है। यदि ऐसा है तो सर्वज्ञ तो महा झूठा कहलाया।

सर्वज्ञद्वारा अतीत अनागत वर्तमान समस्तकालवर्ती पदार्थोंकी ज्ञेयता—अब अतीतके स्वरूपत्वकी आशङ्काका समाधान हो रहा है। यह कहना तुम्हारा युक्त नही है कि अतीत भविष्यका ग्रहण कैसे हो ? क्योकि उनका स्वरूप ही सम्भव नहीं। यह बात इसलिए गलत है कि अतीतकी चीज वर्तमान सम्बन्धसे तो असत् है, पर अतीतकालके सम्बन्धरूपसे तो अभाव नही है, वह था तो। जो चीज गुजर गई उसमे था तो लगा ही है, है न लगा तो क्या हुआ, था रूपसे 'है" तो लगा और जो भविष्य की चीज है वह भविष्यसे सम्बन्धित सत् हो गया अर्थात् होगा। जैसे वर्तमान कालके सम्बन्धमे वर्तमानको वर्तमान सत् कहते हैं इसी प्रकार अतीतकालमें हुए परिणमनमे अतीतकालके सम्बन्धरूपसे ही सत् है, हम अतीतकालकी बातको वर्तमानकालके सम्बन्ध रूपसे सत् नही कह रहे हैं क्योंकि वर्तमानकाल विषयक सत् और अतीतकाल विषयक सत् इन दोनोमें परस्पर भेद है, यह नही कहा जा सकता कि अतीतकी बात व भविष्य में होने वाली बात यदि वर्तमानरूपसे सत् है स्वरूप तो बन गया। और, दूर क्यो जाते हो, ? अपनेपर जो बातें गुजरी हैं १०-२० साल पहिले वे सब ज्ञानमे आ रही हैं कि नहीं ? तो उसका क्या स्वरूप बना ? दादी, नानी हो गई और आज नहीं हैं तो उनका भी कभी कभी ख्याल आता है। लोग ऐसा कहते भी हैं कि जब कोई सकट आता है तब नानीका ख्याल आता है तब नानीका ख्याल आता है, तो वह सब दादी नानी आदिक सबका स्वरूप ज्ञानमे आया कि नही। अतीत भी अतीतरूपसे सत् है और वह इस समय ज्ञानमें जो आ रहा है वह ज्ञानमे तो वर्तमान सत् है। उसका जो जानन हो रहा है वह जानन इस आत्माका परिणमन है और वह आत्म परिणमन रूपसे वर्तमान सत् हैं, पर उसमे जो गुजरी बात ज्ञानमे आयी वह अतीत रूपसे ही सत् है यदि कहो कि अतीतकालकी बात वर्तमानकालसे सम्बन्धित होकर सत् नही है अतएव कुछ नही है तो हम कहेंगे कि वर्तमानकालकी बात अतीतकालसे

सम्बन्धित सत् नहीं है, वर्तमानकालकी भी बात कुछ नहीं है । यह भी बात नहीं कि अगर अतीतकालकी बातको हमने जान लिया तो वह वर्तमान बन गई, जानन वर्तमान है, विषयभूत पदार्थ वर्तमान नहीं है, वह तो अपने ही कालमें नियत सत्त्वरूपसे ही है ।

स्वभावश्रद्धासे आत्मविकासके अवबोधक सम्बन्ध — इस स्थलका प्रयोजन यहाँ इतना है कि कल्याणके अर्थ तो ये सब सिद्धान्त बनाये गए—घर छोड़कर जङ्गलमें निवास करना, ये सब एक आत्म शान्तिके लिए ही रचे गए और वहाँ भी जाकर यथार्थ बोध प्राप्त न हुआ तो मनुष्यभवका लाभ क्या मिला ? इस कारण आत्महितकी वाञ्छा तो है एक ममताभावसे तत्त्वकी खोज करनी चाहिए कि वास्तविकता क्या है । जो जिस मजहबमें उत्पन्न हुआ उस ही के रङ्गमें रङ्गकर निरीक्षण करें यह प्रकृति न बनना चाहिए, किन्तु वास्तविकता क्या है, आत्महित किसमें है, इस खोज सहित तत्त्वस्वरूपको जानना चाहिए । सर्वज्ञ हम मानें चाहे न मानें, उससे आत्महितमें अन्तर नहीं पड़ता, लेकिन सर्वज्ञका निषेधकर ऐसी दृष्टि रखे तो उससे आत्महितमें अन्तर इतना आता है कि अपने आत्मस्वभावका परिचय नहीं बनता है, और आत्मस्वभावके परिचय बिना आत्महित सम्भव नहीं है । जो पुरुष आत्मस्वभाव को परखेगा, आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका कार्य जानन है, जाननेमें क्या आता है ? जो है सो आता है । बस इस हीका अर्थ है कि आत्मामें सकल सत्‌को जाननेका स्वभाव पड़ा है । और, स्वभाव पड़ा है यह मानते रहें और यह श्रद्धा न करें कि कोई पुरुष ऐसा भी होता है कि जिसके यह स्वभाव पूर्ण विकसित होता है अर्थात् समस्त पदार्थोंको जानता है । यदि यह श्रद्धा न बनी तो स्वभावकी परख भी क्या हुई ? पानीका स्वभाव ठंडा है जैसा कि लोकमें कहा करते हैं और किसीको गरम गरम ही पानी मिलता रहे और श्रद्धामें वह यह बात रखे कि जल कोई ठंडा रहा नहीं करता तो फिर उसका स्वभाव माननेका अर्थ क्या रहा ? तो जो आत्मस्वभावसे अपरिचित है उसका यह श्रद्धान होगा ही कि कोई निरावरण निर्मल ज्ञानी पुरुष समस्त सत्‌को जाने ।

अतीत और अनागत पदार्थों के जाननेका स्वभाव — शङ्काकारकी ओरसे फिर प्रश्न होता है कि जो अतीतकी बात है, गुजरी बात है वह वर्तमान ज्ञानके कालमें तो है ही नहीं तो उसका ज्ञान कैसे हो जायगा, और यदि सन्निधान मानते हो कि अतीत की चीज भी निकट है तो वह वर्तमान बन जायगा । जैसे कि ये सभी वर्तमान पदार्थ निकट हैं ना, तो वर्तमान हैं इसी प्रकार गुजरी बात यदि निकट है तो उनका ज्ञान नहीं हो सकता । उत्तर देते हैं कि यह नियम नहीं बनाया जा सकता कि जो सन्निधानमें हो उस हीका ज्ञान हो । जब कोई अनुमानज्ञान बनाना है और उसमें साध्य-साधनकी व्याप्ति करता है, जहाँ जहाँ धुवां होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है ।

तो लो, इस ज्ञानमे कितनी जगहके धुआ और आग जान लिये ? क्या इस ही नगरके या इस ही देश के ? अरे जहाँ जहाँ भी सम्भव है सारे धुवाँ जान लिये । जाना सामान्यरूपसे । उनको स्पष्ट आकाररूपसे ग्रहण नही किया कि यह धुवाँ इस आकारमे फैला हुआ है, वहाँका धुवा इस गहरे रङ्गमे है किन्तु व्याप्ति ज्ञानमे जहाँ व्याप्ति जानी है वहाँ सब जगहकी तो अग्नि और सब जगहके धुवाँका ज्ञान कर ही तो लिया जो सन्निधानमे भी नही है । तो ज्ञानमे ऐसी प्रकृति पडी हुई है कि सन्निधान मे हो तो न सन्निधानमे हो तो उसे भी जान लेता है । वर्तमानकी परिस्थिति हमारी एक आधीनताकी है, आवरण सहित होनेसे । तो यहाँ लगता है ऐसा कि थोडा जानें, सामनेकी जानें, पर ज्ञानकी ओरसे ज्ञानमे यह कैद नही पडी है । इस ज्ञानके द्वारा निकटकी बात तो क्या, बहुत व्यवहित दूरकी भी बात जान लेते हैं । तो अतीतकाल मे कोई बात थी वह आज नही है फिर भी वह ज्ञानमे तो आता है । हम लोगोंके थोडे ही अतीतकी बात ज्ञानमे आती है । और निरावरण सर्वज्ञ प्रभुमे अनन्त अतीत की बात ज्ञानमे आती है । इससे अतीतकालकी बातका अतीतकालके रूपमे सत्व है और वह उस ही रूपमे ज्ञानमे जाना जा रहा है । तो ज्ञान तो वर्तमान है पर उसका विषय अतीत है जो अतीतका है, और विषय भविष्यका है तो भविष्यका है ।

सर्वज्ञत्वकी क्वचित् विश्रान्ति विषयक आशङ्का - अब शङ्काकार एक नई शङ्का और रख रहा है कि यह तो बतावो कि सर्वज्ञ जानता तो है पर उसका यह जानना पहिले या पीछे किस जगह किसी समय कही विश्रान्त भी होता है, समाप्त भी होता है, कही आराम भी लेता है कि नही ? या एकदम जाननेकी कवायत ही करता रहा है । अगर यह कही विश्राम करने लगता है तो इसका अर्थ है कि अखिल पदार्थका ज्ञाता कुछ नही रहा । ससार इतना ही रहा, ज्ञान इतना ही रहा । तो फिर अनादि अनन्तपना कैसे रहा ससारमे और कैसे जाना इतना सब अगर कहो कि वह विश्राम नही लेता, निरन्तर ज्ञान चलता ही रहता है, कभी ठहरता ही नही है तो अनेक युग भी बीत जाये तो भी सारे ससारका साक्षात्कार हो ही नही सकता । क्योंकि ज्ञान भी चल रहा और पदार्थ भी आगे भागते रहे अतीतकालमे भविष्यमें, यह ज्ञान कहा तक पकड लेगा किसीको । यह कहना भी प्रलापमात्र हैं ।

विश्रान्तिके तीन विकल्पोमे प्रथम विकल्पका निराकरण अब ज्ञान की विश्रान्ति विषयक समाधान सुनो यह जो आशङ्का है कि सर्वज्ञका ज्ञान कहीं विश्राम लेता है या नहीं, तो उस विश्राम लेनेका अर्थ तुमने क्या लगाया । क्या विश्रामका यह अर्थ है कि कुछ पदार्थ जानकर फिर अन्य पदार्थका ज्ञान न करना ? अथवा तुमने यह अर्थ लगाया है कि समस्त विषयोमे समस्त देशमे समस्त कालमें ज्ञानके गमन करनेकी सामर्थ्य नहीं है सो थक करके बीचमे ही ठहर गया अथवा यह अर्थ लगाते हो कि किसी विषयमे ज्ञान उत्पन्न हो करके विनष्ट हो गया ? इन ३

प्रकारके अर्थोंमेसे तुम्हारा क्या भाव है ? यदि यह कहो कि हम तो विश्रामका यह अर्थ मानते हैं कि कुछ चीजको जाना और बाकीको न जाना ? जैसे कि यहो बालक जवान कोई पढते - पढते थक जाता है तो किताबको बद कर देता है लो विश्राम करने लगा। जहा तक पन्ने पर अगुली फेंकते रहे वहां तक तो जाना और अब आगे न जाना। इस तरहका विश्राम प्रभुके नही है कि कुछ पदार्थोको जानकर अन्यको न जानें। इसका कारण यह है कि सर्वज्ञदेव पदार्थोको क्रमसे नही जानते। जो क्रमसे जाना करे उसमे तो यह विकल्प किया जा सकता है कि लो कुछ तो जाना था अब विश्राम कर लिया आगेका जानना बद कर दिया। पर प्रभु समस्त पदार्थोंको क्रमसे नही जानते। उनका ज्ञान एक साथ होता है, उनका ज्ञान समस्त पदार्थोंका एक साथ ही प्रकाश करता है।

ज्ञानविश्रान्तिविषयक द्वितीय विकल्पका निराकरण—यदि कहो कि हम तो विश्रामका यह अर्थ लगायेंगे कि पदार्थ बहुत दूर तक है, क्षेत्र बहुत लम्बा है, काल बहुत लम्बा हैं तो वहां तक ज्ञान जा नही सकता। उसके सामर्थ्य नही है इस लिए बीचमे ही रुक गया। तो यह बात यो बिल्कुल ही असम्भव है क्या ज्ञान आदमियोकी तरह दौड लगाकर गमन करके पदार्थोंको जाना करता है, अरे ज्ञान इस तरहसे नही जाना करता है, ज्ञान तो आत्माके प्रदेशोमें ही रहकर यहाँ ही विराजा हुआ ज्ञानमय प्रभु समस्त विश्वको जान जाता है। ज्ञानका किसी भी जगह गमन नही है केवल जैसे कि अनादि अनन्तरूपसे पदार्थ स्थित हैं उस ही रूपसे वे जान लेते हैं। इससे यह कहना भी ठीक नही है कि ज्ञान बहुत लम्बे देश-कालमे जान जान कर थक जाता है जिससे आगे जाननेकी सामर्थ्य नही रहती है, बस वही रुक जाता है ऐसा विश्राम लिया करता है ज्ञान, यह बात ठीक नही है।

सर्वज्ञत्वविश्रान्तिविषयक तृतीय विकल्पका निराकरण—तीसरा विकल्प भी अयुक्त है। यो कहना कि ज्ञान किसी विषयमे उत्पन्न होकर फिर नष्ट हो जाता है। ज्ञान कही नष्ट हुआ करता है? किसी भी विषयमे उत्पन्न हुआ ज्ञान क्या आत्मस्वभावरूप न रहेगा ? आत्माके स्वभावरूपसे ज्ञानका विनाश असम्भव है। किसी भी पदार्थका स्वभाव नष्ट नही हुआ करता। जैसे स्फटिकका स्वभाव है स्वच्छता तो वह उसमें रहती ही है। यदि स्वभाव नष्ट होने लगे तो स्फटिककी स्वच्छता भी नष्ट हो जाय। सभी पदार्थोंमे गडबडी हो जायगी। नीम कडवी होती है और मिश्री मीठी लगती है। ये दोनो अपने स्वभावको नही छोडते। क्या कोई मिश्रीको इस तरहसे चख कर खाता है कि कही यह कडुवी न हो, अथवा क्या कोई नीमकी पत्तीको क्या मिश्री जैसी मीठी समझकर खा लेता है? नही खाता ना, तो जिस वस्तु का जो स्वभाव है नही छोडता। तो आत्माका स्वभाव ज्ञान है वह ज्ञान किसी भी विषयमे कुछ जान ले तो जान करके फिर वह ज्ञान नष्ट हो जाय ऐसा नही है। जैसे

आग जलकर राख हो जाती है मर जाती है। इस तरहसे यह ज्ञान जानकर नष्ट हो जाय ऐसी बात नहीं है। वह आग भी नष्ट नहीं होती। आग न रही, राख रहा, जो भिन्न तत्त्व है, पदार्थ है आकार है, मूल है वह नष्ट नहीं हो सकता। जो रूप औपाधिक हो, जैसे स्फटिकमे हरे पीले आदिक रङ्गका कोई आवरण लगा हो तो आवरणके हटते ही वह औपाधिक रङ्ग मिट जायगा, परन्तु स्फटिककी जो स्वच्छता है वह कैसे मिट जायगी ? ऐसे ही आत्माके जो रागादिक भाव हैं, औपाधिक हैं वे तो मिटाये जा सकते हैं, पर आत्माका ज्ञानस्वभाव किस तरह मिटाया जाय ? ज्ञान स्वभाव है सबको जाननेका स्वभाव है फिर हो गया निरावरण तो निश्चयसे वह सर्वज्ञ ही होता है।

सर्वज्ञके ज्ञानकी कहीं विश्रान्तिका अभाव—सर्वज्ञ न मानने वाले सिद्धान्तने यह प्रश्न रखा था कि सर्वज्ञका ज्ञान पहिले या बादमे कभी विश्रान्त होता है या नहीं ? समाप्त होता है या नहीं ? यदि समाप्त होता है तो सर्वज्ञता न रही। यदि नहीं समाप्त होता है तो अनेक युग बीत जायें तो भी सर्वज्ञता न रह सकेगी। उस सम्बन्धमे विश्रामके अर्थमे सर्वज्ञवादियोंकी ओरसे प्रश्न किया जा रहा था कि विश्रान्त हो गया इसका अर्थ क्या ? न तो इसका यह अर्थ ठीक रह सकता कि कुछ जानकर अन्यको न जानना न यह ठीक रह सकता कि सब विषयोंमें, सब देशोंमें, सब कालोंमे ज्ञान जा न सकता था सो बीचमे ही ठहर गया और न यह भी विकल्प ठीक है कि किसी पदार्थमे ज्ञान उत्पन्न होकर फिर समाप्त हो गया, क्योंकि ज्ञान कभी समाप्त नहीं होता। वह तो स्वाभाविक चीज है, जो औपाधिक चीज हो वह नष्ट हो सकती है। जैसे स्फटिक मणिके ऊपर लगे हुए जो रङ्ग हैं वे तो नष्ट हो जायेंगे, पर स्फटिककी स्वच्छता नष्ट न होगी।

सर्वज्ञत्वकी विश्रान्ति माननेपर अपौरुषेय आगमकी अनाद्यनन्तताकी असिद्धि—ज्ञानविश्रान्तिके विषयमे एक उलहनारूपमे भी समाधान किया जा रहा है कि यदि शङ्काकार यह कहे कि सर्वज्ञका ज्ञान कही विश्रान्त हो जाता है। इसलिये सर्वज्ञपना कुछ नहीं है तो ऐसा कहनेवाले लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि फिर तुम्हारे अपौरुषेय आगममे अनादि अनन्तताका ज्ञान कैसे हो सकता है ? क्योंकि वहाँपर भी ये सारे विकल्प रखे जा सकते है कि वेद अनादि अनन्त हैं। इस प्रकारका बोध जिन्होंने किया उनका ज्ञान कहीं विश्रान्त होता या नहीं ? अगर विश्रान्त बना तो कबसे, कहां विश्रान्त बना ? आगमकी अनाद्यनन्तता जानते समय यदि कहीं ज्ञान विश्रान्त हो गया तब तो अनाद्यनन्त रहा नहीं। यदि विश्रान्त नहीं होता है तो काल भी भाज रहा, और यह ज्ञान भी विश्राम नहीं ले रहा है, चला जा रहा है पीछे, तो भी उसके अनादि अनन्तताकी थाह न रह सकेगी।

सर्वज्ञत्वकी विश्रान्ति माननेपर व्याप्तिज्ञानकी असिद्धिका प्रसङ्ग—

ज्ञानविश्रान्तिविषयक व्यर्थ विकल्प करनेमे तो जहाँ चाहे आपत्ति दी जा सकती है, और फिर यह तो बतलावो कि साध्य और साधनका जो समस्तरूपसे व्याप्तिका ज्ञान होना हैं वह कैसे होगा ? जैसे यहाँ अग्नि होना चाहिए, धुवा होनेसे ? इस अनुमानमे जो यह व्याप्ति बनाई गई कि जहाँ जहाँ धुवां होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है, तो तुम्हारा ज्ञान उन सब जगहोमे जायगा जितनी जगहोमे धुवां और अग्नि मिलेगी। तुम्हारा ज्ञान विश्रान्त होगा कि नही। अगर विश्रान्त हो गया तो तुमने समस्त साधनोका कहा ज्ञान पाया ? व्याप्ति न बनी। और विश्रान्त नही होता तो साध्य साधन भी बहुत क्षेत्रोमे पाये जा रहे। यह अग्नि है, यह धुवा हो रहा और तुम्हारा ज्ञान भी उनके जाननेके लिये पीछा कर रहा तो तभी भी तुम सारे धुवा और अग्नि को जान ही नही सकते। ता व्याप्तिज्ञान भी न बनेगा। यदि कहो कि सामान्यरूपसे व्याप्तिका ज्ञान किया जाता है। वहा उस अग्नि के पीछे दौडना नही पडता। तो सामान्यसे भी माननेपर अनादि अनन्त सामान्यके जाननेमे भी तो यही विकल्प उठ बैठेगा कि वह अनादि अनन्त सामान्यका ग्राहक व्याप्तिज्ञान कही थमता है या नही ? यह प्रश्न वहाँ भी किया जा सकता है इसलिए व्यर्थके विकल्प उठाकर उलझनमे डालकर जो यथार्थ तत्त्व है उसका निराकरण करना यह तो विवेककी बात नही है।

अपनी परखके बलसे सर्वज्ञत्वका निश्चय—भैया ! अपने आपके आत्मापर कुछ बल दें, यहा कुछ परिचय पायें कि मैं क्या हूँ, क्या मेरा सहज स्वरूप है, उसका अवलोकन करते ही स्वय समझ जायेंगे कि आत्मामे जाननेका स्वभाव है या नही। लोग इसको ही जानन समझते है जैसे कि हम इन चीजोके आकारको पकड कर रहते कि यह दुष्ट है, भला है, मेरे हितरूप है आदिक रूपसे विकल्पोमे उलझा हुआ जो ज्ञान बना लोग उसको ही ज्ञान समझते, पर इसमे ज्ञानाश तो इतना ही है जितना कि मात्र प्रतिभास है और जितने ख्याल है, विकल्प हैं, उलझने है परिग्रहण हैं, यादगारत हैं, ये सब ज्ञानके सहीरूप नही है। ये रागादिक भाव रहनेसे इस प्रकार के बखेडे वाले ज्ञान बनते हैं। तो ज्ञानका विशुद्ध स्वरूप क्या है इसकी समझ होने पर फिर सब समस्यायें सुलझ जायेगी कि सर्वज्ञ होता है अथवा नही।

असर्वज्ञो द्वारा सर्वज्ञत्वके निर्णयकी अशक्यता विषयक एक आशङ्का—अब शङ्काकार अपनी एक शङ्का और रख रहा है हम कैसे जानें कि यह सर्वज्ञ हैं हम हैं असर्वज्ञ ? और सर्वज्ञ कहते उसे हैं जो सबको जान जाय। तो पहिले हम सबको जानें तब ही तो यह निर्णय कर सकेंगे कि देखो यो जो सबको जानता है उसे सर्वज्ञ द्वारा ग्राह्य जो अखिल पदार्थ हैं उनका ज्ञान तब तक नहीं हो पाता है जब तक हम असर्वज्ञजन हैं। हम आप असर्वज्ञ जब जानते ही नही कि सर्वज्ञने क्या ज्ञान किया और उसके ज्ञेयमे क्या आया है तो हम कैसे कह सकते हैं कि सर्वज्ञ है। हम लोग स्वय अल्पज्ञ रहकर यदि सर्वज्ञकी बात कहने लगें तो फिर जिस चाहेको हम सर्वज्ञ

कह दें। ये जो बच्चे खेल रहे हैं ये भी तो सर्वज्ञ हैं ऐसा भी हम कह दें, या जो चाहे कह दें। इससे सर्वज्ञको हठ करना ठीक नही है। क्यो दिमागको परेशान करते हो? सीधी बात है कि जैसे दुनियाके लोग दिखते हैं बस ये ही हैं असली। कोई प्रभु है, सबका जानने वाला है, ऐसी अदृष्ट चीजकी कल्पना करके दिमागमे परेशानी क्यो डाल रहे हो?

असर्वज्ञ पुरुषो द्वारा सर्वज्ञत्वके निर्णयका समाधान— अब इस आशङ्का का समाधान करते हैं। "सर्वज्ञ है ऐसी कल्पना भी करलो तो भी सर्वज्ञके कालमे भी असर्वज्ञजनोके द्वारा यह जाना नही जा सकता है कि यह सर्वज्ञ है" शङ्काकारका कहना व्यर्थ है। यदि यह नियम बनाकर कि जिसने जो जाना है उसका उतना ज्ञान किए बिना हम उस ज्ञानको नही कह सकते कि इसने यह जाना है। तो बतलावो कि वेद आगमका सबका ज्ञान था अमुक ऋषिको यह भी निश्चय आपने कैसे किया? जब तक आप भी उस ऋषिके ज्ञान बराबर अपना ज्ञान न बनायें तब तक आप ऋषि के ज्ञानको भी नही कह सकते। जब सर्वज्ञके बराबर ज्ञान पैदा किए बिना सर्वज्ञको नही जान सकते तो किसी साधुके बराबर ज्ञान किए बिना साधुके बारेमे भी कुछ जीभ नही हिला सकते। लेकिन ऐसी बात नही है। हम अधिक नही भी जानते हैं फिर भी यह भाप ही लिया जाता है कि यह बहुत विद्वान है, इसका ज्ञान बड़ा विशिष्ट है। ऐसी भाप कर लेते हैं। और मान लो न हो सके ऐसा तो फिर व्यवहार धर्ममे प्रवृत्ति नही रह सकती। कुछ भी हुकम दे भगवान। आखोसे नहीं दिखता तो यह मना कर देगा। उपदेश है—भाई हिंसा मत करो, नरकमे जाना पडेगा। तो कोई कह दे कि नरक हमे मालूम ही नही, हमे चलकर दिखावो तो हम तुम्हारी बात मानेंगे। तब तक तो मानेंगे नही। यदि स्वय ही अपनी पायी हुई बुद्धिकी माप तौल पर सारा निर्णय बनायें तो इससे तो व्यवस्था न बनेगी। यह तो रागमे होता है।

सर्वांश ज्ञानके बिना ज्ञानीके निर्णयका विरोध माननेमे व्यवहार व्यवस्थाका भी लोप—अच्छा और भी बात करिये कुछ। बस आप चुप बैठो, बोलो मत, नहीं, हम तो बोलेंगे। अच्छा बोलो। जो भी बोले, जितने शब्द बोले उससे पूछ लो कि इस शब्दकी सिद्धि कैसे हुई? वह बता न सके तो कहो कि तुम्हें जब शब्दका ज्ञान ही नही तो उसका वाच्य अर्थ क्या जानते होगे? किसीने कहा कि चौकी उठा लावो। साहब क्या कहा आपने?...चौकी। चौकीका क्या अर्थ है, किस शब्दसे बना, कैसा प्रत्यय लग गया, आप नही बता सकते, तो आपने चौकी शब्दका अर्थ ही नहीं जाना। चौकी शब्दसे क्या कहा गया, वह पदार्थ तो आपके ज्ञानमे आ ही गया होगा। जब यह नियम बना रखा कि दूसरेके ज्ञानमें कौन बात कितनी आयी है पूरी तौरसे उतनी न जान सकेंगे तो हम उसकेज्ञानका निर्णय नही कर सकते। तो जब सर्वांशसे तुम शब्दकी बात नही किया जा सकता। फिर व्य-

वहारकी प्रवृत्ति क्या होगी ? कुछ चालाक लोग होते भी ऐसे है कि जिन्हे जो वात पसद नही हैं या जिस वातको सुनना नही चाहते हैं वे उस वातको किसी न किसी तरह वदलकर कोई नई वात छेड देंगे ताकि वह वात खतम हो जाय। तो यो कोई कुछ वोल भी नही सकता, व्यवहारप्रवृत्ति भी नही हो सकती। इस कारण यह माना कि युक्तिसे, तर्कमे जो वात सिद्ध हो जाय वह प्रमाणभूत है। किसीको कोई नकशा वनवाना है तो कहता है कि वह वढिया नकशा वनाता है। कोई पूछे कि अच्छा तुम भी नकशा वनाना जानते कि नही ? नही जानते। अगर नहीं जानते तो तुमने कैसे समझा कि यह वडा अच्छा नकशा वनाता है ? कहीं भी कोई वात थम ही नही सकती है। इससे यह वात कहना असङ्गत है कि सर्वज्ञदेवने जितने पदार्थ जाने हैं उतने सारे पदार्थोका हम ज्ञान नही कर पा रहे तो कैसे कहदे कि वह सर्वज्ञ है। यह वात तुम्हारी अयुक्त है, अनेक प्रमाणोसे और युक्तियोसे और कुछ अनुभव भी मिला कर यह निर्णय किया गया है कि कोई निरावरण निष्कलङ्क आत्मा ऐसा होता है जो समस्त सर्व पदार्थोंको जान लेता है।

प्रत्यक्षसे सर्वज्ञके अभावकी असिद्धि—अव सर्वज्ञवादी कह रहे है कि तुम ही वताओ सर्वज्ञके अभावकी सिद्धि किस प्रमाणसे करोगे, क्योकि सर्वज्ञकी सत्तामे वाधा देने वाला प्रमाण कोई मिलता ही नही, वतलाओ, प्रमाण वनाओ कोई कि सर्वज्ञ नही है। तो शङ्काकार प्रमाण वना रहा है कि सर्वज्ञका अभाव है। प्रत्यक्षसे हम जान रहे है कि सर्वज्ञ नही है और अन्य प्रमाणोसे भी जान रहे हैं कि सर्वज्ञ नही है। तो इसपर पूछा जा रहा है शङ्काकारसे कि सर्वज्ञका अभाव जो तुम प्रत्यक्षसे वतला रहे हो विल्कुल साफ सामने तो है। प्रत्यक्षसे सर्वज्ञ कही नही है, यो कह रहे हो तो यह वतलाओ कि यह भी प्रत्यक्ष जो कि यह जान रहा है कि सर्वज्ञ नही है, सो सव जगह, सव समय, सव जीवोका प्रत्यक्ष करके निषेध कर रहा है कि सर्वज्ञ नही है या किसी जगह, किसी समय, किसी पुरुषके लिए कह रहा है कि सर्वज्ञ नही है। यदि कहो कि हम तो सदाके लिए सव जीवोके लिए सव जगहके लिए कह रहे है कि सर्वज्ञ कही नही है, तो सुनो ! अच्छा, तुमने खूव अच्छी तरहसे निर्णय कर लिया, सव जगह सर्वज्ञ नही है। सव जगह देख आये ? सव समय नही है सर्वज्ञ ! तो सव समयोको तुमने देखकर कहा होगा ? जैसे कोई कहे कि इस कमरेमें घडी नही है, तो जव पूरा कमरा देखले तभी तो कह सकेगा कि घडी नही है यो ही यदि तुमने सव जगह, सव समय सवका ज्ञान कर लिया तो तुम ही सर्वज्ञ हो गए। सर्वज्ञका क्या निषेध करते हो ? क्योकि समस्त देश, समस्त काल, समस्त आत्माका साक्षात्कार किए विना प्रत्यक्षसे यह निषेध नही कर सकते कि सर्वज्ञ नही है, और यदि कहो कि नही, हम तो किसी जगहके लिए, किसी समयसे, किसीके लिए कह रहे हैं कि सर्वज्ञ नही है तो ठीक है, इससे सर्वथा तो सर्वज्ञका अभाव नही हो गया। तुम्हे सामने नही नजर आता तो यही नही है कि सव जगह नही है ?

अभावसाधक प्रत्यक्षके निवर्तमानत्वका शङ्काकार द्वारा प्रस्ताव-- यहा शङ्काकार प्रत्यक्षसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करना चाहता है। तो इस प्रसगमे शङ्काकार यह कह रहा है कि प्रत्यक्ष जो है वह प्रवृत्ति करके अभाव नहीं जानता, किन्तु निवृत्त होकर अभाव जानता है। प्रत्यक्षकी दो तरहकी गतियां होती हैं। सद्भावको तो प्रवर्तमान होकर जानता है और अभावको निवर्तमान होकर जानता है। कैसे ? कहा कि कमरेमेसे घडा उठा लावो। घडी रखी थी। तो उसने घडीको जा जाना प्रत्यक्षसे वह प्रवर्तमान होकर जाना है, यह है घडा। और कहा कि उस कमरे मेसे चटाई उठा लावो, चटाई थी नही। कमरा देखा तो अब प्रत्यक्षसे जो यह निर्णय किया कि चटाई नही है सो प्रवर्तमान होकर नही किया, किन्तु अलग हटकर कि है ही नही। तो प्रत्यक्षके सद्भावसे जाननेमे तो प्रवर्तमान गति होती है और अभाव जाननेमे निवर्तमान गति होती है। कितनी कलासे बात रखी है। कोई चीज हो और उसे प्रत्यक्षसे जाने तो हम कहां लगकर जानते हैं ? यह है अभाव। चलो, कुछ हटकर निवृत्त होकर उसके अभावको जानते हैं। तो यह कहना तुम्हारा कि क्या तुम किसी जगह सब जगह देख आये कि सर्वज्ञ है ? तो कहा कि हमारा प्रत्यक्ष प्रवर्तमान होकर जाननेके लिए नही है वह तो निवर्तमान होकर जान रहा है।

प्रवृत्ति निवृत्तिका युक्तिसगत सम्बन्ध अब निवर्तमान प्रत्यक्ष इसका समाधन दिया जा रहा है कि देखो प्रवृत्ति और निवृत्तिकी बात सर्वथा इस प्रकार नही हैं। सम्बन्ध हुआ करता है दो पदार्थोका। कारण कार्यका, व्यापक व्याप्यका। जैसे अग्नि तो कारण है और धुवो कार्य है, सब लोग जानते है। धुवा किससे उत्पन्न होता है ···· अग्निसे। तो धुवाका कारण आग है या आगका कारण धुवा है ? आगका कारण धुवा धुवांसे आग उत्पन्न हुआ करती। अब देखिये—कारण हट जायगा तो कार्य हट जायगा या नही ? हट जायगा। तो कारणके हटनेसे काय हटता है, एसी निवृत्ति तो युक्तिसगत है। ऐसे ही व्यापक और व्याप्य। जैसे नीमका पेड और पेड। पेड शब्द तो व्यापक है और नीम व्याप्य है। पेड नीमका भी होता है और भी होते हैं। जो अधिक जगह रहे उसे व्यापक कहते हैं और जो कम जगह रहे उसे व्याप्य कहते है। तो व्यापक है पेड और व्याप्य है नीम। अगर पेड नही है तो नीमका भी तुम अभाव कह दोगे। जब पेड ही नही है तो नीम क्या। किन्तु उल्टी बात न कह सकेंगे कि नीम नही है तो पेड नही है। व्याप्यकी निवृत्ति करके व्यापकको नही हटा सकते। इसी कारण कार्य नही है तो कारण भी नहीं है यह भी नही हटा सकते। अगर धुवां नहीं है तो वहा आग भी नही है। यह भी निर्णय नहीं बनता। खूब धधकती हुई आग, लोहेके गोलेमे बसी हुई आग, लोहा भी तो ईन्धन है, वहां धुवा नही नजर आता। इस कारण व्यापक और कारणकी निवृत्ति होनेपर व्याप्ति और कार्यकी निवृत्ति तो प्रसिद्ध है, पर उल्टा काम न चलेगा कि व्याप्यका अभाव है तो व्यापकका अभाव है। इस तरह अटपट अगर एकके अभावसे दूसरेका

अभाव मानोगे तो कही घट नही है तो सभी वस्तुवे न रहे।

हमारे निवर्तमान प्रत्यक्षसे सर्वज्ञत्वके निषेधकी असङ्गतता— देखिये ! शङ्काकारकी युक्ति कि चूंकि प्रत्यक्ष प्रवर्तमान होकरके जानता है और निवर्तमान हो करके भी जानता है तो जो निवर्तमान होकर प्रत्यक्ष है वह सर्वज्ञका अभाव जान रहा। इस शङ्कापर यह व्यवस्था बतायी जा रही है कि देखो सर्वज्ञका प्रत्यक्ष न तो हम लोगोके प्रत्यक्षका कारण है, देखते जाना, और सर्वज्ञका प्रत्यक्ष न हम लोगोके ज्ञानका व्यापक है। सो सर्वज्ञत्वमे और हमारे ज्ञानमे व्यापक-व्याप्य कारणकार्यका कोई सम्बन्ध ही नही। जैसे घडा और कपडा इन दोनोमें कुछ सम्बन्ध है क्या ? सम्बन्ध तो नही है, फिर यह कहा कि घडा नही है तो कपडा भी नही है, कोई युक्ति ठीक है क्या ? तो इस प्रकार हमारा ज्ञान और सर्वज्ञका ज्ञान इन दोनोमे न व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है, न कार्य कारण सम्बन्ध है। हम स्वतन्त्र द्रव्य हैं, सर्वज्ञ स्वतन्त्र द्रव्य हैं, फिर यह कैसे कहा कि हमारे ज्ञानकी निवृत्ति होनेपर सर्वज्ञकी भी निवृत्ति हो गयी, सर्वज्ञका भी अभाव हो गया, यह कैसे कह सकते ? सर्वज्ञ एक निर्दोष निरावरण आदर्श आत्मा है। हम आप कलङ्कित विषय व्यामुग्ध कषायवान आत्मा है। हमको अगर प्रभुता नजर नही आती है यहाँ तो हम सब जगहके लिए प्रभुका निषेध करदे कि प्रभु कही नही है यह बात तो सङ्गत नही हो सकता है। सर्वज्ञता जाननेके लिये देखो युक्तिया भी निर्बाध है और अधिक उलझनमे नही पडना चाहते हो तो शान्त होकर बाह्य सब पदार्थोंका उपयोग छोडकर बडे विश्रामसे अपने आपमे ठहर तो जावें, उस ही क्षण हमे ज्ञानका सही स्वरूप नजर आयगा। फिर उससे सर्वज्ञत्वकी प्रतीतिमे विलम्ब न होगा।

प्रत्यक्षसे सर्वज्ञका अभाव माननेपर आपत्ति—सर्वज्ञका अभाव बतानेके लिये शङ्काकार कह रहा था कि प्रवर्तमान प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञका अभाव नही बताता किन्तु निवर्तमान प्रत्यक्ष सर्वज्ञका अभाव बताता है, अर्थात् है यह, यो लग करके प्रत्यक्ष नही जानता कि सर्वज्ञका अभाव है, किन्तु कही कुछ नही है, यो अभावरूपसे प्रत्यक्ष जानता है कि सर्वज्ञ नही है। इस विषयमे अभी अभी बहुत कुछ कहा गया था। अब यह कह रहे है कि इस प्रकारकी यदि हठ करते कि निवर्तमान प्रत्यक्ष अभावको जानता है तो घट आदिकके अभावकी भी सिद्धि न हो सकेगी। घट नही है यह भी सिद्ध नही किया जा सकता। क्योकि, उसमे भी हम यह कहेगे कि घटके अभावको प्रवर्तमान प्रत्यक्ष ग्रहण नही करता किन्तु निवर्तमान करता तो वहाँ भी कारण कार्य व्याप्य व्यापककी कोई वृत्ति नही बनती है, और घटका अभाव तो इस तरह सिद्ध होता है कि एक ही ज्ञानमे वह जमीन जहा नही है यह जाना जा रहा है तो घटका अभाव जिस आधारमे सिद्ध करना है उस एक ज्ञानमे उस जमीनका उस पदार्थान्तरका तो ग्रहण है तब तो कह सकते हैं कि निवर्तमान प्रत्यक्षसे घटका अभाव

बता दिया। जैसे कहो कि उस अलमारीमे घड़ी रखी है ले आओ, और थी नही वहाँ घडी, तो जिस ज्ञानमे यह बात समायी है कि घडी नही है उस ज्ञानमे घडी रहित वह समस्त अलमारीका ज्ञान है तब जान सकते हैं कि घडी नही है। पर यहाँ तो यह बात नही बन सकती, क्योकि एक ज्ञानमे ससग करे ऐसे सवज्ञके अभावका आधार कुछ है नही, अर्थात् सब क्षेत्र कहा जाना। जहा निवर्तमान प्रत्यक्षसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध कर सके? दूसरे अनेक बार घट सहित जमीन देखी और अब कही नही दिखनेमे आता तो वहाँ कह सकते कि घटका अभाव है। इस प्रकार सर्वज्ञ सहित कुछ स्थल देखनेके बाद सर्वज्ञ न मिले तो कह सकते कि निवर्तमान प्रत्यक्षमे यह हमने जाना कि सवज्ञ नही है। इससे प्रत्यक्षसे तो यह सिद्ध नही किया जा सकता कि सर्वज्ञका अभाव है।

अनुमानसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करनेके हेतुमे तीन विकल्पोका प्रश्न- यदि कहो कि हम अनुमानसे सिद्ध कर लेंगे कि दुनियामे सर्वज्ञ कोई नही है और यह अनुमान देंगे—कि कोई पुरुष सवज्ञ नही हो सकता, क्योंकि वक्ता होनेसे। जैसे गली के मुसाफिर लोग वक्ता हैं, बोलते रहते हैं तो ये सवज्ञ हैं क्या? जो बोले सो सवज्ञ नही। जो उपदेश दे, वह सवज्ञ नहीं, उदाहरण भी कह दिया शङ्काकारने कि गली चलने वाले मुसाफिर, वे कभी चुपचाप नही चल सकते, मौनसे नही चल सकते कुछ न कुछ बोलते चलते हैं, तो जैसे ये बोलने वाले मुसाफिर सवज्ञ नही हैं इसी तरह बोलने वाले जो तुम्हारे उपदेष्टा है ऊँचेसे ऊँचे चाहे उनका नाम अरहत रख लो तुम्हारा बात है, पर वे अरहत भी बोलते हैं इसलिए सर्वज्ञ नही हैं, इस अनुमानमे सिद्ध करेगे कि सवज्ञ है ही नही। समाधानमे पूछते हैं उनसे कि इस अनुमानमे जो तुमने वक्तृत्व हेतु दिया है चूँकि वक्ता हैं प्रभु, इस कारण सर्वज्ञ नही हो सकते। तो वक्तापनका अर्थ तुमने क्या लगाया? क्या प्रमाणान्तरोसे, जिसमे कोई विवाद नही होता, ऐसे यथार्थ पदार्थका व्याख्यान करनेका नाम वक्तापन है या जिसमे बाधा आती है ऐसे बाहरी पदार्थोंके भाषण करनेका नाम वक्तापन माना है या खाली वक्ता सामान्य माना है? जो वक्तृत्व हेतु देकर सर्वज्ञका अभाव सिद्ध कर रहे हो उस वक्तृत्वका भाव क्या रखा तुमने?

वक्तृत्वविषयक तीनो विकल्पोका समाधान यदि यह कहो कि अन्य प्रमाणसे जिसमे बाधा न आवे, सही-सही उतरे ऐसे यथार्थ पदार्थोंका उपदेश करते हैं तुम्हारे प्रभु, इसलिए सर्वज्ञ नही हैं। तो यह तो विरुद्ध बात कह रहे हो। यदि कोई सही-सही बातको प्रमाणान्तरोसे जो सम्मत है, किसीको बाधा नहीं आती जिसमे, ऐसे सूक्ष्म पदार्थोंका कोई व्याख्यान दे उपदेश करे ऐसे ही वक्तापनेका तो सवज्ञमे हम सद्भाव मानते हैं। जो समस्त सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका यथार्थ उपदेश करे वही तो सर्वज्ञ है, यदि कहो कि नहीं, जो झूठी बातोका उपदेश करे ऐसा जो वक्ता है वह सर्वज्ञ नही हो सकता। कहते हैं कि यह बात तो हम मानते हैं, विपरीत

वक्ता भाषण करने वाला सर्वज्ञ कैसे हो सकता है ? यदि कहो कि वक्तृत्व सामान्यको हम हेतु बनाते है तो वक्तृत्व सामान्य तो सर्वज्ञको भी सिद्ध कर सकता है और असर्वज्ञको, अल्पज्ञको, बेवकूफको भी सिद्ध कर सकता है । तो उस हेतुसे तुम्हारी सिद्धि नही हो सकती । सर्वज्ञ नही है वक्ता होनेसे इसमे अनैकान्तिक दोष है, क्योकि वक्ता सर्वज्ञ भी होता है अल्पज्ञ भी । तो उस हेतुका अपने साध्यके साथ नियतपना न रहा कि जो जो वक्ता होता है वह सर्वज्ञ नही होता नियतपना होता ही नही है । जिस हेतुसे तुम सर्वज्ञका अभाव बताते, वक्ता सामान्यकी बात कहते कि यह सर्वज्ञ चूकि वक्ता है इस लये वह सर्वज्ञता नही है, यो हेतुका कोई गडाव न हो सका । अपने साध्यके साथ भी नियत न बन सका ।

निरभिलाष दिव्यध्वनिके रूपमे वक्ताकी साधारण वक्तावोसे असमानता - यदि यह कहो कि सर्वज्ञ जो होगा वह वक्ता हो ही नही सकता, इसलिये जो जा वक्ता है वह सर्वज्ञ नही है । हमारा यह अनुमान सही बैठेगा क्योकि जो सर्वज्ञ है वह वक्ता क्या हो सकता है । जो कहे, बके, बोले वह सर्वज्ञ कैसे ? कहते हैं कि यह बात ठोक नही है क्योंकि कर्तृत्व मात्रसे सर्वज्ञताका निषेध नही हो सकता । कारण यह है कि हम लोग जैसे वक्ता हैं उस ढङ्गके वे वक्ता नही है, उनकी दिव्यध्वनि बिना इच्छाके भव्य जीवोके पुण्य विपाकके निमित्तसे उत्पन्न होता है । जैसे मेघ गरजते हैं तो क्या जानकर गरजते है ? क्या रागद्वेष करके बरषते है या निर्दयतासे बरषते है ? अरे जिन जीवोका पुण्योदय है वहाँ सही बरषते है और जिन जीवोका पुण्योदय नही है ऐसे क्षेत्रोमे ऐसे ही निमित्त मिल जाते हैं । तो प्रभुका जो उपदेश होता है वह निरीह होता है, जानकर इच्छा करके, मुझे इनके प्रश्नका समाधान देना है ऐसा भाव करके उनका उपदेश नही होता । प्रभुसे कोई बोले, कुछ प्रभुसे पूछे तो प्रभुका कोई उत्तर न मिलेगा । उनमे राग नही है । प्रभुका तो अपना समय आनेपर अथवा किसी विशेष पुण्यवानके आनेपर उस निमित्तसे उनकी दिव्य ध्वनि खिर जाती है । देखो कोई चक्री आदिक महान पुण्यवान आ जाय तो भी भगवानकी दिव्यध्वनि खिरे तो उसमे रागका रच भी दोष नही है । यहाँ तो दोष लगा सकते कि कोई वक्ता किसीसे कहे—भाई यहाँ आवो, यहाँ बैठो, हमारी बात सुनो, पर किसी पुण्यवान पुरुषके आनेपर दिव्य ध्वनि भी खिरे तो यो समझिये – जैसे अचेतनमे अचेतन निमित्त होता है ऐसे ही उसका पुण्य विपाक था और यहाँ दिव्य ध्वनि खिर गई निमित्तकी बात हुई । जानकर मानकर दिव्य ध्वनि नही खिरती प्रभुके । जो ग्रन्थोमे वर्णन आता है कि महावीर भगवानसे श्रेणिकने प्रश्न किया और भगवानने फिर समाधान किया तो यह एक भुलपायकका सम्मान है । श्रेणिकने प्रश्न किया तो गौतम गणधरसे, उत्तर दिया गणधरने । जब दिव्यध्वनि खिरी तो सबके लिये एक समान रूपसे खिरी । तो वक्ता मात्र कहनेसे भी सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नही किया जा सकता ।

आत्मस्वभावके परिचयका महत्त्व देखिये हमारी समस्त धर्मवार णावोमे यह मूल कारण पडेगा कि हम समझ सके कि आत्माका स्वभाव क्या है, और यह स्वभाव जहा पूर्ण निर्दोष हो जाता है, उनका विकास किस प्रकारका है, यह ज्ञान होनेपर एक हितकारी प्रकाश मिलता है कि यह जगत क्या है, यहां रहकर क्या करना है ये सारी समस्यायें सुलझ जाती हैं एक आत्मस्वभावका ज्ञान होनेपर आत्मविकासका परिचय होनेपर। क्या करना है ? झट उत्तर आयगा, यह करना है। यहां मग्न होना है। यह उपयोग जो अपने ज्ञान समुद्रसे बाहर चोंच निकालकर अर्थात् उपयोगको बाहर निकालकर, भ्रमकर व्यर्थ अनेक उपद्रवोका शिकार बन रहा है, यदि यह उपयोग अपने आपके ज्ञानस्वरूपमे मग्न हो जाय तो फिर उसे क्या क्लेश कि अमुकने मेरी पोजीशन न रखी। अमुकने विरोध किया यदि ये विकल्प दुख दे रहे हैं, इन दुखोको दूर करना है तो नहरमे कुछ नही करना है, किसीका निग्रह विग्रह कुछ नही करना है किन्तु अपने आपको यह भ्रम करने वाली बुद्धिको निर्भ्रान्त बनाकर अपने ज्ञान स्वभावमे मग्न करना है। विद्या पढकर, ज्ञानी बनकर, कुछ ज्ञान सीखकर। भैया ! सबसे बडी आपत्ति यह आती है कि लोगोको यह जाहिर करना कि जो मैं जानता हूँ वह ठीक है। उसके खिलाफ किसीकी बात मिले तो उसे अपना जन्मजात शत्रु मान लेते, चैन नही पडती, अपनी बातको बलिष्ठ करनेके लिए मायाचार करना पडे, झूठ बोलना पडे कुछ भी करना पडे सब कर लिया जाय, पर अपनी ही बात रहना चाहिए, इस प्रकारकी परिणति, परिस्थिति जो आती है, यह सबसे बडी भारी विपदा है ज्ञानमे ठहरनेकी यदि उत्सुकता हो, तो यह अपना निर्णय बनाइये कि जब तक ज्ञान मग्नता नही होती तब तक आत्माका उद्धार नही है। संकट समाप्त नही हो सकता।

ध्यानमे एकमात्र अनुभवनीय तत्त्व भैया ! ध्यानमे और क्या करना है ? सामायिक करें, ध्यान करे, तो ध्यानमे कोई दसो बातें लाना है क्या ? क्या पचासो तरहके ध्यान बनाना है ? केवल एक ध्यान बनाना है, एक अनुभव बनाना है। मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ, सो ज्ञानके स्वरूपको अपने अनुभवमे लेनेपर जो वर्तना बनती है बस ऐसा प्रवर्तन करना उस तरहका अनुभवन बनाना, मैं ज्ञानमात्र हू, यह ज्ञान जिसमे रूप आदिक नही है है कोई अलौकिक प्रकाश एक सामान्य प्रकाश जिस मे रहकर हम मग्न हो जाते हैं, हम तरगित नही रहते, ऐसे ज्ञानमात्र स्वरूपका अनुभवन करना यह ही तो मात्र अपना करनेका काम है धर्म पालनके लिए, ये जो दसो काम दीख रहे हैं— पूजन करना, शास्त्र पढना, चर्चा करना या और भी अनेक प्रकारके कार्य करने पडते हैं वे सब काम इस कारण करने पडते हैं कि जो वास्तवमे करने लायक काम है उस कामकी पात्रता मेरेमे बनी रहे। कही वह काम तो हो नही रहा और उसके राजमे कोई और भूत सवार हो जाय। विषय कषायोके विकल्प बन जायें तो हम अपने कल्याणसे गए। इस कारण, और फिर ऐसा अवलम्बन लो, ऐसा

कार्य करो कि जिस बीच रहकर हमे ज्ञानमात्र आत्मस्वरूपकी सुध आती रहे। इस प्रयोजनसे पूजन, जाप, स्वाध्याय आदिक अनेक प्रकारके धर्म कार्य किए जाते हैं पर वस्तुत करनेके लिए काम मात्र एक यह ही है कि ऐसी प्रतीति बने कि मैं ज्ञानघन हूँ। यही एक वास्तविक धर्मपालन है, जिसके प्रतापसे कर्म ध्वस्त होते हैं और ससार के सकट समाप्त होते है।

अन्तर्ज्ञानका परिणाम अहा, जिसने अपनी कर मुक्तिकी यह कुञ्जी प्राप्त की घरमे रहते हुए भी वह समस्त वैभवके बीच रहकर वैभवसे निराला है। अलिप्त है। इस वैभवका सचित कर करके कितना वैभवशाली बना जा सकता है? कुछ भी नही भरत चक्रवर्तीका दृष्टान्त देखिये—केवल शरीरमात्र था, वस्त्रादिक थोडेमे लिपटे थे, जहा कही बैठे हो अपने आनन्दरसमे तृप्त रहा करते थे। और, समाज व्यवहार व ३२ हजार राजावोकी बाते वे भी अनायास चलती थी पर उनका विकल्प करके वे क्या करते? उनमे अलिप्त ही रहे। और, अपने आपके स्वरूपकी दृष्टि रखकर वैरागी रहे। उस वैराग्यमय जीवनका वह प्रभाव पडा कि जिस कालमे वे निर्ग्रन्थ हुए, दक्षित हुए तो अन्तर्मुहूर्तमे ही केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। जिसके पिताने हजारो वर्ष तप किया तब केवलज्ञान हुआ, जिसके भाई बाहुबलिने एक वर्ष तक अद्भुत तप किया तब केवलज्ञान हुआ किन्तु इस अन्तर्विरागी भरतको दीक्षा लेते ही अन्तर्मुहूर्तमे ही कैवल्यकी प्राप्ति हुई। यहा कितना सुगम धर्मपालन है। कितना स्वाधीन कितना निर्विघ्न और स्पष्ट धर्म पालन। कही भी बैठे हो—सबसे निराला केवल यह ज्ञान मात्र मै हूँ ऐसी दृष्टि करिये उस कालमे रहे सहे रागके कारण तीव्र पुण्यबंध होता। जब तक ससारमे रहना पडेगा तब तक भी इस ज्ञानीको बडी वैभव समृद्धिया प्राप्त होगी फिर भी उनमे अलिप्त रहेगा। वैभव मिलनेपर वह उनमे लीन नही होता और वैभव न मिलनेपर वह वैभवके लिये तरसता नही है।

ज्ञानी पुरुषको सप्रसारणसमृद्धिमे भी आत्मसमृद्धिके कारण ही आनन्दानुभवन—भैया! इस ससारमे रहकर क्या फायदा? जब तक लक्ष्मीकी चाह है तब तक लक्ष्मीसे भेट नही होती और जब लक्ष्मी टूटकर गिरती है तो उसकी चाह नही है। तो फिर इस ससारमे सुख क्या रहा? ससारके नातेमे यहा न ज्ञानीको सुख है न अज्ञानीको। अज्ञानीके सतान न हो तो वह सतानको तरसता रहता है, पर ज्ञानी पुरुष जिसके आज्ञाकारी बालक, जिसके दो दो वर्षके बच्चे भी बडा बुद्धिमानी की बातें करें, जिनका बडा सुन्दर रूप, जिनकी बडी आकर्षक वाणी, ऐसे पुत्रोको गोदमे खिलाकर भी रागमे आपत्ति मानता रहता है। यह राग, यह सम्बन्ध, ये सारे विकल्प मेरे साथ क्यो? तो बतावो ज्ञानी पुरुषने वैभव पाकर उस वैभवका क्या मजा लिया? कुछ भी नही! उसका आनन्द तो अपने वैभवके आनन्दरसका अद्भुत आनद है। जिस आनन्दके अनुभवनके कारण उसे सारे राग-रङ्ग ये सब वैभव समृद्धियां,

परिजन सब राग रङ्ग फीके दिखते हैं।

विषयविपरसके परिहार विना ज्ञानमृतास्वादकी असभवता एक कथा है कि एक शकरकी दुकानमे रहने वाली चीटी नमककी दुकानमे रहने वाली चीटी से बोली—बहिन ! तुम क्यो रोज रोज वहांपर खारी खाना खाती हो, तुम तो हमारे पास चलो, खूब मीठी मीठी चीज खावो। पहिले तो उसे विश्वास न हुआ पर बहुत बहुत कहनेपर वह चलनेको तैयार हुई, किन्तु चलते समय सोचा कि कही ऐसा न हो कि वहां भूखे रहना पडे सो कमसे कम एक वारका नास्ता साथमे लेते जाना चाहिए। तो वह अपनी चोचमे एक नमककी डली दबाकर चली। जब वहां पहुची कुछ शकरके दानोपर तो शकरकी दूकानमे रहने वाली चींटी पूछती है— क्यो बहिन, मीठा स्वाद आया ना, तो वह बोली—नहीं आया ! यों कई बार पूछा. पर उत्तरमे यही मिला कि मीठा स्वाद तो अभी नही मिला ! तो शक्करकी दूकान वाली चींटी पूछती है— बहिन तुमने अपनी चोचमे कोई चीज दबा तो नही रखी है ? हां, एक वारके नास्ताके लिए नमककी एक डली ले आयी हूँ वह हमारी चोचमे है। अरे, इस नमककी डलीको अपनी चोचसे निकाल दे फिर देख मीठा स्वाद आता है कि नहीं ! जब उसने उस नमककी डलीको अपनी चोचमे निकाल दिया औ स्वाद लिया तो बडा ही मीठा स्वाद मिला। फिर वह नमककी दूकानमें रहने वाली चीटी पूछती है क्यो बहिन, तुम कबसे ऐसा मीठा खाना खा रही हो ? इसमे तो बडा मीठा रस है ! तो जैसे नमककी दुकानमे रहने वाली चीटींने नमककी डलीको अपनी चोचसे वाहर निकाल दिया तब मीठा स्वाद पाया। इसी तरह हम इन असार अपवित्र विषय रसोका त्याग करके अपने आत्माके सहज ज्ञानस्वरूपका रस पिये तब ऐसा आनन्द आयगा कि है कोई मुझमे वैभव ! उस वैभवका जिन्हें परिचय है उन्हें सर्वज्ञ माननेमे फिर देर नही लगती।

विपक्षव्यावृत्ति न होनेसे वक्तृत्वसामान्य हेतुसे असर्वज्ञत्वकी असिद्धि— सर्वज्ञका अभाव मानने वाले सिद्धान्तवादी एक यह युक्ति रख रहे हैं कि चूंकि तुम्हारा माना हुआ सर्वज्ञ वक्ता है बोलता है, उनका उपदेश होता है, दिव्यध्वनि खिरती है। जो वक्ता होता है वह सर्वज्ञ नही हो सकता। जैसे कि गलियोमें चलने फिरने वाले मुसाफिर लोग बोलते रहते हैं तो ये सर्वज्ञ कहां हैं ? तो इस सम्बन्धमे वक्तृत्व हेतुके तीन विकल्प किए थे, उनमेसे तृतीय विकल्पके सम्बन्धमें बात चल रही है। क्या वक्ताका अर्थ सामान्यरूपसे किया गया है। ? यथार्थ वक्ता, अयथार्थ वक्ता इन विकल्पोको न रखकर बोलना मात्र यह वक्तृत्वका भाव है। इस सम्बन्धमे भी बहुत कुछ प्रकाश डाल दिया गया। कुछ और भी सुनो ! यह व्याप्ति कि जो जो बक्ता होता है वह सर्वज्ञ नही होता। यहां अनैकान्तिक दोष है, क्योकि अर्थात् वक्तापन सर्वज्ञके साथ भी रह सकता और असर्वज्ञके साथ भी रह सकता है। इस कारणसे विपक्षसे हेतु हट

जाय इसकी गुञ्जायश नही है। जैसे वक्ता सर्वज्ञ भी हो सकता, असर्वज्ञ भी हो सकता। तो वक्ता क॰ करके इस सर्वज्ञको ही सिद्ध करनेकी युक्ति सङ्गत न होगी। इसका अभी और वर्णन चलेगा। सर्वज्ञ होकर भी, विशेषज्ञ होकर भी, वीतराग होकर भी प्रभुकी दिव्यध्वनि होती है, देशना होती है इस बातको भी बताया जायगा।

सर्वज्ञत्वके अनुपलम्भसे वक्तृत्वसामान्यकी विपक्षव्यावृत्ति माननेका शङ्का-समाधान—वक्तृत्वके अनैकान्तिक दोष दूर करनेके यत्नमे शङ्काकार कहता है कि सर्वज्ञमे वक्तृत्व नही पाया जाता इस कारण विपक्षसे व्यावृत्ति बन जायगी अर्थात् जो बोलता है वह सर्वज्ञ नही है, यह बात सिद्ध हो जायगी। तो समाधान देते है कि सर्वज्ञमे वक्तापन नही है यह तुमने जाना तो कैसे जाना? क्या तुमने सब जीवो को देख डाला कि ये सब जीव बोलते है और सर्वज्ञ नही है। यदि देख डाला तो तुम ही सर्वज्ञ हुए। और ऐसा देखना तो केवल सर्वज्ञके द्वारा ही सम्भव है। सब जीवोको कोई सर्वज्ञ नही है यदि कोई ऐसा देखे तो वही सर्वज्ञ है। सर्वज्ञके द्वारा ही सबकी सर्वज्ञता या असर्वज्ञताका निर्णय किया जा सकता है। यदि कहो कि सर्वज्ञ कोई है ही नही, इसलिए सर्व सम्बन्धी अनुपलम्भ सिद्ध है अर्थात् कोई भी सर्वज्ञ नही है। यह जाननेको कोई जरूरत नही कि कोई सबको जान ही ले। यह सर्वज्ञ नही है, इस प्रकार सर्वत्र सर्वज्ञका अभाव जाने कोई, आवश्यक नही है। नही जाना जा रहा है सर्वज्ञ इससे सिद्ध है कि सर्वज्ञ तो सबके द्वारा नही जाना जा रहा है या केवल तुम्हारे ही द्वारा नही जाना जा रहा है। यदि तुम्हारे द्वारा नही ज्ञात है लोक मे कोई प्रभु होता है सर्वज्ञ होता है तो तुम्हारे न जाननेसे तो निर्णय न बन जाय तुम तो दूसरेके चित्तकी बातको भी नही जानते। तो तुम जो जो नही जानते उस उसका अभाव है क्या? और, सबके द्वारा सर्वज्ञकी अनुपलब्धि है तो यह बात तब सम्भव है जब उन सबको भी जान लिया जाय जिन सबको असर्वज्ञ बता रहे हैं। तो सर्वज्ञकी सिद्धि अनुमानसे भी नही हो सकती।

कार्यकारणादि व्यवस्था होनेसे सर्वानुमानोच्छेदके उपालम्भका अनवकाश—शङ्काकार कहता है कि ऐसे विकल्पोको देकर यदि हमारा मुह बद करोगे तो हम किसी भी अनुमानको सिद्ध न होने देंगे। जो भी तुम अनुमान बनाओगे और उसका हेतु बनाओगे तो उसमे विकल्प कर बैठेंगे यह हेतु सर्व सम्बन्धी है? हमारे द्वारा ज्ञात है धुवा जिससे अग्नि जानी जा रही है, या सबके द्वारा ज्ञात है धुवा जिस से अग्नि जानी जा रही है वह दोष यहा भी दिया जा सकता है। समाधान यह है कि जब सर्वज्ञके ज्ञानका और हमारे ज्ञानसे कार्य कारण नही है, व्याप्य व्यापक नही है तो हम अपनी अनुपलब्धिके कारण अपने ही ज्ञानके बलपर कैसे यह निषेध कर सकते हैं कि सर्वज्ञ नही है। अग्निक और धुवाका कार्य कारण सम्बन्ध है। तब अग्नि न होनेपर धुवाका निषेध किया जा सकता है या धुवाको निरखकर अग्निका

कि शास्त्रको सर्वज्ञने प्रणीत किया है, सर्वज्ञसे लाया गया है यह शास्त्र अथवा किसी मनुष्य द्वारा यह रचित है अथवा अनादिसे है, अपौरुषेय है, किसीने बनाया ही नही है, ये तीन ही कल्पनायें तो आगमके सम्बन्धमे की जा सकती हैं। यदि सर्वज्ञके द्वारा प्रणीत है तो यह बात तो तुमने ही मान ली कि सर्वज्ञ है, सबका जानने वाला है कोई। और, जो सबको जानने वाला है, जिसने कि आगमकी रचना की है बस उसी को हम सिद्ध कर रहे हैं कि होता है कोई सर्वज्ञ। यह कैसे कहा जा सकेगा कि सर्वज्ञ प्रणीत तो है आगम, पर वह सर्वज्ञ सबको जानता नही है। यदि यह कहो कि किसी अन्यके द्वारा प्रणीत है। तो जो स्वय सर्वज्ञ नही है, स्वय ज्ञाता नही है सकल तत्त्वो का तो वह आगम तो यो समझिये कि मुसाफिरो द्वारा बनाया गया है उसमें प्रमाणता नही आ सकती।

आगमकी अपौरुषेयताकी असिद्धि – यदि कहो कि अपौरुषेय आगम तो निर्दोष हुआ करता है, हम उस आगमसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करेंगे जिस आगमको किसीने बनाया ही नही है। मीमासक सिद्धान्तमे आगमको अपौरुषेय माना है, बनाया ही नही है किसीने। तो यह बतलावो कि वह आपका आगम किसीको तो सर्वज्ञका अभाव बतादे तो किसीको और कुछ भी अर्थ बता दे, किसीको कहे कि इसका स्वरूप अर्थ है, किसीको कहे कि इसका प्रेरणा अर्थ है, भावना अर्थ है। वह आगम सबको एक बात क्यो नही बता देता ? अथवा इसका क्या कारण है कि महर्षियोको यह आगम सब कुछ अपना निचोड बतादे और दूसरेको न बताये क्योकि आगमका सम्बन्ध तो सबके साथ है। जो भी उसे ले, ग्रहण करे, सुने, निकट आये अथवा सर्वत्र भावसे सम्बन्ध है, फिर किसी महर्षिको ही उसका ज्ञाता है, आगम और किसीको अजानकर रहने दे ऐसा क्यो हो जाता है ? देखिये ! जानने वाले लोग स्वय अपनी योग्यताके अनुसार अपने ही बलसे जान लेते हैं ना, और वह योग्यता यदि मान लो जाय, ज्ञानका स्वभाव यदि मान लिया जाय कि वह तत्त्वको जनाता है, धर्मादिक पुण्यपापको जनाता है तो शङ्काकारके लिए अनिष्ट आपत्ति है। शङ्काकार धर्म आदिक तत्त्वोका ज्ञाता किसी पुरुषको नही बता सकता। चाहे कोई पुरुष प्रमाणसे ज्ञानोसे पदार्थोंके ज्ञानका सग्रह कर करके सारे विश्वका ज्ञाता बने तो बन जाय, वहाँ कोई आपत्ति नही मानी, किन्तु धर्म आदिक अदृष्ट तत्त्वोका ज्ञाता कोई नही हो सकता है। उसका उपदेश तो अपौरुषेय आगमसे मिलता है, यह अभिमत है। अपौरुषेय आगम फिर क्यो नही सबको अपना अर्थ नही बता देता है। जैसे दीपक जला, तो क्या यह कभी देखा है कि चौकीको तो प्रकाशित करदे और उस चौकीपर रखे हुए ग्रन्थको न प्रकाशित करे ? किसीको प्रकाशित करे किसीको न प्रकाशित करे, यह तो नही देखा जाता। प्रदीपका सन्निधान प्रत्यासत्ति जब इस पदार्थोंकी इन सबके साथ है तो सभी प्रकाशित होंगे। तो आगमका सम्बन्ध जब सबके साथ है द्रव्यतः और भावत तब क्यो न यह आगम समस्त पुरुषोको अपना अर्थ जनादे।

अविसंवादित्वसे प्रमाणत्वकी व्यवस्था होनेसे अपौरुषेयत्वकी प्रमाणता मे अकारणता —यह आगम विवाद क्यो कराता है ? इसका यह अर्थ है, अजी इस का यह अर्थ है। कोई कहता है कि देखो—इसने स्वरूप बता दिया, कोई कहता कि इसमें आगमने स्वरूप नही बताया, उसका काम है लोगोंको प्रेरणा करे, भक्तिमे यज्ञमे, इतना ही मात्र उसका अर्थ है। इससे सिद्ध है कि आगम अपौरुषेय कुछ नही है, जिसमे अविसम्वादी तत्त्वका वर्णन है। जिसमे विवाद न आये वह तो प्रमाणभूत है और जिसमें विवाद है, बाधा है वह अप्रमाण है। प्रमाणके लक्षणमें विवाद नहीं रहता है। यज्ञ आदिकको बताये सो प्रमाण है अथवा सुगति आदिक फलोको दे सो प्रमाण है। प्रमाणका यह लक्षण नही है। प्रमाणका लक्षण है जहाँ सशय, विपर्यय, अनध्यवसाय कोई दोष न हो, यथार्थ प्रकाश हो, यथार्थ ज्ञान हो उसे प्रमाण कहा है।

आगममे सर्वज्ञके अभावके वर्णनका अभाव अब तनिक इस ओर भी ध्यान दें कि आपके अपौरुषेय आगममें भी कोई ऐसा वचन नही है कि जिसने सर्वज्ञका निषेध किया हो। देख डालो सब। बल्कि सर्वज्ञ है इसकी तो झलक मिलेगी, पर सर्वज्ञ कोई है नही इसके वचन तुम्हारे अपौरुषेय आगममे नहीं मिलते। अनेक कथन आते—विश्वतोमुख, विश्वतो चक्षु ये शब्द सर्वज्ञताको ही सिद्ध करते हैं। कितने ही अलङ्कारोसे कुछ वर्णन किया गया था किसी जमानेमे एक ग्रामीण भाषामे, अब कोई उसका मर्म न जाने और जिस ढङ्गमे ही कहा गया है जिन शब्दोमे ही कहा गया है उनके सीधे अर्थमे ही कोई मूर्ति कल्पित करले, अर्थ बनाले तो यह तो एक तथ्यसे हटनेकी बात हुई। कोई मास्टर बच्चोसे कहता हो कि देखो, हमने बहुतसे गधोंको आदमी बना डाला इस बातको कोई मुसाफिर सुनले और कहने लगे वाह, ये मास्टर साहब तो बडे ही होशियार हैं, ये तो इन चार पैर वाले गधोंका आदमी बना देते हैं, ऐसा यदि वह अर्थ लगाये तो क्या यह कोई भली बात है ? यह तो एक विडम्बनाकी बात है। एक सेठ मरते समय अपनी बहीमे लिख गया कि देखो बेटो ! कदाचित् तुम कभी गरीब हो जाओ तो इस मन्दिरकी शिखरसे, माघ वदी चतुर्दशीको शामके ४॥ बजे धन खोद लेना। सेठ तो गुजर गया, लडके गरीब हो गए, देखा बहीमे लिखा हुआ। वह माघ वदी चतुर्दशीको सामके ४॥ बजे बस मदिरकी शिखर पर चढ गया कुदाली लेकर और उसे खोदने ही वाला था कि उसे एक सज्जनने देख लिया। पूछा क्या कर रहे हो ? उसने बताया कि शिखर खोदने जा रहे हैं। क्यो ? धन निकालेंगे। अरे उतर नीचे, वहाँ कहाँ धन है ? देखो न, इस बहीमे लिखा है। अरे पागल, यदि धन वहाँ शिखरमे होता तो माघ वदी चतुर्दशीको और ४॥ बजे सामको ही क्यो खोदनेको कहा जाता ? वह तो जब चाहे तब खोदकर निकाला जा सकता था। देख इस शिखरकी छाया तेरे आङ्गनमे जहा पड रही है वहाँ खोद, जब वहाँ खोदा तो धन पा लिया। तो शब्दका भाव तो समझना चाहिए।

शब्दोके लक्ष्यभूत भावके जाननकी आवश्यकता—अनेक शब्द इस ढङ्ग

में बोल दिये जाते हैं कि जिससे जाहिरमे निन्दा साबित होती है मगर मर्म देखो तो, उसम प्रशसा भरी है। तो यो ही अनेक तथ्य किसी भाषामे बने हुए है, और उनका मात्र एक वही अर्थ निकालें तो उसका मर्म नहीं पा सकते। एक वचन है ऊर्ध्वमूल-मध:शाख" जिसका मूल तो ऊपर है और शाखायें नीचे हैं ऐसा है परम पुरुषका स्वरूप है। बतलावो सीधा शब्द सुननेमे तो यो लगता है कि कोई ऐसी भी चीज होती है कि जिसकी जड तो ऊपर हो और शाखाये नीचे फैलती हो। कोई वृक्ष देखा है क्या ऐसा ? लेकिन मर्म देखो ! यह परम पुरुष, यह ज्ञानी पुरुष यह मनुष्य इसकी जड तो ऊपर है, जड उसे कहते है जिससे आहार लिया जाय। मिट्टीका, पानीका आहार लेते हैं वृक्ष तो उन जडो लेते है। मूल मायने जड। जो मनुष्यका मूल है यह मुख जिसमे आहार लेता है, जिससे मनुष्य पनपता है। जैसे वृक्षकी शाखाओको खूब सीचा जाय और जडोंमें पानी न सीचा जाय तो वह वृक्ष ठहर नही सकता। और, वृक्षकी जडोमें ही पानी दिया जाय, शाखावोमे एक बूंद भी पानी न दिया जाय तो भी वह वृक्ष हरा भरा रहता है। ऐसी ही मनुष्यकी बात है। इसकी जडोको आहार जब मिलता है तो यह हरा भरा बना रहता है। तो इस परम पुरुषके ज्ञानी पुरुषके जो कि ज्ञानवान है उस प्राणीका, (ये ही तो उस पुरुषके रूपक हैं तो उनमे श्रेष्ठ मनुष्य हैं) इस मनुष्यका मूल तो ऊपर हैं और शाखाये नीचे हैं। ये दो पैर फैल गए ये दो हाथ फैल गये और इनकी अगुलियाँ फैल गईं, ये तो शाखायें और टहनिया हैं, और ऊपरका मुख, मस्तक मूल है जिसके द्वारा यह अपनी खुराक पाकर हरा भरा रहता है। तो यह इस पुरुषका रूपक है। जहाँ लिखा है विश्वतोमुख। चारो ओर उसका मुख है। विश्वत चक्षु चारो ओर उसके नेत्र है, तो क्या है इसका मर्म ? अरे वह निष्कलङ्क आत्माका ही चित्रण है कि उसका ज्ञान चारो ओरसे हो रहा है। सब लोकालोक जानते है, सब प्रदेश जानते हैं। आत्माका रग-रग पूर्ण कलशवत् भरित ज्ञानमय है, तो सर्वज्ञकी सिद्धि करने वाले अनेक वचन अपौरुषेय माने गये आगममें भी निकल आयेगे, पर सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करने वाला कोई वचन उस अपौरुषेय आगममे भी न मिलेगा। तो आगममे भी यह नही कह सकते कि कहीं सर्वज्ञ नही है।

उपमान प्रमाणसे भी सर्वज्ञत्वके अभावकी असिद्धि - सर्वज्ञका अभाव उपमान प्रमाणसे भी सिद्ध नही कर सकते, क्योकि उपमान और उपमेय जब दोनो सामने हो तब तो उपमा चलती है, यह रोझ गायके समान है तो रोझ प्रत्यक्षमें है, गाय भी प्रत्यक्षमें आयी हो सामने हो तो तुलना कर सकते हैं। गाय सामने न भी हो तो प्रत्यक्ष की हुई गाय तो है उसका स्मरण करके तुलना की जा सकती है। सो जिसकी उपमा दी जाय, जिससे उपमा दी जाय वे दोनो प्रत्यक्षमे आये हों तो वहाँ उपमान प्रमाण चल सकता है अन्यथा नही। लेकिन न तो यहाके सारे पुरुषोका प्रत्यक्ष हो सका कि जिसको हम उपमान बना सके कि इन सबकी तरह सर्वज्ञ भी,

प्रभु भी असर्वज्ञ है तो न तो इन सब लोगोका प्रमेय प्रत्यक्ष है और जिसको तुम उपमेय बनाते हो न उसका प्रत्यक्ष है। उपमेयका भी अर्थात् सर्वज्ञका भी प्रत्यक्ष नही है और उपमानका भी अर्थात् समस्त देश, समस्त काल सम्बन्धी समस्त जीवोका भी प्रत्यक्ष नही है। यदि प्रत्यक्ष हो जाय दोनोका कि जो उपमान प्रमाण बनानेके लिए जरूरी है, तो सर्वज्ञ अपने आप सिद्ध हो जायगा। फिर सर्वज्ञके लिए उपमा देना व्यर्थ है। तो उपमानसे भी यह बात सिद्ध नही होती कि लोकमे कही सर्वज्ञ नही है।

ज्ञानस्वभावके निर्णयसे सर्वज्ञत्वके अवगमकी सुगमता देखो—आत्मा का ज्ञानस्वभाव जिसने यथार्थरूपसे मान लिया है, ज्ञानका काम है जानना उस जानन का विषय सत् पदार्थ है। जो सत् हो उसे जाने। ज्ञानमें यह स्वभाव नही है कि सामनेकी जाने, इतनी दूरकी जाने। ज्ञानका ज्ञायकत्वसे सम्बन्ध है। सत् हो वह ज्ञान मे आता है, ऐसा ज्ञानस्वभाव जिसकी दृष्टिमे हो उसे सर्वज्ञके माननेमें अडचन नहीं हो सकती है। स्वभाव है यह और स्वभाव सीमा लिए हुए भी नही क्योंकि उसका विषय सत् है। ज्ञान अभिमुख सत्को या किसी अन्य मर्यादित विशेषणसे विशिष्ट सत् को ही जाने ऐसी बात स्वभावमे नहीं है। इस कारणसे ज्ञानस्वभावका सही परिचय मिलनेपर सर्वज्ञका विश्वास होगा। तो सर्वज्ञकी सिद्धि युक्तियोसे अनुमानसे इन सबसे भी करलें और उसकी सिद्धिमे अधिक साधक है अपने आपके ज्ञानस्वभावकी प्रतीति। वह बने तो शीघ्र ही यह निर्णय हो सके कि कोई पुरुष ऐसा है जो निरावरण है अतएव सर्वज्ञ है।

अर्थापत्तिसे भी सर्वज्ञत्वके अभावकी असिद्धि सर्वज्ञका जो अभाव मानता है उसके प्रति यह कहा जा रहा है कि सर्वज्ञका अभाव न तो प्रत्यक्षसे सिद्ध हो सका, न अनुमानसे, न आगमसे और न उपमानसे। मीमांसा सिद्धान्त वस्तु सद्भाव के विज्ञानके लिए ५ प्रमाण मानता है—प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान और अर्थापत्ति। तथा जहा ये ५ प्रमाण नही लगते है वहा माना है अभाव प्रमाण। इस प्रकार ६ प्रमाण माने गए है जिनमे पहिले ४ प्रमाणोसे तो सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नही कर सके। अब कह रहे हैं कि अर्थापत्तिसे भी सर्वज्ञके अभावका बोध नही होता अर्थापत्ति उसे कहते हैं कि जिसके बिना जो न हो उसका सद्भाव दिखाकर उस दूसरे पदार्थका सद्भाव बताना। जैसे अग्निके बिना धुवां नही होता, तो धुवा बताकर अग्निका ज्ञान कराना यह अर्थापत्ति है। तो अर्थापत्ति तो तब बने जब दोनों पदार्थ अर्थात् साध्य और साधन ये दोनो प्रमाणसे ज्ञात हुए हों। कोई भी पदार्थ जान लिया गया हो, जो सर्वज्ञके अभावके बिना न हो सके तो उस पदार्थको बताकर कहा जा सकता है कि सर्वज्ञका अभाव है, पर ऐसा कोई पदार्थ ही सम्भव नही जो सर्वज्ञ के अभाव बिना न हुआ करे। यदि आगमकी दोहाई देते हो कुछ, आगम ऐसा पदार्थ जो सर्वज्ञके अभावके बिना नही हो सकता, सो रखो आगमको प्रमाणता तो तब ही

सम्भव है जब गुणवान पुरुषके द्वारा आगम बनाया गया है यह सिद्ध किया जा सके। उसमे भी यही सिद्ध है कि कोई सर्वज्ञ है अन्यथा यह आगम कैसे मिल जाता। आगम अपौरुषेय तो होता नही। किसीने न बनाया हो और अनादिसे आगम शास्त्र चले आये हो ऐसा सम्भव नही है। यह तो सम्भव है कि उससे पहिले किसी अन्य सर्वज्ञसे आगमकी प्राप्ति हुई उससे पहिलेके अन्य सर्वज्ञसे आगमकी प्राप्ति हुई, पर यह सम्भव नही कि कोई आगम बिना बनाये, बिना गुणवान पुरुषकी रचना किये गये हो गया हो यह बात सम्भव नही है। तो अर्थापत्तिसे भी सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नही होता। तथा एक बात तो प्रथम यह है कि अर्थापत्ति कोई प्रमाणान्तर नही है अनुमान प्रमाणमे ही अर्थापत्ति गर्भित है।

अभाव प्रमाणसे भी सर्वज्ञत्वके अभावकी असिद्धि—जब किसी भी प्रमाणसे यह सिद्ध न किया जा सके कि सर्वज्ञका अभाव है तब आखिरी बात सर्वज्ञत्व न मानने वाला यह कह रहा है कि अभाव प्रमाणसे तो सर्वज्ञका अभाव जान लिया जायगा। उत्तरमे कहा जा रहा है कि अभाव प्रमाणसे भी सर्वज्ञका अभाव जान लिया जायगा। उत्तरमे कहा जा रहा है कि अभाव प्रमाणसे भी सर्वज्ञका सिद्ध नही है अभावका अर्थ है असत्त्व रहना। यह अभाव प्रमाणसे भी सिद्ध नही, क्योकि पहिले अभाव प्रमाण ही कुछ नही है। अभाव प्रमाणके सम्बन्धमे उसकी सिद्धिमे कहा है कि इन तीन बातोसे सम्बन्ध है अभाव प्रमाणके स्वरूप बननेका। एक तो किसी वस्तुका सद्भाव ग्रहण कर लें, दूसरे प्रतियोगीका स्मरण करें अर्थात् जैसा अभाव बताना है उसका स्मरण करे और फिर इन्द्रियकी अपेक्षा न करके मानसिक नास्तित्वका ज्ञान बने तो अभाव बनता है। जैसे इस कमरेमे घडा नही है यह कैसे जाना जायगा ? इसमे तीन बाते आ गयी। एक तो उस कमरेका ज्ञान बने, उसका ग्रहण हो और घडेका स्मरण हो, फिर इन्द्रियकी अपेक्षा बिना मनसे ही उसके नास्तित्वका ज्ञान हो, तो अभावप्रमाण बनता है। अभावप्रमाणका निर्माण इन तीन कारणोके बिना नही हो पाता। ऐसा स्वय मीमासा सिद्धान्तमे कहा है। जिस आधारमे किसीका अभाव बताना है उस आधारका ज्ञान होना अति आवश्यक है। और, जिसका अभाव सिद्ध करना है उसका स्मरण भी अनिवार्य है। फिर जो मनसे नास्तित्व सम्बन्धी अवबोध होता है उसका नाम है अभाव प्रमाण। इन तीन झलकोके बिना अभाव प्रमाण कभी बनता हो तो बतायें। कमरेमे घडा नही है यह कमरेमें घडा नही है यह समझनेके लिये कमरेका ज्ञान तो चाहिए। और घडेका स्मरण चाहिए, तब यह मानसिक ज्ञान बनता है कि घडा नहीं है तो इस दुनियामे सर्वज्ञ नही है। यदि ऐसा सर्वज्ञका अभाव सिद्ध किया जाय अभाव प्रमाणमे तो ये तीन बातें चाहिएं। प्रथम तो सर्वज्ञके अभावका आधारभूत यह सारा विश्व है उसका ज्ञान चाहिए फिर उस सर्वज्ञ पदार्थका स्मरण चाहिए। जब ये दो बातें बनें तब मानसिक ज्ञान यह हो सकता है कि सर्वज्ञ नही है। किन्तु यहा दोनो ही बातें नहीं बन

रही, समस्त लोकमे सर्वज्ञ नही है। यहा सर्वज्ञके अभावका आधार क्या है जिसका निषेध किया जा रहा है ? उसका अधिकरण सारा विश्व बन गया है तो सारे विश्व का ज्ञान यहा हम आप किसीके भी नही है। अगर हो जाय जो कि अभाव प्रमाणसे सिद्ध करनेके लिए अनिवार्य है, हो जाय सारे विश्वका ज्ञान तो अब निषेध किसका करते ? वही सर्वज्ञ बन गया जब उसने सब कुछ देख लिया। दूसरी किरण है प्रतियोगीका स्मरण होना, जिसका अभाव सिद्ध किया जा रहा है उसकी याद होना। तो किसी भी समय किसीने भी किसी भी जगह सर्वज्ञको जाना ही नही हैं असर्वज्ञवादमे सर्वज्ञका ज्ञान कहा है ? तो जब सर्वज्ञ कभी जाना ही नही गया तो फिर उस का स्मरण करके निषेध किया जाना चाहिए था सो यह भी नहीं हो सकता, सर्वज्ञ पहिले जाना गया होता और फिर निषेध किया जाता कि सर्वज्ञ नहीं है तब तो मानसिक नास्तित्व ज्ञान बन जाता। पर न तो जिसका निषेध किया जा रहा है उसका ज्ञान है और जिसका निषेध किया जा रहा है न उसके आधारका ज्ञान है तब फिर निषेध क्यो होगा, अभाव क्यो होगा। क्या कभी कमरेके जाने बिना घटका अभाव सिद्ध किया जा सकता है ? और घटका स्मरण किए बिना जो कि घटके पहिले जानकारी बिना सम्भव नही है क्या घटका अभाव बताया जा सकता है। तो अभाव प्रमाणसे भी विश्वमे कही सर्वज्ञ नही है यह सिद्ध नही किया जा सकता।

तुच्छाभावरूप अभाव प्रमाणकी असिद्धि—भैया ! अभाव प्रमाण तो स्वय असिद्ध है, उसकी उत्पत्ति भी सिद्ध नही, उसका स्वरूप सिद्ध नही। जो भी विषय है वह सब प्रमाणका विषय है। चाहे कोई सद्भावरूपसे विषय बने अथवा कोई अभावरूपमें बने, प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोसे ही सद्भाव भी ज्ञात होता है और अभाव भी ज्ञात होता है और अभाव भी ज्ञात होता है। अभाव प्रमाण कोई तुच्छाभावरूप नही है किन्तु अभावका, आधारभूतका प्रतियोगी कुछ अभाव है उस भावरूप अभाव जाना जाता है। पदार्थ चूकि भावभावात्मक है, तो जैसे पदार्थोंसे भावाश ज्ञात होता हैं इसी प्रकार प्रमाणोसे अभावाश भी ज्ञात होता है। अभाव नामक प्रमाण कोई स्वतन्त्र नही है तब फिर अभाव प्रमाणसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करनेकी बात तो बन ही नहीं सकती। तो इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि सर्वज्ञकी सत्तामे बाधा देने वाला प्रमाणका अभाव है अथवा कोई बाधा न दे सके, साधक प्रमाणका सद्भाव है, अत सर्वज्ञका अभाव नही है।

सर्वज्ञत्वके वर्णनमे मूल आधारकी संगतिका स्रोत—यह सर्वज्ञत्वके प्रमाणकी बात कई दिनोसे चल रही है, यह किस बातपर प्रकरण उठा ? इस ग्रथका तो मूल कार्य प्रमाणकी सिद्धि करना है, क्योकि प्रमाणसे ही पदार्थकी सिद्धि होती है। और, प्रमाणाभाससे पदार्थकी असिद्धि रहती है। पदार्थकी ससिद्धि करना, पदार्थका यथार्थ परिज्ञान कर लेना यह कल्याणके लिये आवश्यक है। तो उन सब

आवश्यक तत्त्वोंके ज्ञानका मापक जो प्रमाण है, उस प्रमाणके स्वरूपका इसमें वर्णन है। जो स्वपर अर्थका निर्णय कराये उसे प्रमाण कहते हैं। यहाँ स्वका अर्थ आत्मा का नहीं किन्तु वह ज्ञान स्वज्ञानस्वरूपका भी निर्णय रखता है और पर पदार्थका भी निर्णय रखता है। जिसे आत्माके स्वरूपका बोध नहीं है, अज्ञानी जन हैं वे भी जितना ज्ञान करते हैं वे इस ही पद्धतिसे करते हैं कि जो भी पदार्थ जाना गया उस पदार्थका भी वहाँ निर्णय है कि यह यही है और स्वज्ञानका भी निर्णय है कि पदार्थ विषयक यह ज्ञान मेरा सही है भीतरमे यह भी ध्वनि है कि जो जाना गया, जो ज्ञान बना वह ज्ञान ठीक है। यदि अर्थविषयक ज्ञानमे संशय रखा जाय कि मेरा ज्ञान ठीक है या नहीं है तो उस ज्ञानके विषयभूत पदार्थका ज्ञान भी डावाडोल ही समझिये। तो यो स्वपर व्यवसायी ज्ञान प्रमाण होता है, उसमे स्वव्यवसाय, परव्यवसायका निर्णय करते हुए उसके उत्पन्न कारणोपर विचार किया जाने लगा स्वरूप निर्णयके बाद जब बहुतसे विवादोको सुलझा दिया कि भाई प्रकाश, पदार्थ, आदि अनेक पदार्थोंका जुड जाना यही प्रमाण नहीं है, अथवा इन्द्रिय पदार्थका सम्बन्ध हो जाना यह प्रमाण नहीं है, इन्द्रियका व्यापार होना यह प्रमाण नहीं है। प्रमाण तो ज्ञान ही है, उस ज्ञानकी उत्पत्तिके कारणोपर विचार किया गया, तो जैसे लौकिकज्ञान ज्ञानीजन एक सीधा समझ रहे हैं उन—उन प्रश्नोका भी अवतार हुआ है। ज्ञान तो पदार्थोंसे उत्पन्न होता है। तभी तो देखो यह व्यवस्था बनी है कि जिस पदार्थसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान उस पदार्थको ही जानता है अन्यको नहीं। तो किसीने बात रखी कि ज्ञान प्रकाशसे उत्पन्न होता है, प्रकाश बिना हम आपका कही ज्ञान तो नहीं होता। तो यो उत्पत्ति कारणोपर विचार किया गया तो वहा भी तर्क वितर्कके पश्चात् यह निर्णय पाया गया कि ज्ञानकी उत्पत्ति किसी परद्रव्यसे नहीं होती, पदार्थसे नहीं होती प्रकाशसे नहीं होती। प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था तो निज निज ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम रूप योग्यतासे होती है।

प्रमाणके भेदोमे मुख्य लक्ष्य—उस प्रमाणके स्वरूप आदिकपर विचार करके जब भेद बताये जाने लगे तो भेद पद्धति तो वही सही है कि जिसका भेद किया जाय उसका कोई अंश न छूटे और उसके अतिरिक्त अन्य कोई चीज सम्मिलित न हो वह है भेदकी पद्धति। तो प्रमाणके भेद प्रत्यक्ष और परोक्ष इन दो रूपोमे किये गये। प्रत्यक्ष नाम है स्पष्ट ज्ञानका। विशद ज्ञानको प्रत्यक्ष कहते हैं, मतिज्ञानकी जो ५ पर्यायें हैं, मति, स्मृति, संज्ञा चिन्ता अनुमान (यहाँ अनुमानके मायने है स्वार्थानुमान), इन पाँचोमे जो प्रथम भेद है वह प्रत्यक्षज्ञान है और शेषके चार भेद परोक्ष हैं किन्तु यह सांव्यवहारिक है। उत्पत्तिकी दृष्टिसे तो परोक्षज्ञान है किन्तु मतिरूप मतिज्ञानमे एक देश विशदता है उसकी दर्शन शास्त्रमे आवश्यकता होती है, सो उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा गया है नियमोमे इस हीके आधारपर अधिकतया की जाती है, वहाँ इस सांव्यवहारिक प्रत्यक्षको विशेषरूपसे कहा गया है। तब प्रत्यक्षके दो भेद हुए—एक

व्यवहारिक प्रत्यक्ष, दूसरा मुख्यप्रत्यक्ष । मुख्यप्रत्यक्ष अखिल ज्ञानावरणके विश्लेषसे होता है, यह सामान्य लक्षण बताया है, उस मुख्यप्रत्यक्षमे तीन ज्ञान कहे हैं, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान । किन्तु वर्णन होता है तो मुख्यका लक्ष्य करके और चोट भी लगा करती है, तो इन तीन ज्ञानोमे विशेष वक्तव्य बना केवलज्ञान, और वही मुख्यप्रत्यक्षमे मुख्य है । तो ऐसा कोई ज्ञान भी होसकता है क्या कि जो समस्त पदार्थों को जाने, इस सम्बन्धमे अनेक युक्तियोसे बात बताई गई है पर एक जो कि अपने प्रयोगमे भी लाभदायक है उसे अवश्य एक बार उतार कर देखें । एक अपने अनुभवमे उसे परखें कि ज्ञानका क्या कार्य है और वह ज्ञान किस बाह्य स्थितिमे कितना विवश होता है और किस स्थितिमे यह ज्ञान विवशतामे दूर हो जाता है जो कि अनुभव सब प्रमाणोका शिरताज है । लोकमे जो भी बात अनुभवमें उतरती है उसको बहुत महत्त्वसे देखते हैं ।

श्रावक बोधसे अनुभूत अवगमका महत्त्व—कभी कानो सुनी बात भी गलत हो जाती है, किन्तु अनुभवमे उतरी बात ज्ञानमे घुलकर स्पष्ट होती है । प्रायः लोग इसको तो स्पष्ट ही कह देते है कि अरे कानो सुनी बात है इस पर क्या ध्यान देते हो, उसकी यथार्थतापर दृढ भाव नहीं रहता । और, सुनी बातका तो इतना भी गलत अर्थ निकाला जा सकता है कि जो उस बातसे बिल्कुल उल्टा हो, और फिर एक एक शब्दकी मोडमे, धीरे बोलनेसे कहीं ज्यादह तेज बोलनेसे भी उनका अर्थ जुदा-जुदा हो जाता है । जैसे एक घटना ही थी इसी नगरकी कि किसी लडकेके पास एक खोटी चवन्नी थी । वह उसे बहुत दिनोसे चलानेके यत्नमें था, पर चल न रही थी । एक जगह मिठाईकी दूकानमे उस लडकेने मिठाई ली तो हलवाईने उस चवन्नीको रखली । वह खुशीके मारे यह कहता हुआ भगा कि चल गई, चल गई चल गई । वह समय था साम्प्रदायिक दगोका । बहुत बहुत दगे आस पासके नगरोमें हो रहे थे । तो उस लडकेके उन शब्दोको सुनकर दूकाने बद होने लगी, धीरे धीरे मारे बाजारकी दूकाने बद हो गई । शहरमें आतक फैल गया । बादमे किसीने उस लडकेको बुलाकर मामला पूछा, तो उसने सही सही बात बता दी । तो कानो सुनी बात भी झूठ हो सकती है ।

चाक्षुष बोधसे अनुभूत अवगमका महत्त्व आखों देखी बात भी झूठ हो सकती है इस बारेमे एक बार एक साधु भिक्षा मागकर अपने घर वापिस जा रहा था । रास्तेमे उसे एक लड्डू गिर पडा नाचे और वह भी मलपर । सो उसने उठा तो लिया, पर यह सोच कर कि उठाते देखनेपर लोग यह समझ न सकें कि इस मल पर से लड्डू उठाया इसलिये उसने उस मल पर कुछ फूल बिखेर दिये । जब लोगोने देखा कि यह साधु इस जगह फूल चढाता है तो लोगोने सोचा कि यह साधु इस जगह फूल चढाता है तो लोगोने सोचा कि इस जगह कोई भगवान होगे सो उन्होने भी उस जगह फूल डाल दिये । यो जो भी आता जाय, बहुतसे लोगोने उस जगह फूल डाल

दिये तो फूलोका वहाँ एक बडा ढेर इकट्ठा हो गया। जब कोई बुद्धिमान पुरुष निकला तो पूछा कि भाई यह फूलोका इतना बडा ढेर कैसा ? तो किसीने बताया कि यहाँपर भगवान बैठे हैं।...जरा देखे तो सही कौनसे भगवान है जब फूलोको उठाया और देखा तो मल पडा था। अब तो सभी लोग अपनी नाक पकडकर वहाँसे चले गए। तो आँखो देखी बात भी झूठ निकली पर अनुभूत बात झूठ नहीं लगती।

अनुभूत अवगमकी दृढताका एक दृष्टान्त - अनुभवमे आयी हुई बातकी दृढता देखो। दो सौतेली स्त्रियोमे विवाद हो गया एक लडकेपर कि यह लडका मेरा है। दोनो ही कहे कि यह लडका मेरा है। अदालत हुई, वहाँ युक्तियाँ दी गई जब निर्णय न हो सका तो राजाने कहा कि कल करेंगे इसका निर्णय और एक दो सिपाहियोसे बोल दिया कि देखो कल हम तुम्हे जो आर्डर दे सो उनको मानना नही पर उस तरहकी तैयारी दिखाना। जब निर्णय करनेका समय आया तो वे दोनो स्त्रिया उस लडकेको लेकर हाजिर हुई। राजाने कहा देखो—जो पतिका धन है वह तो दोनो स्त्रियोका बराबर बराबर है। इससे यह निर्णय दिया जाता है कि इस लडकेमे तुम दोनोका बराबर बराबर अधिकार है। सिपाहियोको आर्डर दिया कि ऐ सिपाहियो इस लडकेको लिटा दो और इस तलवारसे इसको काटकर दो हिस्से बराबर बराबर करदो। सिपाहियोने उस लडकेको लिटा दिया, काटनेके लिए ज्यो ही तलवार उठाई कि एक स्त्री जिसका वह पुत्र था बोल उठी अरे इसे मत काटो यह लडका मेरा नही है, मैं तो झूठ कह रही थी। यह लडका इसीका है। उसने तो सोचा कि यह क्यो कटे चाहे जहाँ रहे, रहेगा तो कभी कभी देखकर ही खुश रहूँगी। और जिस स्त्रीका वह लडका न था वह बडी खुश हो रही थी। वाह जैसा मैं चाहती थी वैसा ही तो हो रहा है। तो राजाने अनुभवसे पूर्णतया समझ लिया कि यह बालक वास्तवमे इस स्त्रीका है जो काटनेके लिए मना कर रही और उसीको वह बालक दे दिया।

सर्वज्ञत्वके अवगमके लिये एक अनुभव प्रयोगका अनुरोध भैया ! अपने चित्तसे यथार्थतया निर्णीत बातका बहुत बल होता है। हम अपने ज्ञानके स्वभावको, ज्ञानकी रचनाको, स्वरूपको जरा परखनेमे लग जायें। यहाँ वहाके विकल्प चिन्तायें छोडकर और यहाँ तक कि पर्यायको पोजीशनको इन समस्त झझटोको छोडकर, जो मायाजाल है, उलझनके आश्रय हैं इन सबके व्यामोहको छोडकर एक आत्महितकी दृष्टिसे हम आत्मस्वरूप परखने लगे। आत्मा ज्ञानमात्र है ज्ञानस्वरूप जाननेपर आत्माका ज्ञान होता है। मैं उस ज्ञानको ही जानूँ, ज्ञानस्वभावके परखनेमे लगे तो अनेक प्रकारसे क्रमश उसका निर्णय चलता रहेगा और जब यह स्वसवेदन प्रत्यक्ष हो जायगा कि मेरा स्वरूप केवलमात्र ज्ञान है और ज्ञानका काम यहाँ ही रहकर जानन परिणमन करना है। उस जाननमे विषय होता है सो आकार ग्रहण इसीको ही कहते हैं। हो तो कुछ उस ज्ञानका विषय सत्पदार्थ है। सामने होना,

इतनी दूर होना, यह ज्ञानके लिए कैद नहीं पडी हुई है। उस स्वभावका निर्णय करने पर यह भी समझ लिया जायगा कि कभी ऐसी भी परिस्थिति हो सकती है कि ज्ञानका आवरण दूर हो जायगा पूर्णरूपसे तो निरावरण ज्ञान होनेपर यह ज्ञान समस्त सत्को जान लेता है। इस पद्धतिसे सर्वज्ञानेका निर्णय प्रत्यक्ष सुगमतया हो जाता है। इस प्रकार इस स्थलमे सर्वज्ञकी सिद्धि की गई है जो कि आज पूरी हुई है।

इति परीक्षामुखसूत्रप्रवचनदशमभागसमाप्तम्